SKPF-Wincompete Test Series 2026

खण्ड 4: भारतीय संविधान और राजव्यवस्था

(पाठ्य सामग्री)

Test 15 -संघीय सरकार और आयोग

अध्याय 1: भारत का राष्ट्रपति: संवैधानिक स्थिति, निर्वाचन प्रणाली, महाभियोग एवं पदावधि

1. संवैधानिक अवस्थिति एवं आधारभूत दर्शन

भारतीय संविधान के भाग V (संघ) के अंतर्गत अध्याय I (कार्यपालिका) में अनुच्छेद 52 से 78 तक संघ की कार्यपालिका का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। भारत शासन प्रणाली के अंतर्गत संसदीय (वेस्टमिंस्टर) प्रतिरूप को अंगीकार करता है, जिसके परिणामस्वरूप कार्यपालिका के दोहरे स्वरूप की उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है:

- **नाममात्र (विधिक/De Jure) कार्यपालिका:** भारत का राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रधान (Head of the State) एवं प्रथम नागरिक होता है। वह संपूर्ण राष्ट्र की एकता, अखंडता और सुदृढ़ता का संवैधानिक प्रतीक है।
- **वास्तविक (De Facto) कार्यपालिका:** प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद (Council of Ministers) शासन की वास्तविक शक्तियों का संचालन करती है।

प्रमुख संवैधानिक अनुच्छेदों का विन्यास

- **अनुच्छेद 52 (भारत का राष्ट्रपति):** यह उपबंध करता है कि "भारत का एक राष्ट्रपति होगा।" यह एक सर्वकालिक संवैधानिक पद है जो कभी रिक्त नहीं रह सकता।
- **अनुच्छेद 53 (संघ की कार्यपालिका शक्ति):**
    - संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी तथा वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा करेगा।
    - संघ के रक्षा बलों का सर्वोच्च समादेश (Supreme Command) राष्ट्रपति में निहित होगा और उसका प्रयोग विधि द्वारा विनियमित होगा।
    - 'अधीनस्थ अधिकारी' पदबंध के अंतर्गत मंत्रिपरिषद के सभी मंत्री सम्मिलित माने जाते हैं (सम्राट बनाम शिबनाथ बनर्जी वाद, 1945 प्रीवी कौंसिल एवं समशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य वाद, 1974 उच्चतम न्यायालय)।
- **अनुच्छेद 74 (मंत्रिपरिषद का राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देना):**
    - मूल संविधान में राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद का प्रावधान था।
    - **42वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976:** राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद की सलाह मानना पूरी तरह बाध्यकारी कर दिया गया ("वह ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा")।
    - **44वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1978:** इसके द्वारा एक संतुलन स्थापित करते हुए राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद की सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए वापस भेजने का अधिकार

wincompete

दिया गया। यद्यपि, पुनर्विचार के पश्चात् मंत्रिपरिषद द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार करना राष्ट्रपति के लिए अनिवार्य है।
    - अनुच्छेद 74(2) स्पष्ट करता है कि मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह की किसी भी न्यायालय में जांच नहीं की जा सकती।
- **अनुच्छेद 75 (मंत्रियों के बारे में अन्य उपबंध):** प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा। मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत (During the pleasure of the President) पद धारण करते हैं [अनुच्छेद 75(2)]। मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है [अनुच्छेद 75(3)]।
- **अनुच्छेद 77 (भारत सरकार के कार्य का संचालन):** भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्रवाई औपचारिक रूप से राष्ट्रपति के नाम से की हुई कही जाएगी। राष्ट्रपति भारत सरकार के कार्य को अधिक सुविधापूर्वक किए जाने तथा मंत्रियों में उक्त कार्य के आवंटन के लिए नियम बनाएगा।
- **अनुच्छेद 78 (राष्ट्रपति को जानकारी देने आदि के संबंध में प्रधानमंत्री के कर्तव्य):** यह अनुच्छेद प्रशासनिक एवं विधायी मामलों में मंत्रिपरिषद के निर्णयों से राष्ट्रपति को अवगत कराने का प्रधानमंत्री का संवैधानिक दायित्व तय करता है।

2. राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति का न्यायिक निर्वचन

राष्ट्रपति की विधिक एवं संवैधानिक स्थिति को स्पष्ट करने हेतु उच्चतम न्यायालय ने समय-समय पर महत्वपूर्ण संवैधानिक पीठों के माध्यम से ऐतिहासिक निर्णय दिए हैं:

वाद का नाम	**वर्ष**	**उच्चतम न्यायालय का अभीर्धारण / संवैधानिक सिद्धांत**
राम जमाया कपूर बनाम पंजाब राज्य	1955	राष्ट्रपति राज्य का औपचारिक प्रधान है। कार्यपालिका शक्तियां मंत्रिपरिषद के माध्यम से प्रयुक्त होती हैं। संसदीय प्रणाली में वास्तविक शक्तियां मंत्रिमंडल में निहित हैं।
समशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य	1974	सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने स्पष्ट किया कि राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर ही करता है, उन अपवाद स्वरूप परिस्थितियों को छोड़कर जहां संविधान ने उसे विवेकाधिकार दिया हो या जहां वह व्यक्तिगत संतुष्टि के बजाय संवैधानिक संतुष्टि पर कार्य करता है। राष्ट्रपति व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट नहीं होता, बल्कि संविधान की व्यवस्था अनुसार संतुष्ट होता है।
यू. एन. आर. राव बनाम इंदिरा गांधी	1971	लोकसभा के विघटन के उपरांत भी अनुच्छेद 74(1) के अनुसार एक मंत्रिपरिषद का अस्तित्व में रहना अनिवार्य है। बिना मंत्रिपरिषद की सलाह के राष्ट्रपति अपनी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करना संसदीय लोकतंत्र की मूल संरचना के विपरीत होगा।

wincompete

एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ	1994	राष्ट्रपति की संवैधानिक संतुष्टि (विशेष रूप से अनुच्छेद 356 के संदर्भ में) वस्तुनिष्ठ सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। यह संतुष्टि दुर्भावनापूर्ण या बाह्य आधारों पर आधारित होने की स्थिति में न्यायिक समीक्षा के दायरे में आती है।

3. अर्हताएं, शर्तें एवं उन्मुक्तियां

संवैधानिक अर्हताएं (अनुच्छेद 58)

कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित होने का पात्र तभी होगा जब वह:

1. भारत का नागरिक हो (जन्म से अथवा देशीयीकरण से; अमेरिकी संविधान के विपरीत जहां केवल जन्मजात नागरिक ही राष्ट्रपति बन सकता है, भारत में देशीयीकृत नागरिक भी पात्र है)।
2. 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
3. लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्ह हो (ध्यान रहे, संसद का सदस्य होना अनिवार्य नहीं है, केवल लोक सभा सदस्य चुने जाने की पात्रता आवश्यक है)।
4. भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद (Office of Profit) धारण न करता हो।

लाभ के पद के अपवाद [अनुच्छेद 58(2) का स्पष्टीकरण]:

संवैधानिक पदधारक लाभ के पद के दायरे से बाहर रखे गए हैं:

- वर्तमान राष्ट्रपति
- वर्तमान उपराष्ट्रपति
- किसी राज्य का राज्यपाल
- संघ अथवा राज्य का कोई मंत्री

पद की शर्तें (अनुच्छेद 59)

1. राष्ट्रपति संसद के किसी सदन का या किसी राज्य के विधान-मंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं होगा। यदि ऐसा कोई व्यक्ति निर्वाचित होता है, तो उसे उस सदन में अपना स्थान उस तारीख से रिक्त करना होगा जिस तारीख को वह राष्ट्रपति के रूप में अपना पद ग्रहण करता है।
2. वह कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करेगा।
3. वह बिना किराया दिए अपने शासकीय निवासों (राष्ट्रपति भवन) के उपयोग का हकदार होगा।
4. उसकी उपलब्धियां और भत्ते उसकी पदावधि के दौरान कम नहीं किए जाएंगे।

संवैधानिक उन्मुक्तियां एवं विशेषाधिकार (अनुच्छेद 361)

- **कार्यों के लिए न्यायालय के प्रति अनुत्तरदायी:** राष्ट्रपति अपने पद के कर्तव्यों के निर्वहन या उनके संबंध में किए गए किसी कार्य के लिए किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा। (केवल संसद द्वारा अनुच्छेद 61 के तहत महाभियोग की जांच के दौरान उसकी स्थिति अपवाद स्वरूप देखी जा सकती है)।
- **दांडिक उन्मुक्ति:** पदावधि के दौरान राष्ट्रपति के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में किसी भी प्रकार की आपराधिक कार्यवाही संस्थित नहीं की जा सकती और न ही उसे चालू रखा जा सकता है।
- **गिरफ्तारी या कारावास से छूट:** पदावधि के दौरान उसकी गिरफ्तारी या कारावास के लिए किसी न्यायालय से कोई आदेशिका जारी नहीं हो सकती।
- **दीवानी मामलों में प्रक्रिया:** राष्ट्रपति द्वारा व्यक्तिगत हैसियत से किए गए किसी कार्य के संबंध में कोई दीवानी मुकदमा चलाने के लिए कम से कम 2 माह पूर्व लिखित सूचना (Notice) तामील कराना अनिवार्य है, जिसमें मुकदमे की प्रकृति, कारण और पक्षकार का विवरण दर्ज हो।

vincompete

4. निर्वाचक मंडल (अनुच्छेद 54)

राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति द्वारा एक निर्वाचक मंडल (Electoral College) के माध्यम से होता है।

निर्वाचक मंडल में सम्मिलित सदस्य

1. संसद के दोनों सदनों (लोक सभा एवं राज्य सभा) के निर्वाचित सदस्य (Elected Members)।
2. सभी राज्यों की विधान सभाओं (Legislative Assemblies) के निर्वाचित सदस्य।
3. राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली और पुडुचेरी संघ राज्यक्षेत्र की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य (70वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा 1 जून 1995 से प्रभावी रूप से जोड़ा गया)। जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 के लागू होने के पश्चात संघ राज्य क्षेत्र जम्मू-कश्मीर की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों को शामिल करने के संदर्भ में अधिसूचना संसद द्वारा अपेक्षित है।

निर्वाचक मंडल से बाहर रखे गए सदस्य

- संसद के दोनों सदनों के मनोनीत सदस्य (Nominated Members)।
- राज्य विधान सभाओं के मनोनीत सदस्य (यद्यपि 104वें संविधान संशोधन 2019 द्वारा आंग्ल-भारतीय नामांकन समाप्त कर दिया गया है)।
- राज्य विधान परिषदों (Legislative Councils) के सदस्य (चाहे वे निर्वाचित हों या मनोनीत)। विधान परिषद उच्च सदन होने के बावजूद राष्ट्रपति निर्वाचन में भाग नहीं लेती, क्योंकि सभी राज्यों में द्विसदनीय विधायिका विद्यमान नहीं है।
- दिल्ली और पुडुचेरी संघ राज्य क्षेत्रों की विधान सभाओं के मनोनीत सदस्य।

5. मत मूल्य निर्धारण एवं समरूपता का सिद्धांत (अनुच्छेद 55)

संविधान का अनुच्छेद 55 राष्ट्रपति के निर्वाचन की रीति निर्धारित करता है। इसके दो मुख्य उद्देश्य हैं:

1. विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व के पैमाने में एकरूपता (Uniformity) प्राप्त करना।
2. समग्र रूप से सभी राज्यों और संघ के बीच तुल्यता (Parity) स्थापित करना।

विधायक के मत मूल्य का सूत्र

किसी राज्य की विधान सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या निकालने का सूत्र:

एक विधायक के मत का मूल्य = राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या times 1/000

शेषफल का नियम: यदि उक्त विभाजन के पश्चात शेषफल 500 या उससे अधिक आता है, तो प्रत्येक सदस्य के मत मूल्य में 1 जोड़ दिया जाता है; यदि 500 से कम हो तो उसे छोड़ दिया जाता है।

सांसद के मत मूल्य का सूत्र

संसद के दोनों सदनों के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या निकालने का सूत्र:

एक सांसद के मत का मूल्य = सभी राज्यों के समस्त विधान सभा सदस्यों के कुल मत मूल्यों का योग\संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्य

संसद के निर्वाचित सदस्य: वर्तमान में लोक सभा के निर्वाचित सदस्य (543) + राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य (233) = कुल 776।

जनसंख्या निर्धारण का संवैधानिक आधार

- **42वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976:** राज्यों की जनसंख्या को 1971 की जनगणना के आंकड़ों पर स्थिर कर दिया गया ताकि परिवार नियोजन और जनसंख्या नियंत्रण को बढ़ावा देने वाले राज्यों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व आनुपातिक रूप से कम न हो।

www.compete

- **84वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001:** इस व्यवस्था को वर्ष 2026 के पश्चात् होने वाली पहली जनगणना के सुसंगत आंकड़े प्रकाशित होने तक के लिए यथावत बनाए रखने का प्रावधान किया गया। अतः वर्तमान में भी राष्ट्रपति चुनाव में मत मूल्य की गणना के लिए 1971 की जनगणना को ही आधार माना जाता है।

6. निर्वाचन प्रक्रिया: आनुपातिक प्रतिनिधित्व एवं एकल संक्रमणीय मत

राष्ट्रपति का चुनाव **आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote - STV)** द्वारा और **गुप्त मतदान (Secret Ballot)** द्वारा होता है।

नामांकन एवं प्रस्तावक व्यवस्था

- **राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1952** (1997 में यथा संशोधित) के अनुसार:
    - किसी उम्मीदवार के नामांकन पत्र पर कम से कम **50 प्रस्तावक (Proposers)** और **50 समर्थक (Seconders)** के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। ये प्रस्तावक एवं समर्थक राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल के सदस्य होने चाहिए।
    - जमानत राशि (Security Deposit) **15,000 रुपये** है, जिसे भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) या सरकारी खजाने में जमा कराना होता है।
    - यदि कोई प्रत्याशी कुल डाले गए वैध मतों का **1/6 भाग (16.67%)** प्राप्त करने में असफल रहता है, तो उसकी जमानत राशि जब्त हो जाती है।

निर्वाचन कोटा (Electoral Quota)

राष्ट्रपति पद के चुनाव में सामान्य बहुमत (साधारण अग्रता प्रणाली/First-Past-The-Post) लागू नहीं होती। विजयी घोषित होने के लिए उम्मीदवार को वैध मतों का एक निश्चित कोटा प्राप्त करना अनिवार्य होता है:

निर्वाचन कोटा = (कुल वैध मत / 2) + 1

अर्थात कुल वैध मतों के 50% से एक मत अधिक प्राप्त करना आवश्यक है।

वरीयता मतदान एवं मतों का स्थानांतरण

1. **वरीयता अंकन:** प्रत्येक मतदाता को मतपत्र पर प्रत्याशियों के नाम के आगे 1, 2, 3 आदि वरीयता क्रम अंकित करना होता है। प्रथम वरीयता (First Preference) अंकित करना अनिवार्य है, अन्यथा मतपत्र अवैध घोषित हो जाता है।
2. **प्रथम चक्र की मतगणना:** सर्वप्रथम सभी मतपत्रों पर प्रथम वरीयता के मतों की गणना की जाती है। यदि कोई प्रत्याशी प्रथम चक्र में ही आवश्यक निर्वाचन कोटा प्राप्त कर लेता है, तो उसे विजयी घोषित कर दिया जाता है।
3. **द्वितीय एवं आगामी चक्र (एलिमिनेशन प्रक्रिया):** यदि कोई भी प्रत्याशी कोटा प्राप्त नहीं कर पाता, तो सबसे कम प्रथम वरीयता मत पाने वाले उम्मीदवार को दौड़ से बाहर कर दिया जाता है। बाहर हुए उम्मीदवार के मतपत्रों पर अंकित द्वितीय वरीयता (Second Preference) के मतों को शेष सक्रिय उम्मीदवारों के खाते में उनके संबंधित मत मूल्यों के साथ स्थानांतरित कर दिया जाता है।
4. यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि कोई उम्मीदवार आवश्यक कोटा प्राप्त न कर ले या जब तक केवल एक अंतिम प्रत्याशी शेष न बचे।

ऐतिहासिक अपवाद: 1969 के राष्ट्रपति चुनाव में वी. वी. गिरि एकमात्र ऐसे राष्ट्रपति हैं जिन्होंने द्वितीय वरीयता (Second Round Counting) के मतों की गणना के आधार पर विजय प्राप्त की थी। वे निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में निर्वाचित हुए थे। (1977 में नीलम संजीव रेड्डी एकमात्र निर्विरोध निर्वाचित राष्ट्रपति बने)।

7. राष्ट्रपति का शपथ ग्रहण एवं पदावधि (अनुच्छेद 60 एवं 56)

शपथ या प्रतिज्ञान (अनुच्छेद 60)

राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व निम्नलिखित प्रारूप में शपथ लेता है:

- वह निष्ठापूर्वक भारत के राष्ट्रपति के पद का कार्यपालन करेगा।
- अपनी पूरी योग्यता से **संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण (Preserve, Protect and Defend)** करेगा।
- भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहेगा।

शपथ ग्रहणकर्ता प्राधिकारी: राष्ट्रपति को शपथ **भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (Chief Justice of India - CJI)** दिलाते हैं। उनकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय के **उपलब्ध ज्येष्ठतम न्यायाधीश (Senior-most Judge)** द्वारा शपथ दिलाई जाती है।

पदावधि (अनुच्छेद 56)

1. राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तारीख से **5 वर्ष** की अवधि तक पद धारण करता है।
2. 5 वर्ष की अवधि समाप्त होने के उपरांत भी वह तब तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि उसका उत्तराधिकारी अपना पद ग्रहण न कर ले [अनुच्छेद 56(1)(ग)]।
3. राष्ट्रपति भारत के उपराष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा त्यागपत्र दे सकता है।
4. उपराष्ट्रपति त्यागपत्र की सूचना तत्काल लोक सभा के अध्यक्ष (Speaker) को देगा [अनुच्छेद 56(2)]।
5. राष्ट्रपति को संविधान के अतिक्रमण पर अनुच्छेद 61 में उपबंधित रीति से चलाए गए महाभियोग द्वारा पद से हटाया जा सकता है।

पुनर्निर्वाचन की पात्रता (अनुच्छेद 57)

कोई व्यक्ति, जो राष्ट्रपति के रूप में पद धारण करता है या कर चुका है, संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति पद के लिए पुनर्निर्वाचन का पात्र होगा। भारतीय संविधान में पुनर्निर्वाचन की अधिकतम सीमाओं का कोई उल्लेख नहीं है (अमेरिका के 22वें संविधान संशोधन के विपरीत, जहां कोई व्यक्ति दो बार से अधिक राष्ट्रपति नहीं बन सकता)। अब तक केवल डॉ. राजेंद्र प्रसाद ही दो बार (1950-1962) इस पद पर रहे हैं।

8. महाभियोग की प्रक्रिया (अनुच्छेद 61)

महाभियोग एक अर्ध-न्यायिक (Quasi-Judicial) प्रक्रिया है जो संसद में संचालित की जाती है।

महाभियोग का एकमात्र आधार

संविधान के **अनुच्छेद 61(1)** के तहत महाभियोग का एकमात्र संवैधानिक आधार **"संविधान का अतिक्रमण" (Violation of the Constitution)** है। संविधान में 'संविधान का अतिक्रमण' पदबंध को परिभाषित नहीं किया गया है।

महाभियोग की चरणबद्ध प्रक्रिया

1. आरोप का प्रस्ताव

संसद का कोई भी सदन (लोक सभा या राज्य सभा)

↓

2. आरोप पत्र एवं नोटिस
सदन की कुल संख्या के 1/4 सदस्यों के हस्ताक्षर + 14 दिन की पूर्व लिखित सूचना

↓

3. प्रथम सदन में मतदान
कुल सदस्य संख्या के 2/3 विशेष बहुमत से पारित

↓

4. द्वितीय सदन द्वारा जांच
आरोपों का अन्वेषण (राष्ट्रपति को स्वयं या प्रतिनिधि द्वारा पक्ष रखने का अधिकार)

↓

5. द्वितीय सदन में मतदान
कुल सदस्य संख्या के 2/3 विशेष बहुमत से संकल्प पारित

↓

6. पदमुक्ति
पारित होने की तिथि से राष्ट्रपति तत्काल पदच्युत

महाभियोग प्रक्रिया की विशिष्ट कानूनी विशेषताएं

- **सदन की पहल:** महाभियोग का संकल्प संसद के किसी भी सदन (लोक सभा या राज्य सभा) में प्रस्तुत किया जा सकता है।
- **नोटिस की अनिवार्यता:** संकल्प प्रस्तुत करने से कम से कम **14 दिन पूर्व** राष्ट्रपति को लिखित सूचना देना अनिवार्य है।
- **आरंभिक समर्थन:** आरोप वाले संकल्प पर उस सदन की **कुल सदस्य संख्या के कम से कम एक-चौथाई (1/4)** सदस्यों के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं।
- **विशेष बहुमत की कठोरता:** महाभियोग प्रस्ताव को पारित करने के लिए दोनों सदनों में अलग-अलग **सदन की कुल सदस्य संख्या का कम से कम दो-तिहाई (2/3) बहुमत** आवश्यक होता है (यह संविधान में प्रयुक्त सबसे कठोर बहुमत है, जहां उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के स्थान पर 'सदन की कुल सदस्य संख्या' का अनुपात लिया जाता है)।
- **द्वितीय सदन की भूमिका:** दूसरा सदन आरोपों की जांच करता है या करवाता है। इस जांच के दौरान राष्ट्रपति को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने अथवा अपने किसी विधिक प्रतिनिधि/अधिवक्ता के माध्यम से अपना पक्ष प्रस्तुत करने का संवैधानिक अधिकार है।
- **पदमुक्ति की प्रभावी तिथि:** यदि द्वितीय सदन भी जांच के पश्चात कुल सदस्य संख्या के 2/3 बहुमत से महाभियोग के संकल्प को पारित कर देता है, तो संकल्प पारित होने की तारीख से राष्ट्रपति अपने पद से हट जाता है।

महाभियोग में सदस्यों की सहभागिता की तुलना

www.compete

सदस्य वर्ग	निर्वाचन में भागीदारी (अनुच्छेद 54)	महाभियोग में भागीदारी (अनुच्छेद 61)
संसद के निर्वाचित सदस्य	हाँ	हाँ
संसद के मनोनीत सदस्य	नहीं	**हाँ**
राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य	हाँ	**नहीं**
दिल्ली व पुडुचेरी विधान सभा के निर्वाचित सदस्य	हाँ	**नहीं**
राज्य विधान परिषदों के सदस्य	नहीं	नहीं

विशेष टिप्पणी: भारत के संवैधानिक इतिहास में अब तक किसी भी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की प्रक्रिया आरंभ नहीं की गई है।

9. पद रिक्ति एवं निर्वाचन का समय (अनुच्छेद 62 एवं 65)

अनुच्छेद 62 राष्ट्रपति के पद में रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचन कराने के समय का निर्धारण करता है:

1. कार्यकाल की समाप्ति पर रिक्ति

- राष्ट्रपति के 5 वर्ष के कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व ही उत्तराधिकारी का निर्वाचन पूर्ण करा लिया जाना अनिवार्य है [अनुच्छेद 62(1)]।
- यदि नए राष्ट्रपति के पद ग्रहण में विलंब होता है, तो निवर्तमान राष्ट्रपति तब तक पद पर बना रहेगा जब तक कि उसका उत्तराधिकारी पदभार ग्रहण न कर ले [अनुच्छेद 56(1)(ग)]। इस स्थिति में उपराष्ट्रपति को कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

2. आकस्मिक रिक्ति

- राष्ट्रपति की मृत्यु, त्यागपत्र, महाभियोग द्वारा हटाए जाने अथवा अन्य कारणों से पद रिक्त होने पर निर्वाचन रिक्ति की तारीख से **6 माह के भीतर** कराया जाना अनिवार्य है [अनुच्छेद 62(2)]।
- नए निर्वाचित राष्ट्रपति का कार्यकाल पदभार ग्रहण करने की तिथि से पूरे **5 वर्ष** का होता है, न कि शेष बची हुई अवधि के लिए।

3. कार्यवाहक राष्ट्रपति व्यवस्था (अनुच्छेद 65)

- राष्ट्रपति की आकस्मिक रिक्ति, अनुपस्थिति या बीमारी की दशा में उपराष्ट्रपति कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा।

- उपराष्ट्रपति भी अनुपस्थित हो, तो **राष्ट्रपति उत्तराधिकार अधिनियम, 1969** के अनुसार:

    1. भारत का मुख्य न्यायमूर्ति (CJI) कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा।
    2. यदि मुख्य न्यायमूर्ति का पद भी रिक्त हो, तो उच्चतम न्यायालय का उपलब्ध ज्येष्ठतम न्यायाधीश इस दायित्व का निर्वहन करेगा।
- *ऐतिहासिक उदाहरण:* 1969 में राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन के निधन के बाद तत्कालीन उपराष्ट्रपति वी. वी. गिरि ने कार्यवाहक राष्ट्रपति का पद संभाला। बाद में राष्ट्रपति चुनाव लड़ने हेतु वी. वी. गिरि द्वारा उपराष्ट्रपति पद से त्यागपत्र देने पर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति **न्यायमूर्ति मोहम्मद हिदायतुल्लाह** ने 20 जुलाई 1969 से 24 अगस्त 1969 तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में दायित्व निभाया।
- कार्यवाहक राष्ट्रपति को राष्ट्रपति की सभी शक्तियां, उन्मुक्तियां, वेतन और भत्ते (संसद द्वारा अवधारित) प्राप्त होते हैं।

10. चुनाव विवाद एवं न्यायिक अधिकार क्षेत्र (अनुच्छेद 71)

संविधान का अनुच्छेद 71 राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न या संसक्त सभी शंकाओं और विवादों के समाधान हेतु विशेष तंत्र स्थापित करता है:

1. **अनन्य अधिकार क्षेत्र:** राष्ट्रपति के निर्वाचन से जुड़े सभी विवादों की जांच और अंतिम निर्णय केवल **उच्चतम न्यायालय (Supreme Court)** द्वारा किया जाएगा। उसका निर्णय अंतिम और बाध्यकारी होगा।
2. **याचिका का आधार:** निर्वाचक मंडल में किसी भी सदस्य का पद रिक्त होने (जैसे किसी राज्य की विधान सभा का विघटन या संसद में रिक्तियां) के आधार पर राष्ट्रपति के निर्वाचन को चुनौती नहीं दी जा सकती [अनुच्छेद 71(4), 11वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1961 द्वारा अंतःस्थापित]।
3. **चुनाव याचिका की अर्हताएं (1952 के अधिनियम के तहत):**

    - याचिका केवल एक उम्मीदवार (Candidate) द्वारा अथवा निर्वाचक मंडल के न्यूनतम **20 निर्वाचकों** द्वारा संयुक्त रूप से दायर की जा सकती है।
    - याचिका परिणाम घोषित होने की तारीख से **30 दिनों के भीतर** उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत की जानी आवश्यक है।
4. **अवैध निर्वाचन की दशा में कृत्यों की वैधता:** यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति के राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन को शून्य (अवैध) घोषित कर दिया जाता है, तो उस घोषणा की तारीख से पूर्व उसके द्वारा राष्ट्रपति के पद की शक्तियों के प्रयोग में किए गए शासकीय कार्य अविधिमान्य (Invalid) नहीं होंगे [अनुच्छेद 71(2)]। वे कानूनी रूप से प्रभावी बने रहेंगे।

11. मुख्य अवधारणात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली

- **संवैधानिक विवेक (Constitutional Discretion) बनाम परिस्थितिजन्य विवेक (Situational Discretion):** राष्ट्रपति के पास संविधान में राज्यपाल की भांति औपचारिक 'विवेकाधीन शक्तियां' (Discretionary Powers) नहीं हैं। तथापि, विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितियों में उसे स्वविवेक से निर्णय लेना पड़ता है, जैसे:

    1. त्रिशंकु लोक सभा (Hung Parliament) की स्थिति में प्रधानमंत्री की नियुक्ति।
    2. अविश्वास प्रस्ताव से घिरी या पराजित मंत्रिपरिषद द्वारा लोक सभा के विघटन की सिफारिश पर निर्णय।
    3. आकस्मिक रूप से प्रधानमंत्री की मृत्यु होने पर जब कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी न हो।

- **पॉकेट वीटो (Pocket Veto / जेबी निषेधाधिकार):** अनुच्छेद 111 के अंतर्गत राष्ट्रपति को संसद द्वारा पारित गैर-धन विधेयकों पर सहमति देने, रोकने या पुनर्विचार के लिए लौटाने का अधिकार है।

wincompete

चूंकि संविधान में राष्ट्रपति द्वारा सहमति देने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है, अतः विधेयक को अनिश्चितकाल के लिए लंबित रखना पॉकेट वीटो कहलाता है (1986 में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा भारतीय डाकघर संशोधन विधेयक के संदर्भ में प्रयुक्त)।

- **विधिक संरक्षण (Preserve, Protect and Defend):** राष्ट्रपति की शपथ के शब्द मंत्रियों या न्यायाधीशों की शपथ से भिन्न हैं। मंत्री पद एवं गोपनीयता की शपथ लेते हैं तथा संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखते हैं, जबकि राष्ट्रपति संविधान के "परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण" की शपथ लेता है, जो उसे संविधान का सर्वोच्च प्रहरी बनाता है।

अध्याय 2: राष्ट्रपति की शक्तियां: कार्यपालिका शक्तियां, विधायी शक्तियां एवं अध्यादेश जारी करने की शक्ति

संघ की कार्यपालिका शक्ति का संवैधानिक ढांचा एवं विस्तार

भारतीय संविधान के भाग पांच के अध्याय एक के अंतर्गत केंद्रीय कार्यपालिका का विस्तृत विन्यास प्रस्तुत किया गया है। भारत की संसदीय शासन व्यवस्था में राज्य का औपचारिक प्रमुख राष्ट्रपति होता है, जबकि वास्तविक कार्यकारी सत्ता मंत्रिपरिषद में निहित होती है।

कार्यपालिका शक्ति का संवैधानिक अधिष्ठान

अ. **अनुच्छेद 53(1) की वैधानिक संरचना:** संघ की समस्त कार्यपालिका शक्ति भारत के राष्ट्रपति में निहित होगी। राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग या तो स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से संविधान के उपबंधों के अनुसार करेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने समशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य वाद में स्थापित किया कि 'अधीनस्थ अधिकारी' पदबंध के अंतर्गत प्रधानमंत्री एवं समस्त मंत्री सम्मिलित हैं।

ब. **अनुच्छेद 53(2) के अंतर्गत सर्वोच्च समादेश:** संघ के रक्षा बलों का सर्वोच्च समादेश राष्ट्रपति में निहित है। किंतु यह शक्ति निरपेक्ष नहीं है; इसका प्रयोग संसद द्वारा बनाई गई विधि के अनुसार ही विनियमित होता है। राष्ट्रपति विधि के प्राधिकार के बिना न तो युद्ध की घोषणा कर सकता है और न ही सशस्त्र बलों की तैनाती का आदेश दे सकता है।

स. **अनुच्छेद 73 के तहत कार्यपालिका शक्ति की सीमाएं:** संघ की कार्यपालिका शक्ति का क्षेत्रीय एवं विषयगत विस्तार उन समस्त मामलों तक है जिन पर संसद को विधि बनाने की अनन्य विधायी शक्ति प्राप्त है। इसके अंतर्गत सातवीं अनुसूची की सूची एक (संघ सूची) के समस्त विषय आते हैं। किसी अंतरराष्ट्रीय संधि, समझौते अथवा अभीसमयों के क्रियान्वयन के संदर्भ में यह शक्ति उन क्षेत्रों में भी विस्तारित होती है जो सामान्य परिस्थितियों में राज्यों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

द. **समवर्ती सूची के संदर्भ में कार्यकारी सीमा:** अनुच्छेद 73(1) के परंतुक के अनुसार, समवर्ती सूची के विषयों पर कार्यपालिका शक्ति सामान्यतः राज्यों के पास ही सुरक्षित रहती है। संघ को समवर्ती सूची के किसी विषय पर कार्यकारी शक्ति केवल तभी प्राप्त होती है जब संविधान अथवा संसद द्वारा निर्मित विधि स्पष्ट रूप से संघ को यह शक्ति प्रदान करे।

य. **अनुच्छेद 77 के अधीन कार्य संचालन:** भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्रवाइयां औपचारिक रूप से राष्ट्रपति के नाम से की हुई कही जाएंगी। राष्ट्रपति कार्य को अधिक सुविधापूर्वक किए जाने तथा मंत्रियों में उसके आबंटन हेतु नियम बनाता है, जिन्हें कार्य आबंटन नियम कहा जाता है। किसी अधिकृत अधिकारी द्वारा

wincompete

राष्ट्रपति के नाम से निष्पादित और अधिप्रमाणित आदेश को इस आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह वास्तव में राष्ट्रपति द्वारा नहीं किया गया था।

कार्यपालिका शक्ति: औपचारिक बनाम वास्तविक स्थिति एवं संवैधानिक संशोधन

संविधान सभा में डॉ. भीमराव आंबेडकर ने स्पष्ट किया था कि राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख है, कार्यपालिका का नहीं; वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, राष्ट्र पर शासन नहीं करता। इस सैद्धांतिक अवधारणा को विभिन्न अनुच्छेदों एवं संशोधनों द्वारा संहिताबद्ध किया गया।

अनुच्छेद 74 एवं 75 का विकासात्मक परिप्रेक्ष्य

अ. **मूल संवैधानिक स्थिति:** मूल संविधान के अनुच्छेद 74(1) में उपबंध था कि राष्ट्रपति को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। मूल पाठ में यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि क्या राष्ट्रपति इस सलाह को मानने के लिए पूर्णतः विवश है।

ब. **42वां संविधान संशोधन अधिनियम 1976:** इस संशोधन ने अनुच्छेद 74(1) में संशोधन कर यह अनिवार्य बना दिया कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा। इसने राष्ट्रपति के विवेकाधिकार की संभावना को समाप्त कर उसे पूर्णतः नाममात्र की कार्यपालिका में रूपांतरित कर दिया।

स. **44वां संविधान संशोधन अधिनियम 1978:** इस संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 74(1) में एक परंतुक जोड़ा गया। इसके अंतर्गत राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वह मंत्रिपरिषद की सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है। किंतु पुनर्विचार के पश्चात जब मंत्रिपरिषद कोई सलाह पुनः प्रस्तुत करती है, तब राष्ट्रपति उस सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए विधिक रूप से बाध्य होता है।

द. **मंत्रिपरिषद की सलाह की अप्रकटनीयता:** अनुच्छेद 74(2) के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई किसी भी सलाह की किसी भी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी। यह उपबंध कार्यपालिका के आंतरिक विचार-विमर्श को पूर्ण गोपनीयता प्रदान करता है।

कार्यपालिका स्थिति से संबंधित प्रमुख न्यायिक निर्णय

वाद का नाम	वर्ष	सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य निर्णय एवं विधि सिद्धांत
राम जमाया कपूर बनाम पंजाब राज्य	1955	कार्यपालिका शक्ति का आशय केवल संसद द्वारा पारित विधियों का क्रियान्वयन मात्र नहीं है, बल्कि इसमें शासन का संचालन, लोक नीति का निर्धारण तथा प्रशासनिक कार्यों का प्रबंधन भी सम्मिलित है, बशर्ते वे विधि का उल्लंघन न करें।
यू. एन. आर. राव बनाम इंदिरा गांधी	1971	यदि लोक सभा विघटित भी हो जाए, तब भी अनुच्छेद 74(1) के अनुसार एक मंत्रिपरिषद का अस्तित्व में रहना अनिवार्य है। बिना मंत्रिपरिषद के राष्ट्रपति अपनी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता; अन्यथा यह संसदीय शासन व्यवस्था की मूल संरचना के विरुद्ध होगा।

wincompete

समशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य	1974	सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि जहां भी संविधान यह अपेक्षा करता है कि राष्ट्रपति का 'समाधान' आवश्यक है, वहां समाधान राष्ट्रपति का व्यक्तिगत समाधान नहीं है, बल्कि वह मंत्रिपरिषद की संतुष्टि पर आधारित संवैधानिक समाधान है।
एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ	1994	नौ न्यायाधीशों की पीठ ने स्पष्ट किया कि राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्ति और उसका समाधान न्यायिक समीक्षा के दायरे से पूर्णतः बाहर नहीं है। यदि निर्णय दुर्भावनापूर्ण या अप्रासंगिक आधारों पर आधारित है तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है।

संवैधानिक नियुक्तियां, निष्कासन एवं प्रसादपर्यंत का सिद्धांत

राष्ट्रपति संघ के उच्च पदों पर नियुक्तियां करने वाला सर्वोच्च प्राधिकारी है। ये नियुक्तियां दो विशिष्ट प्रक्रियाओं के माध्यम से संपन्न होती हैं: हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (वारंट) द्वारा, तथा सामान्य प्रशासनिक अधिसूचनाओं द्वारा।

वारंट (हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र) द्वारा नियुक्तियां

संवैधानिक रूप से अत्यंत संवेदनशील और स्वतंत्र पदों की गरिमा बनाए रखने के लिए राष्ट्रपति व्यक्तिगत रूप से अपने हस्ताक्षर एवं राजकीय मुहर से अधिपत्र जारी करता है:

अ. **उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश:** अनुच्छेद 124(2) एवं अनुच्छेद 217(1) के अंतर्गत न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। यह नियुक्ति वर्तमान कोलेजियम प्रणाली की संस्तुतियों पर आधारित होती है।

ब. **भारत का नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (CAG):** अनुच्छेद 148(1) के अंतर्गत देश के सार्वजनिक वित्त के सर्वोच्च संरक्षक की नियुक्ति वारंट द्वारा होती है।

स. **राज्यों के राज्यपाल:** अनुच्छेद 155 के अनुसार राज्य के संवैधानिक प्रमुख की नियुक्ति राष्ट्रपति अपने अधिपत्र द्वारा करता है।

द. **विशिष्ट राष्ट्रीय आयोगों के अध्यक्ष एवं सदस्य:** राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (अनुच्छेद 338), राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग (अनुच्छेद 338क), तथा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (अनुच्छेद 338ख) के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति के अधिपत्र द्वारा की जाती है।

सामान्य प्रशासनिक आदेश द्वारा होने वाली नियुक्तियां

अ. **भारत का महान्यायवादी (अनुच्छेद 76):** देश के सर्वोच्च विधि अधिकारी की नियुक्ति।

ब. **निर्वाचन आयोग (अनुच्छेद 324):** मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति संसद द्वारा निर्मित अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप की जाती है।

स. **संघ लोक सेवा आयोग (अनुच्छेद 316):** अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति।

wisecompete

द. **वित्त आयोग (अनुच्छेद 280):** प्रत्येक पांच वर्ष की समाप्ति पर या उससे पूर्व एक अध्यक्ष और चार सदस्यों की नियुक्ति।

य. **संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासक एवं मुख्यमंत्री:** अनुच्छेद 239 के तहत उपराज्यपाल/प्रशासक तथा अनुच्छेद 239कक के तहत राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के मुख्यमंत्री की नियुक्ति।

प्रसादपर्यंत का सिद्धांत (अनुच्छेद 310) एवं उसकी सीमाएं

संविधान के अनुच्छेद 310(1) के अनुसार, संघ के रक्षा सेवा या असैनिक सेवा के पद धारण करने वाले व्यक्ति राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद पर बने रहते हैं। किंतु यह सिद्धांत असीमित नहीं है और इसके संवैधानिक अपवाद निम्नलिखित हैं:

अ. **पूर्णतः प्रसादपर्यंत रहने वाले पद:** भारत का महान्यायवादी, राज्यों के राज्यपाल, तथा केंद्रीय मंत्रिपरिषद के सदस्य। इन पदाधिकारियों को बिना कोई औपचारिक कारण बताए पद से हटाया जा सकता है, किंतु न्यायालय ने बी. पी. सिंघल बनाम भारत संघ (2010) वाद में स्पष्ट किया कि दुर्भावनापूर्ण अथवा मनमाने ढंग से राज्यपाल को हटाना न्यायिक पुनरावलोकन के अधीन है।

ब. **प्रसादपर्यंत के सिद्धांत के अपवाद:** उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश (अनुच्छेद 124(4) एवं 217), नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (अनुच्छेद 148(1)), मुख्य निर्वाचन आयुक्त (अनुच्छेद 324(5)), तथा संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य (अनुच्छेद 317)। इन्हें केवल संविधान में विनिर्दिष्ट रीति और सिद्ध कदाचार या अक्षमता के आधार पर ही हटाया जा सकता है।

स. **अनुच्छेद 311 का सुरक्षात्मक आवरण:** सामान्य सिविल सेवकों को इस अनुच्छेद के तहत सुरक्षा प्राप्त है कि उन्हें उनकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी से अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा बर्खास्त नहीं किया जाएगा और उन्हें अपने बचाव का युक्तियुक्त अवसर दिए बिना सेवामुक्त नहीं किया जाएगा।

अंतर-राज्यीय संबंध, स्वायत्त क्षेत्र एवं आयोगों का गठन

संघीय व्यवस्था में समन्वय स्थापित करने के लिए राष्ट्रपति को विभिन्न संस्थाओं और आयोगों के गठन का व्यापक अधिकार दिया गया है।

प्रशासनिक आयोग एवं परिषदों का गठन

अ. **अंतर-राज्यीय परिषद (अनुच्छेद 263):** राज्यों के मध्य विवादों की जांच करने, सामान्य हित के विषयों पर विचार-विमर्श करने और नीतियों के समन्वय हेतु राष्ट्रपति आदेश द्वारा अंतर-राज्यीय परिषद की स्थापना कर सकता है। सरकारीया आयोग की सिफारिश पर वर्ष 1990 में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा स्थायी अंतर-राज्यीय परिषद का गठन किया गया।

wincompete

ब. **वित्त आयोग का गठन (अनुच्छेद 280):** संघ और राज्यों के मध्य करों के शुद्ध आगमों के वितरण तथा भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्व में सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धांतों की सिफारिश हेतु राष्ट्रपति प्रत्येक पांचवें वर्ष वित्त आयोग का गठन करता है।

स. **अनुसूचित क्षेत्रों एवं जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन (पांचवीं एवं छठी अनुसूची):** राष्ट्रपति को किसी भी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने, उसके क्षेत्रफल को घटाने या बढ़ाने, अथवा सीमा रेखाओं को बदलने की पूर्ण शक्ति है। राज्यपाल को ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति को वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होता है।

द. **राजभाषा आयोग एवं समिति (अनुच्छेद 344):** संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के उत्तरोत्तर प्रयोग तथा अंग्रेजी के प्रयोग पर निर्बंधनों के संबंध में सिफारिश करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा राजभाषा आयोग का गठन किया जाता है।

विधायी प्रक्रिया में राष्ट्रपति की भूमिका: संसद् का अभिन्न अंग

अनुच्छेद 79 के अनुसार, संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों (राज्य सभा और लोक सभा) से मिलकर बनेगी। यद्यपि राष्ट्रपति संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं होता और न ही बैठकों में भाग लेता है, तथापि वह विधायी प्रक्रिया का अपरिहार्य अंग है।

संसद के सत्र, सत्रावसान एवं विघटन (अनुच्छेद 85)

अ. **सत्राह्वान:** राष्ट्रपति समय-समय पर संसद के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर अधिवेशन के लिए आहूत करता है जिसे वह उचित समझे। दो सत्रों की अंतिम एवं प्रथम बैठक के मध्य छह माह से अधिक का अंतर नहीं हो सकता।

ब. **सत्रावसान:** राष्ट्रपति सदन की कार्यवाही समाप्त होने पर मंत्रिपरिषद की सलाह से सत्रावसान की घोषणा करता है। सत्रावसान से वर्तमान सत्र का अंत होता है, किंतु इसके कारण सदन के समक्ष विचाराधीन विधेयक व्यपगत (Lapse) नहीं होते।

स. **लोक सभा का विघटन:** राष्ट्रपति को लोक सभा को विघटित करने की शक्ति प्राप्त है। सामान्यतः यह प्रधानमंत्री की सलाह पर किया जाता है। यदि प्रधानमंत्री विश्वास मत खो चुका हो या अल्पमत में हो, तो राष्ट्रपति वैकल्पिक सरकार के गठन की संभावनाओं का परीक्षण करने हेतु अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है।

संसद में अभिभाषण एवं संदेश प्रेषण (अनुच्छेद 86 एवं 87)

अ. **साधारण अभिभाषण एवं संदेश (अनुच्छेद 86):** राष्ट्रपति संसद के किसी एक सदन या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में अभिभाषण कर सकता है। वह संसद में लंबित किसी विधेयक अथवा अन्य किसी विषय पर संसद को संदेश भेज सकता है, जिस पर संसद को विचार करना अनिवार्य होता है।

ब. **विशेष अभिभाषण (अनुच्छेद 87):** प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात लोक सभा के प्रथम सत्र के आरंभ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र (सामान्यतः बजट सत्र) के आरंभ में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को अनिवार्यतः संबोधित करता है। यह अभिभाषण सरकार की वार्षिक नीतियों और कार्यक्रमों का आधिकारिक दस्तावेज होता है। दोनों सदनों में इस पर परिचर्चा होती है और धन्यवाद प्रस्ताव (Motion of Thanks) पारित किया जाता है। यदि लोक सभा में धन्यवाद प्रस्ताव गिर जाए तो सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है।

स. **सामयिक अध्यक्ष (Pro-tem Speaker) की नियुक्ति (अनुच्छेद 95):** आम चुनाव के उपरांत नई लोक सभा की पहली बैठक की अध्यक्षता करने तथा नए सदस्यों को शपथ दिलाने के लिए राष्ट्रपति सदन के वरिष्ठतम सदस्यों में से एक को सामयिक अध्यक्ष नियुक्त करता है।

Wincompete

द. **सदन में सदस्यों का नामनिर्देशन:** राष्ट्रपति साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्र में व्यावहारिक अनुभव रखने वाले 12 व्यक्तियों को राज्य सभा में नामनिर्देशित करता है (अनुच्छेद 80)। पूर्व में अनुच्छेद 331 के अंतर्गत लोक सभा में 2 आंग्ल-भारतीय सदस्यों को नामित करने की शक्ति थी, जिसे 104वें संविधान संशोधन अधिनियम 2019 द्वारा समाप्त कर दिया गया है।

विधेयकों की स्वीकृति एवं वीटो (निषेधाधिकार) शक्तियां (अनुच्छेद 111)

संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक तब तक अधिनियम नहीं बन सकता जब तक कि राष्ट्रपति उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान न कर दे। अनुच्छेद 111 राष्ट्रपति को तीन स्पष्ट विकल्प प्रदान करता है, जिनसे उसकी वीटो शक्तियां निसृत होती हैं।

संसद द्वारा पारित विधेयक

↓

राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुति (अनुच्छेद 111)

↓ **(राष्ट्रपति के पास विकल्प)**

1. स्वीकृति देना	2. स्वीकृति रोकना	3. पुनर्विचार हेतु लौटाना
विधेयक अधिनियम बन जाता है	**आत्यंतिक वीटो** (विधेयक का अंत)	**निलंबनकारी वीटो** (संसद द्वारा साधारण बहुमत से पुनः पारित होने पर स्वीकृति बाध्यकारी)

वीटो शक्तियों का तुलनात्मक स्वरूप

अ. **आत्यंतिक वीटो (Absolute Veto):** संसद द्वारा पारित विधेयक पर अपनी स्वीकृति को सुरक्षित रख लेना या स्पष्ट रूप से अस्वीकृत कर देना, जिससे विधेयक समाप्त हो जाता है। इसका प्रयोग दो परिस्थितियों में होता है:

- गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों के संदर्भ में।
- सरकारी विधेयक के संदर्भ में तब, जब विधेयक पारित होने के बाद मंत्रिमंडल त्यागपत्र दे दे और नया मंत्रिमंडल राष्ट्रपति को उस विधेयक पर अनुमति न देने की सलाह दे। (उदाहरण: वर्ष 1954 में राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद द्वारा पेप्सू विनियोग विधेयक पर, तथा वर्ष 1991 में राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण द्वारा संसद सदस्यों के वेतन, भत्ता और पेंशन संशोधन विधेयक पर)।

ब. **निलंबनकारी वीटो (Suspensive Veto):** राष्ट्रपति किसी विधेयक को (यदि वह धन विधेयक नहीं है) संसद को पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है। किंतु यदि संसद उस विधेयक को बिना किसी संशोधन के अथवा संशोधन सहित पुनः साधारण बहुमत से पारित कर देती है, तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति देने के लिए विवश होता है। (उदाहरण: वर्ष 2006 में राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम द्वारा संसद (अयोग्यता निवारण) संशोधन विधेयक, 2006 को पुनर्विचार हेतु लौटाया जाना)।

स. **पॉकेट वीटो या जेबी वीटो (Pocket Veto):** संविधान में राष्ट्रपति द्वारा किसी विधेयक पर निर्णय लेने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है। इस मौन का लाभ उठाते हुए राष्ट्रपति किसी विधेयक पर न तो कोई सहमति देता है, न उसे अस्वीकृत करता है और न ही लौटाता है, बल्कि उसे अनिश्चित काल के लिए अपने पास लंबित रख लेता है। (उदाहरण: वर्ष 1986 में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा भारतीय डाकघर संशोधन विधेयक के विरुद्ध इसका प्रयोग किया गया था)।

wincompete

द. **विशेषित वीटो (Qualified Veto) की अनुपस्थिति:** भारतीय राष्ट्रपति को यह वीटो प्राप्त नहीं है। अमेरिकी संविधान में विधायिका द्वारा राष्ट्रपति के वीटो को निरस्त करने के लिए उच्चतर (दो-तिहाई) विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है; जबकि भारत में संसद साधारण बहुमत से पुनः पारित करके निलंबनकारी वीटो को निष्प्रभावी कर सकती है।

वीटो शक्तियों का तुलनात्मक विश्लेषण

वीटो का प्रकार	आधार एवं प्रक्रिया	संसद द्वारा निरस्तीकरण की पद्धति	भारतीय संविधान में उपलब्धता
आत्यंतिक वीटो	राष्ट्रपति द्वारा विधेयक पर अनुमति को पूरी तरह रोक लेना।	संसद इसे निरस्त नहीं कर सकती; विधेयक समाप्त हो जाता है।	उपलब्ध (सीमित परिस्थितियों में)।
निलंबनकारी वीटो	विधेयक को संसद के पास पुनर्विचार हेतु संदेश सहित लौटाना।	संसद दोनों सदनों में साधारण बहुमत से पुनः पारित करके इसे समाप्त कर सकती है।	उपलब्ध (धन विधेयक पर लागू नहीं)।
पॉकेट वीटो	विधेयक पर अनिश्चितकाल तक कोई निर्णय न लेना।	जब तक राष्ट्रपति निर्णय न ले, संसद कोई विधिक कदम नहीं उठा सकती।	उपलब्ध (अनुच्छेद 111 में समय-सीमा के अभाव के कारण)।
विशेषित वीटो	कार्यपालिका की असहमति को विधायिका के उच्चतर बहुमत से खारिज करना।	विधायिका के दो-तिहाई या विशेष बहुमत द्वारा ही पुनर्पारित किया जा सकता है।	**भारतीय संविधान में अनुपस्थित** (केवल अमेरिकी व्यवस्था में)।

wincompete

संविधान संशोधन विधेयकों पर वीटो का निषेध

24वें संविधान संशोधन अधिनियम 1971 द्वारा अनुच्छेद 368(2) में संशोधन किया गया। इसके अनुसार, जब संसद द्वारा पारित कोई संविधान संशोधन विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति 'देगा' (shall give his assent)। अतः संविधान संशोधन विधेयकों पर राष्ट्रपति के पास कोई वीटो शक्ति नहीं होती।

राज्य विधानमंडलों के विधेयकों पर राष्ट्रपति का वीटो (अनुच्छेद 200 एवं 201)

संघीय संरचना में राज्य विधायिकाओं पर संघीय नियंत्रण स्थापित करने के लिए राष्ट्रपति को विशिष्ट शक्तियां दी गई हैं।

संवैधानिक प्रक्रिया

अ. **अनुच्छेद 200 के तहत आरक्षण:** राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयक जब राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो राज्यपाल उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। यदि विधेयक उच्च न्यायालय की संवैधानिक स्थिति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता हो, तो राज्यपाल के लिए ऐसा विधेयक आरक्षित करना अनिवार्य है।

ब. **अनुच्छेद 201 के अधीन राष्ट्रपति की शक्तियां:** राष्ट्रपति या तो विधेयक पर अपनी अनुमति की घोषणा करेगा या अनुमति रोक लेगा। वह राज्यपाल को निर्देश दे सकता है कि वह विधेयक को राज्य विधानमंडल को पुनर्विचार हेतु लौटा दे।

स. **राज्य विधानमंडल द्वारा पुनर्विचार का प्रभाव:** राज्य विधानमंडल को संदेश प्राप्ति की तिथि से छह माह के भीतर विधेयक पर पुनर्विचार करना होता है। यदि विधानमंडल विधेयक को पुनः पारित करके राष्ट्रपति के समक्ष भेजता है, तब भी राष्ट्रपति उस पर अनुमति देने के लिए **बाध्य नहीं है**। इस प्रकार, राज्य विधानमंडलों के विधेयकों पर राष्ट्रपति को आत्यंतिक एवं स्थायी वीटो प्राप्त होता है, जो संसद के विधेयकों (अनुच्छेद 111) की तुलना में अधिक व्यापक है।

राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति या संस्तुति की अपेक्षा वाले विधेयक

भारतीय संविधान के कई उपबंधों के अंतर्गत कतिपय विधेयकों को संसद अथवा राज्य विधानमंडलों में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व संस्तुति अनिवार्य बनाई गई है:

अ. **राज्यों के पुनर्गठन संबंधी विधेयक (अनुच्छेद 3):** नए राज्यों के निर्माण, वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन से संबंधित कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश के बिना संसद के किसी भी सदन में पेश नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपति ऐसा विधेयक संसद में पेश करने से पूर्व संबंधित राज्य विधानमंडल को विचार जानने हेतु प्रेषित करता है (यद्यपि राज्य का मत बाध्यकारी नहीं है)।

ब. **धन विधेयक (अनुच्छेद 117(1) एवं 110):** अनुच्छेद 110 में उल्लिखित विषयों से संबंधित धन विधेयक केवल लोक सभा में और केवल राष्ट्रपति की पूर्व संस्तुति से ही पेश किया जा सकता है। चूंकि यह राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से ही आता है, अतः सामान्यतः राष्ट्रपति इस पर अपनी अंतिम स्वीकृति नहीं रोकता।

स. **वित्तीय विधेयक (I) (अनुच्छेद 117(1)):** वे विधेयक जिनमें अनुच्छेद 110 के उपबंधों के साथ सामान्य विधायी विषय भी शामिल हों, उन्हें भी लोक सभा में पुरःस्थापित करने हेतु राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है।

द. **संचित निधि से व्यय करने वाले विधेयक (वित्तीय विधेयक II - अनुच्छेद 117(3)):** ऐसा विधेयक जिसमें भारत की संचित निधि से व्यय अंतर्वलित हो, संसद के किसी भी सदन द्वारा तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक राष्ट्रपति ने उस सदन से उस पर विचार करने की सिफारिश न की हो।

य. **राज्यों के कराधान को प्रभावित करने वाले विधेयक (अनुच्छेद 274):** कोई विधेयक या संशोधन जो ऐसे किसी कर या शुल्क को अधिरोपित या परिवर्तित करता है जिसमें राज्य हितबद्ध हैं, या जो राज्यों को वितरित की जाने वाली राशियों के वितरण को प्रभावित करता है, राष्ट्रपति की पूर्व संस्तुति के बिना संसद में पेश नहीं किया जा सकता।

winsomeias

र. **व्यापार की स्वतंत्रता को बाधित करने वाले राज्य विधेयक (अनुच्छेद 304 का परंतुक):** राज्य विधानमंडल में किसी ऐसे विधेयक को पुरःस्थापित करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी आवश्यक है जो राज्यों के मध्य व्यापार, वाणिज्य या समागम की स्वतंत्रता पर लोकहित में युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करता हो।

संसद के पटल पर रखे जाने वाले वार्षिक प्रतिवेदन एवं दस्तावेज

प्रशासनिक और वित्तीय जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रपति विभिन्न संवैधानिक एवं वैधानिक प्रतिवेदनों को संसद के दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करवाता है:

प्रतिवेदन का नाम	**संबंधित संवैधानिक अनुच्छेद**	**प्रतिवेदन तैयार करने वाला प्राधिकारी / निकाय**
वार्षिक वित्तीय विवरण (केंद्रीय बजट)	अनुच्छेद 112	केंद्रीय वित्त मंत्रालय
पूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान	अनुच्छेद 115	केंद्रीय वित्त मंत्रालय
कैग के लेखापरीक्षा प्रतिवेदन	अनुच्छेद 151(1)	भारत का नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक
वित्त आयोग की सिफारिशें एवं कार्रवाई ज्ञापन	अनुच्छेद 281	भारत का वित्त आयोग
संघ लोक सेवा आयोग का वार्षिक प्रतिवेदन	अनुच्छेद 323(1)	संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)
राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का प्रतिवेदन	अनुच्छेद 338(6)	राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (NCSC)
राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का प्रतिवेदन	अनुच्छेद 338क(6)	राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग (NCST)

wincompete

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन	अनुच्छेद 338ख(6)	राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (NCBC)
भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए विशेष अधिकारी की रिपोर्ट	अनुच्छेद 350ख(2)	भाषाई अल्पसंख्यक आयुक्त

अध्यादेश जारी करने की विधायी शक्ति: अनुच्छेद 123

संविधान का अनुच्छेद 123 राष्ट्रपति को संसद के अवकाश (Recess) के दौरान अध्यादेश प्रख्यापित करने की एक असाधारण विधायी शक्ति प्रदान करता है। यह शक्ति कार्यपालिका को अप्रत्याशित या आपातकालीन विधायी आवश्यकताओं को तात्कालिक रूप से पूरा करने में सक्षम बनाती है।

अध्यादेश प्रख्यापन की अनिवार्य पूर्व-शर्तें

अ. **संसद के दोनों सदनों अथवा किसी एक सदन का सत्र में न होना:** राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग केवल तभी कर सकता है जब संसद के दोनों सदन सत्र में न हों, अथवा दोनों में से कोई एक सदन सत्र में न हो। चूंकि विधि निर्माण के लिए दोनों सदनों की सहमति आवश्यक है, अतः यदि केवल एक सदन भी सत्र में है, तो कोई विधेयक पारित नहीं हो सकता; अतः उस स्थिति में भी अध्यादेश लाया जा सकता है। किंतु यदि दोनों सदन सत्र में हों, तो जारी किया गया अध्यादेश पूर्णतः अवैध और असंवैधानिक होगा।

ब. **तात्कालिक परिस्थिति की उपस्थिति:** राष्ट्रपति को इस बात का समाधान होना चाहिए कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरंत कार्रवाई करना उसके लिए आवश्यक हो गया है। यह समाधान वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर आधारित होना चाहिए।

अध्यादेश की सीमाएं एवं विधिक प्रकृति (अनुच्छेद 123(2) एवं 123(3))

अ. **संसद की विधायी सीमाओं के समतुल्य:** अध्यादेश को वही बल और प्रभाव प्राप्त होता है जो संसद द्वारा पारित किसी अधिनियम को होता है। किंतु अध्यादेश की सीमाएं ठीक वही हैं जो संसद की विधि निर्माण की हैं। अध्यादेश केवल उन्हीं विषयों पर जारी हो सकता है जिन पर संसद विधि बना सकती है (संघ सूची एवं समवर्ती सूची)।

ब. **मूल अधिकारों का उल्लंघन निषेध:** अनुच्छेद 13(2) के अनुसार 'विधि' के अंतर्गत अध्यादेश भी सम्मिलित है। अतः अध्यादेश द्वारा संविधान के भाग तीन में प्रदत्त किसी भी मूल अधिकार को न तो छीना जा सकता है और न ही कम किया जा सकता है।

स. **संविधान संशोधन की अक्षमता:** संविधान के अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान में संशोधन करने की शक्ति केवल और केवल संसद में निहित है। राष्ट्रपति अध्यादेश जारी करके संविधान के किसी भी उपबंध में संशोधन नहीं कर सकता।

द. **भूतलक्षी प्रभाव:** संसद के अधिनियम की भांति ही कोई अध्यादेश भी किसी पूर्वगामी तिथि से लागू (भूतलक्षी प्रभाव) किया जा सकता है, तथा यह किसी पूर्ववर्ती अधिनियम या अध्यादेश को संशोधित अथवा निरसित कर सकता है।

अध्यादेश का संसदीय अनुमोदन एवं जीवनकाल

wincompete

अ. **संसद के समक्ष प्रस्तुति:** जारी किए जाने के बाद संसद का सत्र पुनः प्रारंभ होने पर अध्यादेश को संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा।

ब. **छह सप्ताह की समय-सीमा:** अध्यादेश संसद के पुनः समवेत (Reassemble) होने की तिथि से **छह सप्ताह (42 दिन)** की समाप्ति पर स्वतः समाप्त हो जाता है, यदि संसद के दोनों सदन इस अवधि के भीतर इसे स्वीकृत करके अधिनियम न बना दें।

स. **भिन्न-भिन्न तिथियों की गणना:** यदि संसद के दोनों सदन अलग-अलग तिथियों पर आहूत किए जाते हैं, तो छह सप्ताह की गणना **बाद में संवेत होने वाले सदन की तिथि** से की जाती है।

द. **पूर्व निरस्तीकरण:** यदि छह सप्ताह की अवधि समाप्त होने से पहले ही संसद के दोनों सदन अध्यादेश के नामंजूरी का संकल्प पारित कर दें, तो अध्यादेश तुरंत समाप्त हो जाता है। राष्ट्रपति स्वयं भी इसे किसी भी समय वापस ले सकता है।

य. **अध्यादेश की अधिकतम समयावधि:** अनुच्छेद 85 के अनुसार संसद के दो सत्रों के मध्य अधिकतम छह माह का अंतराल हो सकता है। सत्र प्रारंभ होने के बाद अध्यादेश छह सप्ताह तक प्रभावी रह सकता है। अतः किसी अध्यादेश का संसद की बिना स्वीकृति के अधिकतम जीवनकाल **छह माह और छह सप्ताह (लगभग 7.5 माह)** हो सकता है।

अध्यादेश शक्ति का न्यायिक पुनरावलोकन एवं प्रमुख वाद

कार्यपालिका द्वारा विधायिका को दरकिनार कर अध्यादेशों के माध्यम से शासन करने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक वादों में विस्तृत सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं।

संवैधानिक संशोधनों का प्रभाव

अ. **38वां संविधान संशोधन अधिनियम 1975:** इस संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 123 में खंड (4) जोड़कर यह उपबंधित किया गया कि अध्यादेश जारी करने के संबंध में राष्ट्रपति का समाधान अंतिम और निश्चायक होगा तथा उसे किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी।

ब. **44वां संविधान संशोधन अधिनियम 1978:** लोकतंत्र की पुनर्स्थापना के उद्देश्य से इस संशोधन द्वारा उक्त खंड (4) को समाप्त कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रपति का समाधान पुनः न्यायिक समीक्षा के अंतर्गत आ गया।

सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय

प्रमुख वाद	वर्ष	पीठ का स्वरूप	प्रतिपादित विधिक सिद्धांत
आर. सी. कूपर बनाम भारत संघ	1970	11 न्यायाधीश	राष्ट्रपति के इस समाधान को कि परिस्थितियां तुरंत कार्रवाई की मांग करती हैं, न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है यदि यह सिद्ध कर दिया जाए कि शक्ति का प्रयोग कपटपूर्ण अथवा दुर्भावनापूर्ण ढंग से संसद के अधिकार को टालने हेतु किया गया था।

wincmcts

ए. के. रॉय बनाम भारत संघ	1982	5 न्यायाधीश	अध्यादेश जारी करने की राष्ट्रपति की शक्ति कोई समानांतर विधायी शक्ति नहीं है। राष्ट्रपति का समाधान पूर्णतः न्यायिक समीक्षा से परे नहीं है; प्रथम दृष्टया साक्ष्य मिलने पर न्यायालय तात्कालिक आवश्यकता के अस्तित्व की जांच कर सकता है।
डी. सी. वाधवा बनाम बिहार राज्य	1987	5 न्यायाधीश	बिहार सरकार द्वारा 1967 से 1981 के मध्य बिना विधानमंडल की अनुमति लिए 256 अध्यादेशों को बार-बार पुनः प्रख्यापित (Re-promulgate) करने को न्यायालय ने असंवैधानिक और 'संविधान के साथ धोखाधड़ी' घोषित किया। अध्यादेश विधायिका की नियमित विधि निर्माण शक्ति का विकल्प नहीं हो सकता।
कृष्ण कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य	2017	7 न्यायाधीश	सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने डी. सी. वाधवा वाद के सिद्धांतों को अधिक कड़ा बनाया और निम्नलिखित व्यवस्था दी: अ. अध्यादेश को संसद/विधानमंडल के पटल पर रखना एक अनिवार्य संवैधानिक कर्तव्य है; ऐसा न करना संवैधानिक प्रक्रिया का उल्लंघन है। ब. विधायिका के समक्ष रखे बिना अध्यादेश को पुनः प्रख्यापित करना संविधान के प्रति कपट है और ऐसा अध्यादेश शून्य होगा।

wincompete

			स. राष्ट्रपति का समाधान न्यायिक समीक्षा के अधीन है। द. अध्यादेश समाप्त होने पर उसके अंतर्गत सृजित अधिकार स्वतः स्थायी नहीं हो जाते, जब तक कि वे अपरिवर्तनीय प्रकृति के न हों।

राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की विधायी व अध्यादेश शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय संविधान के तहत केंद्र में राष्ट्रपति तथा राज्यों में राज्यपाल की विधायी और अध्यादेश शक्तियां काफी सीमा तक समरूप हैं, किंतु उनमें कुछ मूलभूत और निर्णायक अंतर विद्यमान हैं।

तुलनात्मक बिंदु	राष्ट्रपति (संघ स्तर)	राज्यपाल (राज्य स्तर)
अध्यादेश संबंधी अनुच्छेद	अनुच्छेद 123	अनुच्छेद 213
विधायी क्षेत्राधिकार	केवल संघ सूची और समवर्ती सूची के विषय।	राज्य सूची और समवर्ती सूची के विषय।

wincompete

पूर्व अनुदेश की आवश्यकता	केंद्रीय मंत्रिमंडल की सलाह पर स्वतंत्र रूप से अध्यादेश जारी करता है; किसी अन्य प्राधिकारी की अनुमति आवश्यक नहीं।	तीन विशिष्ट मामलों में अध्यादेश जारी करने से पूर्व **राष्ट्रपति के अनुदेश** आवश्यक होते हैं: अ. यदि उसी प्रकार के उपबंध वाला विधेयक पेश करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता होती। ब. यदि राज्यपाल उसी उपबंध वाले विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना आवश्यक समझता। स. यदि उसी प्रकार का उपबंध रखने वाला राज्य विधानमंडल का अधिनियम राष्ट्रपति की सहमति के बिना अमान्य हो जाता।
विधानमंडल सत्र संबंधी अनिवार्यता	संसद के दोनों सदन या कोई एक सदन सत्र में न हो।	विधान परिषद वाले राज्यों में दोनों सदन अथवा एक सदन, और एक सदनीय राज्यों में विधान सभा सत्र में न हो।

wincompete

साधारण विधेयक पर वीटो शक्ति (अनुच्छेद 111 बनाम 200)	संसद द्वारा पुनः साधारण बहुमत से पारित किए जाने पर अनुमति देने के लिए विवश (केवल एक बार लौटा सकता है)।	राज्य विधानमंडल द्वारा पुनः पारित किए जाने पर अनुमति देने के लिए बाध्य है, किंतु वह विधेयक को **राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित** भी कर सकता है।
आरक्षित विधेयकों पर अंतिम शक्ति	अनुच्छेद 201 के अंतर्गत राज्य के किसी भी आरक्षित विधेयक को अनिश्चितकाल तक रोक सकता है या पुनः पारित होने पर भी अस्वीकार कर सकता है।	राष्ट्रपति द्वारा विचारार्थ आरक्षित किए जाने के पश्चात राज्यपाल की भूमिका पूर्णतः समाप्त हो जाती है।

संवैधानिक एवं प्रशासनिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **संवैधानिक समाधान (Constitutional Satisfaction):** संविधान के अनुच्छेदों में प्रयुक्त राष्ट्रपति के 'समाधान' का आशय राष्ट्रपति का व्यक्तिगत मानसिक समाधान नहीं, बल्कि मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर आधारित वस्तुनिष्ठ और विधिक समाधान है।

ब. **प्रसादपर्यंत (During the Pleasure):** लैटिन पदावली 'ड्यूरांटे बेने प्लासिटो' (Durante Bene Placito) से जनित सिद्धांत, जिसके अनुसार कार्यपालिका के प्रमुख को किसी लोक सेवक या पदाधिकारी को बिना कोई विधिक कारण बताए पद से हटाने का विवेकाधिकार होता है, जब तक कि संविधान स्पष्ट संरक्षण न दे।

स. **हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant under Hand and Seal):** राष्ट्रपति द्वारा अपने निजी हस्ताक्षर एवं भारत के राजकीय प्रतीक (सील) के अंतर्गत जारी किया गया सर्वोच्च औपचारिक नियुक्ति पत्र, जो पद की असाधारण स्वायत्तता और संवैधानिक वरीयता को सिद्ध करता है।

द. **सामयिक अध्यक्ष (Speaker Pro-tem):** लैटिन शब्द 'प्रो टेंपोर' (Pro Tempore) जिसका अर्थ है 'कुछ समय के लिए'। नई लोक सभा के गठन के समय वरिष्ठतम सांसद को राष्ट्रपति द्वारा सदन के कार्यों को विधिवत आरंभ करने हेतु नियुक्त किया जाने वाला अस्थायी अध्यक्ष।

य. **अध्यादेश का पुनः प्रख्यापन (Re-promulgation of Ordinance):** किसी अध्यादेश को बिना विधायिका के पटल पर रखे अथवा विधायिका द्वारा पारित कराए बिना, उसकी छह सप्ताह की अवधि समाप्त होते ही उसी अंतर्वस्तु के साथ नया अध्यादेश जारी करना। सर्वोच्च न्यायालय ने इसे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं पर कार्यपालिका का अतिक्रमण माना है।

र. **पॉकेट वीटो (Pocket Veto):** कार्यपालिका प्रमुख द्वारा किसी विधेयक पर सकारात्मक या नकारात्मक प्रतिक्रिया दिए बिना उसे अपनी संवैधानिक जेब (पॉकेट) में अनिश्चितकाल के लिए दबाए रखना। यह शक्ति संविधान द्वारा किसी समय-सीमा के न बांधे जाने के कारण अस्तित्व में आती है।

ल. **अधिप्रमाणीकरण (Authentication):** अनुच्छेद 77(2) के तहत राष्ट्रपति के नाम से जारी किए गए शासकीय आदेशों को भारत सरकार के सचिव स्तर के अधिकृत प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा विधिक रूप से मान्य घोषित करने की औपचारिक प्रक्रिया।

wincompete

अध्याय 3: राष्ट्रपति की शक्तियां (भाग II): क्षमादान शक्तियां (अनुच्छेद 72), वीटो शक्तियां एवं आपातकालीन शक्तियां (अनुच्छेद 352, 356, 360)

राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति: संवैधानिक आधार एवं दर्शन

भारतीय संविधान के भाग पांच के अंतर्गत अनुच्छेद 72 राष्ट्रपति को न्यायिक त्रुटियों को सुधारने, अत्यधिक कठोर दंड को मानवीय आधार पर कम करने अथवा पूर्णतः समाप्त करने की असाधारण कार्यपालिका शक्ति प्रदान करता है। यह शक्ति न्यायिक पुनरावलोकन से परे एक संप्रभु, सुधारात्मक एवं अनुकंपात्मक शक्ति है। इसका मुख्य उद्देश्य किसी निर्दोष व्यक्ति को न्यायपालिका की विधिक भूल के कारण दंडित होने से बचाना अथवा दंड के अत्यधिक कठोर होने की स्थिति में राहत प्रदान करना है।

सर्वोच्च न्यायालय ने केहर सिंह बनाम भारत संघ वाद में स्पष्ट किया कि राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति न्यायपालिका के निर्णय के विरुद्ध अपील का मंच नहीं है। यह एक पृथक, स्वतंत्र कार्यपालिका क्षेत्राधिकार है जिसके अंतर्गत राष्ट्रपति साक्ष्यों का पुनः परीक्षण कर सकता है तथा न्यायालय से भिन्न दृष्टिकोण अपना सकता है।

अनुच्छेद 72 का संवैधानिक विस्तार

राष्ट्रपति को निम्नलिखित तीन श्रेणियों के मामलों में किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त है:

अ. **सेना न्यायालय द्वारा दिए गए दंड:** उन सभी मामलों में जहां दंड या दंडादेश सेना न्यायालय (Court Martial) द्वारा दिया गया है।

ब. **संघीय कार्यपालिका शक्ति के अधीन मामले:** उन सभी मामलों में जहां दंड या दंडादेश ऐसे विषय संबंधी किसी विधि के विरुद्ध अपराध के लिए दिया गया है जिस विषय तक संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है।

स. **मृत्यु दंडादेश:** उन सभी मामलों में जिनमें दंडादेश मृत्यु दंडादेश (Death Sentence) है।

क्षमादान के विभिन्न रूप एवं विधिक प्रतिरूप

अनुच्छेद 72 के अंतर्गत प्रयुक्त विधिक शब्दावली दंड की प्रकृति, उसकी अवधि तथा उसके विधिक प्रभावों में भिन्न-भिन्न प्रकार से परिवर्तन करती है। संविधान के तहत क्षमादान के पांच प्रमुख रूप स्थापित किए गए हैं:

wincompete

क्षमादान के तकनीकी वर्गीकरण

अ. **क्षमा (Pardon):** इसके द्वारा दंडादेश तथा सिद्धदोष (Conviction) दोनों को पूर्णतः समाप्त कर दिया जाता है। इसका विधिक प्रभाव यह होता है कि अपराधी उस स्थिति में आ जाता है मानो उसने कभी कोई अपराध किया ही न हो। यह व्यक्ति को सभी दंडों, दंडादेशों और निर्योग्यताओं से पूर्णतः मुक्त कर देता है।

ब. **लघुकरण (Commutation):** इसका शाब्दिक अर्थ है दंड के स्वरूप को बदलकर कम कड़ा करना। इसमें दंड की प्रकृति को एक हल्के रूप में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदलना अथवा कठोर कारावास को साधारण कारावास में परिवर्तित करना।

स. **परिहार (Remission):** इसके अंतर्गत दंड की प्रकृति में परिवर्तन किए बिना केवल उसकी अवधि या मात्रा को कम किया जाता है। उदाहरणार्थ, दो वर्ष के कठोर कारावास को घटाकर एक वर्ष का कठोर कारावास करना। यहां दंड की प्रकृति (कठोर) यथावत रहती है।

द. **विराम (Respite):** किसी दोषी को मूल रूप से दिए गए दंड को किसी विशिष्ट, मानवीय अथवा असाधारण परिस्थिति के कारण कम या स्थगित करना। उदाहरणार्थ, किसी महिला अपराधी के गर्भवती होने पर, अथवा किसी सिद्धदोष व्यक्ति के गंभीर मानसिक या शारीरिक रोग से ग्रस्त होने पर दंड की मात्रा को घटाना या स्थगित करना।

य. **प्रविलंबन (Reprieve):** किसी दंड (विशेषकर मृत्युदंड) के निष्पादन पर अस्थायी रोक लगाना। इसका मूल उद्देश्य दोषी व्यक्ति को राष्ट्रपति या राज्यपाल के समक्ष क्षमा या लघुकरण हेतु याचिका प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध कराना होता है।

राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की क्षमादान शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन

संविधान का अनुच्छेद 161 राज्यों के राज्यपाल को क्षमादान की शक्ति प्रदान करता है। यद्यपि दोनों की शक्तियां समरूप प्रतीत होती हैं, किंतु उनके विधिक क्षेत्राधिकार में महत्वपूर्ण भिन्नताएं हैं:

तुलना का आधार	राष्ट्रपति (अनुच्छेद 72)	राज्यपाल (अनुच्छेद 161)
विधायी क्षेत्राधिकार	संघ सूची एवं समवर्ती सूची के विषयों पर आधारित विधियों के विरुद्ध अपराधों पर।	राज्य सूची एवं समवर्ती सूची के विषयों पर आधारित विधियों के विरुद्ध अपराधों पर।
सैन्य न्यायालय (Court Martial)	सैन्य न्यायालय द्वारा दिए गए दंड या दंडादेश को क्षमा, निलंबित, परिहार या लघुकरण करने की अनन्य शक्ति प्राप्त है।	सैन्य न्यायालय द्वारा दिए गए किसी भी दंडादेश के विरुद्ध राज्यपाल को कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।
मृत्युदंड (Death Sentence)	मृत्युदंड को पूर्णतः क्षमा (Pardon) करने की अनन्य एवं एकमात्र शक्ति केवल राष्ट्रपति में निहित है।	राज्यपाल मृत्युदंड को पूर्णतः क्षमा नहीं कर सकता। वह केवल इसे निलंबित, परिहार या लघूकृत कर सकता है।
समवर्ती सूची के संदर्भ में	समवर्ती सूची के मामलों में संघ की कार्यपालिका शक्ति के विस्तार तक शक्ति प्रभावी।	राज्य विधि के उल्लंघन के संदर्भ में शक्ति प्रभावी, किंतु मृत्युदंड के मामलों में राष्ट्रपति का क्षेत्राधिकार सर्वोच्च रहता है।

wincompete

क्षमादान शक्ति का न्यायिक निर्वचन एवं मार्गदर्शक सिद्धांत

राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति यद्यपि एक सर्वोच्च कार्यपालिका विशेषाधिकार है, किंतु विधि के शासन के अंतर्गत इसे निरंकुश नहीं बनाया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न ऐतिहासिक वादों में इसके संचालन हेतु स्पष्ट संवैधानिक सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं।

सर्वोच्च न्यायालय के युगांतकारी निर्णय

अ. **मारू राम बनाम भारत संघ (1980):** सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने अभीर्धारित किया कि अनुच्छेद 72 के अधीन राष्ट्रपति की शक्ति का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही किया जाएगा। राष्ट्रपति व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र निर्णय नहीं लेता। इसके अतिरिक्त, इस शक्ति का प्रयोग मनमाने, दुर्भावनापूर्ण अथवा वर्ग-भेदभाव के आधार पर नहीं किया जा सकता।

ब. **केहर सिंह बनाम भारत संघ (1989):** न्यायालय ने स्पष्ट किया कि राष्ट्रपति दया याचिका पर विचार करते समय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है। याचिकाकर्ता को राष्ट्रपति के समक्ष मौखिक सुनवाई (Oral Hearing) का कोई विधिक अधिकार नहीं है। राष्ट्रपति यह निर्णय अपनी कार्यपालिका संतुष्टि के आधार पर लिखित सामग्री के माध्यम से करता है।

स. **ईपुरु सुधाकर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2006):** इस वाद में न्यायालय ने निर्णय दिया कि राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की क्षमादान शक्ति न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) के अधीन है। यदि क्षमादान का आदेश राजनीतिक आधारों, धार्मिक पूर्वाग्रहों, जातिगत निष्ठाओं या पूर्णतः बाह्य तथ्यों पर आधारित है, अथवा आवश्यक तथ्यों को छिपाकर प्राप्त किया गया है, तो न्यायपालिका ऐसे आदेश को रद्द कर सकती है।

द. **शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ (2014):** तीन न्यायाधीशों की पीठ ने व्यवस्था दी कि दया याचिका के निस्तारण में कार्यपालिका द्वारा अत्यधिक, अकारण और अनुचित विलंब किया जाना संविधान के अनुच्छेद 21 (जीवन एवं दैहिक स्वतंत्रता) का उल्लंघन है। इस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय मृत्युदंड को आजीवन कारावास में लघूकृत कर सकता है। न्यायालय ने यह भी निर्देश दिया कि दया याचिका खारिज होने के पश्चात दोषी को फांसी दिए जाने से पूर्व न्यूनतम 14 दिन की पूर्व सूचना देना अनिवार्य है ताकि वह अपने परिवार से मिल सके और विधिक उपचार तलाश सके।

विधेयकों पर वीटो शक्तियां: सैद्धांतिक एवं संवैधानिक स्थिति

संसदीय लोकतंत्र में विधायिका द्वारा पारित कोई भी विधेयक तब तक अधिनियम का रूप धारण नहीं कर सकता जब तक कि उसे राष्ट्रप्रमुख की औपचारिक स्वीकृति प्राप्त न हो जाए। संविधान का अनुच्छेद 111 संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति की स्वीकृति की प्रक्रिया को विनियमित करता है।

अनुच्छेद 111 के अंतर्गत राष्ट्रपति के संवैधानिक विकल्प

जब कोई विधेयक संसद द्वारा पारित होकर राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो उसके पास तीन विकल्प होते हैं:

wincompete

अ. **अनुमति देना:** राष्ट्रपति घोषित करता है कि वह विधेयक पर अपनी अनुमति देता है। इसके साथ ही विधेयक अधिनियम बन जाता है।

ब. **अनुमति रोकना:** राष्ट्रपति घोषित करता है कि वह अनुमति रोक लेता है (Withhold assent)। इसके परिणामस्वरूप विधेयक समाप्त हो जाता है।

स. **पुनर्विचार हेतु लौटाना:** यदि वह धन विधेयक नहीं है, तो राष्ट्रपति विधेयक को संसद को पुनर्विचार हेतु इस संदेश के साथ लौटा सकता है कि वे विधेयक पर अथवा उसके विशिष्ट उपबंधों पर पुनः विचार करें। यदि संसद

उस विधेयक को बिना किसी संशोधन के या संशोधन सहित पुनः पारित कर देती है, तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति देने के लिए बाध्य होता है।

वीटो के प्रकार एवं भारतीय संदर्भ

वैश्विक संवैधानिक व्यवस्थाओं में चार प्रकार के वीटो पाए जाते हैं, जिनमें से तीन भारतीय राष्ट्रपति को उपलब्ध हैं:

वीटो का प्रकार	सैद्धांतिक परिभाषा	भारतीय संविधान में वैधानिक स्थिति
आत्यंतिक वीटो (Absolute Veto)	विधायिका द्वारा पारित विधेयक पर कार्यपालिका प्रमुख द्वारा अपनी अंतिम अस्वीकृति देना, जिससे विधेयक समाप्त हो जाता है।	केवल गैर-सरकारी विधेयकों पर अथवा उस स्थिति में जब सरकार गिर जाए और नई कैबिनेट अस्वीकृति की सलाह दे।
निलंबनकारी वीटो (Suspensive Veto)	विधेयक को विधायिका के पास पुनर्विचार हेतु भेजना, जिसे विधायिका साधारण बहुमत से पुनः पारित कर निरस्त कर सकती है।	साधारण विधेयकों पर लागू। धन विधेयकों तथा संविधान संशोधन विधेयकों पर इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता।
पॉकेट / जेबी वीटो (Pocket Veto)	विधेयक पर न तो सहमति देना और न ही अस्वीकृत करना, बल्कि अनिश्चितकाल के लिए निर्णय को लंबित रखना।	उपलब्ध, क्योंकि अनुच्छेद 111 में राष्ट्रपति द्वारा निर्णय लेने हेतु कोई निश्चित समय-सीमा तय नहीं की गई है।
विशेषित वीटो (Qualified Veto)	विधायिका द्वारा उच्चतर (विशेष) बहुमत से ही खारिज किया जा सकने वाला वीटो।	**भारत में पूर्णतः अनुपस्थित।** यह संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति को प्राप्त है।

वीटो शक्तियों का व्यावहारिक प्रयोग एवं अपवाद

भारतीय संवैधानिक इतिहास में राष्ट्रपति द्वारा वीटो शक्तियों का प्रयोग अत्यंत दुर्लभ और विशिष्ट परिस्थितियों में ही किया गया है।

ऐतिहासिक दृष्टांत

अ. **पेप्सू विनियोग विधेयक (1954):** राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने पटियाला एंड ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन (PEPSU) विनियोग विधेयक पर आत्यंतिक वीटो का प्रयोग किया। जब यह विधेयक संसद द्वारा पारित किया गया था, तब पेप्सू में राष्ट्रपति शासन लागू था। किंतु जब विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु पहुंचा, तब वहां

राष्ट्रपति शासन समाप्त हो चुका था और राज्य विधानमंडल पुनः बहाल हो चुका था। अतः राष्ट्रपति ने अपनी अनुमति रोक ली।

ब. **वेतन, भत्ता और पेंशन संशोधन विधेयक (1991):** संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्तों से संबंधित यह विधेयक लोक सभा के विघटन के अंतिम दिन बिना राष्ट्रपति की पूर्व संस्तुति के प्रस्तुत व पारित किया गया था। राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण ने इस पर आत्यंतिक वीटो लगाते हुए अनुमति रोक दी।

स. **भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक (1986):** राजीव गांधी सरकार द्वारा पारित इस विधेयक में सरकार को नागरिकों के पत्रों की निगरानी एवं अंतरोधन (Interception) का व्यापक अधिकार दिया गया था, जिसे नागरिक स्वतंत्रताओं पर कुठाराघात माना गया। राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने इस पर कोई निर्णय नहीं लिया और इसे अनिश्चितकाल तक लंबित रख दिया (पॉकेट वीटो)। वर्ष 1989 में पदभार ग्रहण करने के पश्चात राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण ने इसे राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के अनुरोध पर पुनर्विचार हेतु संसद को लौटाया, किंतु अंततः सरकार ने इसे आगे नहीं बढ़ाया।

द. **संसद (अयोग्यता निवारण) संशोधन विधेयक (2006):** लाभ के पद (Office of Profit) से संबंधित इस विधेयक को राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम ने निलंबनकारी वीटो का प्रयोग करते हुए पुनर्विचार हेतु संसद को लौटा दिया था। तथापि, संसद द्वारा इसे बिना किसी बदलाव के पुनः पारित किए जाने पर राष्ट्रपति को इस पर अनुमति देनी पड़ी।

वीटो शक्तियों पर संवैधानिक निर्बंधन

अ. **धन विधेयक:** संविधान के अनुच्छेद 111 के अनुसार राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार हेतु नहीं लौटा सकता। वह या तो इसे अनुमति देता है या रोक सकता है। व्यवहार में चूंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश से ही पेश होता है, अतः अनुमति रोकी नहीं जाती।

ब. **संविधान संशोधन विधेयक:** 24वें संविधान संशोधन अधिनियम 1971 द्वारा अनुच्छेद 368(2) में स्पष्ट कर दिया गया कि संसद द्वारा पारित संविधान संशोधन विधेयक जब राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा, तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति देगा (shall give his assent)। राष्ट्रपति इस पर किसी भी वीटो शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता।

आपातकालीन शक्तियां: संवैधानिक विन्यास एवं दर्शन

भारतीय संविधान के भाग अठारह में अनुच्छेद 352 से 360 तक आपातकालीन उपबंधों का समावेश किया गया है। यह व्यवस्था भारत शासन अधिनियम 1935 के प्रावधानों तथा जर्मनी के वाइमर संविधान के आपातकालीन सिद्धांतों से प्रेरित है।

संविधान सभा में इन उपबंधों का उद्देश्य देश की संप्रभुता, एकता, अखंडता, लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था तथा संविधान की सुरक्षा करना निर्धारित किया गया था। आपातकाल की उद्घोषणा के साथ ही भारत का सामान्य संघीय ढांचा बिना किसी औपचारिक संविधान संशोधन के एकात्मक ढांचे में रूपांतरित हो जाता है।

आपातकाल के तीन संवैधानिक स्वरूप

अ. **राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352):** युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह के कारण उत्पन्न समग्र भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा का संकट।

ब. **संवैधानिक तंत्र की विफलता या राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356):** राज्यों में संवैधानिक तंत्र के विफल होने पर राज्य प्रशासन को केंद्र द्वारा अपने नियंत्रण में लेना।

स. **वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360):** भारत या उसके किसी राज्यक्षेत्र के किसी भाग के वित्तीय स्थायित्व या साख के संकट में पड़ने पर घोषित किया जाने वाला आपातकाल

wincompete

राष्ट्रीय आपातकाल: आधार, अनुमोदन एवं विस्तार (अनुच्छेद 352)

अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रपति को यह समाधान होने पर कि एक गंभीर आपात विद्यमान है जिससे युद्ध या बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, आपात की उद्घोषणा करने की शक्ति प्राप्त है।

संवैधानिक आधारों का वर्गीकरण

अ. **बाह्य आपातकाल:** जब आपातकाल की उद्घोषणा 'युद्ध' (War) अथवा 'बाह्य आक्रमण' (External Aggression) के आधार पर की जाती है।

ब. **आंतरिक आपातकाल:** जब उद्घोषणा देश के भीतर आंतरिक संकट के आधार पर की जाती है। मूल संविधान में इसके लिए 'आंतरिक अशांति' (Internal Disturbance) शब्द का प्रयोग किया गया था।

स. **44वें संविधान संशोधन द्वारा सुधार:** वर्ष 1975 में 'आंतरिक अशांति' के आधार पर घोषित आपातकाल के दुरुपयोग को रोकने हेतु 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा 'आंतरिक अशांति' शब्द को हटाकर उसके स्थान पर **'सशस्त्र विद्रोह' (Armed Rebellion)** शब्द प्रतिस्थापित किया गया।

द. **लिखित मंत्रिमंडल अनुशंसा की अनिवार्यता:** 44वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 352(3) जोड़ा गया, जिसके अनुसार राष्ट्रपति ऐसी उद्घोषणा केवल तभी कर सकता है जब केंद्रीय मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और कैबिनेट स्तर के अन्य मंत्री) उसे लिखित रूप में ऐसा संसूचित करे। केवल प्रधानमंत्री की मौखिक सलाह पर आपातकाल घोषित नहीं किया जा सकता।

य. **क्षेत्रीय विस्तार:** 42वें संविधान संशोधन 1976 द्वारा राष्ट्रपति को संपूर्ण भारत के अतिरिक्त देश के किसी विशिष्ट भौगोलिक भाग तक राष्ट्रीय आपातकाल को सीमित करने की शक्ति प्रदान की गई।

संसदीय अनुमोदन एवं समयावधि

1. लिखित सिफारिश
केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा राष्ट्रपति को लिखित सलाह

↓

2. आपात की उद्घोषणा
राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय आपातकाल जारी करना

↓

3. संसदीय अनुमोदन
संसद के दोनों सदनों द्वारा 1 माह (30 दिन) के भीतर स्वीकृति आवश्यक

↙ ↘

अनुमोदन अस्वीकृत / 1 माह समाप्त
→ उद्घोषणा तुरंत समाप्त

विशेष बहुमत द्वारा पारित
6 माह के लिए आपातकाल लागू
(प्रत्येक 6 माह में पुनः संसद अनुमोदन से अनिश्चितकाल तक विस्तार संभव)

अ. **अनुमोदन की समयावधि:** राष्ट्रपति द्वारा जारी उद्घोषणा को संसद के दोनों सदनों द्वारा **एक माह (30 दिन)** के भीतर अनुमोदित होना अनिवार्य है (मूल संविधान में यह अवधि दो माह थी, जिसे 44वें संशोधन द्वारा घटाकर एक माह किया गया)।

ब. **लोक सभा के विघटन की स्थिति:** यदि उद्घोषणा के समय लोक सभा विघटित हो, अथवा एक माह के भीतर बिना अनुमोदन किए विघटित हो जाए, तो राज्य सभा द्वारा अनुमोदित होने के उपरांत यह उद्घोषणा पुनर्गठित लोक सभा की प्रथम बैठक की तिथि से **30 दिन** तक प्रभावी रहेगी, बशर्ते नई लोक सभा इस अवधि में इसे पारित कर दे।

स. **विशेष बहुमत की अनिवार्यता:** आपातकाल की उद्घोषणा अथवा उसके जारी रहने के अनुमोदन का संकल्प संसद के प्रत्येक सदन द्वारा उस सदन की **कुल सदस्य संख्या के बहुमत** तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम **दो-तिहाई बहुमत** द्वारा पारित होना चाहिए (44वें संशोधन से पूर्व यह साधारण बहुमत था)।

द. **उद्घोषणा की अवधि:** एक बार अनुमोदित होने पर आपातकाल छह माह तक लागू रहता है। संसद के विशेष बहुमत द्वारा प्रत्येक छह माह पर अनुमोदन प्राप्त कर इसे अनिश्चितकाल तक बढ़ाया जा सकता है।

उद्घोषणा की समाप्ति की प्रक्रिया

अ. **राष्ट्रपति द्वारा वापसी:** राष्ट्रपति किसी भी समय दूसरी उद्घोषणा द्वारा आपातकाल को वापस ले सकता है। इसके लिए किसी संसदीय अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती।

ब. **लोक सभा द्वारा अस्वीकृति (44वां संशोधन):** यदि लोक सभा साधारण बहुमत से आपातकाल को समाप्त करने अथवा जारी न रखने का संकल्प पारित कर दे, तो राष्ट्रपति उद्घोषणा को वापस लेने के लिए विवश होता है।

स. **विशेष बैठक का प्रावधान:** लोक सभा की कुल सदस्य संख्या के न्यूनतम **एक-दशांश (1/10)** सदस्य यदि लोक सभा अध्यक्ष को (या सत्र न होने पर राष्ट्रपति को) लिखित नोटिस दें, तो 14 दिन के भीतर उद्घोषणा को अस्वीकृत करने के संकल्प पर विचार करने हेतु सदन की विशेष बैठक बुलाई जाएगी।

राष्ट्रीय आपातकाल के प्रभाव: शासन प्रणाली एवं मूल अधिकारों पर प्रभाव

राष्ट्रीय आपातकाल के प्रवर्तन में आते ही भारतीय राजनीतिक प्रणाली के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन होते हैं:

कार्यपालिका, विधायी एवं वित्तीय प्रभाव

अ. **कार्यपालिका पर प्रभाव:** संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्यों को यह निर्देश देने तक हो जाता है कि वे अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस रीति से करें। यद्यपि राज्य सरकारें निलंबित या बर्खास्त नहीं होतीं, किंतु वे संघ के पूर्ण प्रशासनिक नियंत्रण में आ जाती हैं।

ब. **विधायी प्रभाव:** संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर संपूर्ण भारत या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। राज्य विधानमंडल विघटित नहीं होते, किंतु उनकी विधि निर्माण की शक्ति संसद की विधायी शक्ति के अधीन हो जाती है। आपातकाल की समाप्ति के पश्चात संसद द्वारा राज्य सूची पर बनाई गई ऐसी विधियां छह माह की समाप्ति पर निष्प्रभावी हो जाती हैं।

स. **लोक सभा एवं विधान सभा के कार्यकाल का विस्तार:** अनुच्छेद 83(2) के अनुसार, संसद विधि द्वारा लोक सभा के कार्यकाल को एक बार में एक वर्ष के लिए अनिश्चितकाल तक बढ़ा सकती है। किंतु आपातकाल

wincompete

समाप्त होने के पश्चात इसका विस्तार किसी भी दशा में छह माह से अधिक नहीं हो सकता। इसी प्रकार राज्य विधान सभाओं का कार्यकाल भी बढ़ाया जा सकता है।

द. **वित्तीय प्रभाव (अनुच्छेद 354):** राष्ट्रपति आदेश द्वारा केंद्र और राज्यों के मध्य करों के संवैधानिक वितरण (अनुच्छेद 268 से 279) के उपबंधों को संशोधित या निलंबित कर सकता है। ऐसा आदेश उस वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक प्रभावी रहता है जिसमें आपातकाल समाप्त होता है।

मूल अधिकारों पर प्रभाव (अनुच्छेद 358 एवं 359)

संविधान में आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों के निलंबन हेतु दो पृथक तंत्र स्थापित किए गए हैं:

तुलनात्मक बिंदु	**अनुच्छेद 358**	**अनुच्छेद 359**
निलंबित होने वाले अधिकार	केवल अनुच्छेद 19 में प्रदत्त छह मूल अधिकार।	राष्ट्रपति के आदेश में विनिर्दिष्ट वे मूल अधिकार जिनके प्रवर्तन का अधिकार निलंबित किया जाता है।
निलंबन की प्रक्रिया	उद्घोषणा जारी होते ही स्वतः (Ipso Facto) निलंबित हो जाते हैं; किसी पृथक आदेश की आवश्यकता नहीं।	स्वतः निलंबित नहीं होते; राष्ट्रपति को न्यायालय जाने के अधिकार को निलंबित करने हेतु विशिष्ट आदेश जारी करना पड़ता है।
लागू होने के आधार	केवल **युद्ध या बाह्य आक्रमण** के आधार पर घोषित आपातकाल में लागू होता है। सशस्त्र विद्रोह के आधार पर यह लागू नहीं होता।	बाह्य तथा आंतरिक (सशस्त्र विद्रोह) दोनों ही प्रकार के आपातकाल में लागू किया जा सकता है।
अनुच्छेद 20 एवं 21 की स्थिति	अनुच्छेद 19 से संबंधित है, अतः अनुच्छेद 20 और 21 पर कोई प्रभाव नहीं।	44वें संविधान संशोधन के पश्चात **अनुच्छेद 20 (दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण) एवं अनुच्छेद 21 (जीवन एवं दैहिक स्वतंत्रता) को कभी निलंबित नहीं किया जा सकता।**
क्षेत्रीय विस्तार	संपूर्ण देश में स्वतः विस्तारित होता है।	संपूर्ण भारत अथवा उसके किसी विनिर्दिष्ट भाग पर लागू किया जा सकता है।

wincompete

अवधि	संपूर्ण आपातकाल की अवधि के दौरान प्रभावी रहता है।	राष्ट्रपति के आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि अथवा संपूर्ण आपातकाल तक प्रभावी।

राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता / राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356)

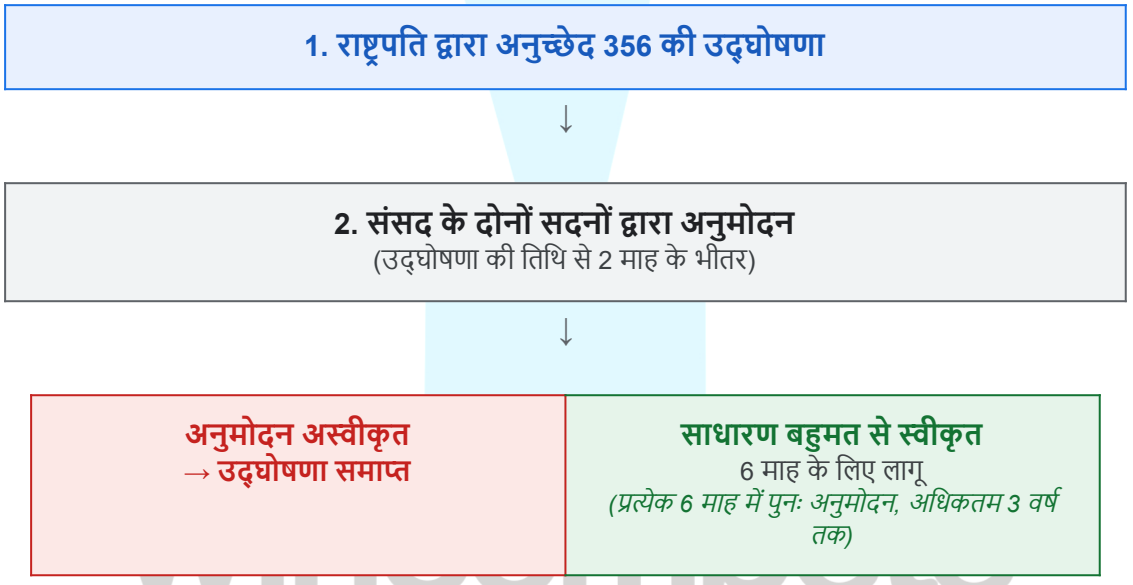
अनुच्छेद 355 प्रत्येक राज्य की बाह्य आक्रमण और आंतरिक अशांति से संरक्षा करने तथा यह सुनिश्चित करने का संघ का कर्तव्य निर्धारित करता है कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाई जा रही है। इसी के अनुपालन हेतु अनुच्छेद 356 राष्ट्रपति को राज्यों में राष्ट्रपति शासन अधिरोपित करने की शक्ति देता है।

अधिरोपण के आधार

अ. **अनुच्छेद 356 के तहत:** यदि राष्ट्रपति का राज्य के राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा यह समाधान हो जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता।

ब. **अनुच्छेद 365 के तहत:** यदि कोई राज्य संघ की कार्यपालिका द्वारा संविधान के उपबंधों के अधीन दिए गए किन्हीं निर्देशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफल रहता है, तो राष्ट्रपति के लिए यह मानना विधिपूर्ण होगा कि उस राज्य का शासन संविधान के अनुसार नहीं चलाया जा सकता।

संसदीय अनुमोदन, समयावधि एवं सीमाएं



अ. **अनुमोदन की समयावधि:** उद्घोषणा को संसद के दोनों सदनों द्वारा इसके जारी होने की तारीख से **दो माह** के भीतर अनुमोदित किया जाना अनिवार्य है।

ब. **बहुमत का प्रकार:** संसद के दोनों सदनों द्वारा यह संकल्प **साधारण बहुमत** (उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का बहुमत) द्वारा पारित किया जाता है।

स. **सामान्य समयावधि:** एक बार अनुमोदित होने पर यह छह माह तक लागू रहता है। संसद के अनुमोदन से इसे छह-छह माह करके अधिकतम **तीन वर्ष** की अवधि तक बढ़ाया जा सकता है।

द. **एक वर्ष से अधिक विस्तार पर संवैधानिक शर्तें (44वां संशोधन):** 44वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 356(5) जोड़कर यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति शासन को एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए केवल तभी बढ़ाया जा सकता है जब दो अनिवार्य शर्तें एक साथ पूरी होती हों:

- संपूर्ण भारत में अथवा संबंधित राज्य के संपूर्ण या किसी भाग में राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352) प्रवृत्त हो।
- निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य की विधान सभा के साधारण निर्वाचन कराने में कठिनाइयों के कारण राष्ट्रपति शासन का जारी रहना आवश्यक है।

राष्ट्रपति शासन के संवैधानिक प्रभाव

अ. राष्ट्रपति राज्य सरकार की कार्यपालिका शक्तियों को स्वयं ग्रहण कर लेता है तथा घोषणा कर सकता है कि राज्य के राज्यपाल या अन्य किसी कार्यकारी प्राधिकारी की शक्तियां उसके अधीन प्रयुक्त होंगी। व्यावहारिक रूप में राज्यपाल राज्य के मुख्य सचिव एवं सलाहकारों के माध्यम से प्रशासन चलाता है।

ब. राष्ट्रपति राज्य विधान सभा को या तो विघटित कर देता है अथवा निलंबित अवस्था में रख देता है।

स. राष्ट्रपति यह घोषणा करता है कि राज्य विधानमंडल की विधायी शक्तियों का प्रयोग संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन किया जाएगा।

द. संसद राज्य के लिए विधियां बनाने की शक्ति राष्ट्रपति या उसके द्वारा निर्दिष्ट किसी अन्य प्राधिकारी को प्रत्यायोजित (Delegate) कर सकती है।

य. **उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता:** राष्ट्रपति संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय में निहित किसी शक्ति को स्वयं ग्रहण नहीं कर सकता और न ही उच्च न्यायालय से संबंधित संवैधानिक उपबंधों को निलंबित कर सकता है। उच्च न्यायालय की शक्तियां राष्ट्रपति शासन के दौरान पूर्णतः अप्रभावित रहती हैं।

एस. आर. बोम्मई वाद (1994) एवं राष्ट्रपति शासन के मार्गदर्शक सिद्धांत

अनुच्छेद 356 के ऐतिहासिक दुरुपयोग पर अंकुश लगाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) वाद में एक युगांतकारी निर्णय दिया, जिसने भारतीय संघवाद के स्वरूप को सुदृढ़ किया।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित प्रमुख सिद्धांत

अ. **न्यायिक समीक्षा के अधीन:** अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति की उद्घोषणा पूर्णतः न्यायिक समीक्षा के अधीन है। न्यायालय इस बात की जांच कर सकता है कि क्या उद्घोषणा दुर्भावनापूर्ण थी अथवा वह सर्वथा अप्रासंगिक व बाह्य आधारों पर आधारित थी।

ब. **सामग्री प्रस्तुत करने का दायित्व:** संघ सरकार पर यह विधिक भार होगा कि वह न्यायालय के समक्ष वह प्रासंगिक सामग्री प्रस्तुत करे जिसके आधार पर राष्ट्रपति का समाधान हुआ था।

स. **विधान सभा का विघटन केवल संसदीय अनुमोदन के पश्चात:** राष्ट्रपति उद्घोषणा जारी करते ही राज्य विधान सभा को तुरंत विघटित नहीं कर सकता। संसद के दोनों सदनों द्वारा उद्घोषणा का अनुमोदन किए जाने

wincompete

तक विधान सभा को केवल **निलंबित** रखा जा सकता है। विघटन केवल संसद के अनुमोदन के उपरांत ही संभव है।

द. **विधान सभा की पुनर्गठन / बहाली शक्ति:** यदि न्यायालय उद्घोषणा को असंवैधानिक और अवैध घोषित करता है, तो न्यायालय को बर्खास्त सरकार को पुनर्स्थापित करने तथा विघटित या निलंबित विधान सभा को पुनर्जीवित करने का पूर्ण अधिकार है।

य. **धर्मनिरपेक्षता मूल संरचना का अंग:** न्यायालय ने व्यवस्था दी कि धर्मनिरपेक्षता संविधान के मूल ढांचे का भाग है। यदि कोई राज्य सरकार धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध कार्य करती है या सांप्रदायिक गतिविधियों को बढ़ावा देती है, तो उसके विरुद्ध अनुच्छेद 356 का प्रयोग न्यायोचित है।

र. **शक्ति परीक्षण सदन के पटल पर:** किसी सरकार के बहुमत का परीक्षण केवल संबंधित विधान सभा के पटल (Floor of the House) पर होना चाहिए, राज्यपाल के व्यक्तिगत आकलन या राजभवन में नहीं।

वित्तीय आपातकाल: उपबंध, प्रक्रिया एवं प्रभाव (अनुच्छेद 360)

संविधान का अनुच्छेद 360 देश की वित्तीय स्थिरता अथवा साख को उत्पन्न होने वाले संकट से निपटने के लिए वित्तीय आपातकाल की व्यवस्था करता है।

संवैधानिक आधार एवं संसदीय अनुमोदन

अ. **घोषणा का आधार:** यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व (Financial Stability) या प्रत्यय (Credit) संकट में है, तो वह वित्तीय आपात की उद्घोषणा कर सकता है।

ब. **संसदीय अनुमोदन:** उद्घोषणा को संसद के दोनों सदनों द्वारा इसके जारी होने की तारीख से **दो माह** के भीतर अनुमोदित किया जाना अनिवार्य है।

स. **बहुमत:** इसके लिए संसद के दोनों सदनों का **साधारण बहुमत** अपेक्षित होता है।

द. **अवधि एवं विस्तार:** एक बार संसद द्वारा अनुमोदित होने के उपरांत यह **अनिश्चितकाल** तक जारी रहता है जब तक कि राष्ट्रपति इसे वापस न ले ले। इसके जारी रहने के लिए संसद के किसी पुनः अनुमोदन (आवधिक नवीनीकरण) की आवश्यकता नहीं होती।

वित्तीय आपातकाल के परिणाम

अ. संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी भी राज्य को वित्तीय औचित्य (Financial Propriety) के ऐसे सिद्धांतों का पालन करने के निर्देश देने तक हो जाता है जिन्हें राष्ट्रपति उचित समझे।

ब. राष्ट्रपति राज्य के विधानमंडल द्वारा पारित समस्त धन विधेयकों तथा अन्य वित्तीय विधेयकों को विचारार्थ अपने पास आरक्षित रखने का निर्देश दे सकता है।

स. राष्ट्रपति राज्य के मामलों के संबंध में सेवा करने वाले सभी या किसी वर्ग के व्यक्तियों (जिनके अंतर्गत उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश भी आते हैं) के वेतनों और भत्तों में कमी करने का निर्देश दे सकता है।

द. राष्ट्रपति संघ के मामलों के संबंध में सेवा करने वाले सभी या किसी वर्ग के व्यक्तियों, तथा **उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतनों और भत्तों में कमी** करने के निर्देश दे सकता है।

wincompete

य. **वर्तमान स्थिति:** भारत के संवैधानिक इतिहास में अब तक एक बार भी वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360) लागू नहीं किया गया है। वर्ष 1991 के गंभीर विदेशी मुद्रा एवं भुगतान संतुलन संकट के समय भी इसका सहारा नहीं लिया गया था।

तीनों आपातकालों का तुलनात्मक एवं संरचनात्मक विश्लेषण

संविधान में वर्णित तीनों आपात उपबंधों के विधिक मापदंड, संसदीय अनुमोदन और प्रभावों की भिन्नता को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है:

संवैधानिक प्रावधान	**राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352)**	**राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356)**	**वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)**
उद्घोषणा का आधार	युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह।	राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता।	वित्तीय स्थायित्व या साख को संकट।
संसदीय अनुमोदन की अवधि	**1 माह (30 दिन)** के भीतर।	**2 माह (60 दिन)** के भीतर।	**2 माह (60 दिन)** के भीतर।
अपेक्षित संसदीय बहुमत	**विशेष बहुमत** (कुल सदस्यों का बहुमत + उपस्थित एवं मतदान करने वालों का 2/3)।	**साधारण बहुमत** (उपस्थित एवं मतदान करने वालों का बहुमत)।	**साधारण बहुमत** (उपस्थित एवं मतदान करने वालों का बहुमत)।
प्रवर्तन की अधिकतम सीमा	कोई अधिकतम सीमा नहीं (प्रत्येक 6 माह के अनुमोदन से अनिश्चितकाल तक)।	**अधिकतम 3 वर्ष** (1 वर्ष से अधिक विस्तार हेतु विशिष्ट संवैधानिक शर्तें)।	कोई अधिकतम सीमा नहीं (बिना पुनः अनुमोदन के अनिश्चितकाल तक)।
मूल अधिकारों पर प्रभाव	अनुच्छेद 19 स्वतः अथवा अन्य अधिकार (अनुच्छेद 20-21 को छोड़कर) राष्ट्रपति के आदेश से निलंबित।	नागरिकों के मूल अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।	नागरिकों के मूल अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

wincompete

विधायिका की स्थिति	राज्य विधान सभाएं निलंबित नहीं होतीं; संसद को राज्य सूची पर समवर्ती शक्ति मिलती है।	राज्य विधान सभा या तो निलंबित की जाती है अथवा विघटित कर दी जाती है।	राज्य विधान सभाएं सामान्य रूप से कार्य करती हैं, केवल वित्तीय नियंत्रण बढ़ता है।
न्यायाधीशों के वेतन पर प्रभाव	कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं।	कोई प्रभाव नहीं; उच्च न्यायालय पूर्णतः स्वतंत्र रहता है।	उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन-भत्ते घटाए जा सकते हैं।
वापसी की प्रक्रिया	राष्ट्रपति द्वारा अथवा लोक सभा के साधारण बहुमत के संकल्प द्वारा।	केवल राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकता है।	केवल राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकता है।
ऐतिहासिक प्रयोग	अब तक 3 बार (1962, 1971, 1975)।	130 से अधिक बार विभिन्न राज्यों में प्रयोग।	**अब तक एक बार भी नहीं।**

संवैधानिक पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख विधिक पद

अ. **पूर्ण क्षमादान (Full Pardon):** दंड और दोषसिद्धि दोनों का विधिक रूप से ऐसा लोप जिससे व्यक्ति अपने पूर्ववर्ती निर्दोष नागरिक की स्थिति में पुनः स्थापित हो जाता है।

ब. **प्रविलंबन (Reprieve):** विशेषकर मृत्युदंड के निष्पादन को कुछ समय के लिए टालने का आधिकारिक कार्यपालिका आदेश।

स. **वित्तीय औचित्य के सिद्धांत (Canons of Financial Propriety):** वे मूलभूत वित्तीय नियम जिनके अंतर्गत राज्य सरकारों को वित्तीय आपातकाल के दौरान अपने व्यय और राजस्व प्रबंधन को संघ के कड़े निर्देशों के अनुसार संचालित करना होता है।

द. **सशस्त्र विद्रोह (Armed Rebellion):** 44वें संविधान संशोधन द्वारा स्थापित शब्द, जो यह स्पष्ट करता है कि केवल आंतरिक अव्यवस्था या अहिंसक जनांदोलन के आधार पर अनुच्छेद 352 लागू नहीं हो सकता; इसके लिए हथियारों से युक्त संगठित विद्रोह होना अनिवार्य है।

य. **सदन का पटल परीक्षण (Floor Test):** किसी राज्य मंत्रिमंडल के विधायी बहुमत के परीक्षण की वह वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया जो राज्यपाल के व्यक्तिगत अनुमान के स्थान पर सीधे विधान सभा के भीतर मतदान द्वारा संपन्न की जाती है।

Wincompete

र. **संवैधानिक तंत्र का लोप (Breakdown of Constitutional Machinery):** राज्य में ऐसी शासन व्यवस्था का उत्पन्न होना जहां सरकार संविधान के अनिवार्य निर्देशों, धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों अथवा संघीय दायित्वों के अनुसार चलने में पूर्णतः असमर्थ सिद्ध हो जाए।

अध्याय 4: प्रधानमंत्री: नियुक्ति, पदच्युति, वास्तविक कार्यपालिका के रूप में भूमिका, मंत्रिपरिषद का नेतृत्व एवं राष्ट्रपति के प्रति संवैधानिक कर्तव्य (अनुच्छेद 78)

प्रधानमंत्री पद का संवैधानिक विन्यास एवं वास्तविक कार्यपालिका का स्वरूप

भारतीय संविधान ने शासन की वेस्टमिंस्टर प्रणाली (संसदीय मॉडल) को अंगीकार किया है। संसदीय लोकतंत्र की आधारभूत विशेषता कार्यपालिका के दोहरे स्वरूप की उपस्थिति है:

- **विधिक या नाममात्र की कार्यपालिका (De Jure Executive):** इसके अंतर्गत राष्ट्रपति राज्य का औपचारिक प्रधान (Head of the State) होता है, जिसमें संघ की समस्त कार्यपालिका शक्ति संविधान के अनुच्छेद 53(1) के तहत निहित की गई है।
- **वास्तविक कार्यपालिका (De Facto Executive):** इसके अंतर्गत प्रधानमंत्री शासन का वास्तविक प्रधान (Head of the Government) होता है। राष्ट्रपति की समस्त संवैधानिक शक्तियों का व्यावहारिक संचालन प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद द्वारा किया जाता है।

अनुच्छेद 74, 75 एवं 78 का अंतर्संबंध

अ. **अनुच्छेद 74(1) की अधिदेशात्मक संरचना:** राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा राष्ट्रपति को इस सलाह के अनुरूप कार्य करना अनिवार्य बना दिया गया। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 ने राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया कि वह मंत्रिपरिषद को ऐसी सलाह पर सामान्यतः या अन्यथा पुनर्विचार करने के लिए कह सकेगा, किंतु पुनर्विचार के पश्चात प्रस्तुत की गई सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए वह विवश होगा।

ब. **अनुच्छेद 75(1) की योजना:** प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा। यह उपबंध प्रधानमंत्री को मंत्रिपरिषद के गठन का अनन्य और संप्रभु अधिकार प्रदान करता है।

Wincompete

स. **अनुच्छेद 78 की संप्रेषणीय भूमिका:** यह अनुच्छेद राष्ट्रपति और वास्तविक कार्यपालिका के मध्य एक जीवंत सेतु का निर्माण करता है, जहां प्रधानमंत्री का यह प्राथमिक संवैधानिक दायित्व है कि वह देश के संपूर्ण प्रशासन एवं विधायी प्रस्तावों से राज्य के प्रधान को अवगत कराए।

संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री की स्थिति का तुलनात्मक प्रतिरूप

विधिक/संवैधानिक आधार	भारत (प्रधानमंत्रीय प्रणाली)	यूनाइटेड किंगडम (कैबिनेट प्रणाली)	संयुक्त राज्य अमेरिका (अध्यक्षीय प्रणाली)
कार्यकारी संप्रभुता	वास्तविक सत्ता प्रधानमंत्री एवं मंत्रिपरिषद में केंद्रित; राष्ट्रपति औपचारिक प्रधान।	वास्तविक सत्ता प्रधानमंत्री एवं कैबिनेट में; क्राउन नाममात्र का संप्रभु।	समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में एकल रूप से निहित; पृथक प्रधानमंत्री पद अनुपस्थित।
सदन के प्रति उत्तरदायित्व	मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से संसद के निम्न सदन (लोक सभा) के प्रति उत्तरदायी।	कैबिनेट सामूहिक रूप से हाउस ऑफ कॉमन्स के प्रति उत्तरदायी।	राष्ट्रपति या उसका मंत्रिमंडल (सेक्रेटरी) कांग्रेस के प्रति जवाबदेह नहीं होते।
सदन की सदस्यता	संसद के किसी भी सदन (लोक सभा या राज्य सभा) का सदस्य होना अनिवार्य (या 6 माह के भीतर बनना)।	परंपरा अनुसार प्रधानमंत्री का अनिवार्य रूप से केवल हाउस ऑफ कॉमन्स का सदस्य होना आवश्यक।	कार्यपालिका का कोई भी सदस्य विधानमंडल (कांग्रेस) का सदस्य नहीं हो सकता।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति: संवैधानिक उपबंध, प्रक्रिया एवं स्वविवेकाधिकार

संविधान का अनुच्छेद 75(1) मात्र इतना उल्लेख करता है कि "प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा"। संविधान में नियुक्ति की किसी विशिष्ट चयन पद्धति या औपचारिक प्रक्रिया का विस्तार से उल्लेख नहीं है। किंतु संसदीय परंपराओं और अभीसमयों (Conventions) ने इस प्रक्रिया को संहिताबद्ध और सुदृढ़ किया है।

नियुक्ति के आधारभूत नियम एवं अभीसमय

अ. **स्पष्ट बहुमत की स्थिति:** जब किसी एकल राजनीतिक दल या चुनाव-पूर्व गठबंधन को लोक सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त होता है, तब राष्ट्रपति उस दल या गठबंधन के निर्वाचित नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करने के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य होता है। इस स्थिति में राष्ट्रपति के पास कोई व्यक्तिगत चयन का विवेकाधिकार नहीं होता।

ब. **त्रिशंकु लोक सभा (Hung Parliament) में परिस्थितिजन्य विवेक:** जब किसी भी दल या गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो, अथवा वर्तमान प्रधानमंत्री की आकस्मिक मृत्यु हो जाए और कोई निर्विवाद

उत्तराधिकारी न हो, तब राष्ट्रपति को अपने व्यक्तिगत एवं परिस्थितिजन्य विवेक (Situational Discretion) का प्रयोग करना होता है।

स. **बहुमत परीक्षण की समयावधि:** त्रिशंकु संसद की स्थिति में सबसे बड़े दल अथवा चुनाव-पश्चात बने सबसे बड़े गठबंधन के नेता को नियुक्त करते समय राष्ट्रपति सामान्यतः एक माह के भीतर सदन के पटल पर विश्वास मत (Confidence Motion) प्राप्त करने का निर्देश देता है।

संसद की सदस्यता की अनिवार्यता एवं विधिक स्थिति

अ. **किसी भी सदन से संबद्धता:** प्रधानमंत्री संसद के किसी भी सदन (लोक सभा अथवा राज्य सभा) का सदस्य हो सकता है। उदाहरणार्थ, श्रीमती इंदिरा गांधी (1966), एच. डी. देवगौड़ा (1996), तथा डॉ. मनमोहन सिंह (2004 एवं 2009) नियुक्ति के समय राज्य सभा के सदस्य थे।

ब. **गैर-सांसद की नियुक्ति (अनुच्छेद 75(5)):** कोई व्यक्ति जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, उसे भी प्रधानमंत्री नियुक्त किया जा सकता है। किंतु उसे अपने पद ग्रहण की तारीख से निरंतर छह माह की अवधि के भीतर संसद के किसी एक सदन का सदस्य निर्वाचित होना अनिवार्य है। यदि वह छह माह के भीतर सदस्यता प्राप्त करने में विफल रहता है, तो उसका पद स्वतः समाप्त हो जाता है।

नियुक्ति प्रक्रिया से संबंधित ऐतिहासिक न्यायिक निर्णय

वाद का नाम	वर्ष	उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित संवैधानिक सिद्धांत
यू. एन. आर. राव बनाम इंदिरा गांधी	1971	लोक सभा के विघटन के उपरांत भी राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए अनुच्छेद 74(1) के तहत एक मंत्रिपरिषद और प्रधानमंत्री का अस्तित्व में रहना अनिवार्य है। कार्यपालिका रिक्तता (Executive Vacuum) असंवैधानिक है।
एस. पी. आनंद बनाम एच. डी. देवगौड़ा	1996	न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संविधान का अनुच्छेद 75(5) किसी ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करने की अनुमति देता है जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य न हो, बशर्ते वह छह माह के भीतर सदस्यता प्राप्त कर ले।
बी. आर. कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य	2001	यदि कोई व्यक्ति जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत आपराधिक दोषसिद्धि के कारण चुनाव लड़ने हेतु अयोग्य घोषित हो चुका है, तो उसे अनुच्छेद 75(5) या 164(4) का सहारा लेकर प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री नियुक्त नहीं किया जा सकता। संविधान के प्रति निष्ठा का उल्लंघन कर किसी अयोग्य व्यक्ति को शपथ नहीं दिलाई जा सकती।

winicompete

प्रधानमंत्री की पदावधि, पदच्युति एवं त्यागपत्र की वैधानिक स्थिति

संविधान के अनुच्छेद 75(2) के अनुसार, मंत्री (जिसमें प्रधानमंत्री भी सम्मिलित है) राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत (During the pleasure of the President) अपने पद धारण करते हैं। तथापि, संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति का यह 'प्रसाद' निरपेक्ष अथवा मनमाना नहीं है।

प्रसादपर्यंत सिद्धांत की सीमाएं एवं विश्वास मत

अ. **लोक सभा के विश्वास पर निर्भरता:** राष्ट्रपति का प्रसाद सीधे तौर पर लोक सभा में सरकार के बहुमत से जुड़ा हुआ है। जब तक प्रधानमंत्री को लोक सभा में बहुमत (सदन के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का समर्थन) प्राप्त है, तब तक राष्ट्रपति उसे पदच्युत नहीं कर सकता।

ब. **पदच्युति की परिस्थितियां:** राष्ट्रपति प्रधानमंत्री को केवल निम्नलिखित विशिष्ट परिस्थितियों में ही पद से बर्खास्त कर सकता है:

- जब प्रधानमंत्री लोक सभा में विश्वास मत खो चुका हो और त्यागपत्र देने से इनकार कर दे।
- जब लोक सभा में अविश्वास प्रस्ताव (No-Confidence Motion) पारित हो चुका हो और मंत्रिमंडल पद छोड़ने से मना कर दे।
- जब धन विधेयक (Money Bill) या राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव लोक सभा में गिर जाए और प्रधानमंत्री पद पर बने रहने की हठ करे।

स. **सदन के पटल पर परीक्षण की अनिवार्यता:** एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) वाद में स्थापित सिद्धांत के अनुसार, किसी सरकार के बहुमत का परीक्षण केवल और केवल संबंधित सदन के पटल (Floor of the House) पर कराया जा सकता है। राष्ट्रपति या राज्यपाल अपने व्यक्तिगत अनुमान या आंतरिक गणना के आधार पर किसी बहुमत प्राप्त प्रधानमंत्री को बर्खास्त नहीं कर सकते।

प्रधानमंत्री के त्यागपत्र या मृत्यु का मंत्रिपरिषद पर प्रभाव

अ. **मंत्रिपरिषद का स्वतः विघटन:** प्रधानमंत्री संपूर्ण मंत्रिपरिषद की आधारशिला (Keystone) होता है। यदि प्रधानमंत्री त्यागपत्र देता है अथवा उसकी पद पर रहते हुए आकस्मिक मृत्यु हो जाती है, तो संपूर्ण मंत्रिपरिषद स्वतः ही विघटित (Dissolved) हो जाती है।

ब. **अन्य मंत्रियों के त्यागपत्र से भिन्नता:** यदि मंत्रिपरिषद का कोई अन्य मंत्री त्यागपत्र देता है, बर्खास्त होता है या उसकी मृत्यु होती है, तो इससे केवल एक पद रिक्त होता है; संपूर्ण मंत्रिपरिषद के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रधानमंत्री पद की रिक्ति संपूर्ण प्रशासनिक ढांचे को स्वतः समाप्त कर देती है।

मंत्रिपरिषद का नेतृत्व: गठन, विभागों का आबंटन एवं संप्रभु प्राधिकार

प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद का केवल एक सदस्य नहीं होता, बल्कि वह उसका निर्माता, जीवनदाता और संहारक होता है। संविधान के तहत मंत्रिपरिषद के संचालन की धुरी प्रधानमंत्री ही है।

प्रधानमंत्री
(मंत्रिपरिषद की आधारशिला एवं वास्तविक प्रमुख)

↓

मंत्रियों का चयन (अनुच्छेद 75(1))	विभागों का आबंटन एवं फेरबदल (अनुच्छेद 77)	बैठकों की अध्यक्षता एवं नीतिगत समन्वय
राष्ट्रपति केवल प्रधानमंत्री की सूची को औपचारिक स्वीकृति प्रदान करने के लिए बाध्य है	किसी भी समय किसी भी मंत्री का विभाग बदलने या त्यागपत्र मांगने का अप्रतिबंधित अधिकार	कैबिनेट के समस्त निर्णयों पर वीटो एवं दिशा-निर्देशन का संप्रभु प्राधिकार

मंत्रियों का चयन एवं राष्ट्रपति की बाध्यता

अ. **सूची की अनन्यता:** अनुच्छेद 75(1) के तहत राष्ट्रपति केवल उन्हीं व्यक्तियों को मंत्री पद की शपथ दिलाता है जिनकी सिफारिश प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति अपनी इच्छा से किसी व्यक्ति को मंत्रिपरिषद में शामिल नहीं कर सकता।

ब. **विभागों का वितरण (Portfolio Allocation):** अनुच्छेद 77(3) के अंतर्गत राष्ट्रपति भारत सरकार के कार्य के आबंटन के नियम बनाता है, किंतु व्यावहारिक रूप से मंत्रियों के मध्य विभागों का वितरण, उनका स्थानांतरण और आबंटन पूर्णतः प्रधानमंत्री का विशेषाधिकार है।

स. **मंत्रियों की पदच्युति:** प्रधानमंत्री किसी भी समय किसी भी मंत्री से त्यागपत्र मांग सकता है। यदि मंत्री त्यागपत्र देने से इनकार करता है, तो प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को उस मंत्री को बर्खास्त करने की सलाह दे सकता है, जिसे मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य है।

मंत्रिपरिषद के आकार की वैधानिक सीमा: 91वां संविधान संशोधन

मंत्रिपरिषद के अनियंत्रित विस्तार और 'आया राम, गया राम' की राजनीतिक दलबदल प्रवृत्ति पर रोक लगाने के लिए संसद द्वारा 91वां संविधान संशोधन अधिनियम 2003 पारित किया गया:

- **अनुच्छेद 75(1क) का अंतःस्थापन:** लोक सभा की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक मंत्रिपरिषद के सदस्यों (प्रधानमंत्री सहित) की संख्या नहीं हो सकती।
- **सांख्यिकीय सीमा:** लोक सभा की 543 सीटों के आधार पर केंद्रीय मंत्रिपरिषद में प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों की अधिकतम संख्या 81-82 से अधिक नहीं हो सकती।
- **दलबदलुओं की अयोग्यता (अनुच्छेद 75(1ख)):** दसवीं अनुसूची के तहत दलबदल के आधार पर अयोग्य घोषित किया गया संसद का कोई भी सदस्य मंत्री पद धारण करने के लिए भी अयोग्य होगा। यह अयोग्यता उसकी सदस्यता समाप्त होने की तिथि से लेकर उसके पुनः निर्वाचित होने तक प्रभावी रहती है।

राष्ट्रपति के प्रति संवैधानिक कर्तव्य: अनुच्छेद 78 का विशद विश्लेषण

संविधान का अनुच्छेद 78 राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद के मध्य प्रशासनिक सूचनाओं के आदान-प्रदान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधिक आधार है। यह अनुच्छेद प्रधानमंत्री पर कतिपय सकारात्मक संवैधानिक कर्तव्यों का भार डालता है।

Wincompete

अनुच्छेद 78 के तीन प्रमुख खंड

अ. **खंड (क) - निर्णयों की सूचना देना:** संघ के प्रशासन संबंधी कार्यों और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों से राष्ट्रपति को अवगत कराना प्रधानमंत्री का कर्तव्य है। इसके अंतर्गत कैबिनेट द्वारा लिए गए समस्त नीतिगत निर्णय स्वतः राष्ट्रपति को संसूचित किए जाने चाहिए।

ब. **खंड (ख) - मांगी गई सूचनाएं प्रस्तुत करना:** संघ के प्रशासन संबंधी कार्यों और विधान विषयक प्रस्थापनाओं से संबंधित जो जानकारी राष्ट्रपति स्वयं मांगे, वह जानकारी राष्ट्रपति को देना प्रधानमंत्री का दायित्व है। राष्ट्रपति किसी भी प्रशासनिक फाइल, विदेश नीति के दस्तावेज या आंतरिक सुरक्षा संबंधी रिपोर्ट की मांग कर सकता है।

स. **खंड (ग) - व्यक्तिगत मंत्री के निर्णय का सामूहिक परीक्षण:** यदि राष्ट्रपति अपेक्षा करे तो किसी ऐसे विषय को, जिस पर किसी मंत्री द्वारा निर्णय ले लिया गया है किंतु मंत्रिपरिषद ने विचार नहीं किया है, मंत्रिपरिषद के विचार के लिए रखना। यह उपबंध अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को सुरक्षित करता है। इसके माध्यम से राष्ट्रपति यह सुनिश्चित करता है कि कोई एक मंत्री अपनी व्यक्तिगत पहल पर संपूर्ण सरकार को संकट में न डाले।

अनुच्छेद 78 के परिचालन से उत्पन्न ऐतिहासिक तनाव

वर्ष 1986-87 में तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह और प्रधानमंत्री राजीव गांधी के मध्य अनुच्छेद 78 के निर्वचन को लेकर गंभीर संवैधानिक टकराव उत्पन्न हुआ था:

- राष्ट्रपति ने आरोप लगाया कि सरकार महत्वपूर्ण विदेश यात्राओं, प्रशासनिक नियुक्तियों और संधियों के संबंध में उन्हें सूचित नहीं कर रही है, जो अनुच्छेद 78 का प्रत्यक्ष उल्लंघन है।
- प्रधानमंत्री का मत था कि राष्ट्रपति को केवल वही सूचनाएं दी जा सकती हैं जिन्हें मंत्रिमंडल उचित समझे, और राष्ट्रपति हर गोपनीय फाइल का निरीक्षण करने की मांग नहीं कर सकता।
- अंततः विधि विशेषज्ञों और संवैधानिक संस्थाओं ने यह स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 78 राष्ट्रपति का निर्विवाद संवैधानिक अधिकार है और प्रधानमंत्री इसके अनुपालन से बच नहीं सकता।

नीति निर्माण, संसद संचालन एवं संकट प्रबंधन में प्रधानमंत्री की भूमिका

प्रधानमंत्री केवल कार्यपालिका का ही नेता नहीं होता, बल्कि वह संसद का वास्तविक संचालक, देश की विदेश नीति का प्रमुख वास्तुकार और राष्ट्रीय संकटों का सर्वोच्च प्रबंधक होता है।

संसद के संबंध में शक्तियां

अ. **सदन का नेता:** प्रधानमंत्री सामान्यतः लोक सभा में सदन का नेता (Leader of the House) होता है। यदि वह राज्य सभा से चुना गया हो, तो वह लोक सभा में अपने किसी वरिष्ठ सहयोगी को सदन का नेता नामित करता है और स्वयं राज्य सभा में उपस्थित रहता है।

ब. **संसदीय कार्यसूची का निर्धारण:** संसद का सत्र कब आहूत किया जाए, कब सत्रावसान किया जाए और संसद में कौन से विधायी कार्य किस प्राथमिकता पर लिए जाएं, इसका वास्तविक निर्णय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली कैबिनेट की संसदीय मामलों की समिति (Cabinet Committee on Parliamentary Affairs) द्वारा किया जाता है।

स. **लोक सभा के विघटन की सिफारिश:** अनुच्छेद 85(2)(ख) के तहत राष्ट्रपति को लोक सभा विघटित करने की शक्ति है, किंतु राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग केवल प्रधानमंत्री की संस्तुति पर ही करता है। यह अधिकार प्रधानमंत्री को संसद पर नियंत्रण रखने का एक अत्यंत मारक राजनीतिक अस्त्र प्रदान करता है।

उच्च स्तरीय संस्थाओं एवं परिषदों की पदेन अध्यक्षता

राष्ट्र निर्माण, योजना निर्माण, सामरिक सुरक्षा और अंतर-राज्यीय समन्वय से जुड़ी सर्वोच्च संस्थाओं का पदेन अध्यक्ष (Ex-Officio Chairman) प्रधानमंत्री होता है:

संस्था / आयोग / परिषद	स्थापना का स्वरूप	प्रधानमंत्री की भूमिका एवं दायित्व
नीति आयोग (NITI Aayog)	केंद्रीय मंत्रिमंडल का प्रस्ताव (1 जनवरी 2015)	पदेन अध्यक्ष; राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं, रणनीतियों और सहकारी संघवाद का निर्देशन।
राष्ट्रीय एकता परिषद (NIC)	गैर-संवैधानिक एवं परामर्शदात्री मंच	पदेन अध्यक्ष; सांप्रदायिकता, जातिवाद और क्षेत्रीयता की रोकथाम हेतु राष्ट्रीय विमर्श का संचालन।
अंतर-राज्यीय परिषद (Inter-State Council)	संवैधानिक निकाय (अनुच्छेद 263)	पदेन अध्यक्ष; केंद्र-राज्य तथा अंतर-राज्यीय समन्वय और विवादों के समाधान का सर्वोच्च मंच।
राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद (NWRC)	प्रशासनिक संकल्प द्वारा स्थापित	पदेन अध्यक्ष; राष्ट्रीय जल नीति का अनुमोदन एवं अंतर-राज्यीय नदी जल विवादों का व्यापक समाधान।
राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA)	वैधानिक निकाय (आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005)	पदेन अध्यक्ष; देश में प्राकृतिक एवं मानव-जनित आपदाओं के प्रबंधन हेतु शीर्ष नीति निर्धारक।
परमाणु कमान प्राधिकरण (NCA)	सामरिक कार्यपालिका संरचना	राजनीतिक परिषद (Political Council) का पदेन प्रमुख; परमाणु हथियारों के प्रयोग का अनन्य प्राधिकार।

wincompete

मंत्रिमंडलीय समितियां एवं किचन कैबिनेट: निर्णय-प्रक्रिया का वास्तविक केंद्र

भारत सरकार के कार्य निष्पादन की वास्तविक प्रक्रिया केवल विस्तृत मंत्रिपरिषद (जिसमें 70-80 मंत्री होते हैं) की बैठकों में संपन्न नहीं हो सकती। कार्य की जटिलता के कारण निर्णयों का संकेंद्रण कैबिनेट और विशिष्ट मंत्रिमंडलीय समितियों (Cabinet Committees) में होता है।

मंत्रिमंडलीय समितियों की संरचना एवं कार्यप्रणाली

अ. **गैर-संवैधानिक एवं अतिरिक्त-संवैधानिक निकाय:** ये समितियां संविधान के मूल पाठ में उल्लिखित नहीं हैं। इनकी स्थापना कार्य आबंटन नियम 1961 (Rules of Business) के तहत प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।

ब. **समितियों की दो श्रेणियां:** ये आवश्यकतानुसार स्थायी (Standing) अथवा तदर्थ (Ad-hoc) हो सकती हैं। तदर्थ समितियां किसी तात्कालिक समस्या के समाधान हेतु गठित की जाती हैं और कार्य पूर्ण होते ही समाप्त कर दी जाती हैं।

स. **महत्वपूर्ण स्थायी समितियां:**

- **नियुक्ति संबंधी मंत्रिमंडलीय समिति (ACC):** उच्च स्तरीय प्रशासनिक पदों, तीनों सेनाओं के प्रमुखों, बैंकों के सीएमडी और केंद्रीय सचिवों की नियुक्ति को अंतिम रूप देती है। इसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं।
- **आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (CCEA):** देश की संपूर्ण आर्थिक नीतियों, विनिवेश, बुनियादी ढांचा परियोजनाओं और न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) का निर्धारण करती है। इसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं।
- **सुरक्षा संबंधी मंत्रिमंडलीय समिति (CCS):** देश की आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा, रक्षा व्यय, परमाणु नीति और अंतरराष्ट्रीय मामलों की सर्वोच्च निर्णायक समिति है। इसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं।
- **संसदीय मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति:** संसद में सरकारी विधेयकों की प्रगति की निगरानी करती है। इसकी अध्यक्षता रक्षा मंत्री या वरिष्ठ गृह मंत्री द्वारा की जाती है (प्रधानमंत्री इसके सदस्य नहीं होते)।
- **राजनीतिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (CCPA):** इसे अक्सर 'सुपर कैबिनेट' कहा जाता है क्योंकि यह देश के समस्त घरेलू और विदेशी राजनीतिक मामलों का परीक्षण करती है। इसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं।

आंतरिक कैबिनेट अथवा किचन कैबिनेट (Inner/Kitchen Cabinet)

अ. **संकल्पना:** यह प्रधानमंत्री के 2 से 4 अत्यंत विश्वसनीय सहयोगियों, वरिष्ठ मंत्रियों अथवा गैर-राजनीतिक मित्रों व सलाहकारों का एक अनौपचारिक वृत्त होता है।

ब. **उद्देश्य एवं प्रभाव:** औपचारिक कैबिनेट बैठकों से पूर्व अत्यंत गोपनीय और त्वरित निर्णय इसी आंतरिक चक्र में लिए जाते हैं। इंदिरा गांधी के शासनकाल में यह संरचना सर्वाधिक प्रभावशाली रूप में उभरी थी। यद्यपि यह व्यवस्था निर्णय लेने में त्वरितता लाती है, किंतु यह कैबिनेट की सामूहिक उत्तरदायित्व की औपचारिक महत्ता को क्षीण करती है।

प्रधानमंत्री कार्यालय (PMO): संरचना, ऐतिहासिक विकास एवं शक्ति संकेंद्रण

प्रधानमंत्री कार्यालय (Prime Minister's Office - PMO) भारत सरकार का एक गैर-संवैधानिक, अत्यधिक शक्तिशाली प्रशासनिक अंग है जो प्रधानमंत्री को सचिवीय और नीतिगत सहायता प्रदान करता है।

ऐतिहासिक विकास यात्रा

अ. **प्रधानमंत्री सचिवालय (1947):** स्वतंत्रता के समय इसे 'प्रधानमंत्री सचिवालय' (Prime Minister's Secretariat - PMS) नाम दिया गया था। इसके प्रथम सचिव एच. वी. आर. आयंगर थे।

ब. **लाल बहादुर शास्त्री काल में सुदृढ़ीकरण:** 1964 में तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने एल. के. झा को अपना प्रधान सचिव नियुक्त किया और प्रधानमंत्री सचिवालय को नीति निर्माण की मुख्य धुरी के रूप में स्थापित किया।

wincompete

स. **नाम परिवर्तन (1977):** मोरारजी देसाई की जनता पार्टी सरकार के कार्यकाल में वर्ष 1977 में इसका आधिकारिक नाम बदलकर **प्रधानमंत्री कार्यालय (PMO)** कर दिया गया और इसकी शक्तियों को विकेंद्रीकृत करने का प्रयास किया गया।

पीएमओ का प्रशासनिक ढांचा एवं कार्य

अ. **शीर्ष नेतृत्व:** इसका प्रशासनिक प्रमुख **प्रधान सचिव (Principal Secretary)** होता है, जो वरिष्ठतम आईएएस अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त इसमें राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार (NSA), अपर सचिव, संयुक्त सचिव और विशेष कार्य अधिकारी (OSD) सम्मिलित होते हैं।

ब. **प्रमुख दायित्व:**

- राष्ट्रपति, राज्यपालों और विदेशी राजनयिकों के साथ प्रधानमंत्री के संपर्कों का प्रबंधन करना।
- विभिन्न केंद्रीय मंत्रालयों और नीति आयोग के मध्य अंतर-मंत्रालयी गतिरोधों का निवारण करना
- अनुच्छेद 78 के अंतर्गत राष्ट्रपति को भेजी जाने वाली समस्त प्रशासनिक सूचनाओं और फाइलों का विधिक परीक्षण करना।
- जनता की शिकायतों और प्रधानमंत्री राहत कोष (PMNRF/PM CARES) का प्रबंधन करना।

संसदीय संप्रभुता बनाम प्रधानमंत्रीय सर्वोच्चता: ऐतिहासिक परिवर्तन

भारतीय लोकतंत्र के सात दशकों के इतिहास में प्रधानमंत्री पद की शक्ति और प्रभाव का स्तर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों, दलीय संरचना और संसद में बहुमत के स्वरूप के अनुसार बदलता रहा है।

राजनीतिक प्रवृत्तियों का विकासात्मक क्रम

अ. **नेहरू युग (1947-1964) - लोकतांत्रिक संस्थागतता:** जवाहरलाल नेहरू के करिश्माई व्यक्तित्व के बावजूद उन्होंने कैबिनेट की बैठकों, संसदीय बहसों और मुख्यमंत्रियों के साथ संवाद को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। इसे शुद्ध 'कैबिनेट प्रणाली' का काल माना जाता है।

ब. **इंदिरा युग (1966-1977 एवं 1980-1984) - प्रधानमंत्रीय अधिनायकवाद:** इस काल में शक्ति का तीव्र केंद्रीयकरण प्रधानमंत्री पद और पीएमओ में हुआ। राजनीतिक वैज्ञानिकों ने इसे 'कैबिनेट सरकार' के स्थान पर 'प्रधानमंत्रीय सरकार' (Prime Ministerial Government) की संज्ञा दी। प्रतिबद्ध न्यायपालिका (Committed Judiciary) और प्रतिबद्ध नौकरशाही की अवधारणा इसी काल में उभरी।

स. **गठबंधन युग (1989-2014) - संघीय संतुलन एवं विवश कार्यपालिका:** इस कालखंड में (वीपी सिंह, देवेगौड़ा, गुजराल, वाजपेयी और मनमोहन सिंह के कार्यकाल) त्रिशंकु संसदों के कारण गठबंधन सरकारों का दौर रहा।

- प्रधानमंत्री की शक्तियां क्षेत्रीय दलों के दबाव, साझा न्यूनतम कार्यक्रम (CMP) और सहयोगी दलों की हठधर्मिता से सीमित हुईं।
- गठबंधन सरकारों ने संघीय ढांचे को सशक्त किया, किंतु नीतिगत पंगुता (Policy Paralysis) की चुनौतियां भी प्रस्तुत कीं।

द. **पूर्ण बहुमत का पुनरागमन (2014 से वर्तमान) - सुदृढ़ कार्यकारी नेतृत्व:** 2014 एवं 2019 के आम चुनावों में एकल दल को स्पष्ट बहुमत मिलने के साथ ही पुनः एक सुदृढ़, केंद्रीकृत और प्रत्यक्ष जन-अपील आधारित प्रधानमंत्रीय मॉडल का पुनरुत्थान हुआ है, जिसमें पीएमओ नीति निर्माण की सर्वोच्च प्रेरक शक्ति बन गया है।

Vincompete

प्रमुख संवैधानिक सिद्धांत एवं पारिभाषिक शब्दावली

अ. **समकक्षों में प्रथम (Primus Inter Pares):** लॉर्ड मॉर्ले द्वारा गढ़ी गई यह लैटिन पदावली दर्शाती है कि सैद्धांतिक रूप से प्रधानमंत्री कैबिनेट के अन्य मंत्रियों के समकक्ष ही एक मंत्री है, किंतु व्यावहारिक रूप में वह अपनी शक्तियों के कारण संपूर्ण व्यवस्था का शीर्ष चालक होता है।

ब. **मंत्रिमंडल रूपी मेहराब की आधारशिला (Keystone of the Cabinet Arch):** सर विलियम वर्नोन हरकोर्ट का यह कथन प्रतिपादित करता है कि जिस प्रकार एक मेहराब (Arch) अपने केंद्रीय पत्थर (Keystone) के बिना गिर जाती है, उसी प्रकार प्रधानमंत्री के बिना संपूर्ण मंत्रिपरिषद बिखर जाती है।

स. **संवैधानिक मूकता (Constitutional Silence):** संविधान के वे क्षेत्र जहां निर्माताओं ने जानबूझकर कोई विस्तृत नियम नहीं लिखे और उन्हें भविष्य के लोकतांत्रिक अभीसमयों, परंपराओं और स्वस्थ राजनीतिक आचरण पर छोड़ दिया; जैसे अनुच्छेद 75(1) में प्रधानमंत्री के चयन की विशिष्ट पद्धति का न होना।

द. **सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility):** अनुच्छेद 75(3) के अनुसार, समस्त मंत्रिपरिषद लोक सभा के प्रति संयुक्त रूप से जवाबदेह होती है। इसका विधिक अर्थ है कि कैबिनेट के निर्णयों से यदि कोई मंत्री असहमत भी हो, तब भी उसे बाहर उसका समर्थन करना होगा; अन्यथा उसे अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ेगा (जैसे डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने हिंदू कोड बिल पर तथा सी. डी. देशमुख ने राज्यों के पुनर्गठन पर असहमति के कारण त्यागपत्र दिया था)।

य. **व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Individual Responsibility):** अनुच्छेद 75(2) के अनुसार, प्रत्येक मंत्री व्यक्तिगत रूप से राष्ट्रपति (और व्यवहार में प्रधानमंत्री) के प्रति उत्तरदायी होता है। यदि कोई मंत्री अपने विभाग में घोर प्रशासनिक विफलता या भ्रष्टाचार का दोषी पाया जाता है, तो प्रधानमंत्री उसे हटा सकता है बिना इसके कि संपूर्ण सरकार पर कोई आंच आए।

अध्याय 5: केंद्रीय मंत्रिपरिषद: संरचना, मंत्रियों की श्रेणियां, सामूहिक उत्तरदायित्व एवं 91वां संविधान संशोधन

केंद्रीय मंत्रिपरिषद का संवैधानिक आधार एवं विधिक संरचना

भारतीय संविधान के भाग पांच के अध्याय एक के अंतर्गत केंद्रीय कार्यपालिका के वास्तविक संचालन हेतु मंत्रिपरिषद की व्यवस्था की गई है। वेस्टमिंस्टर संसदीय प्रतिरूप के अनुरूप भारत में राज्य का औपचारिक प्रमुख राष्ट्रपति होता है, जबकि वास्तविक कार्यकारी शक्तियों का संचालन प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद करती है।

wincompete

अनुच्छेद 74: मंत्रिपरिषद का अस्तित्व एवं सलाह की प्रकृति

अ. **अनुच्छेद 74(1) की अनिवार्य संरचना:** राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

ब. **42वां संविधान संशोधन अधिनियम 1976:** इस संशोधन के माध्यम से राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद की सलाह को पूर्णतः बाध्यकारी बना दिया गया।

स. **44वां संविधान संशोधन अधिनियम 1978:** इसके द्वारा अनुच्छेद 74(1) में एक परंतुक अंतःस्थापित किया गया, जिसके अंतर्गत राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद को अपनी सलाह पर सामान्यतः या अन्यथा पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है। किंतु पुनर्विचार के पश्चात जब मंत्रिपरिषद कोई सलाह पुनः प्रस्तुत करती है, तब राष्ट्रपति उस सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए विवश होता है।

द. **सलाह की गोपनीयता एवं न्यायालयी जांच पर रोक (अनुच्छेद 74(2)):** इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी। सर्वोच्च न्यायालय ने एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994) वाद में स्पष्ट किया कि यद्यपि मंत्रियों द्वारा दी गई सलाह न्यायालयी जांच से परे है, किंतु वह सामग्री जिसके आधार पर सलाह दी गई थी, न्यायिक समीक्षा के दायरे में आ सकती है।

अनुच्छेद 75: मंत्रियों की नियुक्ति, कार्यकाल एवं उत्तरदायित्व

अ. **अनुच्छेद 75(1):** प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा।

ब. **अनुच्छेद 75(2):** मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद धारण करेंगे।

स. **अनुच्छेद 75(3):** मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगी।

द. **अनुच्छेद 75(4):** किसी मंत्री द्वारा अपना पद ग्रहण करने से पूर्व, राष्ट्रपति उसे तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार पद और गोपनीयता की शपथ दिलाएगा।

य. **अनुच्छेद 75(5):** कोई मंत्री जो निरंतर छह मास की किसी अवधि तक संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं है, उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।

र. **अनुच्छेद 75(6):** मंत्रियों के वेतन और भत्ते संसद द्वारा विधि द्वारा समय-समय पर अवधारित किए जाएंगे।

मंत्रियों की त्रि-स्तरीय श्रेणियां एवं संगठनात्मक संरचना

भारतीय संविधान के मूल पाठ में 'मंत्रिपरिषद' शब्द का उल्लेख है, किंतु मंत्रियों के आंतरिक संवर्ग या श्रेणियों का कोई प्रत्यक्ष वर्गीकरण मूल पाठ में नहीं दिया गया था। यह त्रि-स्तरीय विभाजन ब्रिटिश संसदीय अभीसमयों और प्रशासनिक सुविधा के आधार पर विकसित हुआ है।

केंद्रीय मंत्रिपरिषद (Council of Ministers)
संवैधानिक एवं प्रशासनिक निकाय

1. कैबिनेट मंत्री (Cabinet Ministers)	2. राज्य मंत्री (Ministers of State)	3. उपमंत्री (Deputy Ministers)
शीर्ष नीतियाँ एवं निर्णय • महत्वपूर्ण मंत्रालयों के प्रशासनिक प्रमुख • कैबिनेट बैठकों के स्थायी सदस्य • सर्वोच्च नीति-निर्धारक निकाय	**दोहरी प्रभाग संरचना** **अ. स्वतंत्र प्रभार:** विभाग के प्रमुख; विशेष आमंत्रण पर बैठक में सम्मिलित। **ब. सम्बद्ध:** कैबिनेट मंत्री को सहायता प्रदान करते हैं।	**सहायक एवं प्रशासनिक भूमिका** • कोई स्वतंत्र विभाग प्रभार नहीं • वरिष्ठ मंत्रियों को प्रशासनिक, विधायी एवं संसदीय कार्यों में सहायता देना

विस्तृत संवर्ग विश्लेषण

अ. **कैबिनेट मंत्री (मंत्रिमंडल स्तर के मंत्री):** ये केंद्र सरकार के सबसे महत्वपूर्ण मंत्रालयों (जैसे गृह, रक्षा, वित्त, विदेश, शिक्षा, रेल आदि) के प्रशासनिक प्रमुख होते हैं। ये सीधे प्रधानमंत्री के साथ मिलकर राष्ट्रीय नीतियों और रणनीतियों का निर्धारण करते हैं। केवल कैबिनेट स्तर के मंत्रियों को ही कैबिनेट की बैठकों में उपस्थित होने का विधिक एवं प्रक्रियात्मक अधिकार होता है।

ब. **राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार):** इन मंत्रियों को किसी मंत्रालय अथवा विभाग का स्वतंत्र दायित्व सौंपा जाता है। वे अपने विभाग के संबंध में वही कार्य करते हैं जो कैबिनेट मंत्री करते हैं। वे कैबिनेट के स्थायी सदस्य नहीं होते और कैबिनेट की बैठकों में केवल तभी उपस्थित होते हैं जब उनके विभाग से संबंधित किसी विशिष्ट विषय पर विचार किया जाना हो और उन्हें विशेष रूप से आमंत्रित किया जाए।

स. **राज्य मंत्री (संबद्ध):** इन मंत्रियों को किसी कैबिनेट मंत्री के अधीन उनके मंत्रालय में विशिष्ट विभागों या कार्यों का प्रभार देकर संबद्ध किया जाता है। इनका कार्य संबंधित कैबिनेट मंत्री को नीति निर्माण और प्रशासनिक कार्यों में सहयोग देना होता है। ये कैबिनेट की बैठकों में भाग नहीं लेते।

द. **उपमंत्री:** ये मंत्रियों की सबसे निचली श्रेणी में आते हैं। इन्हें किसी मंत्रालय या विभाग का स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया जाता। ये कैबिनेट मंत्रियों या राज्य मंत्रियों से संबद्ध रहते हैं। इनका मुख्य दायित्व प्रशासनिक, विधायी और संसदीय कार्यों (जैसे संसद में प्रश्नों के उत्तर तैयार करना, विधेयकों की तकनीकी समीक्षा) में वरिष्ठ मंत्रियों को सहायता प्रदान करना होता है। ये भी कैबिनेट की बैठकों में सम्मिलित नहीं होते।

य. **संसदीय सचिव (अतिरिक्त प्रशासनिक पद):** यद्यपि यह मंत्रिपरिषद का औपचारिक हिस्सा नहीं माना जाता, किंतु संसदीय शासन के इतिहास में वरिष्ठ मंत्रियों को विधायी कार्यों में सहायता देने के लिए कनिष्ठ सांसदों को संसदीय सचिव नियुक्त किया जाता रहा है। इनके पास कोई प्रशासनिक शक्ति नहीं होती।

मंत्रिपरिषद एवं मंत्रिमंडल (कैबिनेट): सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विभेद

सामान्य बोलचाल में मंत्रिपरिषद और मंत्रिमंडल शब्दों का प्रयोग एक-दूसरे के स्थान पर कर दिया जाता है, किंतु विधिक, संवैधानिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से दोनों में आधारभूत अंतर विद्यमान है।

तुलनात्मक विश्लेषण

तुलना का आधार	मंत्रिपरिषद (Council of Ministers)	मंत्रिमंडल / कैबिनेट (Cabinet)
संस्थागत स्वरूप	यह एक व्यापक एवं वृहद निकाय है जिसमें मंत्रियों की सभी तीनों श्रेणियां शामिल होती हैं।	यह एक छोटा, सघन एवं शक्तिशाली आंतरिक निकाय है जिसमें केवल कैबिनेट स्तर के मंत्री शामिल होते हैं।
सदस्य संख्या	सामान्यतः इसमें प्रधानमंत्री सहित 60 से लेकर 80 तक मंत्री हो सकते हैं।	इसमें केवल 15 से 25 वरिष्ठ एवं अनुभवी कैबिनेट मंत्री होते हैं।

wincompete

संवैधानिक स्थिति	यह मूल संविधान से ही अनुच्छेदों 74 और 75 के अंतर्गत एक पूर्णतः संवैधानिक निकाय है।	मूल संविधान में यह शब्द नहीं था। इसे **44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978** द्वारा अनुच्छेद 352 में पहली बार जोड़ा गया।
कार्यप्रणाली	यह सामूहिक रूप से नियमित बैठकों में कार्य नहीं करती। एक संपूर्ण निकाय के रूप में इसकी बैठकें अत्यंत दुर्लभ होती हैं।	यह एक नियमित निकाय के रूप में कार्य करती है। इसकी बैठकें सामान्यतः सप्ताह में एक बार अवश्य होती हैं।
शक्तियों का संचालन	सैद्धांतिक रूप से समस्त कार्यपालिका शक्तियां इसमें निहित हैं, किंतु व्यावहारिक रूप से यह उनका प्रयोग स्वयं नहीं करती।	यह मंत्रिपरिषद की ओर से वास्तविक कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करती है और सभी नीतिगत निर्णय लेती है।
निर्णयों का अनुपालन	यह कैबिनेट द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णयों का मात्र क्रियान्वयन करती है।	यह मंत्रिपरिषद के सभी संवर्गों के मंत्रियों को नीतिगत निर्देश जारी करती है और उनकी निगरानी करती है।

अनुच्छेद 352 में 'मंत्रिमंडल' शब्द का ऐतिहासिक समावेशन

मूल संविधान में 'मंत्रिमंडल' (कैबिनेट) शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं किया गया था। वर्ष 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा केवल व्यक्तिगत सलाह के आधार पर देश में आंतरिक आपातकाल अधिरोपित किए जाने की पुनरावृत्ति को रोकने हेतु 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा अनुच्छेद 352(3) में 'मंत्रिमंडल' शब्द को संहिताबद्ध किया गया:

- **संवैधानिक परिभाषा:** अनुच्छेद 352(3) के अनुसार, मंत्रिमंडल का तात्पर्य उस परिषद से है जिसमें प्रधानमंत्री और अनुच्छेद 75 के अधीन नियुक्त अन्य कैबिनेट स्तर के मंत्री सम्मिलित हैं।
- इसके तहत यह अनिवार्य किया गया कि राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा केवल तभी जारी कर सकता है जब ऐसा मंत्रिमंडल उसे लिखित रूप में संसूचित करे।

सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत: अनुच्छेद 75(3)

संसदीय लोकतंत्र की आधारशिला सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility) का सिद्धांत है। संविधान का अनुच्छेद 75(3) स्पष्ट रूप से उपबंध करता है कि "मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगी।"

सामूहिक उत्तरदायित्व की विधिक अंतर्वस्तु

अ. **संयुक्त अस्तित्व की संकल्पना:** इसका अर्थ है कि सभी मंत्री अपने सभी शासकीय कार्यों, भूलों और नीतियों के लिए संयुक्त रूप से लोक सभा के प्रति जवाबदेह हैं। यह सिद्धांत इस उक्ति पर आधारित है कि "मंत्रिपरिषद एक साथ तैरती है और एक साथ डूबती है" (Sink and swim together)।

ब. **अविश्वास प्रस्ताव का प्रभाव:** यदि लोक सभा द्वारा मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव (Motion of No-Confidence) पारित कर दिया जाता है, तो संपूर्ण मंत्रिपरिषद को तत्काल त्यागपत्र देना पड़ता है। इसमें वे मंत्री भी शामिल होते हैं जो राज्य सभा के सदस्य होते हैं।

स. **मंत्रिमंडल के निर्णयों की बाध्यता:** कैबिनेट के भीतर किसी नीति या विषय पर चाहे कितना भी मतभेद या तीव्र वाद-विवाद क्यों न हुआ हो, किंतु एक बार जब कैबिनेट कोई निर्णय ले लेती है, तो वह निर्णय सभी मंत्रियों पर समान रूप से बाध्यकारी होता है। किसी भी मंत्री को सार्वजनिक रूप से अथवा संसद के भीतर कैबिनेट के निर्णय की आलोचना करने, उससे असहमति जताने या उसके विरुद्ध मतदान करने का अधिकार नहीं है।

द. **असहमति की स्थिति में त्यागपत्र:** यदि कोई मंत्री कैबिनेट के किसी निर्णय से असहमत है और उसका सार्वजनिक रूप से बचाव करने में असमर्थ है, तो उसके समक्ष एकमात्र संवैधानिक विकल्प अपने पद से त्यागपत्र देना ही शेष रहता है।

सामूहिक उत्तरदायित्व के कारण मंत्रियों के ऐतिहासिक त्यागपत्र

वर्ष	मंत्री का नाम	त्यागपत्र का कारण एवं नीतिगत मतभेद
1951	डॉ. बी. आर. आंबेडकर	हिंदू कोड बिल के प्रगतिशील प्रावधानों पर मंत्रिमंडल और सरकार के रुख से असहमति के कारण विधि मंत्री पद से त्यागपत्र।
1956	सी. डी. देशमुख	राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के उपरांत बंबई राज्य के पुनर्गठन और बंबई नगर को केंद्र शासित प्रदेश बनाने के कैबिनेट के निर्णय से असहमति के कारण वित्त मंत्री पद से त्यागपत्र।
1986	आरिफ मोहम्मद खान	मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) विधेयक, 1986 पर सरकार के नीतिगत रुख से तीव्र असहमति के कारण केंद्रीय राज्य मंत्री पद से त्यागपत्र।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धांत: अनुच्छेद 75(2)

सामूहिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ संविधान में मंत्रियों के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Individual Responsibility) का सिद्धांत भी सन्निहित है।

wincompete

संवैधानिक प्रावधान एवं कार्यप्रणाली

अ. **प्रसादपर्यंत पद धारण:** अनुच्छेद 75(2) उपबंध करता है कि मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद धारण करेंगे। संसदीय व्यवस्था में राष्ट्रपति का यह प्रसाद वास्तव में प्रधानमंत्री का विश्वास होता है।

ब. **विभागीय विफलता का दायित्व:** प्रत्येक मंत्री अपने प्रभार वाले विभाग या मंत्रालय के कुशल प्रशासन के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। यदि किसी मंत्रालय में घोर प्रशासनिक शिथिलता, भ्रष्टाचार या नीतिगत चूक होती है, तो संबंधित मंत्री व्यक्तिगत उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए पद छोड़ता है, जिससे संपूर्ण

मंत्रिपरिषद के पतन को टाला जा सके। (उदाहरणार्थ, वर्ष 1956 में अरियालुर रेल दुर्घटना के पश्चात लाल बहादुर शास्त्री ने नैतिक एवं व्यक्तिगत उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए रेल मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया था)।

स. **प्रधानमंत्री का निष्कासन अधिकार:** यदि प्रधानमंत्री किसी मंत्री के कार्य निष्पादन, आचरण या नीतियों से असंतुष्ट होता है, तो वह उस मंत्री से सीधे त्यागपत्र की मांग कर सकता है। यदि मंत्री त्यागपत्र देने से इनकार करता है, तो प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को उस मंत्री को बर्खास्त (Dismiss) करने की औपचारिक सलाह दे सकता है, जिसे मानने के लिए राष्ट्रपति विवश होता है।

विधिक उत्तरदायित्व की अनुपस्थिति (भारतीय बनाम ब्रिटिश व्यवस्था)

ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली में विधिक उत्तरदायित्व (Legal Responsibility) का सिद्धांत लागू होता है, जिसके अंतर्गत क्राउन के प्रत्येक आदेश पर संबंधित मंत्री के प्रति-हस्ताक्षर (Counter-signature) अनिवार्य होते हैं। यदि वह आदेश विधि का उल्लंघन करता है, तो संबंधित मंत्री न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से दायी होता है (राजा कोई त्रुटि नहीं कर सकता सिद्धांत)।

इसके विपरीत, भारतीय संविधान में मंत्रियों के लिए किसी विधिक उत्तरदायित्व की व्यवस्था नहीं की गई है:

- अनुच्छेद 77(2) के अनुसार, राष्ट्रपति के नाम से जारी आदेशों का अधिप्रमाणीकरण नियमों के अनुसार किया जाता है, किंतु किसी मंत्री के व्यक्तिगत हस्ताक्षर की अनिवार्यता नहीं होती।
- अनुच्छेद 74(2) स्पष्ट रूप से न्यायालयों को इस बात की जांच करने से रोकता है कि मंत्रियों ने राष्ट्रपति को क्या सलाह दी। अतः किसी कार्यपालिका कृत्य के लिए मंत्रियों को व्यक्तिगत रूप से विधिक रूप से अदालत में उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 एवं मंत्रिपरिषद की सीमाएं

स्वतंत्रता के पश्चात के दशकों में, विशेषकर गठबंधन सरकारों के दौर में, राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने तथा विधायकों/सांसदों के दलबदल को प्रोत्साहित करने के लिए 'जंबो मंत्रिमंडलों' (विशालकाय मंत्रिपरिषद) का गठन एक गंभीर राजनीतिक विकृति बन गया था। इसे रोकने के लिए 91वां संविधान संशोधन अधिनियम 2003 अधिनियमित किया गया।

प्रमुख संशोधन एवं संवैधानिक उपबंध

अ. **मंत्रिपरिषद के आकार पर संख्यात्मक प्रतिबंध (अनुच्छेद 75(1क)):**

- इस खंड के अनुसार, केंद्रीय मंत्रिपरिषद में प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों की कुल संख्या लोक सभा की कुल सदस्य संख्या के **15 प्रतिशत** से अधिक नहीं होगी।
- **सांख्यिकीय सीमा:** चूंकि लोक सभा की वर्तमान निर्वाचित सदस्य संख्या 543 है, अतः इसका 15 प्रतिशत 81.45 होता है। इसका विधिक अर्थ यह है कि केंद्रीय मंत्रिपरिषद में प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों की अधिकतम संख्या **81 या 82** से अधिक नहीं हो सकती।

wincompete

ब. **दलबदलुओं के मंत्री पद पर रोक (अनुच्छेद 75(1ख)):**

- संसद के किसी भी सदन का कोई भी सदस्य जो संविधान की दसवीं अनुसूची (दलबदल विरोधी कानून) के अधीन सदन की सदस्यता से निरर्हित (अयोग्य) हो जाता है, वह अपनी निरर्हता की तारीख से मंत्री नियुक्त होने के लिए भी अपात्र होगा।
- यह निरर्हता उस तारीख तक बनी रहेगी जिस तारीख को उस सदन के सदस्य के रूप में उसकी पदावधि समाप्त होगी, अथवा जहां वह ऐसी अवधि की समाप्ति से पूर्व चुनाव लड़ता है, उस तारीख तक जब तक वह पुनः निर्वाचित घोषित न हो जाए।

स. **राज्यों के संदर्भ में समानांतर उपबंध (अनुच्छेद 164(1क)):**

- राज्यों की मंत्रिपरिषद में मुख्यमंत्री सहित मंत्रियों की कुल संख्या संबंधित राज्य की विधान सभा की कुल सदस्य संख्या के **15 प्रतिशत** से अधिक नहीं होगी।
- **राज्यों हेतु न्यूनतम सीमा:** किसी राज्य में मुख्यमंत्री सहित मंत्रियों की न्यूनतम संख्या **12** से कम नहीं होगी (यह न्यूनतम सीमा छोटे राज्यों के प्रशासनिक संतुलन हेतु निर्धारित की गई है)। केंद्र सरकार (संघ) के संदर्भ में संविधान में किसी न्यूनतम सीमा का उल्लेख नहीं किया गया है।

मंत्रियों की पद, गोपनीयता की शपथ एवं संवैधानिक उन्मुक्तियां

पदभार ग्रहण करने से पूर्व प्रत्येक मंत्री को राष्ट्रपति द्वारा संविधान की तीसरी अनुसूची में निर्धारित प्रारूप के अनुसार दो पृथक शपथ दिलाई जाती हैं: पद की शपथ तथा गोपनीयता की शपथ।

शपथ का प्रारूपिक विन्यास

अ. **पद की शपथ:** मंत्री प्रतिज्ञान करता है कि वह:

- विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखेगा।
- भारत की संप्रभुता और अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।
- संघ के मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक और शुद्ध अंतःकरण से निर्वहन करेगा।
- भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना सभी प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि के अनुसार न्याय करेगा।

ब. **गोपनीयता की शपथ:** मंत्री यह प्रतिज्ञा करता है कि संघ के मंत्री के रूप में जो विषय उसके विचार के लिए लाया जाएगा अथवा उसे ज्ञात होगा, उसे किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को तब के सिवाय जब कि ऐसे मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों के सम्यक निर्वहन के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संसूचित या प्रकट नहीं करेगा।

संसद के दोनों सदनों में मंत्रियों के विशेष अधिकार (अनुच्छेद 88)

अनुच्छेद 88 प्रत्येक केंद्रीय मंत्री को एक विशिष्ट संवैधानिक अधिकार प्रदान करता है:

- प्रत्येक मंत्री को लोक सभा, राज्य सभा, दोनों सदनों की किसी संयुक्त बैठक, तथा संसद की किसी समिति (जिसका वह सदस्य नामित किया गया हो) में बोलने और उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का पूर्ण अधिकार होगा।
- **मतदान का सीमांकन:** कोई भी मंत्री केवल उसी सदन में मतदान कर सकता है जिसका वह वास्तविक रूप से निर्वाचित अथवा मनोनीत सदस्य है। यदि कोई मंत्री राज्य सभा का सदस्य है, तो वह लोक सभा की बहसों और कार्यवाहियों में भाग ले सकता है, किंतु लोक सभा में होने वाले किसी भी मतदान में भाग नहीं ले सकता।

गैर-सांसद की मंत्री के रूप में नियुक्ति एवं संबंधित न्यायिक निर्वचन

Wincompete

संविधान का अनुच्छेद 75(5) एक लचीली व्यवस्था प्रदान करता है जिसके अनुसार कोई ऐसा व्यक्ति भी मंत्री नियुक्त किया जा सकता है जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है।

अनुच्छेद 75(5) की विधिक शर्तें एवं न्यायालयी व्याख्याएं

अ. **छह मास की वैधानिक अवधि:** गैर-सांसद मंत्री को अपने पद ग्रहण की तारीख से निरंतर छह मास के भीतर संसद के किसी एक सदन (लोक सभा अथवा राज्य सभा) का सदस्य निर्वाचित होना अनिवार्य है। यदि वह छह मास की समाप्ति तक सदस्यता प्राप्त करने में विफल रहता है, तो उसका मंत्री पद स्वतः समाप्त हो जाता है।

ब. **पुनर्नियुक्ति पर रोक (एस. आर. चौधरी बनाम पंजाब राज्य, 2001):** सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि यदि कोई गैर-विधायक/गैर-सांसद व्यक्ति छह मास की अवधि पूरी होने पर भी सदन का सदस्य नहीं बन पाता और त्यागपत्र दे देता है, तो उसे उसी कार्यकाल के दौरान बिना निर्वाचित हुए पुनः मंत्री नियुक्त नहीं किया जा सकता। ऐसा करना संवैधानिक व्यवस्था के प्रति कपट (Fraud on the Constitution) होगा।

स. **दोषसिद्ध व्यक्ति की नियुक्ति पर पूर्ण रोक (बी. आर. कपूर बनाम तमिलनाडु राज्य, 2001):** सर्वोच्च न्यायालय ने यह विधि स्थापित की कि यदि कोई व्यक्ति जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत किसी आपराधिक अपराध में सिद्धदोष ठहराए जाने के कारण चुनाव लड़ने हेतु अयोग्य है, तो उसे अनुच्छेद 75(5) या 164(4) की छूट का लाभ देकर मंत्री या प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री नियुक्त नहीं किया जा सकता। संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ का उल्लंघन करके किसी अयोग्य व्यक्ति को कार्यपालिका पद नहीं सौंपा जा सकता।

मंत्रिपरिषद एवं कैबिनेट सचिवालय की कार्यप्रणाली

मंत्रिपरिषद के सुचारु संचालन, अंतर-मंत्रालयी समन्वय तथा नीतियों के व्यवस्थित क्रियान्वयन हेतु प्रशासनिक तंत्र के रूप में **कैबिनेट सचिवालय (Cabinet Secretariat)** कार्य करता है।

कैबिनेट सचिवालय की संगठनात्मक संरचना

अ. **शीर्ष प्रशासनिक नेतृत्व:** कैबिनेट सचिवालय सीधे प्रधानमंत्री के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करता है। इसका प्रशासनिक प्रमुख **कैबिनेट सचिव (Cabinet Secretary)** होता है।

ब. **कैबिनेट सचिव की स्थिति:** कैबिनेट सचिव भारत के संपूर्ण सिविल सेवा संवर्ग (Civil Services) का पदेन प्रमुख और सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी होता है। भारत की आधिकारिक वरीयता अनुक्रम (Table of Precedence) में कैबिनेट सचिव को अत्यंत उच्च (11वां) स्थान प्राप्त है।

कैबिनेट सचिवालय के प्रमुख प्रशासनिक कार्य

अ. **कैबिनेट बैठकों का प्रबंधन:** केंद्रीय मंत्रिमंडल और उसकी विभिन्न मंत्रिमंडलीय समितियों की बैठकों की कार्यसूची (Agenda) तैयार करना, बैठकों का संचालन करना, कार्यवृत्त (Minutes) दर्ज करना तथा निर्णयों को संबंधित मंत्रालयों तक संप्रेषित करना।

ब. **अंतर-मंत्रालयी समन्वय:** विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के मध्य उत्पन्न होने वाले नीतिगत विवादों या क्षेत्राधिकार संबंधी गतिरोधों का निवारण करना।

स. **कार्य आबंटन नियमों का प्रशासन:** भारत सरकार (कार्य आबंटन) नियम 1961 तथा भारत सरकार (कार्य संचालन) नियम 1961 का सुगम प्रशासन सुनिश्चित करना।

द. **संकट प्रबंधन:** राष्ट्रीय संकट या आपातकालीन परिस्थितियों में शीर्ष प्रशासनिक निगरानी तंत्र के रूप में कार्य करना। राष्ट्रीय संकट प्रबंधन समिति (NCMC) की अध्यक्षता कैबिनेट सचिव द्वारा की जाती है।

wincompete

संवैधानिक पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख विधिक संकल्पनाएं

अ. **सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility):** संसदीय शासन का वह अनिवार्य सिद्धांत जिसके तहत संपूर्ण मंत्रिपरिषद लोक सभा के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी होती है; किसी एक मंत्री के विरुद्ध पारित अविश्वास प्रस्ताव पूरी सरकार का पतन कर देता है।

ब. **संवैधानिक अभीसमय (Constitutional Conventions):** वे अलिखित किंतु बाध्यकारी राजनीतिक परंपराएं और व्यवहारिक नियम जो संविधान के लिखित प्रावधानों को क्रियान्वित और संतुलित करने के लिए समय के साथ विकसित होते हैं; जैसे कैबिनेट का त्रि-स्तरीय ढांचा।

स. **कार्य आबंटन नियम (Rules of Business):** अनुच्छेद 77(3) के तहत राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए वे विधिक नियम जिनके माध्यम से सरकार के विभिन्न कार्यों, नीतियों और विधायी प्रस्तावों का वितरण विभिन्न मंत्रालयों और मंत्रियों के मध्य किया जाता है।

द. **मंत्रिपरिषद रूपी मेहराब की आधारशिला (Keystone of the Cabinet Arch):** प्रधानमंत्री के लिए प्रयुक्त उपमा, जो यह दर्शाती है कि यद्यपि समस्त कार्य मंत्रिपरिषद द्वारा किए जाते हैं, किंतु संपूर्ण कार्यकारी ढांचे की स्थिरता और अस्तित्व प्रधानमंत्री के पद पर ही टिका होता है।

य. **छाया मंत्रिमंडल (Shadow Cabinet):** ब्रिटिश संसदीय प्रणाली की वह अनूठी व्यवस्था जिसमें मुख्य विपक्षी दल वास्तविक कैबिनेट के समानांतर अपने सांसदों की एक वैकल्पिक कैबिनेट बनाता है, जहां प्रत्येक विपक्षी नेता एक विशिष्ट मंत्री की नीतियों की निगरानी करता है। भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में ऐसी कोई औपचारिक प्रणाली विद्यमान नहीं है।

र. **स्वतंत्र प्रभार (Independent Charge):** राज्य मंत्री स्तर के उस मंत्री की स्थिति जिसे किसी कनिष्ठ विभाग या मंत्रालय का प्रशासनिक दायित्व बिना किसी कैबिनेट मंत्री की अधीनता के स्वतंत्र रूप से सौंपा जाता है।

ल. **अधिप्रमाणीकरण (Authentication):** राष्ट्रपति के नाम से जारी किए जाने वाले शासकीय आदेशों और संलेखों को विधिक मान्यता प्रदान करने हेतु अधिकृत सिविल सेवकों द्वारा हस्ताक्षरित किए जाने की औपचारिक विधिक प्रक्रिया।

अध्याय 6: मंत्रिमंडलीय समितियां एवं सचिवालय: राजनीतिक मामलों की समिति, नियुक्ति समिति, आर्थिक मामलों की समिति एवं कैबिनेट सचिव की प्रशासनिक भूमिका

मंत्रिमंडलीय समितियों का संवैधानिक एवं विधिक आधार

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमंडलीय समितियां (Cabinet Committees) कार्यपालिका के शीर्ष स्तर पर नीति-निर्माण, अंतर-मंत्रालयी समन्वय और त्वरित निर्णयन के लिए एक अपरिहार्य तंत्र के रूप में कार्य करती हैं। संसदीय लोकतंत्र में यद्यपि समस्त कार्यपालिका शक्तियां औपचारिक रूप से राष्ट्रपति में निहित हैं (अनुच्छेद 53) और व्यावहारिक रूप से केंद्रीय मंत्रिपरिषद (अनुच्छेद 74) द्वारा संचालित होती हैं, तथापि शासन के विशाल आकार और तकनीकी जटिलता के कारण संपूर्ण कैबिनेट के लिए प्रत्येक विषय पर प्रत्यक्ष विचार करना संभव नहीं होता।

विधिक एवं प्रक्रियात्मक मूल

अ. **संविधान इतर स्वरूप (Extra-Constitutional Bodies):** मंत्रिमंडलीय समितियों का उल्लेख भारत के मूल संविधान अथवा उसके अनुच्छेदों में नहीं मिलता है। ये निकाय 'संविधान-इतर' (Extra-Constitutional) और 'कार्यकारी' प्रकृति के हैं। इनका गठन संसद के किसी अधिनियम द्वारा भी नहीं किया गया है, अतः ये सांविधिक (Statutory) निकाय भी नहीं हैं।

ब. **कार्य आबंटन नियम 1961 (Transaction of Business Rules):** इन समितियों का विधिक प्राधिकार संविधान के **अनुच्छेद 77(3)** से निःसृत होता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत भारत का राष्ट्रपति सरकार के कार्य को अधिक सुविधापूर्वक किए जाने तथा मंत्रियों में उक्त कार्य के आबंटन के लिए नियम बनाता है। इन्हीं नियमों के आधार पर प्रधानमंत्री को आवश्यकतानुसार मंत्रिमंडलीय समितियों के गठन, पुनर्गठन, कार्य-विभाजन अथवा उन्हें समाप्त करने का अनन्य अधिकार प्राप्त होता है।

स. **लोचशील एवं गतिशील संरचना:** मंत्रिमंडलीय समितियों की संख्या, उनके नाम, सदस्यता और कार्यक्षेत्र समय और तत्कालीन राजनीतिक-प्रशासनिक प्राथमिकताओं के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। सामान्यतः प्रत्येक नई सरकार के गठन के पश्चात प्रधानमंत्री द्वारा इन समितियों का पुनर्गठन किया जाता है।

समितियों की दो मूल श्रेणियां

अ. **स्थायी समितियां (Standing Committees):** ये निरंतर प्रकृति की समितियां होती हैं जो दीर्घकालिक प्रशासनिक, आर्थिक, राजनीतिक और सुरक्षात्मक दायित्वों का संपादन करती हैं। सरकार बदलते ही इनका पुनर्गठन किया जाता है, किंतु इनका अस्तित्व सामान्यतः बना रहता है (जैसे आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति, राजनीतिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति)।

ब. **तदर्थ समितियां (Ad-hoc Committees):** ये विशिष्ट, तात्कालिक अथवा अप्रत्याशित समस्याओं और अंतर-मंत्रालयी गतिरोधों के समाधान हेतु अस्थायी रूप से गठित की जाती हैं। कार्य पूर्ण होते ही अथवा अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात ये समितियां स्वतः समाप्त हो जाती हैं। समय-समय पर गठित होने वाले 'मंत्रियों के समूह' (Group of Ministers - GoM) तथा 'अधिकार प्राप्त मंत्रियों के समूह' (Empowered Group of Ministers - EGoM) इसी श्रेणी के अंतर्गत आते रहे हैं।

मंत्रिमंडलीय समितियों की सामान्य विशेषताएं एवं कार्यप्रणाली

मंत्रिमंडलीय समितियों की संगठनात्मक संरचना तथा उनके कार्य करने के तरीके कुछ विशिष्ट सिद्धांतों और अभीसमयों पर आधारित हैं, जो उन्हें कार्यपालिका का एक अत्यंत प्रभावी उपकरण बनाते हैं।

मंत्रिमंडलीय समितियों के प्रकार	कार्यप्रणाली एवं उद्देश्य
स्थायी मंत्रिमंडलीय समितियां **(CCPA, CCEA, ACC, CCS आदि)** निरंतर प्रकृति की नीतियां व निर्णय	**तदर्थ समितियां / GoM** **(विशिष्ट मुद्दों के समाधान हेतु)** कार्य पूर्ण होने पर स्वतः समाप्त
नीतिगत परीक्षण एवं संस्तुति	**विस्तृत अंतर-मंत्रालयी समीक्षा**
केंद्रीय मंत्रिमंडल (Cabinet) *(अंतिम अनुमोदन अथवा सीधे प्रभावी क्रियान्वयन)*	

मुख्य संरचनात्मक विशेषताएं

अ. **सदस्यता का स्वरूप:** इन समितियों में सामान्यतः केवल **कैबिनेट स्तर के मंत्री** ही पूर्ण सदस्य होते हैं। यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर स्वतंत्र प्रभार वाले राज्य मंत्रियों अथवा संबद्ध राज्य मंत्रियों को भी किसी समिति का सदस्य बनाया जा सकता है या 'विशेष आमंत्रित' (Special Invitee) के रूप में बैठकों में बुलाया जा सकता है।

ब. **सीमित आकार:** कार्यकुशलता और विचार-विमर्श की सघनता बनाए रखने के लिए इन समितियों में सदस्यों की संख्या सामान्यतः 3 से लेकर 8 तक सीमित रखी जाती है।

स. **प्रधानमंत्री का केंद्रीय नियंत्रण:** अधिकांश महत्वपूर्ण समितियों की अध्यक्षता स्वयं प्रधानमंत्री करते हैं। यदि प्रधानमंत्री किसी समिति के सदस्य होते हैं, तो अभीसमय के अनुसार वही उसकी अध्यक्षता करते हैं। जिन समितियों में प्रधानमंत्री सदस्य नहीं होते (जैसे संसदीय मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति), उनकी अध्यक्षता किसी वरिष्ठ कैबिनेट मंत्री (गृह मंत्री या रक्षा मंत्री) द्वारा की जाती है।

द. **निर्णयों की विधिक वैधता:** इन समितियों द्वारा लिए गए निर्णय सामान्यतः कैबिनेट के निर्णयों के समतुल्य माने जाते हैं। कैबिनेट को यह अधिकार है कि वह समिति के किसी भी निर्णय की समीक्षा करे या उसे पलट दे, किंतु प्रशासनिक परंपरा के अनुसार इन समितियों द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णयों को कैबिनेट द्वारा औपचारिक स्वीकृति स्वतः प्राप्त हो जाती है।

राजनीतिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (CCPA): 'सुपर कैबिनेट' की भूमिका

राजनीतिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (Cabinet Committee on Political Affairs - CCPA) भारत सरकार की समस्त मंत्रिमंडलीय समितियों में सबसे महत्वपूर्ण, नीतिगत रूप से सर्वोच्च और प्रभावशाली समिति है। इसकी व्यापक शक्तियों और राष्ट्रीय प्रभाव के कारण इसे प्रायः **'सुपर कैबिनेट' (Super Cabinet)** की संज्ञा दी जाती है।

समिति की संरचना

अ. **अध्यक्षता:** इस समिति की अध्यक्षता अनिवार्य रूप से **प्रधानमंत्री** करते हैं।

ब. **सदस्यता:** इसमें सरकार के शीर्ष चार मंत्रालयों के कैबिनेट मंत्री (गृह मंत्री, रक्षा मंत्री, वित्त मंत्री और विदेश मंत्री) अनिवार्य रूप से सम्मिलित होते हैं। गठबंधन सरकारों के दौर में महत्वपूर्ण सहयोगी दलों के वरिष्ठ कैबिनेट मंत्रियों को भी संतुलन बनाए रखने के लिए इसमें स्थान दिया जाता रहा है।

कार्य एवं क्षेत्राधिकार

अ. **घरेलू एवं विदेश नीति का समन्वय:** देश की आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था, केंद्र-राज्य संबंधों में उत्पन्न तनाव, तथा विदेश नीति से जुड़े अत्यंत संवेदनशील राजनीतिक मामलों का परीक्षण करना और उन पर रणनीतिक निर्णय लेना।

wincompete

ब. **गंभीर राजनीतिक संकटों का प्रबंधन:** किसी राज्य में अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) के संभावित प्रयोग, अंतर-राज्यीय सीमा या जल विवादों के राजनीतिक समाधान, तथा देश के किसी भाग में व्यापक जन-असंतोष से निपटने की दिशा तय करना।

स. **संवैधानिक एवं दलीय संतुलन:** सरकार के राजनीतिक स्थायित्व को प्रभावित करने वाले मुद्दों, गठबंधन सहयोगियों के साथ नीतिगत सामंजस्य तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के राजनीतिक आयामों का अंतिम निर्धारण इसी समिति के मंच पर होता है।

आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (CCEA): राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का शीर्ष नियामक

आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (Cabinet Committee on Economic Affairs - CCEA) देश की आर्थिक प्राथमिकताओं, राष्ट्रीय विकास परियोजनाओं, राजकोषीय रणनीतियों और वित्तीय नीति का संचालन करने वाली शीर्ष संस्था है।

समिति की संरचना

अ. **अध्यक्षता:** इस समिति की अध्यक्षता **प्रधानमंत्री** द्वारा की जाती है।

ब. **सदस्यता:** इसके सदस्यों में वित्त मंत्री, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री, रेल मंत्री, सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्री, कृषि मंत्री तथा संबंधित आर्थिक मंत्रालयों के कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं।

प्रमुख कार्य एवं आर्थिक अधिदेश

अ. **राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों का निर्देशन:** देश के समग्र आर्थिक रुझानों की निरंतर निगरानी करना, औद्योगिक विकास को गति देना, तथा विदेशी निवेश (FDI) के नीतिगत मापदंडों का निर्धारण करना।

ब. **कृषि मूल्य नीति एवं मूल्य समर्थन:** कृषि लागत और मूल्य आयोग (CACP) की संस्तुतियों के आधार पर विभिन्न फसलों के लिए **न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP)** की अंतिम घोषणा CCEA द्वारा ही की जाती है। इसके अतिरिक्त आवश्यक वस्तुओं की सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) हेतु निर्गम मूल्यों का निर्धारण भी यही समिति करती है।

स. **वृहत बुनियादी ढांचा परियोजनाओं की स्वीकृति:** केंद्र सरकार द्वारा वित्तपोषित 1,000 करोड़ रुपये से अधिक की लागत वाली प्रमुख राष्ट्रीय बुनियादी ढांचा, रेलवे, राष्ट्रीय राजमार्ग और ऊर्जा परियोजनाओं का अंतिम वित्तीय अनुमोदन CCEA द्वारा दिया जाता है।

द. **सार्वजनिक उपक्रमों का विनिवेश:** केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (CPSEs) में सरकार की हिस्सेदारी की बिक्री, रणनीतिक विनिवेश (Disinvestment) अथवा निजीकरण से संबंधित नीतिगत निर्णयों को स्वीकृति देना।

मंत्रिमंडलीय नियुक्ति समिति (ACC): शीर्ष नौकरशाही का अंतिम निर्णायक

मंत्रिमंडलीय नियुक्ति समिति (Appointments Committee of the Cabinet - ACC) भारत के संपूर्ण प्रशासनिक, न्यायिक (अधिकरणों के संदर्भ में), सैन्य एवं वित्तीय तंत्र के सर्वोच्च पदों पर अधिकारियों की पदस्थापना को नियंत्रित करती है।

समिति की विशिष्ट संरचना

अन्य समितियों के विपरीत ACC की संरचना अत्यंत संक्षिप्त और संकेंद्रित होती है:

- **अध्यक्ष:** प्रधानमंत्री।
- **सदस्य:** केंद्रीय गृह मंत्री।

(संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय के मंत्री को केवल उन मामलों में चर्चा हेतु शामिल किया जाता है जो उनके मंत्रालय की नियुक्तियों से जुड़े हों, किंतु अंतिम निर्णय प्रधानमंत्री और गृह मंत्री के अनुमोदन से ही होता है)।

wincompete

प्रमुख कार्य एवं क्षेत्राधिकार

अ. **उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्तियां:** भारत सरकार के सचिव, अपर सचिव, संयुक्त सचिव, तथा समकक्ष स्तर के सभी वरिष्ठ आईएएस (IAS) और केंद्रीय सेवाओं के अधिकारियों की पदस्थापना और प्रतिनियुक्ति का अंतिम अनुमोदन ACC द्वारा किया जाता है।

ब. **सार्वजनिक उपक्रमों एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों का शीर्ष नेतृत्व:** केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (PSUs) के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक (CMD), निदेशक मंडल, तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों और भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) के गवर्नर व डिप्टी गवर्नरों की नियुक्ति को अंतिम रूप देना।

स. **सैन्य एवं सामरिक नेतृत्व:** भारतीय थल सेना, नौसेना और वायु सेना के प्रमुखों (Chiefs of Staff) तथा चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ (CDS) की नियुक्ति का औपचारिक अनुमोदन।

द. **न्यायिक एवं अर्ध-न्यायिक अधिकरण:** केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (CAT), राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT), आयकर अपीलीय अधिकरण (ITAT) आदि के अध्यक्षों एवं सदस्यों की नियुक्तियों को स्वीकृति प्रदान करना।

सुरक्षा एवं संसदीय मामलों की समितियां तथा अन्य प्रमुख स्थायी समितियां

राजनीतिक, आर्थिक और नियुक्ति संबंधी समितियों के अतिरिक्त कुछ अन्य अत्यंत विशिष्ट स्थायी समितियां शासन के दैनिक और सामरिक कार्यों को दिशा प्रदान करती हैं।

सुरक्षा संबंधी मंत्रिमंडलीय समिति (CCS)

अ. **संरचना:** इस समिति के अध्यक्ष **प्रधानमंत्री** होते हैं तथा रक्षा मंत्री, गृह मंत्री, वित्त मंत्री और विदेश मंत्री इसके स्थायी सदस्य होते हैं।

ब. **कार्य:** देश की संप्रभुता, आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा, रक्षा बजट के बड़े आवंटन, परमाणु नीति, रक्षा खरीद (विदेशी सैन्य साजो-सामान के सौदे), तथा सीमा प्रबंधन से जुड़े समस्त संवेदनशील मामलों पर अंतिम निर्णय लेने का अनन्य अधिकार इसी समिति को प्राप्त है।

संसदीय मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (CCPA - Parliamentary)

अ. **संरचना की विशिष्टता: इस समिति की अध्यक्षता प्रधानमंत्री नहीं करते हैं।** इसकी अध्यक्षता सामान्यतः रक्षा मंत्री या गृह मंत्री (अथवा किसी अन्य वरिष्ठ कैबिनेट मंत्री) द्वारा की जाती है। संसदीय कार्य मंत्री इसके महत्वपूर्ण सदस्य होते हैं।

ब. **कार्य:** संसद के दोनों सदनों के सत्रों को आहूत करने और सत्रावसान की तिथियों की सिफारिश राष्ट्रपति को करना; संसद में सरकार के विधायी एजेंडे, विधेयकों की प्राथमिकता तय करना; तथा संसद में पेश होने वाले गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों पर सरकार के आधिकारिक रुख का निर्धारण करना।

wincompete

निवेश एवं संवृद्धि तथा रोजगार संबंधी समितियां (2019 में गठित)

अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधारों को गति देने के लिए वर्ष 2019 में दो नई स्थायी मंत्रिमंडलीय समितियों का गठन किया गया:

- **निवेश एवं संवृद्धि संबंधी समिति (Cabinet Committee on Investment and Growth):** 1,000 करोड़ रुपये से अधिक की रुकी हुई बड़ी अवसंरचना परियोजनाओं की बाधाओं को दूर करने और पूंजी निवेश को आकर्षित करने हेतु। इसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करते हैं।

- **रोजगार एवं कौशल विकास संबंधी समिति (Cabinet Committee on Employment and Skill Development):** देश में रोजगार सृजन, कौशल विकास और श्रम बाजार की प्राथमिकताओं के लिए नीतियां बनाना। इसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करते हैं।

मंत्रिमंडलीय समितियों का तुलनात्मक एवं संरचनात्मक विश्लेषण

विभिन्न मंत्रिमंडलीय समितियों के विधिक स्वरूप, उनके नेतृत्व और उत्तरदायित्वों का व्यवस्थित तुलनात्मक विवरण निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत है:

मंत्रिमंडलीय समिति का नाम	समिति के अध्यक्ष	अनिवार्य / प्रमुख सदस्य	मुख्य प्रशासनिक एवं विधिक दायित्व
राजनीतिक मामलों की समिति (CCPA)	**प्रधानमंत्री**	गृह मंत्री, रक्षा मंत्री, वित्त मंत्री, विदेश मंत्री	आंतरिक-बाह्य सुरक्षा की राजनीतिक समीक्षा, केंद्र-राज्य संबंध, राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356) का राजनीतिक मूल्यांकन।
आर्थिक मामलों की समिति (CCEA)	**प्रधानमंत्री**	वित्त मंत्री, वाणिज्य मंत्री, कृषि मंत्री, रेल मंत्री, सड़क परिवहन मंत्री	वृहत आर्थिक नीतियां, न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), 1000 करोड़ से अधिक की परियोजनाएं, विनिवेश।
नियुक्ति समिति (ACC)	**प्रधानमंत्री**	केवल गृह मंत्री (एवं संबंधित विभागीय मंत्री)	भारत सरकार के सचिव/संयुक्त सचिव, पीएसयू प्रमुख, बैंक सीएमडी, सेना प्रमुखों की नियुक्तियों का अनुमोदन।
सुरक्षा संबंधी समिति (CCS)	**प्रधानमंत्री**	रक्षा मंत्री, गृह मंत्री, वित्त मंत्री, विदेश मंत्री	सामरिक सुरक्षा, रक्षा सौदे, परमाणु कमान, युद्ध एवं शांति संबंधी रणनीतिक निर्णय।
संसदीय मामलों की समिति	**वरिष्ठ कैबिनेट मंत्री** (जैसे रक्षा मंत्री)	गृह मंत्री, वित्त मंत्री, संसदीय कार्य मंत्री *(प्रधानमंत्री सदस्य नहीं)*	संसद सत्र बुलाने (आहूत) व सत्रावसान की सिफारिश, विधायी कार्यसूची, सरकारी विधेयकों की प्रगति।

winconcrete

आवास संबंधी समिति	**गृह मंत्री** (या अन्य वरिष्ठ मंत्री)	आवास एवं शहरी विकास मंत्री, वित्त मंत्री *(प्रधानमंत्री सदस्य नहीं)*	संसद सदस्यों, मंत्रियों, न्यायाधीशों और सिविल सेवकों को सरकारी आवासों के आबंटन का नियमन।

मंत्रियों के समूह (GoM) एवं अधिकार प्राप्त मंत्रियों के समूह (EGoM)

नियमित स्थायी समितियों के अतिरिक्त, भारतीय प्रशासनिक प्रणाली में जटिल और अंतर-मंत्रालयी गतिरोधों को दूर करने के लिए 'मंत्रियों के समूह' (GoMs) की व्यवस्था विकसित की गई।

मंत्रियों के समूह (GoMs) की प्रकृति एवं कार्य

अ. **उद्देश्य:** जब कोई नीतिगत विषय एक से अधिक मंत्रालयों के कार्यक्षेत्र को स्पर्श करता है और उन मंत्रालयों के मध्य तीव्र मतभेद होते हैं, तो कैबिनेट उस विषय पर आम सहमति बनाने के लिए संबंधित मंत्रियों को मिलाकर एक तदर्थ GoM का गठन करती है।

ब. **परामर्शदात्री स्थिति:** सामान्य GoM केवल एक संस्तुतिकर्ता निकाय होता है। यह विषय का गहन परीक्षण कर अपना प्रतिवेदन कैबिनेट को सौंपता है। अंतिम निर्णय कैबिनेट द्वारा ही लिया जाता है।

अधिकार प्राप्त मंत्रियों के समूह (EGoMs) की असाधारण शक्तियां

अ. **अंतिम निर्णय का अधिकार:** EGoM को कैबिनेट द्वारा स्पष्ट रूप से यह अधिकार दिया जाता था कि वह किसी विशिष्ट विषय पर कैबिनेट की ओर से अंतिम और बाध्यकारी निर्णय ले सके। इसके निर्णयों को पुनः कैबिनेट में ले जाने की आवश्यकता नहीं होती थी।

ब. **प्रयोग:** 2004 से 2014 के मध्य दूरसंचार स्पेक्ट्रम नीलामी, गैस मूल्य निर्धारण और बड़े सार्वजनिक उपक्रमों के विनिवेश जैसे जटिल विषयों पर त्वरित निर्णयों हेतु EGoM का व्यापक प्रयोग हुआ।

प्रशासनिक सुधार एवं 2014 का परिवर्तन

वर्ष 2014 में केंद्रीय स्तर पर प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल बनाने और निर्णय लेने में गति लाने के उद्देश्य से तत्कालीन सभी GoMs और EGoMs को एक आदेश द्वारा समाप्त कर दिया गया। नीतिगत निर्णयों का दायित्व पुनः सीधे संबंधित मंत्रालयों, कैबिनेट सचिव और कैबिनेट के मूल ढांचे को सौंप दिया गया, यद्यपि अत्यंत आवश्यक होने पर विशिष्ट विषयों पर अनौपचारिक अनौपचारिक मंत्रिस्तरीय समूह बनाए जाते रहे हैं।

कैबिनेट सचिवालय: संगठनात्मक ढांचा, विकास एवं कार्य

कैबिनेट सचिवालय (Cabinet Secretariat) भारत सरकार का सर्वोच्च प्रशासनिक समन्वयकारी कार्यालय है। यह सीधे प्रधानमंत्री के प्रशासनिक और विधिक नियंत्रण में कार्य करता है।

Wincompete

कैबिनेट सचिवालय का संगठनात्मक ढांचा

प्रधानमंत्री

↓

कैबिनेट सचिव
(सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी)

↓

सिविल कार्य विंग	सुरक्षा कार्य विंग	समन्वय एवं प्रदर्शन विंग
कैबिनेट बैठकों का एजेंडा, कार्यवृत्त एवं निर्णय	सामरिक एवं आसूचना समन्वय (R&AW आदि)	प्रशासनिक सुधार, अंतर-मंत्रालयी विवाद एवं प्रगति निगरानी

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास

अ. **वायसराय की कार्यकारी परिषद का सचिवालय:** स्वतंत्रता पूर्व 1946 तक इसे गवर्नर-जनरल की कार्यकारी परिषद का सचिवालय कहा जाता था।

ब. **स्वतंत्रता पश्चात पुनर्गठन:** 1947 में इसका नाम बदलकर 'कैबिनेट सचिवालय' कर दिया गया। इसके प्रशासनिक कार्यों को अधिक गति देने के लिए एन. गोपालस्वामी आयंगर समिति (1949) ने कैबिनेट सचिवालय की स्थिति को सुदृढ़ करने और इसे मंत्रालयों के मध्य सर्वोच्च समन्वयकारी निकाय बनाने की सिफारिश की।

कैबिनेट सचिवालय के तीन प्रमुख प्रभाग (विंग्स)

अ. **सिविल विंग (Civil Wing):** यह कैबिनेट का मुख्य आधार है। यह केंद्रीय मंत्रिमंडल, CCPA, CCEA आदि की बैठकों के लिए कार्यसूची (Agenda) तैयार करता है, मंत्रियों को आवश्यक दस्तावेज परिचालित करता है, बैठकों का आधिकारिक कार्यवृत्त (Minutes) लिखता है, और निर्णयों के क्रियान्वयन की निगरानी करता है।

ब. **सुरक्षा विंग (Security Wing):** यह राष्ट्रीय सुरक्षा और सामरिक मामलों से जुड़े प्रशासनिक पहलुओं का समन्वय करता है। देश की बाह्य गुप्तचर संस्था **'रिसर्च एंड एनालिसिस विंग' (R&AW)** प्रशासनिक रूप से कैबिनेट सचिवालय के अधीन ही कार्य करती है।

स. **समन्वय विंग (Coordination Wing):** यह विभिन्न मंत्रालयों के बीच उत्पन्न होने वाले विधिक व प्रशासनिक मतभेदों को सुलझाता है तथा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच सूचनाओं के सुगम प्रवाह को प्रबंधित करता है।

कैबिनेट सचिव की प्रशासनिक भूमिका, अधिकार एवं मर्यादा

कैबिनेट सचिव (Cabinet Secretary) भारत का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी और सिविल सेवाओं का शीर्ष प्रमुख होता है। भारतीय प्रशासनिक तंत्र में यह किसी आईएएस (IAS) अधिकारी के लिए प्राप्त किया जा सकने वाला सर्वोच्च पद है।

wincompete

वरीयता अनुक्रम में स्थिति एवं कार्यकाल

अ. **वरीयता अनुक्रम (Table of Precedence):** आधिकारिक वरीयता सूची में कैबिनेट सचिव को **11वां स्थान** प्राप्त है। वह देश के सभी अन्य सचिवों, राज्य सरकारों के मुख्य सचिवों और तीनों सेनाओं के उप-प्रमुखों से वरिष्ठ होता है।

ब. **कार्यकाल एवं सेवा विस्तार:** अखिल भारतीय सेवा (संशोधन) नियमों के अनुसार कैबिनेट सचिव का सामान्य कार्यकाल 2 वर्ष का होता है, किंतु जनहित में केंद्र सरकार द्वारा इसे समय-समय पर एक-एक वर्ष करके सेवा विस्तार (Extension) दिया जा सकता है, जो अधिकतम 4 वर्ष तक विस्तारित हो सकता है।

कैबिनेट सचिव के प्रमुख प्रशासनिक कार्य

अ. **कैबिनेट का मुख्य परामर्शदाता:** वह मंत्रिमंडल और उसकी समितियों की बैठकों में उपस्थित रहता है। वह मंत्रियों को विधि, नियमों, पूर्व परंपराओं और प्रशासनिक जटिलताओं के संबंध में निष्पक्ष विधिक व प्रशासनिक सलाह देता है।

ब. **सिविल सेवा का संरक्षक एवं नेता:** वह देश के संपूर्ण नौकरशाही तंत्र का नैतिक और प्रशासनिक प्रमुख होता है। प्रत्येक वर्ष आयोजित होने वाले राज्यों के 'मुख्य सचिवों के सम्मेलन' (Chief Secretaries' Conference) की अध्यक्षता कैबिनेट सचिव ही करता है, जिससे केंद्र और राज्यों के प्रशासनिक तंत्र में समन्वय बना रहे।

स. **राष्ट्रीय संकट प्रबंधन समिति (NCMC) का अध्यक्ष:** किसी भी गंभीर राष्ट्रीय आपदा (जैसे चक्रवात, भूकंप, महामारी अथवा सुरक्षा संकट) के समय राहत और बचाव कार्यों का सर्वोच्च संचालन करने वाली 'राष्ट्रीय संकट प्रबंधन समिति' का पदेन अध्यक्ष कैबिनेट सचिव होता है।

द. **वरिष्ठ चयन बोर्ड (Senior Selection Board) का अध्यक्ष:** केंद्रीय मंत्रालयों में संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर पर अधिकारियों की पदस्थापना हेतु संस्तुति करने वाले बोर्ड का नेतृत्व कैबिनेट सचिव करता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय (PMO) बनाम कैबिनेट सचिवालय: प्रशासनिक संतुलन

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के शीर्ष पर दो अत्यंत शक्तिशाली संस्थाएं कार्यरत हैं। दोनों के कार्यक्षेत्र और भूमिकाओं में स्पष्ट अंतर है:

तुलनात्मक आयाम	**कैबिनेट सचिवालय (Cabinet Secretariat)**	**प्रधानमंत्री कार्यालय (PMO)**
संस्थागत स्वरूप	संपूर्ण केंद्रीय मंत्रिमंडल और मंत्रिपरिषद का संस्थागत सचिवालय।	विशेष रूप से प्रधानमंत्री को व्यक्तिगत एवं प्रत्यक्ष सहायता देने वाला कार्यालय।
प्रशासनिक प्रमुख	**कैबिनेट सचिव** (वरिष्ठतम सिविल सेवक)।	**प्रधान सचिव** (Principal Secretary to PM)।

wincompete

मूल कार्यक्षेत्र	अंतर-मंत्रालयी समन्वय, कैबिनेट बैठकों का संचालन, कार्य आबंटन नियमों का अनुपालन।	प्रधानमंत्री को नीतिगत सलाह, राजनीतिक प्राथमिकताओं का क्रियान्वयन, जनता की शिकायतें।
प्रभाव की प्रकृति	औपचारिक, संस्थागत, विधिक एवं नियम-आधारित।	तात्कालिक, रणनीतिक, अत्यधिक प्रभावशाली और राजनीतिक-प्रशासनिक।

पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख अवधारणाएं

अ. **सुपर कैबिनेट (Super Cabinet):** राजनीतिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (CCPA) के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द, जो यह दर्शाता है कि इसके सदस्य देश के चार सर्वाधिक शक्तिशाली मंत्रालयों के प्रमुख होते हैं और इसके निर्णय सीधे देश की संपूर्ण दिशा तय करते हैं।

ब. **कार्य आबंटन नियम (Allocation of Business Rules):** अनुच्छेद 77(3) के तहत राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित वे अधिकृत प्रशासनिक नियम, जो यह निर्धारित करते हैं कि किस मंत्रालय को कौन से कार्य, कानून और विभाग सौंपे गए हैं।

स. **विशेष आमंत्रित (Special Invitee):** वह मंत्री या अधिकारी जो किसी मंत्रिमंडलीय समिति का नियमित सदस्य नहीं होता, किंतु किसी विशिष्ट विषय पर तकनीकी या प्रशासनिक जानकारी देने हेतु बैठक में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है; उसे मतदान या निर्णय का अधिकार नहीं होता।

द. **कार्यवाही का कार्यवृत्त (Minutes of the Proceedings):** कैबिनेट सचिवालय द्वारा अत्यंत गोपनीय ढंग से दर्ज किया जाने वाला वह आधिकारिक लिखित दस्तावेज, जिसमें कैबिनेट अथवा समितियों की बैठकों में लिए गए नीतिगत निर्णयों को संहिताबद्ध किया जाता है।

य. **अंतर-मंत्रालयी गतिरोध (Inter-Ministerial Impasse):** वह प्रशासनिक स्थिति जहां दो या दो से अधिक मंत्रालय किसी नीति, परियोजना या कानून के प्रारूप पर एक-दूसरे से असहमत होते हैं। इसका समाधान कैबिनेट सचिव के समन्वय अथवा संबंधित मंत्रिमंडलीय समिति के माध्यम से किया जाता है।

र. **अधिकार प्राप्त समूह (Empowered Group):** मंत्रियों का वह तदर्थ समूह जिसे कैबिनेट द्वारा अपने स्तर पर नीतिगत निर्णय को अंतिम रूप से लागू करने की पूर्ण शक्ति प्रत्यायोजित (Delegate) की गई हो।

wincompete

अध्याय 7: संसद की संरचना: राज्यसभा, लोकसभा, सीटों का आवंटन एवं 84वां व 104वां संविधान संशोधन

भारतीय संसद का संवैधानिक दर्शन, विन्यास एवं द्विसदनीय पद्धति

भारतीय संविधान के भाग पांच के अध्याय दो के अंतर्गत अनुच्छेद 79 से 122 तक संसद के गठन, संरचना, अवधियों, अधिकारियों, कार्य-प्रक्रिया तथा विशेषाधिकारों का विस्तृत विमर्श संहिताबद्ध किया गया है। भारत ने वेस्टमिंस्टर मॉडल के अनुरूप लोकतांत्रिक संसदीय शासन प्रणाली को अंगीकार किया है, जिसमें विधायिका और कार्यपालिका के मध्य घनिष्ठ अंतर्संबंध पाया जाता है।

अनुच्छेद 79 एवं संसद के तीन अभिन्न अंग

अ. **संवैधानिक परिभाषा:** अनुच्छेद 79 के अनुसार, संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों—राज्यसभा (राज्यों की परिषद) एवं लोकसभा (जनता का सदन)—से मिलकर बनेगी।

ब. **राष्ट्रपति की अभिन्न स्थिति:** यद्यपि राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता और न ही वह नियमित विधायी बैठकों में भाग लेता है, तथापि वह संसद का अपरिहार्य एवं अभिन्न अंग है। इसके मूल संवैधानिक कारण निम्नलिखित हैं:

- संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक तब तक अधिनियम का रूप धारण नहीं कर सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति की औपचारिक स्वीकृति (अनुच्छेद 111) प्राप्त न हो जाए।
- राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को आहूत करने, सत्रावसान करने तथा लोकसभा को विघटित करने की शक्ति (अनुच्छेद 85) रखता है।
- संसद के विश्रांतिकाल में जब कोई सदन सत्र में न हो, तब आपात विधायी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राष्ट्रपति को अध्यादेश प्रख्यापित करने का अधिकार (अनुच्छेद 123) प्राप्त है।

द्विसदनीय व्यवस्था की ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि

अ. **मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार एवं 1919 का अधिनियम:** भारत में केंद्रीय स्तर पर द्विसदनीय व्यवस्था का ऐतिहासिक बीजारोपण भारत सरकार अधिनियम, 1919 के माध्यम से हुआ, जिसमें 'काउंसिल ऑफ स्टेट्स' (उच्च सदन) और 'सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली' (निम्न सदन) की स्थापना की गई थी।

ब. **भारत शासन अधिनियम, 1935:** इस अधिनियम ने प्रांतीय स्वायत्तता के साथ-साथ प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ के लिए द्विसदनीय व्यवस्था को अधिक विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया।

स. **संविधान सभा का विमर्श:** संविधान सभा में उच्च सदन की उपादेयता पर गहन विचार-विमर्श हुआ। मोहम्मद ताहिर जैसे कतिपय सदस्यों ने इसे 'अनावश्यक' और 'प्रगति में बाधक' माना, किंतु एन. गोपालस्वामी आयंगर और डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे विचारकों ने स्पष्ट किया कि द्वितीय सदन जल्दबाजी में पारित किए गए विधायी आवेगों को नियंत्रित करने, प्रबुद्ध विमर्श को अवसर देने तथा संघ के घटकों (राज्यों) के हितों का संरक्षण करने हेतु नितांत आवश्यक है।

राज्यसभा की संरचना: राज्यों का प्रतिनिधित्व एवं मनोनयन व्यवस्था (अनुच्छेद 80)

राज्यसभा भारतीय संघ की संघीय संरचना का प्रतीक है। यह राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाला द्वितीय अथवा उच्च सदन है।

सीटों की संवैधानिक सीमा एवं वर्तमान आवंटन

अ. **अधिकतम सदस्य संख्या:** अनुच्छेद 80 के अनुसार, राज्यसभा की अधिकतम निर्धारित सदस्य संख्या 250 हो सकती है।

- राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों के निर्वाचित प्रतिनिधि: 238
- राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित (मनोनीत) सदस्य: 12

ब. **वास्तविक (वर्तमान) सदस्य संख्या:** वर्तमान में राज्यसभा की कुल सदस्य संख्या 245 है, जिसका विभाजन निम्न प्रकार है:

- राज्यों के प्रतिनिधि: 225
- संघ राज्य क्षेत्रों (दिल्ली, पुडुचेरी, जम्मू एवं कश्मीर) के प्रतिनिधि: 08
- राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य: 12

विशिष्ट क्षेत्रों से मनोनयन का आधार (अनुच्छेद 80(3))

राष्ट्रपति साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव रखने वाले 12 व्यक्तियों को राज्यसभा के सदस्य के रूप में नामनिर्देशित करता है।

अ. **उद्देश्य:** प्रख्यात विचारकों, वैज्ञानिकों और विद्वानों को बिना प्रत्यक्ष चुनावी प्रक्रिया के दलीय राजनीति से ऊपर उठकर राष्ट्र निर्माण हेतु अपनी सेवाएं देने का अवसर प्रदान करना।

ब. **शर्तें:** संविधान की दसवीं अनुसूची (दलबदल विरोधी कानून) के अनुसार, यदि कोई मनोनीत सदस्य अपना पद ग्रहण करने के छह माह के भीतर किसी राजनीतिक दल में शामिल होता है, तो वह अयोग्य नहीं होगा; किंतु यदि वह छह माह की समाप्ति के उपरांत किसी दल की सदस्यता ग्रहण करता है, तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जाएगी।

राज्यों के प्रतिनिधियों की निर्वाचन पद्धति (अनुच्छेद 80(4))

अ. **निर्वाचक मंडल:** राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव संबंधित राज्यों की विधानसभाओं के केवल **निर्वाचित सदस्यों** (MLAs) द्वारा किया जाता है। राज्य विधान परिषद के सदस्य इस चुनाव में भाग नहीं लेते।

ब. **निर्वाचन प्रणाली:** यह निर्वाचन **आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote - STV)** द्वारा संपन्न होता है।

स. **खुला मतदान (Open Ballot System):** लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 2003 द्वारा राज्यसभा चुनावों में गुप्त मतदान की व्यवस्था को समाप्त कर 'खुला मतदान' लागू किया गया। इसके तहत प्रत्येक विधायक को अपना मतपत्र मतपेटी में डालने से पूर्व अपनी राजनीतिक पार्टी के अधिकृत एजेंट को दिखाना अनिवार्य होता है, जिससे क्रास-वोटिंग और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाया जा सके।

द. **अधिवास (Domicile) की अनिवार्यता की समाप्ति:** वर्ष 2003 के संशोधन से पूर्व प्रत्याशी के लिए उसी राज्य का पंजीकृत मतदाता होना अनिवार्य था जहां से वह चुनाव लड़ रहा था। 2003 के संशोधन द्वारा यह

wincompete

बाध्यता समाप्त कर दी गई; अब भारत का कोई भी नागरिक देश के किसी भी राज्य से राज्यसभा का चुनाव लड़ सकता है।

य. **कुलदीप नायर बनाम भारत संघ (2006):** सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 2003 के संशोधनों (खुला मतदान और अधिवास की समाप्ति) को पूर्णतः वैध ठहराते हुए निर्णय दिया कि संघवाद का स्वरूप संसद द्वारा विधि निर्माण से तय होता है और खुला मतदान चुनाव प्रक्रिया में शुद्धता सुनिश्चित करने का एक वैध साधन है।

संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व (अनुच्छेद 80(5))

संसद विधि द्वारा यह निर्धारित करती है कि संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि किस प्रकार चुने जाएंगे। वर्तमान में केवल उन्हीं संघ राज्य क्षेत्रों को राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है जहां विधानसभाएं गठित हैं:

- राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली: 3 सीटें
- पुडुचेरी: 1 सीट
- जम्मू एवं कश्मीर: 4 सीटें

(अन्य संघ राज्य क्षेत्रों की जनसंख्या कम होने तथा अपनी विधानसभा न होने के कारण उन्हें राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है)।

लोकसभा की संरचना: प्रत्यक्ष निर्वाचन एवं प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र (अनुच्छेद 81)

लोकसभा भारत की संपूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रथम अथवा निम्न सदन है। इसे लोकप्रिय सदन भी कहा जाता है क्योंकि इसके सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं।

सीटों की अधिकतम सीमा एवं वास्तविक स्थिति

मूल संविधान और परवर्ती संशोधनों के पश्चात लोकसभा की संरचना में निरंतर परिवर्तन हुए हैं:

अ. **अधिकतम अनुज्ञेय संख्या:** 104वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2019 से पूर्व लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो सकती थी (530 राज्यों से + 20 संघ राज्य क्षेत्रों से + 2 आंग्ल-भारतीय मनोनीत)।

ब. **104वें संविधान संशोधन के पश्चात स्थिति:** आंग्ल-भारतीय समुदाय के मनोनयन के प्रावधान को समाप्त किए जाने के उपरांत अब लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या **550** निर्धारित है:

- राज्यों से अधिकतम प्रतिनिधि: 530
- संघ राज्य क्षेत्रों से अधिकतम प्रतिनिधि: 20

स. **वर्तमान वास्तविक सदस्य संख्या:** वर्तमान में लोकसभा की कुल निर्वाचित सदस्य संख्या **543** है:

- राज्यों से निर्वाचित सदस्य: 524
- संघ राज्य क्षेत्रों से निर्वाचित सदस्य: 19

wincompete

प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण एवं समरूपता का सिद्धांत (अनुच्छेद 81(2))

संविधान ने लोकसभा में सीटों के आवंटन हेतु दो स्तरों पर जनसंख्या संबंधी समरूपता (Uniformity) का सिद्धांत लागू किया है:

अ. **राज्यों के मध्य समरूपता:** प्रत्येक राज्य को लोकसभा में स्थानों का आवंटन ऐसी रीति से किया जाएगा कि स्थानों की संख्या से उस राज्य की जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के लिए यथासाध्य एक ही हो।

- **अपवाद (अनुच्छेद 81(2) का परंतुक):** यह उपबंध उन राज्यों पर लागू नहीं होता जिनकी कुल जनसंख्या साठ लाख (60 लाख) से कम है (जैसे सिक्किम, मिजोरम, नागालैंड आदि)।

ब. **राज्य के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों के मध्य समरूपता:** प्रत्येक राज्य को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में ऐसी रीति से विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का उसको आवंटित स्थानों की संख्या से अनुपात समस्त राज्य में यथासाध्य एक ही हो।

प्रत्यक्ष निर्वाचन एवं मताधिकार (अनुच्छेद 326)

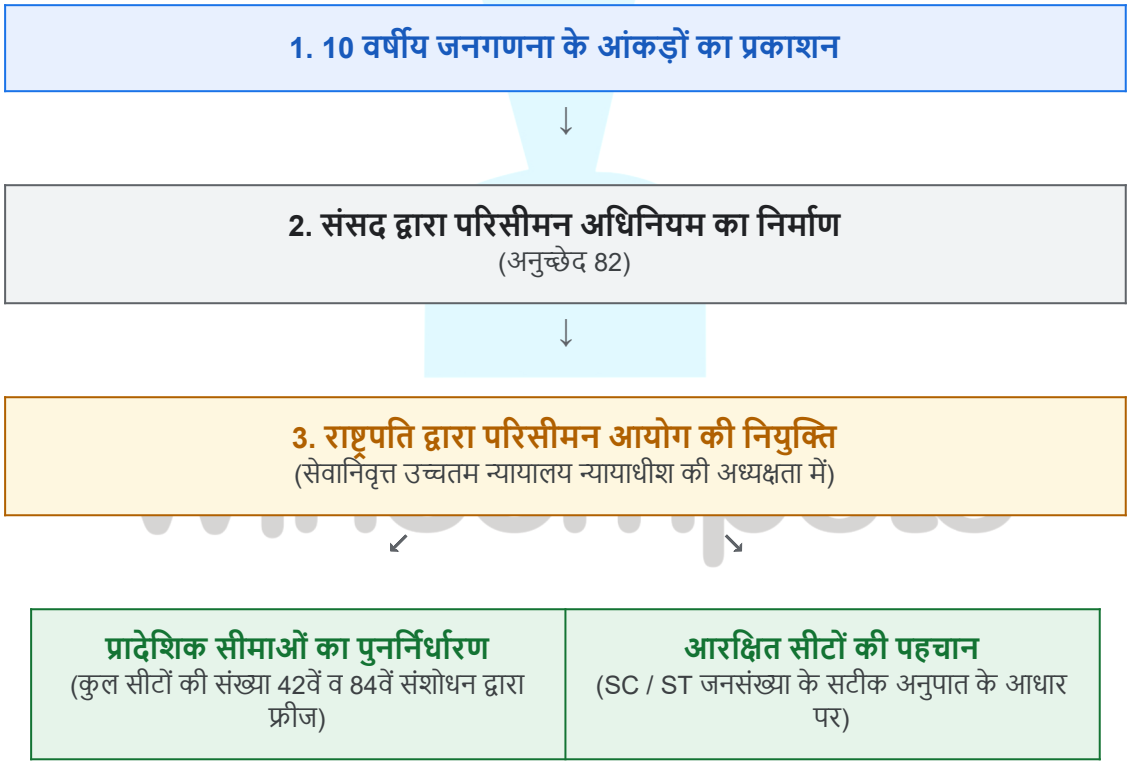
लोकसभा के सदस्यों का चुनाव प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से वयस्क मताधिकार के आधार पर **साधारण बहुमत प्रणाली (First-Past-The-Post System)** द्वारा होता है।

- **मूल संवैधानिक आयु:** 26 जनवरी 1950 को मताधिकार की न्यूनतम आयु 21 वर्ष निर्धारित की गई थी।

- **61वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1988:** इस संशोधन द्वारा अनुच्छेद 326 में संशोधन कर मताधिकार की आयु 21 वर्ष से घटाकर **18 वर्ष** कर दी गई, जो 28 मार्च 1989 से प्रभावी हुई।

सीटों का समायोजन, परिसीमन एवं जनसंख्या स्थिरीकरण की संवैधानिक यात्रा

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनावों के लिए प्रत्येक जनगणना के पश्चात निर्वाचन क्षेत्रों का पुनः समायोजन आवश्यक होता है ताकि प्रत्येक नागरिक के मत का मूल्य समान रहे।



अनुच्छेद 82: प्रत्येक जनगणना के पश्चात पुनः समायोजन

प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर संसद द्वारा निर्मित विधि के प्राधिकार के अनुसार लोकसभा में राज्यों के स्थानों के आवंटन और प्रत्येक राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के विभाजन का पुनः समायोजन किया जाएगा। इसके क्रियान्वयन हेतु संसद प्रत्येक बार **परिसीमन आयोग अधिनियम (Delimitation Commission Act)** पारित करती है। अब तक चार बार परिसीमन आयोगों का गठन किया गया है:

- प्रथम परिसीमन आयोग: 1952
- द्वितीय परिसीमन आयोग: 1962
- तृतीय परिसीमन आयोग: 1972
- चतुर्थ परिसीमन आयोग: 2002 (न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह की अध्यक्षता में)

परिसीमन आयोग की विधिक प्रकृति एवं शक्तियां

अ. **उच्चाधिकार प्राप्त अर्धन्यायिक निकाय:** परिसीमन आयोग की अध्यक्षता सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश द्वारा की जाती है। इसमें मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा संबंधित राज्यों के राज्य निर्वाचन आयुक्त पदेन सदस्य होते हैं।

ब. **न्यायालयी समीक्षा पर पूर्ण प्रतिबंध:** संविधान के **अनुच्छेद 329(क)** के अनुसार, परिसीमन आयोग द्वारा बनाए गए आदेशों को, जब वे भारत के राजपत्र में प्रकाशित हो जाते हैं, किसी भी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता। इन आदेशों को संसद या राज्य विधानमंडलों द्वारा भी संशोधित नहीं किया जा सकता।

84वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 एवं 87वां संशोधन: विधिक विश्लेषण

स्वतंत्रता के उपरांत जिन राज्यों (विशेषकर दक्षिण भारतीय राज्यों) ने परिवार नियोजन और जनसंख्या नियंत्रण को प्रभावी ढंग से लागू किया, उन्हें यह आशंका थी कि उनकी जनसंख्या वृद्धि दर कम होने के कारण लोकसभा में उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व घट जाएगा और उत्तरी राज्यों की सीटें बढ़ जाएंगी।

सीटों का ऐतिहासिक फ्रीज (स्थिरीकरण)

अ. **42वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976:** इसके द्वारा अनुच्छेद 81 और 82 में संशोधन कर लोकसभा की कुल सीटों की संख्या तथा राज्यों को आवंटित सीटों को वर्ष 1971 की जनगणना के आधार पर वर्ष **2000** तक के लिए स्थिर (Freeze) कर दिया गया।

ब. **84वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2001:**

- राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए इस संशोधन द्वारा राज्यों को आवंटित लोकसभा सीटों की कुल संख्या (543) तथा राज्यों की विधानसभा सीटों की कुल संख्या को आगामी **25 वर्षों यानी वर्ष 2026 के पश्चात होने वाली पहली जनगणना के सुसंगत आंकड़े प्रकाशित होने तक** पुनः यथावत स्थिर कर दिया गया।
- इसका तकनीकी अर्थ यह है कि वर्ष 2026 के बाद होने वाली जनगणना (संभावित 2031) के अंतिम आंकड़े प्रकाशित होने के उपरांत ही सीटों की कुल संख्या में परिवर्तन संभव होगा।

आंतरिक परिसीमन (Internal Delimitation) की अनुमति

84वें संशोधन ने राज्यों के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं के पुनर्गठन की अनुमति दी, ताकि राज्य के भीतर विभिन्न क्षेत्रों के मध्य जनसंख्या के असंतुलन को दूर किया जा सके।

- 84वें संशोधन ने इसके लिए **1991 की जनगणना** को आधार बनाया था।

www.iccompete

- **87वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003:** इसने 84वें संशोधन में आंशिक सुधार करते हुए राज्य के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्गठन और अनुसूचित जातियों/जनजातियों की सीटों के पुनर्निर्धारण हेतु आधार वर्ष को 1991 से बदलकर **2001 की जनगणना** कर दिया।

- इसके परिणामस्वरूप न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह आयोग (2002-2008) ने कुल सीटों की संख्या में बदलाव किए बिना 2001 की जनगणना के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों की भौगोलिक सीमाओं का पुनर्गठन किया।

104वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2019: ऐतिहासिक सुधार एवं आंकड़े

संविधान का अनुच्छेद 334 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और आंग्ल-भारतीयों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की कालावधि तय करता है। मूल संविधान में यह व्यवस्था केवल 10 वर्षों (1960 तक) के लिए की गई थी, किंतु विभिन्न संविधान संशोधनों (8वें, 23वें, 45वें, 62वें, 79वें और 95वें संशोधन) द्वारा इसे प्रत्येक बार 10-10 वर्षों के लिए बढ़ाया जाता रहा।

104वें संविधान संशोधन के मुख्य विधिक प्रावधान

104वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2019 (126वां संविधान संशोधन विधेयक) 25 जनवरी 2020 से प्रभावी हुआ। इसके द्वारा अनुच्छेद 334 में दो युगांतकारी निर्णय लिए गए:

अ. **अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के आरक्षण का विस्तार:** लोक सभा और राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) के लिए सीटों के आरक्षण की अवधि को 70 वर्ष से बढ़ाकर **80 वर्ष** (अर्थात **25 जनवरी 2030 तक**) कर दिया गया।

ब. **आंग्ल-भारतीय मनोनयन की समाप्ति:** अनुच्छेद 331 (लोकसभा में 2 आंग्ल-भारतीयों का मनोनयन) तथा अनुच्छेद 333 (विधानसभाओं में 1 आंग्ल-भारतीय का मनोनयन) की प्रभावशीलता को 25 जनवरी 2020 के पश्चात आगे नहीं बढ़ाया गया। विधि मंत्रालय के आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार देश में आंग्ल-भारतीय समुदाय की संख्या अत्यंत सीमित हो जाने के कारण इस विशेष प्रावधान को निष्प्रभावी होने दिया गया।

लोकसभा में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की अद्यतन आरक्षित सीटें (अनुच्छेद 330)

संविधान का अनुच्छेद 330 राज्यों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर लोकसभा में सीटें आरक्षित करता है। 2008 के परिसीमन आदेश के पश्चात वर्तमान स्थिति निम्नवत है:

वर्ग	कुल आरक्षित सीटें	संवैधानिक आधार एवं टिप्पणी
अनुसूचित जातियां (SC)	**84**	राज्य की कुल जनसंख्या में SC अनुपात के आधार पर। सर्वाधिक सीटें उत्तर प्रदेश (17) में।

wincompete

अनुसूचित जनजातियां (ST)	**47**	राज्य की कुल जनसंख्या में ST अनुपात के आधार पर। सर्वाधिक सीटें मध्य प्रदेश (06) में।
अनारक्षित (सामान्य) सीटें	**412**	सामान्य वर्ग के प्रत्याशियों हेतु खुली सीटें।
कुल निर्वाचित सीटें	**543**	वर्तमान में लोकसभा की संपूर्ण निर्वाचित सदस्य संख्या।

राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों को सीटों का आवंटन: चतुर्थ अनुसूची एवं सांख्यिकी

संविधान की **चौथी अनुसूची** में राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को राज्यसभा में आवंटित सीटों का ब्योरा दिया गया है। यह आवंटन जनसंख्या के आधार पर किया गया है, किंतु यह पूर्णतः गणितीय नहीं है; छोटे राज्यों को कुछ अधिभार (Weightage) दिया गया है।

प्रमुख राज्यों में लोकसभा एवं राज्यसभा सीटों का तुलनात्मक विवरण

राज्य / संघ राज्य क्षेत्र	लोकसभा में सीटें (अनुच्छेद 81)	राज्यसभा में सीटें (चतुर्थ अनुसूची)	कुल संसदीय प्रतिनिधित्व
उत्तर प्रदेश	**80**	**31**	111
महाराष्ट्र	**48**	**19**	67
पश्चिम बंगाल	**42**	**16**	58
बिहार	**40**	**16**	56
तमिलनाडु	**39**	**18**	57
मध्य प्रदेश	**29**	**11**	40

wincompete

कर्नाटक	**28**	**12**	40
गुजरात	**26**	**11**	37
आंध्र प्रदेश	**25**	**11**	36
राजस्थान	**25**	**10**	35
ओडिशा	**21**	**10**	31
केरल	**20**	**09**	29
तेलंगाना	**17**	**07**	24
असम	**14**	**07**	21
पंजाब	**13**	**07**	20
हरियाणा	**10**	**05**	15
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली	**07**	**03**	10
जम्मू एवं कश्मीर (UT)	**05**	**04**	09
उत्तराखंड	**05**	**03**	08

wincompete

हिमाचल प्रदेश	**04**	**03**	07
पूर्वोत्तर के छोटे राज्य (सिक्किम, मिजोरम, नागालैंड)	**01 प्रत्येक**	**01 प्रत्येक**	02 प्रत्येक
पुडुचेरी (UT)	**01**	**01**	02

सदनों की समयावधि, विघटन एवं निरंतरता (अनुच्छेद 83)

संसद के दोनों सदनों की कार्यावधि का स्वरूप उनकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न है:

राज्यसभा का स्थायी स्वरूप (अनुच्छेद 83(1))

अ. **अविघटनकारी सदन:** राज्यसभा एक स्थायी निकाय है और इसका कभी भी विघटन नहीं होता।

ब. **सदस्यों का कार्यकाल:** संविधान के मूल पाठ में राज्यसभा सदस्यों का कार्यकाल स्पष्ट रूप से 6 वर्ष नहीं लिखा गया था। अनुच्छेद 83(1) ने संसद को यह अधिकार दिया कि वह विधि द्वारा इसे निर्धारित करे। संसद ने **लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951** की धारा 154 के तहत सदस्यों का कार्यकाल **6 वर्ष** निर्धारित किया।

स. **चक्रीय निवृत्ति (Rotational Retirement):** राज्यसभा के यथासंभव **एक-तिहाई (1/3) सदस्य प्रत्येक दो वर्ष की समाप्ति पर** सेवानिवृत्त हो जाते हैं, और उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित होकर आते हैं।

- **ऐतिहासिक व्यवस्था (1952):** 1952 में गठित प्रथम राज्यसभा में दो वर्ष तथा चार वर्ष पश्चात सेवानिवृत्त होने वाले सदस्यों का निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा लाटरी (ड्रा) निकालकर किया गया था।

लोकसभा का कार्यकाल एवं विस्तार (अनुच्छेद 83(2))

अ. **सामान्य अवधि:** लोकसभा का कार्यकाल अपनी प्रथम बैठक की नियत तारीख से **पांच वर्ष** का होता है। पांच वर्ष की अवधि समाप्त होते ही सदन स्वतः विघटित हो जाता है।

ब. **समय पूर्व विघटन:** प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति पांच वर्ष की अवधि पूरी होने से पूर्व भी किसी भी समय लोकसभा को विघटित कर सकता है।

स. **आपातकाल में कार्यकाल का विस्तार:** जब राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352) प्रवृत्त हो, तब संसद विधि बनाकर लोकसभा के कार्यकाल को एक बार में **एक वर्ष** के लिए बढ़ा सकती है।

- इसे कितनी भी बार बढ़ाया जा सकता है, किंतु आपातकाल की उद्घोषणा समाप्त हो जाने के पश्चात इसका विस्तार किसी भी दशा में **छह माह** से अधिक नहीं होगा।
- **ऐतिहासिक दृष्टांत:** पांचवीं लोकसभा (1971-1977) का कार्यकाल आपातकाल के दौरान दो बार एक-एक वर्ष के लिए बढ़ाया गया था।

wincompete

संसद सदस्यों की अर्हताएं एवं निरर्हताएं (अनुच्छेद 84 एवं 102)

संविधान के अंतर्गत संसद का सदस्य बनने हेतु कतिपय सकारात्मक योग्यताएं तथा कतिपय नकारात्मक निर्योग्यताएं निर्धारित की गई हैं।

संवैधानिक अर्हताएं (अनुच्छेद 84)

अ. वह भारत का नागरिक हो।

ब. वह निर्वाचन आयोग द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष तीसरी अनुसूची में दिए गए प्रारूप के अनुसार शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है।

स. **आयु संबंधी सीमाएं:**

- राज्यसभा के लिए: न्यूनतम **30 वर्ष** की आयु पूर्ण कर चुका हो।लोकसभा के लिए: न्यूनतम **25 वर्ष** की आयु पूर्ण कर चुका हो।

द. उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएं हों जो संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा विहित की जाएं (जैसे लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की शर्तें)।

संवैधानिक निरर्हताएं (अनुच्छेद 102(1))

कोई व्यक्ति संसद के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य रहने के लिए निरर्हित होगा यदि वह:

अ. भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई **लाभ का पद (Office of Profit)** धारण करता है (संसद द्वारा विधि द्वारा छूट प्राप्त पदों को छोड़कर)।

ब. सक्षम न्यायालय द्वारा **विकृतचित्त (Unsound Mind)** घोषित कर दिया गया हो।

स. **अनुन्मोचित दिवालिया (Undischarged Insolvent)** हो।

द. भारत का नागरिक न रह गया हो, या उसने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता अर्जित कर ली हो, या विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा स्वीकार कर ली हो।

य. संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि (जैसे लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951) द्वारा निरर्हित कर दिया गया हो (जैसे दो वर्ष या अधिक का कारावास, भ्रष्ट चुनावी आचरण आदि)।

दलबदल के आधार पर निरर्हता (अनुच्छेद 102(2) एवं 10वीं अनुसूची)

52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा दसवीं अनुसूची जोड़ी गई। इसके अंतर्गत सदस्य अयोग्य हो जाता है यदि:

- वह स्वेच्छा से अपने राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है।
- वह अपने दल के व्हिप (सचेतक) के विरुद्ध सदन में मतदान करता है या मतदान से अनुपस्थित रहता है और पंद्रह दिन के भीतर दल से माफी नहीं मिलती।
- कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
- कोई मनोनीत सदस्य छह माह की समाप्ति के बाद किसी दल में शामिल होता है।

wincompete

निरर्हता संबंधी विवादों का विधिक निपटारा: दो पृथक तंत्र

निरर्हता का आधार	निर्णयकर्ता प्राधिकारी	विधिक प्रक्रिया एवं बाध्यता	न्यायिक स्थिति
अनुच्छेद 102(1) के तहत (लाभ का पद, दिवालियापन, नागरिकता आदि)	**भारत का राष्ट्रपति**	राष्ट्रपति **भारत के निर्वाचन आयोग (ECI)** की राय लेगा और ऐसी राय के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होगा (अनुच्छेद 103)।	यह निर्णय न्यायिक समीक्षा के अधीन है।
अनुच्छेद 102(2) के तहत (दसवीं अनुसूची - दलबदल के आधार पर)	**सदन का पीठासीन अधिकारी** (लोकसभा अध्यक्ष अथवा राज्यसभा का सभापति)	पीठासीन अधिकारी अर्धन्यायिक क्षमता में स्वयं निर्णय करता है।	**किहोटो होलोहन बनाम जाचिल्हू (1992):** पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम नहीं है; यह दुर्भावना या नैसर्गिक न्याय के उल्लंघन के आधार पर न्यायिक समीक्षा के अधीन है।

स्थानों की रिक्ति एवं दोहरी सदस्यता पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 101)

संसद के सदनों में एक साथ दो पदों को धारण करने पर संविधान कठोर निर्बंधन लगाता है:

अ. **दोनों सदनों की सदस्यता:** लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 68 के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों के लिए निर्वाचित हो जाता है, तो उसे 10 दिन के भीतर सूचित करना होगा कि वह किस सदन में सेवा करना चाहता है। चूक की स्थिति में उसकी **राज्यसभा की सीट स्वतः रिक्त** हो जाती है।

ब. **एक ही सदन में दो सीटें:** यदि कोई व्यक्ति एक ही सदन में दो सीटों से चुना जाता है और वह निश्चित समय में किसी एक का चयन नहीं करता, तो उसकी **दोनों सीटें रिक्त** हो जाती हैं।

स. **संसद एवं राज्य विधानमंडल की सदस्यता (अनुच्छेद 101(2)):** यदि कोई व्यक्ति संसद और किसी राज्य विधानमंडल दोनों के लिए चुन लिया जाता है, तो उसे **14 दिन** के भीतर राज्य विधानमंडल की सीट से त्यागपत्र देना होगा; अन्यथा संसद में उसका स्थान स्वतः रिक्त हो जाएगा।

द. **त्यागपत्र (अनुच्छेद 101(3)(ख)):** सदस्य लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा सभापति को त्यागपत्र दे सकता है। 33वें संविधान संशोधन 1974 द्वारा यह व्यवस्था की गई कि पीठासीन अधिकारी त्यागपत्र को अस्वीकार कर सकता है यदि उसे जांच के पश्चात यह समाधान हो जाए कि त्यागपत्र ऐच्छिक या वास्तविक नहीं है (बल्कि दबाव में दिया गया है)।

य. **सदन से निरंतर अनुपस्थिति (अनुच्छेद 101(4)):** यदि संसद का कोई सदस्य सदन की अनुमति के बिना निरंतर **60 दिन** की अवधि तक उसकी सभी बैठकों से अनुपस्थित रहता है, तो सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है। (इस 60 दिन की गणना में सदन के सत्रावसान या लगातार चार से अधिक दिनों के स्थगन की अवधि को नहीं जोड़ा जाता)।

लोकसभा एवं राज्यसभा की शक्तियों का संरचनात्मक एवं कार्यात्मक विभेद

यद्यपि दोनों सदन मिलकर संसद का निर्माण करते हैं, किंतु संविधान ने शक्तियों के वितरण में लोकसभा को लोकतांत्रिक अधिमान्यता तथा राज्यसभा को कतिपय विशिष्ट संघीय विशेषाधिकार प्रदान किए हैं।

तुलनात्मक विश्लेषण तालिका

विषय / क्षेत्र	लोकसभा की संवैधानिक स्थिति	राज्यसभा की संवैधानिक स्थिति
वित्तीय मामले (धन विधेयक - अनुच्छेद 109)	धन विधेयक केवल लोकसभा में पुरःस्थापित हो सकता है। लोकसभा अध्यक्ष प्रमाणित करता है।	राज्यसभा इसे केवल 14 दिन तक रोक सकती है; कोई संशोधन या अस्वीकृति बाध्यकारी नहीं।
कार्यपालिका पर नियंत्रण (अनुच्छेद 75(3))	मंत्रिपरिषद केवल लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। अविश्वास प्रस्ताव केवल यहीं आ सकता है।	राज्यसभा सरकार पर प्रश्न पूछकर नियंत्रण रख सकती है, किंतु अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला सकती।
वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट - अनुच्छेद 113)	अनुदानों की मांगों (Demands for Grants) पर मतदान करने की अनन्य शक्ति केवल लोकसभा को है।	राज्यसभा बजट पर सामान्य चर्चा कर सकती है, किंतु अनुदान मांगों पर मतदान नहीं कर सकती।
साधारण विधेयक एवं गतिरोध (अनुच्छेद 108)	गतिरोध की स्थिति में संयुक्त बैठक में अपनी विशाल सदस्य संख्या (543) के कारण प्रभावी।	संयुक्त बैठक में अल्प सदस्य संख्या (245) के कारण इसकी स्थिति अपेक्षाकृत दुर्बल हो जाती है।
राज्य सूची पर राष्ट्रीय हित में विधि निर्माण	सामान्य परिस्थितियों में यह पहल लोकसभा स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकती।	**अनुच्छेद 249:** राज्यसभा उपस्थित और मतदान करने वाले 2/3 सदस्यों के

Wincompete

		बहुमत से राज्य सूची पर विधि बनाने का प्रस्ताव ला सकती है।
नई अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन	इस संबंध में लोकसभा को कोई आरंभिक विशेष अधिकार प्राप्त नहीं है।	**अनुच्छेद 312:** राज्यसभा उपस्थित व मतदान करने वालों के 2/3 बहुमत से नई अखिल भारतीय सेवा (AIS) के सृजन का संकल्प पारित कर सकती है।
उपराष्ट्रपति को पदच्युत करना (अनुच्छेद 67(ख))	लोकसभा केवल राज्यसभा द्वारा पारित संकल्प पर अपनी सहमति (साधारण बहुमत से) देती है।	उपराष्ट्रपति को हटाने का संकल्प केवल और केवल राज्यसभा में ही पुरःस्थापित किया जा सकता है।
आपातकाल का अनुमोदन (सदन विघटन काल में)	यदि लोकसभा विघटित हो, तो आपातकाल का अनुमोदन केवल राज्यसभा द्वारा किया जाना आवश्यक होता है।	**अनुच्छेद 352, 356 एवं 360:** लोकसभा के विघटन की दशा में संघ का निरंतर विधायी संरक्षक बनती है।

संवैधानिक पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख विधिक संकल्पनाएं

अ. **एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote):** आनुपातिक प्रतिनिधित्व की वह निर्वाचन पद्धति जिसमें मतदाता प्रत्याशियों के नाम के आगे अपनी वरीयता (1, 2, 3...) दर्ज करता है। यदि किसी प्रत्याशी को प्रथम वरीयता के आवश्यक मत नहीं मिलते, तो मतपत्रों का अधिशेष अथवा कनिष्ठ प्रत्याशी के मत अन्य वरीयताओं को हस्तांतरित कर दिए जाते हैं।

ब. **साधारण बहुमत प्रणाली (First-Past-The-Post):** निर्वाचन की वह सामान्य प्रणाली जिसमें संपूर्ण वैध मतों का 50 प्रतिशत प्राप्त करना आवश्यक नहीं होता, बल्कि जो प्रत्याशी अन्य सभी प्रत्याशियों से केवल एक मत भी अधिक प्राप्त कर लेता है, उसे विजयी घोषित कर दिया जाता है।

स. **परिसीमन (Delimitation):** देश या राज्य के विधायी क्षेत्रों की सीमाओं को नवीनतम जनगणना के जनसंख्या आंकड़ों के आधार पर समतामूलक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने हेतु वैधानिक रूप से पुनर्निर्धारित करने की प्रक्रिया।

द. **सीटों का स्थिरीकरण (Freezing of Seats):** संविधान संशोधनों द्वारा एक विशिष्ट समयावधि (जैसे 2026 तक) के लिए लोकसभा और विधानसभाओं में राज्यों की कुल सीटों की संख्या को अपरिवर्तनीय कर देना ताकि परिवार नियोजन अपनाने वाले राज्यों का प्रतिनिधित्व कम न हो।

य. **खुला मतदान (Open Ballot):** राज्यसभा चुनावों में दलीय निष्ठा सुनिश्चित करने हेतु अपनाया गया नियम, जिसमें विधायक को अपना मतपत्र डालने से पूर्व अपनी पार्टी के अधिकृत प्रतिनिधि को दिखाना होता है; यह व्यवस्था स्वतंत्र उम्मीदवारों पर लागू नहीं होती।

wincompete

र. **लाभ का पद (Office of Profit):** कार्यपालिका या सरकार के अधीन कोई ऐसा पद जिससे वेतन, भत्ता, पारिश्रमिक अथवा कोई वित्तीय लाभ प्राप्त होता हो और जिसके कारण पदधारक सरकार के प्रभाव में आकर अपने विधायी कर्तव्यों से विमुख हो सकता हो; संविधान का अनुच्छेद 102(1)(क) इसके आधार पर अयोग्यता निर्धारित करता है।

ल. **आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation):** वह निर्वाचन प्रणाली जिसका उद्देश्य विधायिका में प्रत्येक राजनीतिक दल या विचारधारा को समाज में उसके मत-प्रतिशत के अनुपात में सीटें उपलब्ध कराना है; भारत में यह राज्यसभा, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति चुनावों में लागू है।

अध्याय 8: संसद के पदाधिकारी: लोकसभा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा सभापति व उपसभापति

संसद के पीठासीन अधिकारियों की संवैधानिक अवस्थिति एवं संस्थागत विकास

भारतीय संविधान के भाग पांच के अध्याय दो के अंतर्गत अनुच्छेद 89 से 98 तक संसद के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों, उनके सचिवालय और कार्य संचालन के नियमों का विस्तृत विन्यास प्रस्तुत किया गया है। वेस्टमिंस्टर संसदीय प्रणाली में सदनों की संप्रभुता, गरिमा और विशेषाधिकार उनके पीठासीन अधिकारियों में मूर्त रूप लेते हैं।

संस्थागत विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अ. **भारत सरकार अधिनियम 1919 (मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार):** भारत में अध्यक्ष (स्पीकर) और उपाध्यक्ष (डिप्टी स्पीकर) के पदों का प्रादुर्भाव 1921 में 'सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली' के गठन के साथ हुआ। उस समय इन्हें क्रमशः 'प्रेसिडेंट' और 'डिप्टी प्रेसिडेंट' कहा जाता था। 1921 में गवर्नर जनरल द्वारा सर फ्रेडरिक व्हाईट को प्रथम प्रेसिडेंट नियुक्त किया गया, जबकि सच्चिदानंद सिन्हा प्रथम भारतीय डिप्टी प्रेसिडेंट बने।

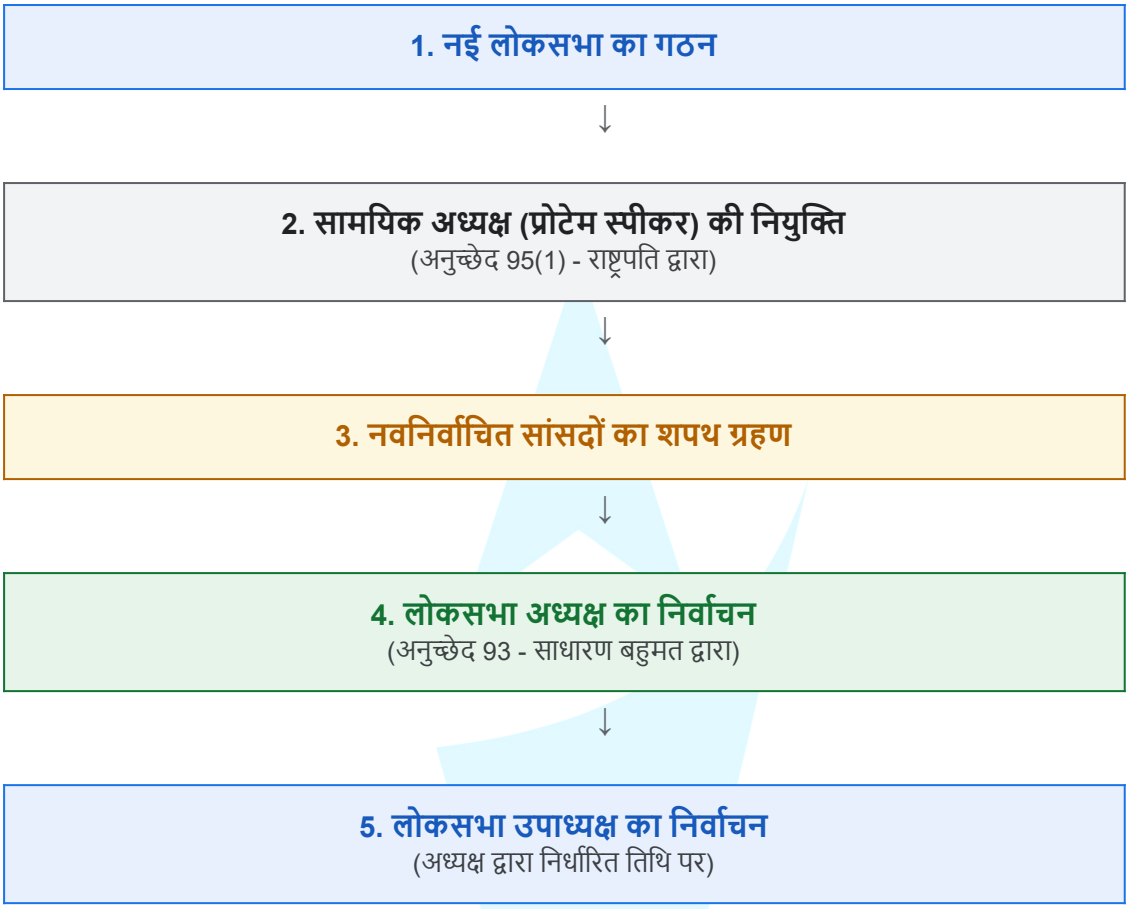
ब. **विट्ठलभाई पटेल का ऐतिहासिक निर्वाचन (1925):** 24 अगस्त 1925 को विट्ठलभाई जे. पटेल सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली के प्रथम निर्वाचित भारतीय प्रेसिडेंट बने। उन्होंने ही पहली बार इस पद की कार्यपालिका से पूर्ण स्वतंत्रता और निष्पक्षता की नींव रखी।

स. **भारत सरकार अधिनियम 1935 एवं स्वतंत्रता उपरांत परिवर्तन:** 1935 के अधिनियम में 'स्पीकर' और 'डिप्टी स्पीकर' शब्दावली को औपचारिक स्वीकृति मिली। 1947 में स्वतंत्रता के पश्चात संविधान सभा (विधायी) के प्रथम स्पीकर गणेश वासुदेव मावलंकर बने, जिन्हें आधुनिक भारतीय संसदीय व्यवस्था में 'लोकसभा का जनक' (फादर ऑफ द लोकसभा) माना जाता है।

wincompete

लोकसभा अध्यक्ष: निर्वाचन, कार्यकाल, त्यागपत्र एवं पदच्युति (अनुच्छेद 93 एवं 94)

संविधान का अनुच्छेद 93 यह प्रावधान करता है कि लोकसभा यथाशीघ्र अपने दो सदस्यों को अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी। जब-जब इनमें से कोई पद रिक्त होता है, लोकसभा किसी अन्य सदस्य को अध्यक्ष या उपाध्यक्ष चुनती है।



निर्वाचन की संवैधानिक प्रक्रिया

अ. **निर्वाचन की तिथि का निर्धारण:** लोकसभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के नियम सात के अनुसार, लोकसभा अध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि भारत का राष्ट्रपति नियत करता है।

ब. **निर्वाचन की पद्धति:** अध्यक्ष का चुनाव लोकसभा में उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के **साधारण बहुमत** से होता है। परंपरा के अनुसार, सत्ताधारी दल का कोई सदस्य अध्यक्ष पद हेतु प्रस्तावित किया जाता है, किंतु निर्वाचित होने के उपरांत वह संपूर्ण सदन का प्रतिनिधि बन जाता है।

स. **शपथ संबंधी विशिष्ट स्थिति:** लोकसभा अध्यक्ष पद के लिए कोई पृथक शपथ नहीं होती है। वह संविधान की तीसरी अनुसूची के तहत केवल एक 'संसद सदस्य' (MP) के रूप में ही शपथ ग्रहण करता है।

पदावधि एवं निरंतरता (अनुच्छेद 94 का दूसरा परंतुक)

अ. **कार्यकाल:** अध्यक्ष सामान्यतः लोकसभा के जीवनकाल (पांच वर्ष) तक पद धारण करता है।

ब. **लोकसभा विघटन के पश्चात भी पद पर बने रहना:** संविधान का अनुच्छेद 94 का द्वितीय परंतुक एक अत्यंत असाधारण व्यवस्था करता है: जब कभी लोकसभा का विघटन होता है, तो अध्यक्ष अपने पद को तुरंत रिक्त नहीं करता। वह विघटन के पश्चात होने वाली नई लोकसभा की प्रथम बैठक के ठीक पहले तक अपने पद पर बना रहता है। यह व्यवस्था विधायी निरंतरता बनाए रखने के लिए की गई है।

पद रिक्ति, त्यागपत्र एवं पदच्युति की कठोर प्रक्रिया

संविधान के अनुच्छेद 94 के अनुसार, अध्यक्ष का पद निम्नलिखित स्थितियों में रिक्त हो सकता है:

अ. **सदन की सदस्यता समाप्त होना:** यदि वह लोकसभा का सदस्य नहीं रहता है।

wincompete

ब. **त्यागपत्र:** वह किसी भी समय **उपाध्यक्ष को संबोधित** अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा त्यागपत्र दे सकता है। (अध्यक्ष राष्ट्रपति को त्यागपत्र नहीं सौंपता)।

स. **पदच्युति (हटाने का संकल्प):** लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत द्वारा पारित संकल्प से उसे पद से हटाया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित अनिवार्य विधिक शर्तें हैं:

- संकल्प प्रस्तुत करने के आशय की कम से कम **14 दिन पूर्व लिखित सूचना** देना अनिवार्य है।
- नियम 200 के अनुसार, संकल्प को सदन में अनुमति दिए जाने हेतु कम से कम **50 सदस्यों का समर्थन** आवश्यक है।
- **बहुमत की प्रकृति:** इसे हटाने के लिए **प्रभावी बहुमत (Effective Majority)** अर्थात 'सदन की उस समय की कुल सदस्य संख्या में से रिक्तियों को घटाकर बचे सदस्यों का बहुमत' आवश्यक होता है।

पदच्युति संकल्प के विचाराधीन रहने के दौरान अध्यक्ष की स्थिति (अनुच्छेद 96)

जब अध्यक्ष को पद से हटाने का संकल्प लोकसभा में विचाराधीन होता है, तो उसकी संवैधानिक स्थिति में व्यापक परिवर्तन आते हैं:

संवैधानिक स्थिति	सामान्य दिनों में	पदच्युति का संकल्प विचाराधीन होने पर (अनुच्छेद 96)
सदन की अध्यक्षता	अध्यक्ष सदन की कार्यवाही का संचालन करता है।	**वह सदन की अध्यक्षता नहीं कर सकता**, यद्यपि वह सदन में उपस्थित रह सकता है।
बोलने और भाग लेने का अधिकार	कार्यवाही का संचालन और व्यवस्था संबंधी निर्देश।	उसे सदन की कार्यवाही में बोलने और भाग लेने का पूर्ण विधिक अधिकार है।
मतदान का अधिकार	केवल मत बराबर होने की दशा में निर्णायक मत (अनुच्छेद 100(1))।	**प्रथम दृष्टया (First Instance) मतदान करने का अधिकार है**, किंतु मत बराबर होने पर निर्णायक मत देने का अधिकार समाप्त हो जाता है।

लोकसभा अध्यक्ष की प्रशासनिक, प्रक्रियात्मक एवं विधायी शक्तियां

लोकसभा अध्यक्ष सदन का मुख्य प्रवक्ता, उसकी सामूहिक गरिमा का संरक्षक और आंतरिक व्यवस्था का सर्वोच्च प्राधिकारी होता है। सदन की चारदीवारी के भीतर उसकी शक्तियां अंतिम और संप्रभु होती हैं।

wincompete

प्रक्रियात्मक एवं व्यवस्था संबंधी शक्तियां

अ. **नियमों का अंतिम निर्वचन:** वह संविधान, लोकसभा के कार्य संचालन नियमों तथा संसदीय परंपराओं का सदन के भीतर अंतिम और निश्चायक व्याख्याकार है। उसके निर्णय के विरुद्ध सदन के भीतर कोई अपील नहीं हो सकती।

ब. **गणपूर्ति (कोरम) का अभाव (अनुच्छेद 100(3)):** सदन की बैठक के लिए न्यूनतम गणपूर्ति कुल सदस्य संख्या का एक-दशांश (1/10) है। कोरम के अभाव में बैठक को स्थगित करना या निलंबित करना अध्यक्ष का दायित्व है।

स. **संसदीय समितियों का सर्वोच्च नियामक:** वह लोकसभा की सभी संसदीय समितियों के सभापतियों की नियुक्ति करता है। नियम समिति, कार्य मंत्रणा समिति (BAC) तथा सामान्य प्रयोजन समिति की अध्यक्षता वह स्वयं करता है। यदि अध्यक्ष किसी समिति का सदस्य बनता है, तो वह पदेन उसका सभापति बन जाता है।

द. **गोपनीय बैठक का आयोजन:** सदन के नेता के अनुरोध पर अध्यक्ष सदन की गुप्त बैठक (Secret Sitting) बुला सकता है, जहां किसी बाहरी व्यक्ति को सदन में प्रवेश की अनुमति नहीं होती।

विधेयकों और प्रक्रियाओं पर नियंत्रण

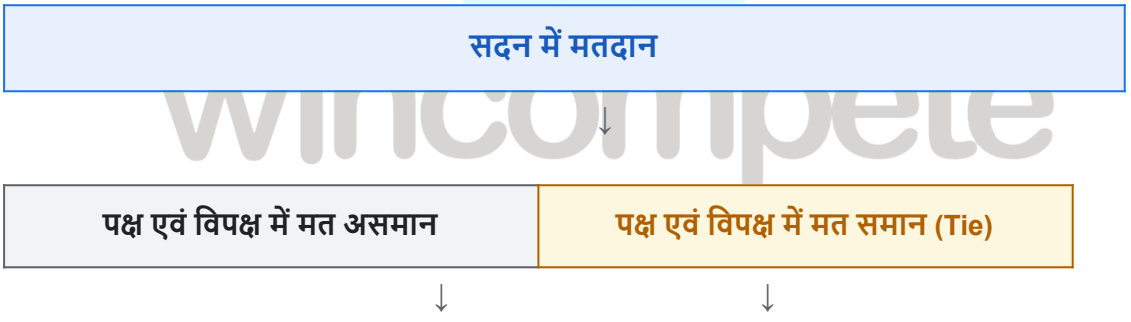
अ. **धन विधेयक का निश्चायक प्रमाणीकरण (अनुच्छेद 110(3)):** किसी विधेयक के धन विधेयक होने या न होने पर कोई संशय उत्पन्न होने पर लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता है। जब कोई धन विधेयक राज्यसभा को प्रेषित किया जाता है और राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति हेतु प्रस्तुत किया जाता है, तो उस पर अध्यक्ष का हस्ताक्षरयुक्त प्रमाण पत्र अनिवार्य होता है।

ब. **संसद की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता (अनुच्छेद 118(4)):** साधारण विधेयक या वित्तीय विधेयक के संबंध में दोनों सदनों के मध्य उत्पन्न गतिरोध को समाप्त करने हेतु जब राष्ट्रपति अनुच्छेद 108 के तहत दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत करता है, तो **उसकी अध्यक्षता अनिवार्यतः लोकसभा अध्यक्ष करता है**। उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, और उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में राज्यसभा का उपसभापति अध्यक्षता करता है (राज्यसभा का सभापति कभी भी संयुक्त बैठक की अध्यक्षता नहीं करता)।

स. **संसदीय शिष्टमंडलों का पदेन अध्यक्ष:** भारत में अन्य देशों के संसदों के साथ संबंधों को संचालित करने वाले भारतीय संसदीय समूह (IPG) का पदेन अध्यक्ष लोकसभा अध्यक्ष ही होता है।

निर्णायक मत की संवैधानिक व्यवस्था: अनुच्छेद 100(1)

संसदीय लोकतंत्र में निष्पक्षता के सिद्धांत को अक्षुण्ण रखने के लिए संविधान का अनुच्छेद 100(1) पीठासीन अधिकारी के मतदान के अधिकार को विशिष्ट सीमा में बांधता है।



wincompete

विधेयक/प्रस्ताव का निर्णय (अध्यक्ष मतदान नहीं करेगा)	अध्यक्ष का निर्णायक मत (Casting Vote - अनुच्छेद 100(1))

निर्णायक मत (Casting Vote) का विधिक स्वरूप

अ. **प्रथम दृष्टया मतदान का निषेध:** अध्यक्ष अपने पद पर रहते हुए किसी भी प्रस्ताव पर प्रथमतः (First Instance) मतदान नहीं करता। इससे उसकी दलीय तटस्थता बनी रहती है।

ब. **समान मत की दशा (Tie):** जब किसी प्रस्ताव या विधेयक पर पक्ष और विपक्ष में डाले गए मतों की संख्या पूर्णतः बराबर हो जाती है, केवल तभी अध्यक्ष अपने निर्णायक मत का प्रयोग करता है।

स. **संसदीय अभीसमय:** ब्रिटिश परंपराओं के आधार पर विकसित सिद्धांत के अनुसार, पीठासीन अधिकारी सामान्यतः अपने निर्णायक मत का प्रयोग इस प्रकार करता है कि विषय पर और अधिक चर्चा हो सके अथवा यथास्थिति (Status Quo) बनी रहे, न कि किसी बड़े संवैधानिक परिवर्तन को अपने अकेले मत से पारित करवा दे।

दल-बदल विरोधी कानून एवं अध्यक्ष का क्षेत्राधिकार: दसवीं अनुसूची

52वें संविधान संशोधन अधिनियम 1985 द्वारा संविधान में दसवीं अनुसूची जोड़ी गई, जिसने विधायकों और सांसदों के दल-बदल के आधार पर अयोग्यता के निर्धारण की शक्ति संबंधित सदनों के पीठासीन अधिकारियों को सौंपी।

दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के तहत शक्तियां

अ. **अंतिम निर्णयकर्ता:** किसी सदस्य की अयोग्यता का प्रश्न उठने पर निर्णय लोकसभा अध्यक्ष (या राज्यसभा के संदर्भ में सभापति) द्वारा किया जाता है।

ब. **स्वतः संज्ञान का अभाव:** अध्यक्ष दल-बदल के मामले में स्वतः संज्ञान (Suo Motu) नहीं ले सकता। वह केवल सदन के किसी अन्य सदस्य द्वारा औपचारिक याचिका प्रस्तुत किए जाने पर ही अर्धन्यायिक कार्यवाही प्रारंभ कर सकता है।

किहोटो होलोहन बनाम जाचिल्हू (1992): युगांतकारी निर्णय

दसवीं अनुसूची के पैरा 6(2) में उपबंध था कि पीठासीन अधिकारी की कार्यवाही को संसद की कार्यवाही माना जाएगा और पैरा सात में प्रावधान था कि इसके निर्णयों पर किसी भी न्यायालय का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने किहोटो होलोहन वाद में अत्यंत महत्वपूर्ण निर्णय दिए:

अ. **पैरा सात असंवैधानिक घोषित:** न्यायालय ने दसवीं अनुसूची के पैरा सात को इसलिए असंवैधानिक घोषित कर दिया क्योंकि इसे राज्य विधानमंडलों के आधे अनुमोदन (अनुच्छेद 368(2) के तहत) के बिना पारित किया गया था।

wincompete

ब. **अध्यक्ष एक अधिकरण (Tribunal) के रूप में:** दल-बदल याचिकाओं का निस्तारण करते समय अध्यक्ष एक विधायी पीठासीन अधिकारी के रूप में नहीं, बल्कि एक 'अधिकरण' (Tribunal) के रूप में कार्य करता है।

स. **सीमित न्यायिक समीक्षा:** चूंकि अध्यक्ष एक अधिकरण के रूप में कार्य करता है, अतः उसका निर्णय अनुच्छेद 32, 136 और 226 के तहत **न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) के अधीन है**। न्यायालय

दुर्भावना (Mala fide), प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन अथवा क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर किए गए निर्णयों को रद्द कर सकता है।

द. **निर्णय पूर्व हस्तक्षेप नहीं:** न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि जब तक अध्यक्ष अपना अंतिम निर्णय नहीं सुना देता, तब तक न्यायपालिका उसकी प्रक्रिया में कोई अग्रिम हस्तक्षेप नहीं करेगी।

धन विधेयक प्रमाणीकरण एवं न्यायिक पुनरावलोकन की अद्यतन स्थिति (अनुच्छेद 110)

संविधान का अनुच्छेद 110(1) उन विषयों को स्पष्ट करता है जो किसी विधेयक को 'धन विधेयक' बनाते हैं। इनमें करों का अधिरोपण, भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, संचित निधि से धन का विनियोग तथा भारत सरकार द्वारा ऋण लेना सम्मिलित हैं।

अध्यक्ष के प्रमाणीकरण का प्रभाव

अ. **अंतिम प्राधिकार:** अनुच्छेद 110(3) उपबंध करता है कि यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, तो उस पर लोकसभा के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा।

ब. **प्रमाणीकरण की अनिवार्यता (अनुच्छेद 110(4)):** जब धन विधेयक राज्यसभा को भेजा जाता है या राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो उस पर अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षरित यह पृष्ठांकन (Endorsement) होता है कि यह एक धन विधेयक है।

न्यायिक पुनरावलोकन के ऐतिहासिक वाद

प्रमुख वाद	वर्ष	उच्चतम न्यायालय का अभीर्धारण / विधिक सिद्धांत
राजा राम पाल बनाम मूल माननीय अध्यक्ष, लोकसभा	2007	संसद की आंतरिक कार्यवाहियों को अनुच्छेद 122 के तहत प्रक्रियात्मक अनियमितता (Procedural Irregularity) के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती, किंतु यदि निर्णय असंवैधानिकता, घोर अवैधता या मूल अधिकारों के उल्लंघन से ग्रस्त है, तो न्यायिक समीक्षा संभव है।
के. एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ	2018	पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने आधार अधिनियम, 2016 को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित करने के अध्यक्ष के निर्णय की मेरिट के आधार पर समीक्षा की। बहुमत ने माना कि चूंकि धारा सात के तहत सरकारी लाभ संचित निधि के व्यय पर आधारित थे, अतः इसका धन विधेयक वर्गीकरण वैध था। किंतु पीठ ने स्पष्ट किया कि **अध्यक्ष का प्रमाणीकरण न्यायिक पुनरावलोकन से पूर्णतः उन्मुक्त नहीं है**।

wincompete

रोजर मैथ्यू बनाम साउथ इंडियन बैंक	2020	वित्त अधिनियम, 2017 द्वारा विभिन्न अधिकरणों के पुनर्गठन को धन विधेयक के रूप में पारित किए जाने पर पांच न्यायाधीशों की पीठ ने संदेह व्यक्त किया और पुट्टास्वामी वाद के निष्कर्षों पर पुनर्विचार हेतु इस मामले को **सात न्यायाधीशों की वृहद संविधान पीठ** को संदर्भित कर दिया।

लोकसभा उपाध्यक्ष: निर्वाचन, संवैधानिक स्थिति एवं परंपराएं (अनुच्छेद 93 से 95)

लोकसभा उपाध्यक्ष (डिप्टी स्पीकर) केवल अध्यक्ष का सहायक या अधीनस्थ अधिकारी नहीं है। वह एक स्वतंत्र संवैधानिक पद है और सीधे सदन के प्रति उत्तरदायी होता है।

निर्वाचन एवं कार्यकाल

अ. **निर्वाचन की तिथि:** लोकसभा उपाध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि **लोकसभा अध्यक्ष द्वारा** नियत की जाती है। इसका चुनाव भी उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के साधारण बहुमत से होता है।

ब. **संसदीय परंपरा:** 11वीं लोकसभा (1996) से यह आम सहमति की स्वस्थ संसदीय परंपरा स्थापित हुई कि लोकसभा अध्यक्ष का पद सत्ताधारी दल (या गठबंधन) को मिलता है, जबकि **उपाध्यक्ष का पद मुख्य विपक्षी दल** के सदस्य को सौंपा जाता है।

स. **कार्यकाल एवं पदच्युति:** उपाध्यक्ष भी लोकसभा के जीवनकाल तक पद धारण करता है। वह **अध्यक्ष को संबोधित** अपने त्यागपत्र द्वारा पदमुक्त हो सकता है। उसे हटाने की प्रक्रिया अध्यक्ष के समान ही प्रभावी बहुमत (अनुच्छेद 94) पर आधारित है।

संवैधानिक शक्तियां एवं विशेषाधिकार

अ. **अध्यक्ष की अनुपस्थिति में दायित्व (अनुच्छेद 95(2)):** अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष सदन की बैठकों की अध्यक्षता करता है। जब वह अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है, तो उसे अध्यक्ष की समस्त शक्तियां और विशेषाधिकार (जिसमें निर्णायक मत देने की शक्ति भी शामिल है) प्राप्त होते हैं।

ब. **विशिष्ट संसदीय विशेषाधिकार:** यदि उपाध्यक्ष को किसी भी संसदीय समिति का सदस्य नियुक्त किया जाता है, तो संसदीय नियमों के अनुसार **वह स्वतः उस समिति का पदेन सभापति बन जाता है**।

स. **सदन के भीतर अधीनता का अभाव:** उपाध्यक्ष सदन में अध्यक्ष के अधीनस्थ नहीं होता। जब वह पीठासीन अधिकारी की आसंदी पर नहीं होता, तब वह एक सामान्य सांसद की तरह कार्यवाही में भाग ले सकता है, बोल सकता है तथा सरकार की नीतियों के पक्ष अथवा विपक्ष में सामान्य मतदान कर सकता है।

सामयिक अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) एवं सभापति तालिका की व्यवस्था

wincompete

लोकसभा के संचालन की निरंतरता बनाए रखने के लिए संविधान और प्रक्रिया नियमावली में अंतरिम व्यवस्थाएं की गई हैं।

सामयिक अध्यक्ष (Speaker Pro-tem) - अनुच्छेद 95(1)

अ. **नियुक्ति का आधार:** नवनिर्वाचित लोकसभा की प्रथम बैठक से पूर्व, चूंकि पूर्ववर्ती अध्यक्ष पदमुक्त हो जाता है, अतः सदन के किसी सदस्य को राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 95(1) के तहत सामयिक अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।

ब. **चयन की परिपाटी:** परंपरा के अनुसार सदन के **वरिष्ठतम सदस्य** (सदन में निर्वाचित होने के वर्षों के आधार पर, न कि शारीरिक आयु के आधार पर) को चुना जाता है।

स. **शपथ एवं दायित्व:** सामयिक अध्यक्ष को भारत का राष्ट्रपति स्वयं राष्ट्रपति भवन में शपथ दिलाता है। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:

- नवनिर्वाचित संसद सदस्यों को संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ दिलाना (अनुच्छेद 99)।
- सदन में नए अध्यक्ष के निष्पक्ष निर्वाचन की प्रक्रिया को संपन्न कराना।
- नए अध्यक्ष के चुनते ही सामयिक अध्यक्ष का पद स्वतः समाप्त हो जाता है।

सभापतियों की तालिका (Panel of Chairpersons)

लोकसभा नियमों के नियम नौ के अंतर्गत, लोकसभा अध्यक्ष अपने सदस्यों में से अधिकतम **10 सदस्यों** को सभापतियों की तालिका में नामित करता है:

- **कार्य:** अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों की अनुपस्थिति में इस तालिका का कोई सदस्य (वरीयता क्रम के अनुसार) सदन की अध्यक्षता करता है।
- **पद की रिक्ति बनाम अनुपस्थिति का अंतर:** यह विधिक रूप से ध्यान देने योग्य है कि सभापति तालिका का सदस्य केवल पीठासीन अधिकारियों की **अनुपस्थिति (Absence)** में ही अध्यक्षता कर सकता है। यदि अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों के पद **रिक्त (Vacant)** हों, तो यह तालिका कार्य नहीं कर सकती; उस स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा सदन के किसी सदस्य को इस प्रयोजन हेतु नियुक्त किया जाता है (अनुच्छेद 95(1))।

राज्यसभा का सभापति: उपराष्ट्रपति की पदेन संवैधानिक भूमिका (अनुच्छेद 89)

संविधान का अनुच्छेद 89(1) यह स्पष्ट अधिदेश देता है कि भारत का उपराष्ट्रपति राज्य परिषद (राज्यसभा) का **पदेन सभापति (Ex-Officio Chairman)** होगा।



संवैधानिक स्थिति की विशिष्टताएं

अ. **सदन का सदस्य न होना:** लोकसभा अध्यक्ष के विपरीत, राज्यसभा का सभापति उस सदन का सदस्य नहीं होता जिसकी वह अध्यक्षता करता है।

ब. **वेतन एवं भत्ते:** उपराष्ट्रपति को उपराष्ट्रपति पद का कोई वेतन संविधान में नहीं दिया गया है। उसे संविधान की दूसरी अनुसूची के अनुसार राज्यसभा के सभापति के रूप में वेतन और भत्ते प्राप्त होते हैं।

स. **कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य (अनुच्छेद 65):** जब कभी उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के आकस्मिक निधन, त्यागपत्र या बीमारी के कारण राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है, तब वह राज्यसभा के सभापति के पद के कर्तव्यों का पालन नहीं करता और न ही उस अवधि के लिए सभापति के वेतन का हकदार होता है (अनुच्छेद 97)। उस अवधि में उपसभापति सभापति के कार्यों का निष्पादन करता है।

सभापति की पदच्युति की विशिष्ट प्रक्रिया (अनुच्छेद 90 एवं 92)

सभापति को उसके पद से हटाने की प्रक्रिया लोकसभा अध्यक्ष से पूर्णतः भिन्न है:

- चूंकि सभापति उपराष्ट्रपति होता है, अतः उसे केवल तभी हटाया जा सकता है जब उसे **उपराष्ट्रपति पद से हटा दिया जाए**।
- **प्रक्रिया (अनुच्छेद 67(ख)):** ऐसा संकल्प केवल **राज्यसभा में ही** लाया जा सकता है (14 दिन की पूर्व सूचना के साथ)।
- **बहुमत:** राज्यसभा द्वारा अपने तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत (**प्रभावी बहुमत**) से संकल्प पारित होना चाहिए, तथा लोकसभा द्वारा साधारण बहुमत से उस पर अपनी सहमति दी जानी चाहिए।
- जब सभापति को हटाने का संकल्प विचाराधीन हो, तो वह अनुच्छेद 92 के अनुसार सदन में उपस्थित रह सकता है, किंतु न तो अध्यक्षता कर सकता है और न ही (सदन का सदस्य न होने के कारण) किसी भी परिस्थिति में मतदान कर सकता है।

राज्यसभा का उपसभापति एवं दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों की तुलना

अनुच्छेद 89(2) के अनुसार, राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही किसी एक सदस्य को अपना उपसभापति चुनती है।

उपसभापति की स्थिति एवं शक्तियां (अनुच्छेद 90 एवं 91)

अ. **सदन का सदस्य होना अनिवार्य:** लोकसभा उपाध्यक्ष की भांति राज्यसभा का उपसभापति भी उसी सदन का सदस्य होता है। यदि उसकी राज्यसभा सदस्यता समाप्त हो जाती है, तो उसका पद रिक्त हो जाता है।

ब. **त्यागपत्र:** वह **सभापति को संबोधित** अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा त्यागपत्र देता है।

स. **हटाया जाना:** राज्यसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत (प्रभावी बहुमत) से पारित संकल्प द्वारा उसे हटाया जा सकता है।

wincompete

द. **कार्यकारी प्राधिकार:** सभापति के पद की रिक्ति अथवा अनुपस्थिति के दौरान वह सभापति के समस्त कर्तव्यों का निर्वहन करता है।

लोकसभा अध्यक्ष एवं राज्यसभा सभापति की शक्तियों का तुलनात्मक विन्यास

यद्यपि दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों को अपने-अपने सदन में समान प्रक्रियात्मक अधिकार प्राप्त हैं, किंतु लोकसभा अध्यक्ष को दो मामलों में संविधान द्वारा सर्वोच्च विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं:

तुलना का आधार	लोकसभा अध्यक्ष (Speaker)	राज्यसभा सभापति (Chairman)
सदन की सदस्यता	अनिवार्यतः लोकसभा का निर्वाचित सदस्य होता है।	**सदन का सदस्य नहीं होता** (वह भारत का उपराष्ट्रपति होता है)।
धन विधेयक का प्रमाणीकरण	**अनन्य शक्ति प्राप्त है** (अनुच्छेद 110)। उसका निर्णय अंतिम होता है।	इस संदर्भ में कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।
संसद की संयुक्त बैठक	**अनिवार्यतः अध्यक्षता करता है** (अनुच्छेद 118(4))।	**कभी भी संयुक्त बैठक की अध्यक्षता नहीं कर सकता।**
पद से हटाने की प्रक्रिया	केवल लोकसभा के प्रभावी बहुमत द्वारा हटाया जाता है।	पहले राज्यसभा के प्रभावी बहुमत से, फिर लोकसभा की सहमति से हटाया जाता है।
पदच्युति के समय मतदान	प्रथम दृष्टया मतदान कर सकता है, निर्णायक मत नहीं (अनुच्छेद 96)।	**किसी भी दशा में मतदान नहीं कर सकता** क्योंकि वह सदस्य नहीं है।
दल-बदल पर निर्णय (10वीं अनुसूची)	लोकसभा सदस्यों के विरुद्ध दल-बदल याचिकाओं पर निर्णय करता है।	राज्यसभा सदस्यों के विरुद्ध दल-बदल याचिकाओं पर निर्णय करता है।
संसदीय समितियां	कार्य मंत्रणा, नियम समिति की अध्यक्षता करता है; अन्य समितियों के अध्यक्ष नियुक्त करता है।	अपनी कार्य मंत्रणा और नियम समिति की अध्यक्षता करता है।

wincompete

संसद का सचिवालय एवं अधिकारी संवर्ग (अनुच्छेद 98)

संसदीय लोकतंत्र में विधायिका की कार्यपालिका से स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए संविधान का अनुच्छेद 98 प्रत्येक सदन के लिए एक स्वतंत्र सचिवालयी ढांचे की स्थापना करता है।

संवैधानिक प्रावधान एवं प्रशासनिक स्वायत्तता

अ. **पृथक सचिवालयीय कर्मचारीवृंद (अनुच्छेद 98(1)):** संसद के प्रत्येक सदन का एक पृथक सचिवालयीय कर्मचारीवृंद होगा। यद्यपि यह दोनों सदनों के लिए साझी सेवाओं के पदों के सृजन को प्रतिबंधित नहीं करता।

ब. **भर्ती एवं सेवा शर्तें (अनुच्छेद 98(2)):** संसद विधि द्वारा संसद के किसी सदन के सचिवालयीय कर्मचारीवृंद में भर्ती का और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकेगी।

स. **महासचिव (Secretary-General) की स्थिति:**

- प्रत्येक सदन के सचिवालय का सर्वोच्च प्रशासनिक प्रमुख **महासचिव** होता है।
- लोकसभा महासचिव की नियुक्ति लोकसभा अध्यक्ष द्वारा तथा राज्यसभा महासचिव की नियुक्ति राज्यसभा के सभापति द्वारा की जाती है।
- आधिकारिक वरीयता अनुक्रम में महासचिव का पद भारत सरकार के **कैबिनेट सचिव (Cabinet Secretary)** के समतुल्य होता है। वह सदन के पीठासीन अधिकारी को निरंतर प्रक्रियात्मक, विधिक एवं संसदीय परामर्श प्रदान करता है। वह सदन के विघटन से अप्रभावित रहता है और एक स्थायी सिविल सेवक के रूप में कार्य करता है।

संवैधानिक एवं संसदीय पारिभाषिक शब्दावली

अ. **निर्णायक मत (Casting Vote):** किसी प्रस्ताव पर पक्ष और विपक्ष में बराबर मत होने की असाधारण स्थिति में पीठासीन अधिकारी द्वारा दिया जाने वाला वह मत जो गतिरोध को समाप्त कर परिणाम निर्धारित करता है।

ब. **प्रभावी बहुमत (Effective Majority):** सदन की कुल सदस्य संख्या में से तात्कालिक रिक्तियों (मृत्यु, त्यागपत्र, निष्कासन आदि के कारण) को घटाने के उपरांत बची हुई वास्तविक सदस्य संख्या का 50 प्रतिशत से अधिक का बहुमत। इसका प्रयोग अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सभापति व उपसभापति को पद से हटाने हेतु किया जाता है।

स. **अधिकरण (Tribunal) की स्थिति:** दसवीं अनुसूची के तहत दल-बदल संबंधी विवादों का निपटारा करते समय पीठासीन अधिकारी एक सामान्य विधायी प्राधिकारी के स्थान पर न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने वाले अधिकरण के रूप में कार्य करता है, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से बंधा होता है।

द. **सामयिक अध्यक्ष (Speaker Pro-tem):** लैटिन पदावली जिसका अर्थ है 'तत्काल के लिए अध्यक्ष'। नई लोकसभा के प्रथम सत्र में सांसदों को शपथ दिलाने तथा स्थायी अध्यक्ष के चुनाव के संचालन हेतु राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त अंतरिम पीठासीन अधिकारी।

य. **सभापति तालिका (Panel of Chairpersons):** अध्यक्ष अथवा सभापति द्वारा अपने-अपने सदन के सदस्यों में से नामित वरिष्ठ सदस्यों का वह समूह, जो नियमित पीठासीन अधिकारियों की अनुपस्थिति में सदन की बैठकों का संचालन करने हेतु विधिक रूप से अधिकृत होता है।

र. **प्रक्रियात्मक अनियमितता (Procedural Irregularity):** संसदीय कार्य संचालन के आंतरिक नियमों के अनुपालन में होने वाली लघु तकनीकी त्रुटि, जिसे संविधान के अनुच्छेद 122 के तहत न्यायालयों में चुनौती देने से पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता है।

wincompete

अध्याय 9: संसद की कार्यप्रणाली: सत्र, आहूत, सत्रावसान, विघटन, प्रश्नकाल, शून्यकाल, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, कार्यस्थगन एवं अविश्वास प्रस्ताव

संसदीय सत्रों का संवैधानिक विन्यास एवं समय-सीमा (अनुच्छेद 85)

भारतीय संविधान के भाग पांच के अंतर्गत अनुच्छेद 85 संसद के सत्रों के संचालन, स्थगन, सत्रावसान तथा लोकसभा के विघटन से संबंधित आधारभूत विधिक ढांचे की स्थापना करता है। संसदीय लोकतंत्र में विधायिका की निरंतरता एवं कार्यपालिका की अनवरत जवाबदेही सुनिश्चित करने हेतु सत्रों का नियमित आयोजन अनिवार्य है।

सत्राह्वान का संवैधानिक अधिदेश एवं छह माह का नियम

अ. **अनुच्छेद 85(1) का अधिदेश:** राष्ट्रपति समय-समय पर संसद के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर, जो वह ठीक समझे, अधिवेशन के लिए आहूत करेगा।

ब. **दो सत्रों के मध्य अधिकतम अंतराल:** संविधान स्पष्ट रूप से यह व्यवस्था करता है कि संसद के एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच **छह मास (6 माह)** से अधिक का अंतर नहीं होगा। इसका संवैधानिक अर्थ यह है कि संसद को वर्ष में न्यूनतम दो बार अनिवार्यतः समवेत होना चाहिए।

स. **वास्तविक प्रक्रिया एवं अभीसमय:** यद्यपि सत्र आहूत करने की औपचारिक उद्घोषणा राष्ट्रपति के नाम से जारी की जाती है, किंतु व्यावहारिक रूप से यह निर्णय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता अथवा किसी वरिष्ठ कैबिनेट मंत्री की अध्यक्षता वाली 'संसदीय मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति' (CCPA) की अनुशंसा पर ही लिया जाता है।

पारंपरिक भारतीय संसदीय कैलेंडर: तीन नियमित सत्र

भारतीय संविधान में सत्रों के विशिष्ट नामों अथवा उनकी संख्या का निश्चित उल्लेख नहीं है, किंतु संसदीय अभीसमयों के आधार पर वर्ष भर में तीन प्रमुख सत्र आयोजित किए जाते हैं:

सत्र का नाम	सामान्य समयावधि	प्रमुख विधायी एवं वित्तीय कार्य
बजट सत्र (Budget Session)	फरवरी से मई (प्रथम सत्र)	यह वर्ष का सबसे दीर्घकालिक सत्र होता है। इसमें राष्ट्रपति का विशेष अभिभाषण (अनुच्छेद 87), वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट) की प्रस्तुति, विभागीय अनुदानों की मांगों पर चर्चा तथा वित्त विधेयक एवं विनियोग विधेयक पारित किए जाते हैं।

Incomplete

मानसून सत्र (Monsoon Session)	जुलाई से सितंबर (द्वितीय सत्र)	वर्षा ऋतु में आयोजित होने वाला यह सत्र मुख्यतः सामान्य विधायी कार्यों, नीतिगत बहसों और नए कानूनी विधेयकों को पारित करने हेतु समर्पित होता है।
शीतकालीन सत्र (Winter Session)	नवंबर से दिसंबर (तृतीय सत्र)	यह वर्ष का सबसे संक्षिप्त सत्र होता है, जिसमें लंबित विधेयकों के निस्तारण और तात्कालिक राष्ट्रीय मुद्दों पर विमर्श किया जाता है।

सदन का स्थगन, अनिश्चितकालीन स्थगन, सत्रावसान एवं विघटन

संसदीय कार्यप्रणाली में सदन की बैठकों को रोकने अथवा सदन के कार्यकाल को समाप्त करने की चार पृथक-पृथक विधिक प्रक्रियाएं विद्यमान हैं। इनके अधिकार क्षेत्र एवं विधिक प्रभावों में स्पष्ट विभेद पाया जाता है।

संसदीय कार्यवाहियों का विराम

↓

↙ ↘

पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष / सभापति)	भारत का राष्ट्रपति (कार्यपालिका प्रमुख)
1. स्थगन (Adjournment) • घंटे या दिन हेतु बैठक रोकना • सत्र जारी रहता है **2. अनिश्चितकालीन स्थगन (Sine Die)** • पुनः बैठक की तिथि तय किए बिना बैठक रोकना	**1. सत्रावसान (Prorogation)** • वर्तमान सत्र की औपचारिक समाप्ति • सदन जीवित रहता है **2. विघटन (Dissolution)** • केवल लोकसभा का कार्यकाल समाप्त होना • नए आम चुनाव अनिवार्य

विधिक एवं प्रक्रियात्मक अंतर

अ. **स्थगन (Adjournment):** यह सदन की बैठक को कुछ विशिष्ट घंटों, दिनों अथवा सप्ताहों के लिए स्थगित करने का आदेश है। इसमें अगली बैठक का निश्चित समय और तारीख घोषित की जाती है। स्थगन की शक्ति केवल संबंधित सदन के पीठासीन अधिकारी (लोकसभा अध्यक्ष अथवा राज्यसभा सभापति) में निहित होती है। यह सदन के सत्र को समाप्त नहीं करता, केवल बैठक को रोकता है।

ब. **अनिश्चितकालीन स्थगन (Adjournment Sine Die):** जब पीठासीन अधिकारी आगामी बैठक के लिए कोई विशिष्ट तिथि या समय नियत किए बिना ही सदन की बैठक को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित कर देता है, तो इसे 'एडजर्नमेंट साइन डाई' कहा जाता है। सामान्यतः किसी सत्र के अंतिम दिन पीठासीन अधिकारी द्वारा यही घोषणा की जाती है।

स. **सत्रावसान (Prorogation):** जब पीठासीन अधिकारी सदन को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित कर देता है, तो उसके कुछ दिनों के पश्चात राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 85(2)(क) के अधीन सत्रावसान की अधिसूचना जारी करता है। सत्रावसान से केवल वर्तमान सत्र का अंत होता है, सदन का अस्तित्व समाप्त नहीं होता।

द. **विघटन (Dissolution):** विघटन का तात्पर्य सदन के संपूर्ण जीवनकाल और कार्यकाल की पूर्ण समाप्ति है। यह शक्ति केवल और केवल **लोकसभा** के संदर्भ में लागू होती है (अनुच्छेद 85(2)(ख))। राज्यसभा एक

स्थायी निकाय होने के कारण कभी विघटित नहीं हो सकती (अनुच्छेद 83(1))। सामान्यतः पांच वर्ष का कार्यकाल समाप्त होने पर लोकसभा स्वतः विघटित हो जाती है, किंतु प्रधानमंत्री की अनुशंसा पर राष्ट्रपति इसे पांच वर्ष से पूर्व भी विघटित कर सकता है।

प्रक्रियात्मक तुलना तालिका

तुलना का आधार	स्थगन (Adjournment)	सत्रावसान (Prorogation)	विघटन (Dissolution)
प्राधिकृत अधिकारी	केवल सदन का पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष/सभापति)।	भारत का राष्ट्रपति (मंत्रिपरिषद की सलाह पर)।	भारत का राष्ट्रपति (मंत्रिपरिषद की सलाह पर)।
सदन पर प्रभाव	केवल एक निश्चित समय के लिए बैठक स्थगित होती है; सत्र जारी रहता है।	संपूर्ण सत्र समाप्त हो जाता है; सदन जीवित रहता है।	लोकसभा का कार्यकाल समाप्त हो जाता है; नए आम चुनाव अनिवार्य होते हैं।
लंबित विधेयकों पर प्रभाव	विचाराधीन विधेयकों या प्रस्तावों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।	लंबित विधेयक या कार्य समाप्त (Lapse) नहीं होते।	कई प्रकार के लंबित विधेयक और कार्य व्यपगत हो जाते हैं।
लागू होने का दायरा	लोकसभा एवं राज्यसभा दोनों पर समान रूप से लागू।	लोकसभा एवं राज्यसभा दोनों पर समान रूप से लागू।	**केवल लोकसभा पर लागू;** राज्यसभा का विघटन असंभव है।

लोकसभा के विघटन का लंबित विधेयकों एवं कार्यों पर प्रभाव (अनुच्छेद 107)

संविधान का अनुच्छेद 107 यह निर्धारित करता है कि लोकसभा के विघटन के पश्चात संसद के समक्ष लंबित विभिन्न प्रकार के विधेयकों की विधिक स्थिति क्या होगी। इस संबंध में स्पष्ट संवैधानिक नियम स्थापित हैं:

व्यपगत (Lapse) होने वाले विधेयक

अ. **लोकसभा में लंबित विधेयक:** ऐसा कोई भी विधेयक जो लोकसभा में उत्पन्न हुआ हो और वहीं विचाराधीन हो, लोकसभा के विघटन के साथ ही स्वतः समाप्त (Lapse) हो जाता है।

ब. **लोकसभा द्वारा पारित किंतु राज्यसभा में लंबित विधेयक:** ऐसा विधेयक जिसे लोकसभा ने पारित कर दिया हो, किंतु राज्यसभा के समक्ष वह विचाराधीन पड़ा हो, लोकसभा के विघटन पर व्यपगत हो जाता है।

wincompete

व्यपगत न होने वाले (जीवित रहने वाले) विधेयक

अ. **राज्यसभा में लंबित और लोकसभा द्वारा पारित न किया गया विधेयक:** ऐसा विधेयक जो राज्यसभा में ही पुरःस्थापित हुआ हो और अभी राज्यसभा में ही लंबित हो तथा जिसे लोकसभा ने पारित न किया हो, वह लोकसभा के विघटन पर समाप्त नहीं होता।

ब. **संयुक्त बैठक हेतु अधिसूचित विधेयक (अनुच्छेद 108):** यदि दोनों सदनों के गतिरोध के पश्चात राष्ट्रपति ने लोकसभा के विघटन से पूर्व ही दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत करने की अपनी अधिसूचना जारी कर दी हो, तो ऐसा विधेयक व्यपगत नहीं होता।

स. **राष्ट्रपति की स्वीकृति हेतु लंबित विधेयक:** ऐसा विधेयक जो संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया हो और राष्ट्रपति की स्वीकृति (Assent) हेतु भेजा गया हो, वह लोकसभा के विघटन से प्रभावित नहीं होता और जीवित रहता है।

द. **राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार हेतु लौटाया गया विधेयक:** ऐसा विधेयक जो दोनों सदनों द्वारा पारित किया जा चुका था, किंतु राष्ट्रपति ने उसे पुनर्विचार हेतु संसद को लौटा दिया था, वह भी लोकसभा के विघटन पर समाप्त नहीं होता।

विधेयकों की स्थिति का त्वरित सारांश

विधेयक की स्थिति एवं संचलन	**विघटन के उपरांत विधिक प्रभाव**
लोकसभा में लंबित (उत्पन्न भी वहीं हुआ)	**व्यपगत (Lapse) हो जाता है**
लोकसभा द्वारा पारित, किंतु राज्यसभा में लंबित	**व्यपगत (Lapse) हो जाता है**
राज्यसभा में लंबित, जिसे लोकसभा ने पारित न किया हो	**व्यपगत नहीं होता (जीवित रहता है)**
दोनों सदनों द्वारा पारित, राष्ट्रपति की अनुमति हेतु लंबित	**व्यपगत नहीं होता (जीवित रहता है)**
राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार हेतु दोनों सदनों को लौटाया गया	**व्यपगत नहीं होता (जीवित रहता है)**

wincompete

जिसके संबंध में राष्ट्रपति ने विघटन से पूर्व संयुक्त बैठक अधिसूचित कर दी हो	**व्यपगत नहीं होता (जीवित रहता है)**

गणपूर्ति (कोरम) एवं संसद में मतदान प्रक्रिया (अनुच्छेद 100)

संविधान का अनुच्छेद 100 संसद के दोनों सदनों में बैठकों की वैधता, न्यूनतम आवश्यक उपस्थिति तथा मतदान की पद्धति को विनियमित करता है।

गणपूर्ति (Quorum) का संवैधानिक नियम (अनुच्छेद 100(3))

अ. **गणपूर्ति की परिभाषा:** सदन की बैठक आयोजित करने के लिए न्यूनतम आवश्यक सदस्यों की संख्या को गणपूर्ति या कोरम कहा जाता है।

ब. **संवैधानिक अनुपात:** अनुच्छेद 100(3) के अनुसार, जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक संसद के किसी भी सदन का अधिवेशन आयोजित करने के लिए गणपूर्ति **सदन की कुल सदस्य संख्या का एक-दशांश (1/10 या 10 प्रतिशत)** होगी।

स. **वर्तमान सांख्यिकीय आवश्यकता:**

- **लोकसभा हेतु गणपूर्ति:** कुल सदस्य संख्या (543) का 1/10 = **55 सदस्य** (पीठासीन अधिकारी सहित)।
- **राज्यसभा हेतु गणपूर्ति:** कुल सदस्य संख्या (245) का 1/10 = **25 सदस्य** (पीठासीन अधिकारी सहित)।

द. **पीठासीन अधिकारी का संवैधानिक कर्तव्य (अनुच्छेद 100(4)):** यदि सदन के अधिवेशन में किसी समय आवश्यक गणपूर्ति नहीं है, तो सभापति या अध्यक्ष का यह अनिवार्य कर्तव्य होगा कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे अथवा बैठक को तब तक के लिए निलंबित कर दे जब तक गणपूर्ति पूरी न हो जाए।

प्रश्नकाल: स्वरूप, प्रक्रिया एवं प्रश्नों का बहु-स्तरीय वर्गीकरण

संसदीय कार्यदिवस का प्रथम घंटा कार्यपालिका की प्रत्यक्ष जवाबदेही का सबसे सशक्त मंच होता है। संसद के प्रक्रिया नियमों के अनुसार, प्रत्येक बैठक का पहला घंटा (प्रातः 11:00 बजे से 12:00 बजे तक) सामान्यतः 'प्रश्नकाल' (Question Hour) के लिए आरक्षित होता है। इस दौरान संसद सदस्य सरकार के मंत्रियों से उनके विभागों की कार्यप्रणाली, प्रशासनिक भूलों और राष्ट्रीय नीतियों के संदर्भ में तीखे प्रश्न पूछते हैं।

संसद में पूछे जाने वाले प्रश्न

↓

तारांकित प्रश्न (Starred Questions)	अतारांकित प्रश्न (Unstarred Questions)	अल्प सूचना प्रश्न (Short Notice Questions)
• तारा (*) का चिह्न आवश्यक • मौखिक उत्तर (Oral Answer) • पूरक प्रश्न पूछने की अनुमति • हरे रंग में मुद्रित	• कोई विशिष्ट चिह्न नहीं • लिखित उत्तर (Written Answer) • पूरक प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं • सफेद रंग में मुद्रित	• लोक महत्व के तात्कालिक विषय • 10 दिन से कम की सूचना • मौखिक उत्तर दिया जाता है • हल्के गुलाबी रंग में मुद्रित

प्रश्नों का विधिक एवं प्रक्रियात्मक वर्गीकरण

अ. **तारांकित प्रश्न (Starred Questions):**

- ऐसे प्रश्न जिन पर सदस्य द्वारा एक तारा (Asterisk - *) का चिह्न अंकित किया जाता है।
- संबंधित विभागीय मंत्री द्वारा सदन के पटल पर इसका **मौखिक उत्तर (Oral Answer)** दिया जाता है।
- चूंकि उत्तर मौखिक होता है, अतः मंत्री के उत्तर के पश्चात प्रश्नकर्ता सदस्य एवं अन्य सदस्यों को स्पष्टीकरण हेतु **पूरक प्रश्न (Supplementary Questions)** पूछने का विधिक अधिकार प्राप्त होता है।
- एक दिन की कार्यसूची में मौखिक उत्तर के लिए तारांकित प्रश्नों की संख्या सामान्यतः 20 तक सीमित होती है। पहचान हेतु इन्हें **हरे रंग** के कागज पर मुद्रित किया जाता है।

ब. **अतारांकित प्रश्न (Unstarred Questions):**

- ऐसे प्रश्न जिन पर कोई तारांकित चिह्न नहीं होता।
- इनके लिए मंत्री द्वारा सदन में खड़े होकर बोलने की आवश्यकता नहीं होती; इसका **लिखित उत्तर (Written Answer)** सदन के पटल पर रख दिया जाता है।
- लिखित उत्तर दिए जाने के कारण इन पर **कोई पूरक प्रश्न नहीं पूछा जा सकता**।
- एक दिन में अतारांकित प्रश्नों की अधिकतम संख्या सामान्यतः 230 निर्धारित होती है। इन्हें **सफेद रंग** के कागज पर मुद्रित किया जाता है।

स. **अल्प सूचना प्रश्न (Short Notice Questions):**

- ये प्रश्न अत्यंत अविलंबनीय लोक महत्व के किसी तात्कालिक विषय से संबंधित होते हैं।
- सामान्य प्रश्न हेतु न्यूनतम 10 से 21 दिन की पूर्व सूचना आवश्यक होती है, किंतु अल्प सूचना प्रश्न **10 दिन से कम की सूचना** पर भी पूछे जा सकते हैं।
- इन प्रश्नों को स्वीकार करना संबंधित मंत्री की सहमति पर निर्भर करता है। इसका उत्तर सदन में मौखिक रूप से दिया जाता है और पूरक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। इन्हें **हल्के गुलाबी रंग** के कागज पर मुद्रित किया जाता है।

द. **गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्न:** मंत्री के अतिरिक्त किसी सामान्य संसद सदस्य (Private Member) से भी प्रश्न पूछा जा सकता है, यदि प्रश्न का विषय उस सदस्य द्वारा प्रस्तुत किसी विधेयक, संकल्प या सदन की किसी समिति के कार्य से संबंधित हो जिसका वह सदस्य प्रभारी हो। इन्हें **पीले रंग** के कागज पर मुद्रित किया जाता है।

शून्यकाल: उद्भव, अभीसमय एवं प्रक्रियात्मक स्थिति

शून्यकाल (Zero Hour) भारतीय संसदीय नवाचार की विश्व को एक मौलिक देन है। यह ब्रिटिश संसदीय प्रणाली अथवा किसी अन्य विदेशी संविधान से ग्रहण नहीं किया गया है।

उद्भव एवं नामकरण का इतिहास

अ. **उद्भव का कालखंड:** शून्यकाल की अनौपचारिक शुरुआत भारतीय संसद में वर्ष **1962** में हुई। उस समय सभापति की अनुमति के बिना सदस्य राष्ट्रीय महत्व के अत्यंत ज्वलंत और अप्रत्याशित मुद्दों को उठाने लगे थे।

ब. **नामकरण की पृष्ठभूमि:** चूंकि यह काल दोपहर ठीक 12:00 बजे (12:00 O'clock) प्रारंभ होता है, अतः समाचार पत्रों और मीडिया ने इसे 'जीरो आवर' अथवा 'शून्यकाल' की संज्ञा दी।

प्रक्रियात्मक स्थिति एवं नियम

अ. **नियम पुस्तिकाओं में गैर-उल्लेख:** शून्यकाल का उल्लेख लोकसभा अथवा राज्यसभा की **प्रक्रिया नियमावली (Rules of Procedure) में कहीं भी नहीं है**। यह एक पूर्णतः अनौपचारिक एवं अभीसमय-आधारित (Convention-based) व्यवस्था है।

Wincompete

ब. **समय-सारणी:** शून्यकाल प्रश्नकाल के तुरंत बाद प्रारंभ होता है और सदन की नियमित कार्यसूची (दिन के भोजन अवकाश या विधायी कार्य) प्रारंभ होने तक जारी रहता है। सामान्यतः इसका समय दोपहर **12:00 बजे से 1:00 बजे तक** (एक घंटा) होता है।

स. **विषयों की प्रस्तुति:** इसके माध्यम से सांसद बिना किसी 10 या 15 दिन की अग्रिम पूर्व सूचना के अविलंबनीय लोक महत्व के तात्कालिक मुद्दों को पीठासीन अधिकारी की पूर्व अनुमति (जो उसी दिन प्रातः 8:30 से 9:00 बजे के मध्य ली जाती है) से सदन के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव: भारतीय संसदीय नवाचार एवं नियम 197

शून्यकाल की भांति ही ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Calling Attention Motion) भी भारतीय संसदीय प्रणाली का एक विशिष्ट स्वदेशी नवाचार है, जो 1954 से कार्यप्रणाली का अंग बना।

संवैधानिक एवं प्रक्रियात्मक अधिष्ठान

अ. **प्रक्रिया नियमावली में औपचारिक स्थान:** शून्यकाल के विपरीत, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव का उल्लेख सदन की प्रक्रिया नियमावली के **नियम 197** में बाकायदा संहिताबद्ध है।

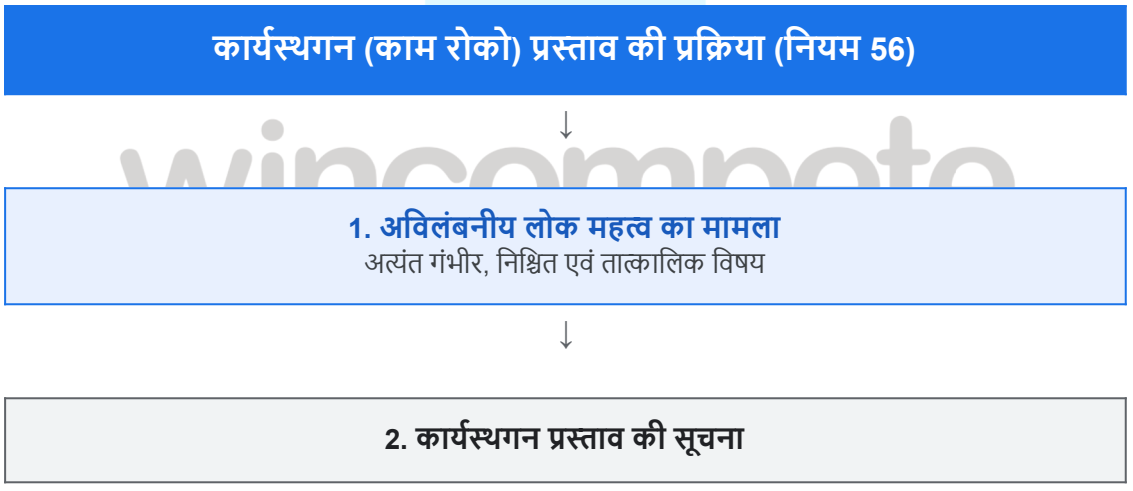
ब. **उद्देश्य एवं कार्यप्रणाली:** इसके माध्यम से कोई सदस्य, पीठासीन अधिकारी की पूर्व अनुमति से, किसी अविलंबनीय लोक महत्व के मामले की ओर किसी **मंत्री का ध्यान आकर्षित** करता है।

स. **मंत्री का वक्तव्य:** संबंधित मंत्री उस विषय पर या तो तत्काल एक संक्षिप्त वक्तव्य (Statement) देता है अथवा संपूर्ण तथ्यों को एकत्र करने हेतु आगे का समय मांगता है।

द. **सीमित स्पष्टीकरण:** ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पर कोई औपचारिक मतदान नहीं होता और न ही इस पर कोई विस्तृत सामान्य बहस होती है। केवल प्रस्ताव की सूचना देने वाले सदस्यों को मंत्री के वक्तव्य के पश्चात स्पष्टीकरण हेतु एक-दो संक्षिप्त प्रश्न पूछने की अनुमति दी जाती है।

कार्यस्थगन (काम रोको) प्रस्ताव: शर्तें एवं निंदात्मक प्रभाव (नियम 56)

काम रोको प्रस्ताव अथवा कार्यस्थगन प्रस्ताव (Adjournment Motion) कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण का एक अत्यंत कठोर, असाधारण और गंभीर उपकरण है। इसका प्रावधान लोकसभा प्रक्रिया नियमावली के **नियम 56** के अंतर्गत किया गया है।





प्रस्ताव के अनिवार्य मापदंड एवं कठोर शर्तें

अ. **सदन का नियमित कार्य रोकना:** इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य सदन के समक्ष पहले से निर्धारित दैनिक विधायी कार्य को बीच में ही रोककर किसी अविलंबनीय, सुनिश्चित और अत्यंत गंभीर लोक महत्व के विषय पर तत्काल चर्चा कराना होता है।

ब. **न्यूनतम 50 सदस्यों का समर्थन:** इस प्रस्ताव को प्रस्तुत किए जाने हेतु सदन के कम से कम **50 सदस्यों का समर्थन** (खड़े होकर सहमति देना) अनिवार्य है। यदि 50 सदस्य समर्थन नहीं करते, तो अध्यक्ष चर्चा की अनुमति नहीं देता।

स. **बहस की समय-सीमा:** यदि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है, तो उस पर उसी दिन अपराह्न 4:00 बजे (अथवा अध्यक्ष द्वारा निर्धारित समय पर) चर्चा प्रारंभ होती है। इस प्रस्ताव पर चर्चा न्यूनतम **दो घंटे और तीस मिनट (ढाई घंटे)** से कम नहीं हो सकती।

द. **विधेयक पर मतदान का प्रभाव:** चर्चा के अंत में प्रस्ताव पर मतदान कराया जाता है। यदि कार्यस्थगन प्रस्ताव लोकसभा में पारित हो जाता है, तो यद्यपि सरकार के लिए त्यागपत्र देना कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं होता, किंतु इसे **सरकार की घोर प्रशासनिक विफलता और कठोर निंदा** माना जाता है, जिससे सरकार का नैतिक प्राधिकार समाप्त हो जाता है।

कार्यस्थगन प्रस्ताव की स्वीकार्यता पर प्रतिबंध

नियम 58 के अनुसार, कार्यस्थगन प्रस्ताव के लिए निम्नलिखित सख्त सीमाएं निर्धारित हैं:

- यह केवल एक ही निश्चित और विशिष्ट विषय पर आधारित होना चाहिए।
- इसमें सामान्य नीतिगत मामलों पर व्यापक बहस नहीं हो सकती; घटना तात्कालिक और हाल ही में घटित होनी चाहिए।
- यह विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को नहीं उठा सकता।
- ऐसा कोई विषय जो किसी न्यायालय या अधिकरण के समक्ष विचाराधीन (Sub-Judice) हो, उस पर कार्यस्थगन प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता।
- जिस विषय पर उसी सत्र में पहले ही चर्चा हो चुकी हो, उसे पुनः नहीं उठाया जा सकता।

wincompete

अविश्वास प्रस्ताव, विश्वास प्रस्ताव एवं निंदा प्रस्ताव का तुलनात्मक विश्लेषण

संसदीय लोकतंत्र का आधारभूत सिद्धांत यह है कि मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है (अनुच्छेद 75(3))। सदन कार्यपालिका के विरुद्ध विभिन्न प्रकार के अविश्वास और निंदा संबंधी प्रस्तावों के माध्यम से इस उत्तरदायित्व को क्रियान्वित करता है।

अविश्वास प्रस्ताव (Motion of No-Confidence) - नियम 198

अ. **संवैधानिक आधार:** यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 75(3) में सामूहिक उत्तरदायित्व का उल्लेख है, किंतु 'अविश्वास प्रस्ताव' शब्द का उल्लेख लोकसभा प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमावली के **नियम 198** में मिलता है।

ब. **केवल लोकसभा में प्रस्तुति:** यह प्रस्ताव केवल और केवल **लोकसभा** में ही प्रस्तुत किया जा सकता है; राज्यसभा में अविश्वास प्रस्ताव लाने की कोई व्यवस्था नहीं है क्योंकि सरकार केवल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

स. **कारण बताने की बाध्यता नहीं:** अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय विपक्ष के लिए सरकार के विरुद्ध विशिष्ट आरोपों या **कारणों का उल्लेख करना अनिवार्य नहीं है**। यह सरकार में सदन के समग्र विश्वास के अभाव की सीधी परीक्षा है।

द. **स्वीकृति हेतु शर्तें:**

- प्रस्ताव को सदन में स्वीकार किए जाने हेतु कम से कम **50 सदस्यों का समर्थन** आवश्यक है।
- अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव की अनुमति दिए जाने के **10 दिन के भीतर** इस पर सदन में चर्चा और मतदान कराया जाना अनिवार्य है।

य. **पारित होने का प्रभाव:** यदि अविश्वास प्रस्ताव लोकसभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के **साधारण बहुमत** से पारित हो जाता है, तो प्रधानमंत्री सहित संपूर्ण मंत्रिपरिषद को **तत्काल त्यागपत्र** देना पड़ता है।

विश्वास प्रस्ताव (Motion of Confidence)

विश्वास प्रस्ताव अविश्वास प्रस्ताव का विलोम है। यह विपक्षी सदस्यों द्वारा नहीं, बल्कि **सत्ताधारी दल अथवा सरकार द्वारा** सदन के पटल पर प्रस्तुत किया जाता है।

- सामान्यतः जब त्रिशंकु लोकसभा की स्थिति में राष्ट्रपति किसी दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है, तो वह उसे एक निश्चित समय (प्रायः एक माह) के भीतर लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त करने का निर्देश देता है।
- यदि विश्वास प्रस्ताव लोकसभा में गिर जाता है (अस्वीकृत हो जाता है), तो सरकार का तुरंत पतन हो जाता है।

wincompete

निंदा प्रस्ताव (Censure Motion)

निंदा प्रस्ताव अविश्वास प्रस्ताव से भिन्न होता है। यह विपक्ष द्वारा किसी विशिष्ट मंत्री, मंत्रियों के समूह अथवा सरकार की किसी विशिष्ट नीति, भूल या विफलता की निंदा करने के लिए लाया जाता है।

प्रस्तावों का विस्तृत तुलनात्मक चार्ट

तुलना का आधार	अविश्वास प्रस्ताव (No-Confidence)	निंदा प्रस्ताव (Censure Motion)	कार्यस्थगन प्रस्ताव (Adjournment)
प्रक्रियात्मक नियम	लोकसभा नियम 198	लोकसभा प्रक्रिया नियम	लोकसभा नियम 56
कारण बताने की अनिवार्यता	**कारण बताना आवश्यक नहीं है**।	**विशिष्ट विफलता या कारण बताना अनिवार्य है**।	अविलंबनीय निश्चित लोक महत्व का तथ्य होना अनिवार्य।
किसके विरुद्ध लाया जा सकता है?	केवल **संपूर्ण मंत्रिपरिषद** के विरुद्ध (एकल मंत्री के विरुद्ध नहीं)।	किसी एक मंत्री, मंत्रियों के समूह या संपूर्ण मंत्रिपरिषद के विरुद्ध।	संपूर्ण सरकार के किसी तात्कालिक प्रशासनिक कृत्य के विरुद्ध।
सदन में समर्थन की शर्त	न्यूनतम **50 सदस्यों** का समर्थन आवश्यक।	अध्यक्ष के विवेक पर (विशिष्ट संख्या का नियम नहीं)।	न्यूनतम **50 सदस्यों** का समर्थन आवश्यक।
प्रस्तुति का सदन	**केवल लोकसभा** में प्रस्तुत हो सकता है।	**केवल लोकसभा** में प्रस्तुत हो सकता है।	**केवल लोकसभा** में प्रस्तुत हो सकता है।
पारित होने पर विधिक प्रभाव	**सरकार का तत्काल पतन;** मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र देना अनिवार्य।	सरकार को त्यागपत्र देना अनिवार्य नहीं, किंतु उसे तुरंत विश्वास मत सिद्ध करना पड़ सकता है।	सरकार का पतन नहीं होता, किंतु सरकार की घोर नैतिक व प्रशासनिक निंदा होती है।

wincompete

संसदीय प्रक्रिया के अन्य महत्वपूर्ण प्रस्ताव एवं साधन

संसद के दैनिक विधायी और विमर्शकारी कार्यों को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए कई अन्य प्रकार के प्रस्तावों का प्रयोग किया जाता है:

विशेषाधिकार प्रस्ताव (Privilege Motion)

जब किसी मंत्री द्वारा सदन या उसकी किसी समिति के किसी विशेषाधिकार का हनन किया जाता है—जैसे किसी मंत्री द्वारा सदन को जानबूझकर गलत, भ्रामक या अपूर्ण तथ्य प्रस्तुत करना—तब किसी भी सदस्य द्वारा मंत्री के विरुद्ध विशेषाधिकार प्रस्ताव लाया जा सकता है। पीठासीन अधिकारी या तो स्वयं इसका निपटारा करता है अथवा इसे जांच हेतु 'विशेषाधिकार समिति' (Privileges Committee) को संदर्भित कर देता है।

धन्यवाद प्रस्ताव (Motion of Thanks - अनुच्छेद 87)

प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात प्रथम सत्र के आरंभ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के प्रारंभ में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों की समवेत बैठक को संबोधित करता है। इस अभिभाषण के उपरांत दोनों सदनों में सरकार की नीतियों पर विस्तृत चर्चा होती है और 'धन्यवाद प्रस्ताव' प्रस्तुत किया जाता है।

- **पारित होने की बाध्यता:** इस प्रस्ताव का लोकसभा में **पारित होना अनिवार्य है**। यदि लोकसभा में धन्यवाद प्रस्ताव गिर जाता है, तो इसे सरकार के विरुद्ध अविश्वास के समान माना जाता है और सरकार गिर जाती है।

कटौती प्रस्ताव (Cut Motions - बजट के दौरान)

बजट प्रक्रिया के दौरान अनुदानों की मांगों (Demands for Grants) पर चर्चा के समय विपक्षी सदस्यों द्वारा सरकारी व्यय को नियंत्रित करने अथवा नीतियों की आलोचना करने हेतु कटौती प्रस्ताव लाए जाते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं:

- **नीतिगत कटौती (Policy Cut):** मांग की राशि को घटाकर **'1 रुपया'** कर दिया जाए (यह मांग में निहित संपूर्ण नीति की अस्वीकृति का प्रतीक है)।
- **आर्थिक कटौती (Economy Cut):** मांग की राशि में से एक **निर्दिष्ट राशि** (जैसे 100 करोड़ रुपये) कम कर दी जाए।
- **सांकेतिक कटौती (Token Cut):** मांग की राशि में से **'100 रुपये'** की सांकेतिक कमी की जाए (यह भारत सरकार के किसी विशिष्ट दायित्व या शिकायत को रेखांकित करने हेतु होता है)।
- *नोट:* यदि लोकसभा में कोई भी कटौती प्रस्ताव पारित हो जाता है, तो यह सरकार की वित्तीय पराजय मानी जाती है और मंत्रिमंडल को त्यागपत्र देना पड़ता है।

समापन प्रस्ताव (Closure Motion)

सदन में किसी विषय या विधेयक पर चल रही लंबी बहस को समाप्त कर उस पर तुरंत मतदान कराने के लिए किसी सदस्य द्वारा समापन प्रस्ताव लाया जाता है। यह चार प्रकार का होता है:

wincompete

- **साधारण समापन:** जब सदस्य प्रस्ताव करता है कि "अब इस विषय पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है, अतः मतदान कराया जाए।"
- **खंडशः समापन (Closure by Compartments):** किसी लंबे विधेयक के विभिन्न खंडों और अनुसूचियों को समूहों (कंपार्टमेंट्स) में बांटकर संपूर्ण समूह पर एक साथ मतदान कराया जाता है।
- **कंगारू समापन (Kangaroo Closure):** इसमें केवल अत्यंत महत्वपूर्ण खंडों पर ही बहस कराई जाती है और बीच के गौण खंडों को छलांग लगाकर (कंगारू की भांति) छोड़ दिया जाता है और सीधे पूरे विधेयक पर मतदान होता है।

- **गिलोटिन (Guillotine):** यह वित्तीय व विधायी प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपकरण है। जब बजट या किसी विधेयक को पारित करने हेतु निर्धारित समयावधि समाप्त होने के निकट होती है, तब जिन अनुदान मांगों अथवा खंडों पर समय के अभाव में **चर्चा नहीं भी हो पाई हो, उन्हें भी बिना किसी बहस के सीधे एक साथ मतदान हेतु रख दिया जाता है**। इसे 'गिलोटिन लगाना' कहते हैं।

संसदीय पारिभाषिक शब्दावली एवं प्रमुख विधिक संकल्पनाएं

अ. **कोरम / गणपूर्ति (Quorum):** संविधान के अनुच्छेद 100(3) के अनुसार किसी सदन की बैठक को वैध रूप से संचालित करने के लिए उपस्थित सदस्यों की वह न्यूनतम संख्या जो कुल सदस्य संख्या का 1/10 होती है।

ब. **साइन डाई स्थगन (Adjournment Sine Die):** लैटिन भाषा की उक्ति जिसका अर्थ है 'बिना कोई निश्चित दिन तय किए'। पीठासीन अधिकारी द्वारा सदन की बैठक को आगामी अनिश्चितकाल के लिए स्थगित करने की औपचारिक उद्घोषणा।

स. **पूरक प्रश्न (Supplementary Questions):** तारांकित प्रश्नों के मौखिक उत्तर के दौरान संबंधित मंत्री द्वारा दिए गए उत्तर के आधार पर किसी अस्पष्टता को दूर करने अथवा नवीन सूचना प्राप्त करने हेतु सदस्यों द्वारा तुरंत पूछा जाने वाला अतिरिक्त प्रश्न।

द. **गिलोटिन (Guillotine):** फ्रांसीसी क्रांति के समय मृत्युदंड देने वाले यंत्र के नाम पर आधारित संसदीय शब्दावली; विधायी कार्यप्रणाली में समयावधि समाप्त होने पर बिना चर्चा वाले सभी अनुच्छेदों, मांगों या खंडों को एक साथ मतदान हेतु प्रस्तुत कर पारित करने की प्रक्रिया।

य. **सचेतक (Whip):** किसी राजनीतिक दल द्वारा सदन के भीतर अपने सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करने तथा दल के आधिकारिक निर्देशों के अनुरूप मतदान कराने हेतु नियुक्त आंतरिक पदाधिकारी; इसके निर्देश का उल्लंघन करने पर दसवीं अनुसूची के तहत सदस्यता समाप्त हो सकती है।

र. **व्यपगत होना (Lapsing of Bills):** लोकसभा के विघटन के पश्चात सदन के समक्ष विचाराधीन विधेयकों, प्रस्तावों, संशोधनों और सूचनाओं का विधिक रूप से स्वतः समाप्त और निष्प्रभावी हो जाना।

ल. **संसदीय विशेषाधिकार (Parliamentary Privileges):** संविधान के अनुच्छेद 105 के अंतर्गत संसद के दोनों सदनों, उनकी समितियों तथा सदस्यों को प्राप्त वे विशिष्ट विधिक अधिकार, उन्मुक्तियां और संरक्षण जो उन्हें कार्यपालिका या न्यायपालिका के भय के बिना स्वतंत्र रूप से अपने दायित्वों के निर्वहन हेतु प्रदान किए गए हैं।

अध्याय 10: विधायी एवं वित्तीय प्रक्रिया: साधारण विधेयक के चरण, धन विधेयक, वित्त विधेयक एवं संयुक्त बैठक की प्रक्रिया

vincompete

भारतीय संसद में विधायी प्रक्रिया का संवैधानिक अधिष्ठान एवं वर्गीकरण

भारतीय संविधान के भाग पांच के अध्याय दो के अंतर्गत अनुच्छेद 107 से 122 तक संसद की विधायी एवं वित्तीय प्रक्रियाओं का विस्तृत विन्यास प्रस्तुत किया गया है। विधि का शासन सुनिश्चित करने हेतु संसद की संप्रभुता और कार्यप्रणाली को सुस्पष्ट संवैधानिक नियमों के अधीन रखा गया है।

संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले विधायी प्रस्तावों को प्राथमिक रूप से उनकी विषय-वस्तु, प्रस्तुति की विधि एवं वित्तीय प्रभाव के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

विधेयकों का प्राथमिक वर्गीकरण

अ. **सरकारी विधेयक (सार्वजनिक विधेयक):** यह किसी मंत्री द्वारा सदन में प्रस्तुत किया जाता है। यह सरकार की नीतियों को प्रतिबिंबित करता है। इसे सदन में पुरःस्थापित करने हेतु सामान्यतः सात दिन की पूर्व सूचना आवश्यक होती है। यदि ऐसा विधेयक लोकसभा में अस्वीकृत हो जाए, तो यह सरकार के विरुद्ध अविश्वास का संकेत होता है और मंत्रिमंडल को त्यागपत्र देना पड़ सकता है।

ब. **गैर-सरकारी सदस्य का विधेयक (प्राइवेट मेंबर बिल):** यह मंत्री के अतिरिक्त संसद के किसी भी अन्य सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह सार्वजनिक मामलों पर विपक्षी या सामान्य सदस्यों के दृष्टिकोण को दर्शाता है। इसे प्रस्तुत करने हेतु एक माह की पूर्व सूचना अनिवार्य होती है। इसके पारित न होने पर सरकार के स्थायित्व पर कोई संवैधानिक प्रभाव नहीं पड़ता।

संवैधानिक प्रकृति के आधार पर विधेयकों के प्रकार

अ. **साधारण विधेयक (Ordinary Bill - अनुच्छेद 107 एवं 108):** वित्तीय और संविधान संशोधन से इतर सामान्य विधायी विषयों से संबंधित विधेयक।

ब. **धन विधेयक (Money Bill - अनुच्छेद 110):** केवल और केवल अनुच्छेद 110(1) में विनिर्दिष्ट वित्तीय विषयों (करों, संचित निधि से व्यय, ऋण आदि) से संबंधित विधेयक।

स. **वित्त विधेयक (Financial Bill - अनुच्छेद 117):** वित्तीय मामलों से जुड़े वे विधेयक जिनमें अनुच्छेद 110 के अतिरिक्त सामान्य विधि निर्माण के उपबंध भी सम्मिलित होते हैं। इन्हें दो वर्गों—वित्त विधेयक (I) एवं वित्त विधेयक (II)—में विभक्त किया जाता है।

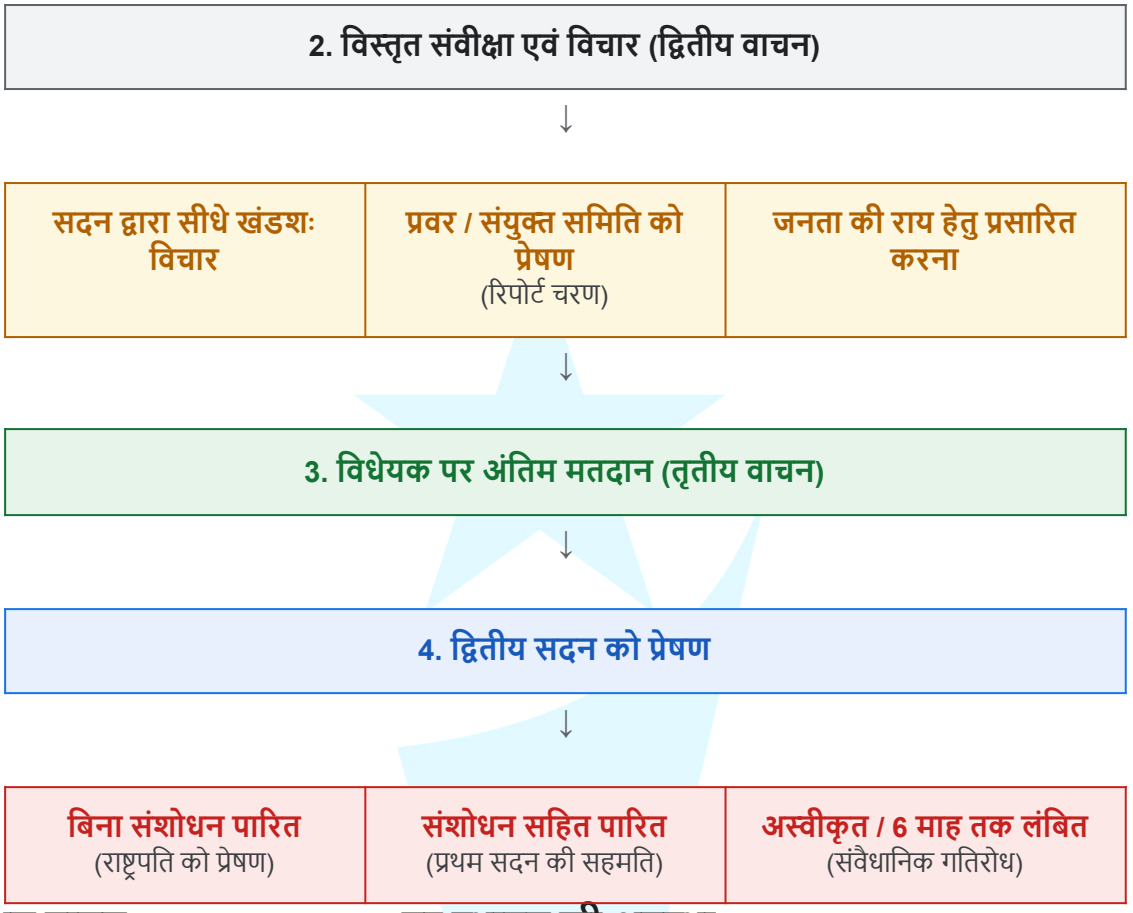
द. **संविधान संशोधन विधेयक (Constitution Amendment Bill - अनुच्छेद 368):** संविधान के किसी उपबंध को जोड़ने, परिवर्तित करने या निरसित करने हेतु लाया जाने वाला विधेयक।

साधारण विधेयक के विभिन्न विधायी चरण (अनुच्छेद 107)

संविधान के अनुच्छेद 107(1) के अनुसार, धन विधेयक और वित्त विधेयक (I) को छोड़कर कोई भी साधारण विधेयक संसद के किसी भी सदन (लोकसभा अथवा राज्यसभा) में प्रारंभ किया जा सकता है। किसी भी सदन में पारित होने से पूर्व प्रत्येक साधारण विधेयक को तीन अनिवार्य चरणों (वाचनों) से गुजरना पड़ता है।

1. विधेयक का पुरःस्थापन (प्रथम वाचन)

↓



प्रथम वाचन (First Reading): पुरःस्थापन की अवस्था

अ. **अनुमति की मांग:** संबंधित सदस्य अथवा मंत्री सदन के पीठासीन अधिकारी से विधेयक को पुरःस्थापित (Introduce) करने की अनुमति मांगता है।

ब. **शीर्षक एवं उद्देश्य का पठन:** अनुमति मिलने पर प्रस्तावक विधेयक का शीर्षक और उसके उद्देश्यों एवं कारणों का कथन पढ़ता है। इस चरण पर कोई विस्तृत चर्चा या बहस नहीं होती।

स. **भारत के राजपत्र में प्रकाशन:** पुरःस्थापन के पश्चात विधेयक को भारत के राजपत्र (Gazette of India) में प्रकाशित किया जाता है। यदि पीठासीन अधिकारी पूर्व अनुमति दे दे, तो विधेयक पुरःस्थापन से पूर्व भी राजपत्र में प्रकाशित किया जा सकता है; ऐसी स्थिति में सदन से औपचारिक अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं रहती।

द्वितीय वाचन (Second Reading): संवीक्षा एवं खंडशः विचार की अवस्था

यह विधायी प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, विस्तृत एवं निर्णायक चरण है। इसे दो उप-चरणों में विभाजित किया जाता है:

अ. **सामान्य चर्चा का चरण:** इस चरण में विधेयक के अंतर्निहित सिद्धांतों पर सामान्य विचार-विमर्श होता है। यहां सदन के समक्ष चार विकल्प होते हैं:

- वह विधेयक पर तुरंत विचार करे।
- वह विधेयक को सदन की एक **प्रवर समिति (Select Committee)** को सौंप दे।
- वह विधेयक को दोनों सदनों की एक **संयुक्त समिति (Joint Committee)** को सौंप दे।
- वह विधेयक पर जनता की राय जानने हेतु उसे परिपत्रित (Circulate) करे।

wincompete

ब. **समिति एवं रिपोर्ट चरण:** यदि विधेयक समिति को सौंपा जाता है, तो समिति उसके प्रत्येक खंड का सूक्ष्म परीक्षण करती है, साक्ष्य एकत्र करती है और आवश्यक संशोधनों के साथ अपना प्रतिवेदन (रिपोर्ट) सदन को प्रस्तुत करती है।

स. **खंडशः विचार चरण:** रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात सदन विधेयक के प्रत्येक खंड पर अलग-अलग विचार करता है। सदस्य इस चरण पर संशोधनों (Amendments) का प्रस्ताव रखते हैं। प्रत्येक खंड और उस पर प्रस्तुत संशोधनों पर पृथक-पृथक मतदान कराया जाता है।

तृतीय वाचन (Third Reading): अंतिम स्वीकृति की अवस्था

अ. **पारित करने का प्रस्ताव:** इस चरण में विधेयक के खंडों में कोई नया संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। बहस केवल इस बात तक सीमित रहती है कि विधेयक को संपूर्ण रूप से 'स्वीकार किया जाए अथवा अस्वीकार किया जाए'।

ब. **पारित होना:** यदि उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का **साधारण बहुमत** इसका समर्थन कर देता है, तो विधेयक उस सदन द्वारा पारित मान लिया जाता है। इसके पश्चात पीठासीन अधिकारी इसे दूसरे सदन के विचारार्थ प्रेषित करने हेतु अधिप्रमाणित करता है।

द्वितीय सदन में विधेयक की प्रक्रिया एवं संभावित विकल्प

जब प्रथम सदन द्वारा पारित कोई साधारण विधेयक दूसरे सदन में पहुंचता है, तो वहां भी उसे उन्हीं तीनों वाचनों (प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वाचन) से गुजरना पड़ता है। द्वितीय सदन के समक्ष निम्नलिखित चार संवैधानिक विकल्प होते हैं:

अ. **बिना किसी संशोधन के पारित करना:** यदि द्वितीय सदन विधेयक को बिना किसी बदलाव के पारित कर देता है, तो विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित माना जाता है और उसे राष्ट्रपति की औपचारिक स्वीकृति हेतु भेजा जाता है।

ब. **संशोधनों सहित पारित करना:** यदि द्वितीय सदन विधेयक में संशोधन करता है, तो उसे प्रथम सदन की सहमति हेतु वापस भेजा जाता है। यदि प्रथम सदन उन संशोधनों को स्वीकार कर लेता है, तो विधेयक राष्ट्रपति को भेजा जाता है।

स. **विधेयक को पूर्णतः अस्वीकृत करना:** यदि द्वितीय सदन विधेयक को सर्वथा अस्वीकार कर देता है, तो दोनों सदनों के मध्य गतिरोध उत्पन्न हो जाता है।

द. **कोई कार्रवाई न करना (अनिर्णय):** यदि द्वितीय सदन विधेयक को अपने पास लंबित रखता है और उसे प्राप्त होने की तारीख से **छह मास (6 माह)** से अधिक का समय व्यतीत हो जाता है, तब भी दोनों सदनों के मध्य औपचारिक संवैधानिक गतिरोध मान लिया जाता है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक: संवैधानिक प्रक्रिया एवं सीमाएं (अनुच्छेद 108)

Wincompete

संविधान का अनुच्छेद 108 साधारण विधेयकों और वित्त विधेयकों पर दोनों सदनों के मध्य उत्पन्न होने वाले विधायी गतिरोध को दूर करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint Sitting) आहूत करने का उपबंध करता है।

दोनों सदनों के मध्य विधायी गतिरोध

↓

1. विधेयक को दूसरे सदन द्वारा पूर्णतः अस्वीकार किया जाए	2. दोनों सदन संशोधनों पर अंतिम रूप से असहमत हो जाएं	3. विधेयक दूसरे सदन द्वारा 6 माह तक पारित न किया जाए

↓

राष्ट्रपति द्वारा संयुक्त बैठक की अधिसूचना / संदेश जारी करना
(अनुच्छेद 108)

↓

लोकसभा अध्यक्ष द्वारा बैठक की अध्यक्षता
(अनुच्छेद 118(4))

↓

कुल उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के साधारण बहुमत द्वारा विधेयक पारित

संयुक्त बैठक के अनिवार्य आधार (अनुच्छेद 108(1))

यदि किसी विधेयक को एक सदन द्वारा पारित किए जाने और दूसरे सदन को प्रेषित किए जाने के पश्चात:

- दूसरा सदन विधेयक को अस्वीकार कर दे।
- विधेयक में किए जाने वाले संशोधनों के बारे में दोनों सदन अंतिम रूप से असहमत हो गए हों।
- दूसरे सदन को विधेयक प्राप्त होने की तारीख से उसके द्वारा विधेयक पारित किए बिना छह मास से अधिक बीत गए हों।

छह मास की गणना का अपवाद (अनुच्छेद 108(2)): छह मास की अवधि की संगणना करते समय उन दिनों को नहीं गिना जाएगा जिनमें दूसरा सदन सत्रावसान या लगातार चार से अधिक दिनों के लिए स्थगित रहा हो।

लोकसभा के विघटन का प्रभाव (अनुच्छेद 108(5))

यदि राष्ट्रपति ने संयुक्त बैठक बुलाने के अपने आशय की अधिसूचना जारी कर दी है, तो उसके पश्चात लोकसभा का विघटन हो जाने पर भी संयुक्त बैठक रोकी नहीं जा सकती। संयुक्त बैठक अपने नियत समय पर आयोजित होगी और विधेयक पर विचार किया जाएगा।

संयुक्त बैठक की अध्यक्षता एवं संचालन के नियम (अनुच्छेद 118(4))

अ. **अध्यक्षता का वरीयता क्रम:**

- **लोकसभा का अध्यक्ष** अनिवार्य रूप से संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है।
- अध्यक्ष की अनुपस्थिति में **लोकसभा का उपाध्यक्ष** अध्यक्षता करता है।
- यदि दोनों अनुपस्थित हों, तो **राज्यसभा का उपसभापति** अध्यक्षता करता है।

www.iCompete

- **संवैधानिक अपवाद: राज्यसभा का सभापति (उपराष्ट्रपति) कभी भी संयुक्त बैठक की अध्यक्षता नहीं कर सकता**, क्योंकि वह संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता।

ब. **प्रक्रियात्मक नियम:** संयुक्त बैठक का संचालन लोकसभा के प्रक्रिया नियमों के अनुसार होता है, न कि राज्यसभा के नियमों से।

स. **गणपूर्ति (कोरम):** संयुक्त बैठक की गणपूर्ति दोनों सदनों की कुल सदस्य संख्या का **एक-दशांश (1/10)** होती है।

द. **बहुमत की प्रकृति:** संयुक्त बैठक में कोई भी विधेयक दोनों सदनों के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के **साधारण बहुमत** से पारित किया जाता है। लोकसभा की विशाल सदस्य संख्या (543) के कारण सामान्यतः संयुक्त बैठक में लोकसभा की इच्छा ही प्रभावी होती है।

संयुक्त बैठक में संशोधनों की सीमाएं (अनुच्छेद 108(4))

संयुक्त बैठक में कोई नया संशोधन प्रस्तावित नहीं किया जा सकता, सिवाय दो विशिष्ट परिस्थितियों के:

- वे संशोधन जो दोनों सदनों के मध्य गतिरोध उत्पन्न करने वाले विषयों से सीधे संबंधित हों।
- वे संशोधन जो उस समय की देरी के कारण आवश्यक हो गए हों। (इस संदर्भ में पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम होता है)।

वे विधेयक जिन पर संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं है

अ. **धन विधेयक (अनुच्छेद 109 एवं 110):** धन विधेयक के संबंध में राज्यसभा को कोई प्रभावी शक्ति प्राप्त नहीं है; वह इसे केवल 14 दिन तक रोक सकती है। अतः इस पर गतिरोध संभव ही नहीं है और संयुक्त बैठक का कोई उपबंध नहीं है।

ब. **संविधान संशोधन विधेयक (अनुच्छेद 368):** संविधान संशोधन विधेयक को संसद के दोनों सदनों द्वारा पृथक-पृथक अपने **विशेष बहुमत** (कुल सदस्यों का बहुमत तथा उपस्थित व मतदान करने वालों का दो-तिहाई) से पारित किया जाना अनिवार्य है। यदि एक सदन भी इसे अस्वीकृत कर दे, तो विधेयक समाप्त हो जाता है; इस पर अनुच्छेद 108 लागू नहीं होता।

भारतीय संसदीय इतिहास में संयुक्त बैठक के ऐतिहासिक दृष्टांत

अब तक भारतीय संसद के इतिहास में केवल तीन विधेयकों के संदर्भ में संयुक्त बैठक का आयोजन किया गया है:

क्रमांक	विधेयक का नाम	वर्ष	तत्कालीन प्रधानमंत्री	परिणाम एवं विधिक महत्व
प्रथम	**दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1959**	1961	पं. जवाहरलाल नेहरू	दोनों सदनों में मतभेद के पश्चात संयुक्त बैठक में पारित हुआ; दहेज निवारण अधिनियम, 1961 बना।

wincompete

द्वितीय	**बैंकिंग सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1977**	1978	मोरारजी देसाई	राज्यसभा द्वारा अस्वीकृत किए जाने के बाद संयुक्त बैठक में पारित किया गया।
तृतीय	**आतंकवाद निवारण विधेयक (POTA), 2002**	2002	अटल बिहारी वाजपेयी	राज्यसभा में विपक्ष के बहुमत द्वारा गिराए जाने के बाद संयुक्त बैठक में पारित हुआ।

(विशेष संदर्भ: वर्ष 2008 में महिला आरक्षण विधेयक पर संयुक्त बैठक आयोजित नहीं की गई थी; यह केवल राज्यसभा में लंबित था)।

धन विधेयक की विशद संवैधानिक परिभाषा (अनुच्छेद 110)

संविधान का अनुच्छेद 110(1) धन विधेयक की एक अत्यंत तकनीकी और कठोर परिभाषा प्रस्तुत करता है। कोई विधेयक केवल तभी धन विधेयक माना जाएगा यदि उसमें निम्नलिखित छह विषयों (उपखंड क से च) में से केवल एक या अधिक उपबंध शामिल हों:

अनुच्छेद 110(1) के विषय (धन विधेयक)

↓

(क) करों संबंधी प्रावधान	(ख) धन उधार लेना	(ग) निधियों की अभिरक्षा
किसी कर का अधिरोपण, उन्मूलन, छूट, परिवर्तन या नियमन।	संघ सरकार द्वारा धन उधार लेने का विनियमन या वित्तीय भार।	भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा व जमा/निकासी।

↓

(घ) धन का विनियोग	(ङ) संचित निधि पर भारित व्यय	(च) लोक लेखा व संपरीक्षा
भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग (Appropriation)।	किसी व्यय को संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना या बढ़ाना।	संचित निधि/लोक लेखे में प्राप्ति या संघ/राज्य के खातों की संपरीक्षा।

wincompete

अनुच्छेद 110(1) के विशिष्ट उपबंध

अ. **उपखंड (क):** किसी कर का अधिरोपण (Imposition), उत्सादन (Abolition), परिहार (Remission), परिवर्तन या विनियमन।

ब. **उपखंड (ख):** भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने का अथवा कोई प्रत्याभूति (Guarantee) देने का विनियमन, अथवा भारत सरकार द्वारा अपने ऊपर ली गई वित्तीय बाध्यताओं से संबंधित विधि का संशोधन।

स. **उपखंड (ग):** भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) या भारत की आकस्मिकता निधि (Contingency Fund of India) की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन जमा करना या उसमें से धन निकालना।

द. **उपखंड (घ):** भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग (Appropriation of moneys)।

य. **उपखंड (ङ):** किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय (Expenditure Charged) घोषित करना अथवा ऐसे किसी व्यय की राशि को बढ़ाना।

र. **उपखंड (च):** भारत की संचित निधि या भारत के लोक लेखे (Public Account) के पेटे धन की प्राप्ति या ऐसे धन की अभिरक्षा या उसका निर्गमन, अथवा संघ या राज्य के लेखाओं की संपरीक्षा (Audit)।

ल. **उपखंड (छ):** उपखंड (क) से (च) में विनिर्दिष्ट किसी विषय का कोई आनुषंगिक (Incidental) विषय।

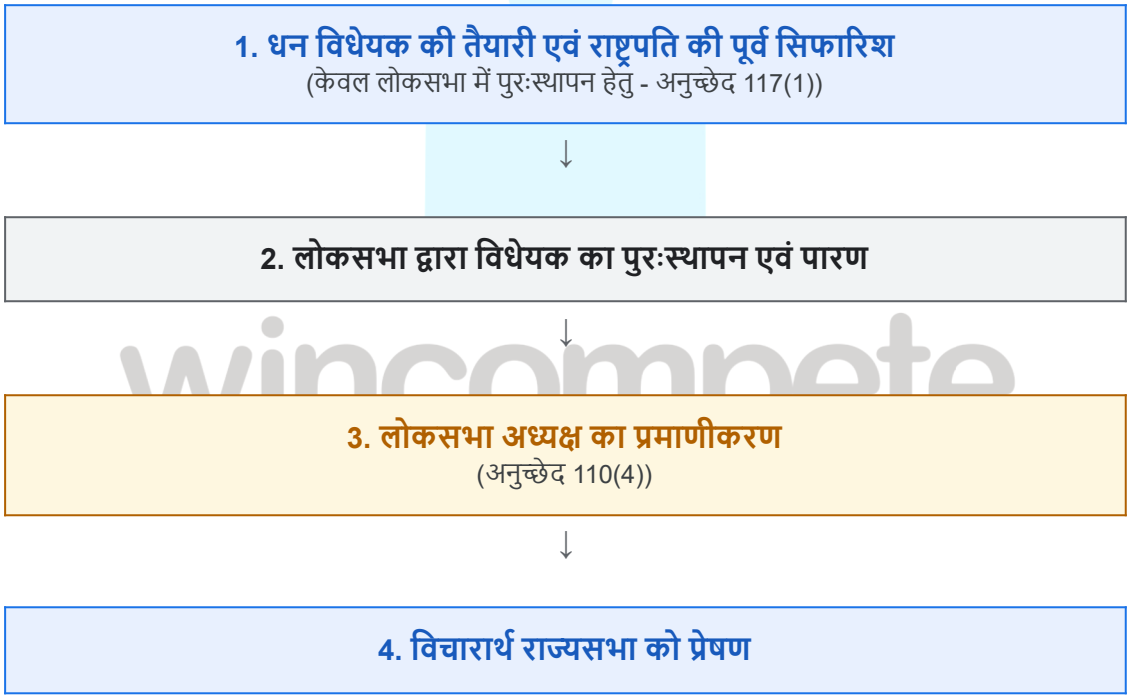
वे विषय जो धन विधेयक नहीं हैं (अनुच्छेद 110(2))

कोई विधेयक केवल इस कारण धन विधेयक नहीं समझा जाएगा कि वह:

- जुर्मानों (Fines) या अन्य धनीय शास्तियों के अधिरोपण का उपबंध करता है।
- अनुज्ञप्तियों (Licences) के लिए फीसों या सेवाओं के लिए फीसों की मांग या उनके संदाय का उपबंध करता है।
- किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन का उपबंध करता है।

धन विधेयक के संदर्भ में विशेष विधायी प्रक्रिया (अनुच्छेद 109)

संविधान का अनुच्छेद 109 धन विधेयकों के संबंध में एक अत्यंत अनूठी और विभेदकारी प्रक्रिया निर्धारित करता है, जो वित्तीय मामलों में लोकसभा की निर्विवाद संप्रभुता स्थापित करती है।



↙ ↓ ↘

14 दिन में सिफारिश सहित वापसी	14 दिन में बिना सिफारिश वापसी	14 दिन तक कोई कार्रवाई नहीं
लोकसभा सिफारिशें स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है	विधेयक उसी रूप में दोनों सदनों से पारित माना जाएगा	14 दिन पश्चात मूल रूप में स्वतः पारित मान लिया जाएगा

प्रक्रियात्मक चरण एवं कठोर सीमाएं

अ. **केवल लोकसभा में प्रस्तुति:** धन विधेयक राज्यसभा में पुरःस्थापित नहीं किया जा सकता। यह केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत हो सकता है।

ब. **राष्ट्रपति की पूर्व अनुशंसा:** धन विधेयक को राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश के बिना संसद में पेश नहीं किया जा सकता।

स. **राज्यसभा की सीमित शक्तियां:**

- राज्यसभा धन विधेयक को **अस्वीकृत नहीं कर सकती**।
- राज्यसभा धन विधेयक में कोई **संशोधन नहीं कर सकती**; वह केवल संशोधनों की **सिफारिश (Recommendations)** कर सकती है।
- राज्यसभा को धन विधेयक प्राप्त होने की तारीख से **14 दिन के भीतर** उसे लोकसभा को लौटाना अनिवार्य होता है।

द. **सिफारिशों पर लोकसभा का एकाधिकार:** यदि राज्यसभा किसी संशोधन की सिफारिश करती है, तो लोकसभा उस सिफारिश को स्वीकार कर सकती है अथवा पूर्णतः अस्वीकार कर सकती है। यदि लोकसभा सिफारिश अस्वीकार कर देती है, तो विधेयक उसी रूप में पारित माना जाता है जिस रूप में लोकसभा ने पारित किया था।

य. **14 दिन की समाप्ति का विधिक प्रभाव:** यदि राज्यसभा 14 दिन के भीतर विधेयक को लोकसभा को वापस नहीं भेजती है, तो 14 दिन की अवधि समाप्त होते ही वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा उसी रूप में पारित मान लिया जाता है।

वित्त विधेयक: श्रेणियां एवं धन विधेयक से तुलनात्मक विन्यास

प्रत्येक धन विधेयक वित्त विधेयक होता है, किंतु प्रत्येक वित्त विधेयक धन विधेयक नहीं होता। वित्त विधेयक वह विधेयक है जो वित्तीय मामलों (राजस्व या व्यय) से संबंधित होता है। संविधान में वित्त विधेयकों की दो विशिष्ट श्रेणियां स्थापित की गई हैं:

वित्त विधेयक (I) - अनुच्छेद 117(1)

अ. **परिभाषा:** ऐसा विधेयक जिसमें अनुच्छेद 110(1) में विनिर्दिष्ट मामलों में से किसी मामले के लिए उपबंध करने के साथ-साथ अन्य सामान्य विधायी उपबंध भी शामिल होते हैं।

ब. **धन विधेयक से समानताएं:**

- यह केवल **लोकसभा में ही पुरःस्थापित** किया जा सकता है, राज्यसभा में नहीं।
- यह केवल **राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश** से ही पेश किया जा सकता है।

wincompete

स. **साधारण विधेयक से समानताएं:**

- एक बार लोकसभा में पुरःस्थापित होने के पश्चात यह पूरी तरह एक **साधारण विधेयक की भांति** संचालित होता है।
- राज्यसभा इसे संशोधित कर सकती है अथवा पूर्णतः अस्वीकार कर सकती है।
- दोनों सदनों में असहमति की स्थिति में राष्ट्रपति **अनुच्छेद 108 के तहत संयुक्त बैठक** आहूत कर सकता है।

वित्त विधेयक (II) - अनुच्छेद 117(3)

अ. **परिभाषा:** ऐसा विधेयक जिसमें भारत की संचित निधि से व्यय करने से संबंधित उपबंध शामिल हैं, किंतु अनुच्छेद 110(1) में उल्लिखित कोई भी विषय (जैसे कर लगाना आदि) उसमें सम्मिलित नहीं है। यह मूलतः एक साधारण विधेयक ही होता है जिसके लागू होने पर सरकारी खजाने से व्यय होना तय होता है।

ब. **प्रक्रियात्मक विशिष्टता:**

- यह संसद के **किसी भी सदन (लोकसभा अथवा राज्यसभा) में प्रारंभ** किया जा सकता है।
- इसे पुरःस्थापित करने हेतु राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश की आवश्यकता नहीं होती।
- **पारित करने पर निर्बंधन:** इसे संसद का कोई भी सदन तब तक **पारित नहीं कर सकता** जब तक कि राष्ट्रपति ने उस पर विचार करने के लिए उस सदन से सिफारिश न की हो।
- राज्यसभा को इसके संदर्भ में पूर्ण शक्तियां प्राप्त हैं और गतिरोध होने पर **संयुक्त बैठक** बुलाई जा सकती है।

विधेयकों का तुलनात्मक विन्यास चार्ट

तुलना का आधार	**साधारण विधेयक**	**धन विधेयक (अनुच्छेद 110)**	**वित्त विधेयक I (अनुच्छेद 117(1))**	**वित्त विधेयक II (अनुच्छेद 117(3))**
प्रारंभ होने का सदन	किसी भी सदन में	**केवल लोकसभा में**	**केवल लोकसभा में**	किसी भी सदन में
राष्ट्रपति की पूर्व सिफारिश	आवश्यक नहीं	**अनिवार्य है**	**अनिवार्य है**	पुरःस्थापन हेतु नहीं; विचार/पारित करने हेतु आवश्यक
अध्यक्ष का प्रमाणीकरण	आवश्यक नहीं	**अनिवार्य है**	आवश्यक नहीं	आवश्यक नहीं

wincompete

राज्यसभा की शक्ति	संशोधन/अस्वीकार कर सकती है (अधिकतम 6 माह)	**न अस्वीकार, न संशोधन;** केवल 14 दिन की देरी	संशोधन या अस्वीकार कर सकती है	संशोधन या अस्वीकार कर सकती है
संयुक्त बैठक (अनुच्छेद 108)	**प्रावधान है**	**पूर्णतः वर्जित**	**प्रावधान है**	**प्रावधान है**
राष्ट्रपति के विकल्प (अनुच्छेद 111)	अनुमति दे, रोके, या **पुनर्विचार हेतु लौटाए**	अनुमति दे या रोके; **पुनर्विचार हेतु लौटा नहीं सकता**	अनुमति दे, रोके, या पुनर्विचार हेतु लौटाए	अनुमति दे, रोके, या पुनर्विचार हेतु लौटाए

बजट निर्माण एवं विधायी प्रक्रिया (अनुच्छेद 112 से 116)

संविधान में 'बजट' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है; इसके स्थान पर अनुच्छेद 112 में इसे **'वार्षिक वित्तीय विवरण' (Annual Financial Statement)** कहा गया है। यह प्रत्येक वित्तीय वर्ष (1 अप्रैल से 31 मार्च) के संबंध में भारत सरकार की अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का विवरण होता है।

संचित निधि पर भारित व्यय बनाम देय व्यय (अनुच्छेद 112(3))

बजट में दर्शाए गए व्यय को दो स्पष्ट श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

अ. **भारत की संचित निधि पर भारित व्यय (Expenditure Charged):**

- यह व्यय गैर-मतदेय (Non-votable) होता है। इस पर संसद में विस्तृत चर्चा हो सकती है, किंतु **सदन में इस पर मतदान नहीं कराया जाता**।
- **प्रमुख भारित व्यय:** राष्ट्रपति की परिलब्धियां और भत्ते; राज्यसभा के सभापति, उपसभापति तथा लोकसभा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के वेतन-भत्ते; सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते और पेंशन; उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की **पेंशन** (उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का वेतन राज्य की संचित निधि पर भारित होता है, किंतु पेंशन भारत की संचित निधि पर); कैग (CAG) का वेतन-भत्ता व पेंशन; ऋण प्रभार जिनका दायित्व भारत सरकार पर है; तथा किसी न्यायालय या अधिकरण की डिक्री या पंचाट।

ब. **संचित निधि से किए जाने वाले अन्य व्यय (देय व्यय):** यह मतदेय (Votable) होता है। इसे लोकसभा के समक्ष **अनुदानों की मांगों (Demands for Grants)** के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और इस पर मतदान कराया जाता है।

Wincompete

बजट के छह प्रमुख विधायी चरण

1. बजट का प्रस्तुतीकरण
(अनुच्छेद 112 - वित्त मंत्री द्वारा)

↓

2. आम चर्चा / सामान्य बहस
(3-4 दिन दोनों सदनों में)

↓

3. विभागीय समितियों द्वारा संवीक्षा
(सदन 3-4 सप्ताह के लिए स्थगित)

↓

4. अनुदानों की मांगों पर मतदान
(केवल लोकसभा में; कटौती प्रस्ताव व गिलोटिन)

↓

5. विनियोग विधेयक का पारण
(अनुच्छेद 114 - संचित निधि से धन निकासी प्राधिकार)

↓

6. वित्त विधेयक का पारण
(कराधान प्रस्तावों को विधिक रूप देना - 75 दिन सीमा)

अ. **बजट का प्रस्तुतीकरण:** वित्त मंत्री द्वारा लोकसभा में बजट भाषण के साथ बजट प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ ही 'राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003' (FRBM Act) के तहत अनिवार्य दस्तावेज भी रखे जाते हैं।

ब. **सामान्य बहस:** बजट प्रस्तुति के कुछ दिनों बाद दोनों सदनों में बजट पर सामान्य चर्चा होती है, जिसमें सरकार की राजकोषीय नीतियों की समीक्षा होती है।

स. **विभागीय समितियों द्वारा संवीक्षा:** सामान्य बहस के उपरांत संसद 3 से 4 सप्ताह के लिए स्थगित हो जाती है। इस अवधि में संसद की **24 विभागीय स्थायी समितियां (DRSCs)** विभिन्न मंत्रालयों की अनुदान मांगों का गहन परीक्षण करती हैं और अपनी विस्तृत रिपोर्ट दोनों सदनों को सौंपती हैं।

द. **अनुदानों की मांगों पर मतदान (अनुच्छेद 113):** केवल **लोकसभा** को अनुदानों की मांगों पर मतदान करने का अधिकार है; राज्यसभा को यह अधिकार नहीं है। इस दौरान विपक्षी सदस्य सरकारी खर्चों में कटौती करने हेतु तीन प्रकार के **कटौती प्रस्ताव (Cut Motions)** लाते हैं:

- **नीतिगत कटौती (Policy Cut):** मांग की राशि घटाकर '1 रुपया' कर दी जाए (नीति की पूर्ण अस्वीकृति)।
- **आर्थिक कटौती (Economy Cut):** मांग में से एक 'निर्दिष्ट राशि' कम कर दी जाए।
- **सांकेतिक कटौती (Token Cut):** मांग में से '100 रुपये' कम किए जाएं (विशिष्ट शिकायत हेतु)।
- **गिलोटिन (Guillotine):** अनुदान मांगों पर चर्चा हेतु निर्धारित समय समाप्त होने पर, बिना चर्चा वाली शेष सभी मांगों को अध्यक्ष द्वारा सीधे एक साथ मतदान हेतु रख दिया जाता है।

www.compete

य. **विनियोग विधेयक (Appropriation Bill - अनुच्छेद 114):** संविधान का अनुच्छेद 114 स्पष्ट उपबंध करता है कि विधि के प्राधिकार के बिना भारत की संचित निधि में से कोई धन नहीं निकाला जा सकता। अतः लोकसभा द्वारा स्वीकृत अनुदानों की मांगों तथा संचित निधि पर भारित व्यय की पूर्ति हेतु विनियोग विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। इसके अधिनियमित होने के उपरांत ही सरकार खजाने से धन निकाल सकती है।

र. **वित्त विधेयक (Finance Bill):** सरकार के कराधान प्रस्तावों को कानूनी रूप देने हेतु वित्त विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। अनंतिम कर संग्रहण अधिनियम, 1931 के अनुसार वित्त विधेयक को इसके पुरःस्थापन की तिथि से **75 दिनों के भीतर** संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत होना अनिवार्य होता है।

असाधारण वित्तीय अनुदान: लेखानुदान, प्रत्ययानुदान एवं अपवाद अनुदान (अनुच्छेद 115 एवं 116)

सामान्य बजट प्रक्रिया के अतिरिक्त वित्तीय वर्ष के दौरान अप्रत्याशित वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संविधान में विशेष अनुदानों की व्यवस्था की गई है:

अनुच्छेद 116 के अंतर्गत विशेष अनुदान

अ. **लेखानुदान (Vote on Account):** बजट प्रक्रिया के 31 मार्च तक पूर्ण न हो पाने की स्थिति में, नए वित्तीय वर्ष के आरंभिक महीनों (सामान्यतः दो माह) में प्रशासनिक खर्च चलाने हेतु लोकसभा द्वारा विनियोग विधेयक पारित होने से पूर्व ही अग्रिम राशि स्वीकृत कर दी जाती है। यह कुल अनुमानित बजट व्यय के 1/6 भाग के बराबर होती है। (नोट: वर्ष 2017 से बजट 1 फरवरी को पेश किए जाने के कारण विनियोग विधेयक 31 मार्च से पूर्व ही पारित हो जाता है, जिससे नियमित बजट में लेखानुदान की आवश्यकता प्रायः समाप्त हो गई है; यह अब केवल चुनावी वर्षों में अंतरिम बजट के समय प्रयुक्त होता है)।

ब. **प्रत्ययानुदान (Vote of Credit):** किसी राष्ट्रीय आपातकाल या युद्ध जैसी अप्रत्याशित आवश्यकता की पूर्ति के लिए, जिसकी अनिश्चित प्रकृति के कारण बजट में उसका वित्तीय ब्योरा देना संभव न हो, संसद द्वारा सरकार को दिया जाने वाला अग्रिम वित्तीय अधिकार। इसे संसद द्वारा कार्यपालिका को दिया गया **'कोरा चेक' (Blank Cheque)** कहा जाता है।

स. **अपवाद अनुदान (Exceptional Grant):** किसी विशेष वित्तीय वर्ष के चालू सेवा का भाग न होने वाले किसी विशिष्ट और असाधारण प्रयोजन हेतु दिया जाने वाला अनुदान।

अनुच्छेद 115 के अंतर्गत अनुपूरक एवं अतिरिक्त अनुदान

अ. **अनुपूरक अनुदान (Supplementary Grant):** जब चालू वित्तीय वर्ष में किसी विशिष्ट सेवा हेतु संसद द्वारा अधिकृत राशि उस वर्ष के लिए अपर्याप्त सिद्ध होती है।

ब. **अतिरिक्त अनुदान (Additional Grant):** जब चालू वित्तीय वर्ष के बजट में परिकल्पित न की गई किसी सर्वथा नवीन सेवा पर अप्रत्याशित व्यय करना आवश्यक हो जाता है।

स. **अधिक अनुदान (Excess Grant):** जब किसी वित्तीय वर्ष में किसी सेवा पर उस वर्ष के लिए अधिकृत राशि से अधिक धन वास्तव में खर्च हो गया हो। यह अनुदान वित्तीय वर्ष की समाप्ति के बाद संसद द्वारा स्वीकृत किया जाता है और इसके लिए संसद में प्रस्तुत किए जाने से पूर्व **लोक लेखा समिति (PAC)** का अनुमोदन अनिवार्य होता है।

संसदीय प्रक्रिया संबंधी प्रमुख संवैधानिक एवं विधिक शब्दावली

अ. **विनियोग (Appropriation):** संसद द्वारा निर्मित कानूनी अधिनियम के माध्यम से किसी विनिर्दिष्ट लोक प्रयोजन हेतु संचित निधि में से धनराशि निकालने का अनन्य विधिक प्राधिकार।

wincompete

ब. **गिलोटिन (Guillotine):** बजटीय कार्यप्रणाली में समय-सीमा समाप्त होने पर बची हुई सभी अनुदान मांगों को बिना किसी चर्चा के सीधे मतदान हेतु पटल पर रखने की प्रक्रिया।

स. **निर्णायक मत (Casting Vote):** अनुच्छेद 100(1) के अंतर्गत संयुक्त बैठक अथवा सामान्य बैठक में पक्ष एवं विपक्ष के मत पूर्णतः बराबर होने पर पीठासीन अधिकारी द्वारा दिया जाने वाला गतिरोध भंजक मत।

द. **भारित व्यय (Charged Expenditure):** वह संवैधानिक व्यय जो संसद द्वारा मतदान के अधीन नहीं होता, जिसका उद्देश्य संवैधानिक पदाधिकारियों को कार्यपालिका के वित्तीय दबाव से स्वतंत्र रखना है।

य. **अधिप्रमाणीकरण (Endorsement):** अनुच्छेद 110(4) के तहत लोकसभा अध्यक्ष द्वारा किसी विधेयक पर हस्ताक्षरित यह आधिकारिक घोषणा कि प्रस्तुत विधेयक पूर्णतः एक धन विधेयक है।

र. **प्रवर समिति (Select Committee):** किसी विशिष्ट विधेयक की तकनीकी एवं कानूनी धाराओं की सूक्ष्म संवीक्षा हेतु केवल एक सदन के सदस्यों को मिलाकर गठित की जाने वाली तदर्थ संसदीय समिति।

ल. **संवैधानिक गतिरोध (Deadlock):** किसी साधारण या वित्त विधेयक के संदर्भ में दोनों सदनों के मध्य उत्पन्न वह विधिक अनिर्णय जिसे सामान्य विधायी प्रक्रिया से सुलझाना असंभव हो जाए और जिसके समाधान हेतु अनुच्छेद 108 की संयुक्त बैठक अनिवार्य हो जाए।

अध्याय 11: संसदीय वित्तीय समितियां: लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति एवं सार्वजनिक उपक्रम समिति

संसदीय वित्तीय नियंत्रण का संवैधानिक दर्शन एवं समितियों का उद्भव

संसदीय लोकतंत्र का मूलभूत आधार यह है कि जनता के धन का कोई भी भाग विधायिका की संप्रभु अनुमति के बिना न तो कर के रूप में वसूला जा सकता है और न ही संचित निधि से व्यय किया जा सकता है (अनुच्छेद 265 एवं अनुच्छेद 114)। भारतीय संविधान के अंतर्गत संसद कार्यपालिका पर वित्तीय नियंत्रण स्थापित करती है। तथापि, संसद का आकार अत्यंत विस्तृत होने, विधायी समयावधि की सीमा तथा आधुनिक वित्तीय आंकड़ों की जटिल तकनीकी प्रकृति के कारण संपूर्ण सदन के लिए प्रत्येक सार्वजनिक व्यय की सूक्ष्म संवीक्षा करना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं होता।

इस प्रशासनिक एवं विधायी आवश्यकता की पूर्ति हेतु संविधान के **अनुच्छेद 105** (संसदीय विशेषाधिकार) तथा **अनुच्छेद 118(1)** (प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियम बनाने की शक्ति) के अधीन वित्तीय समितियों की सुदृढ़ प्रणाली स्थापित की गई है। वित्तीय समितियां कार्यपालिका पर संसद के वित्तीय पहरुए (Financial Watchdog) के रूप में निरंतर निगरानी रखती हैं।

समितियों की संस्थागत विकास यात्रा

अ. **मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार (1919 का अधिनियम):** भारत में संसदीय वित्तीय समितियों की ऐतिहासिक शुरुआत वर्ष 1921 में भारत सरकार अधिनियम, 1919 के उपबंधों के आधार पर हुई, जब प्रथम बार **लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee)** अस्तित्व में आई।

ब. **स्वतंत्रता उपरांत पुनर्गठन (1950):** भारत के प्रथम वित्त मंत्री जॉन मथाई की अनुशंसा पर वर्ष 1950 में स्वतंत्र भारत की पहली **प्राक्कलन समिति (Estimates Committee)** का गठन किया गया।

स. **सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार एवं कृष्ण मेनन समिति (1964):** स्वतंत्र भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के तीव्र विस्तार के उपरांत उपक्रमों की दक्षता के परीक्षण हेतु कृष्ण मेनन समिति की संस्तुति पर वर्ष 1964 में **सार्वजनिक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings)** का गठन किया गया।

संसदीय वित्तीय समितियों की सामान्य संरचना एवं निर्वाचन प्रक्रिया

तीनों वित्तीय समितियां लोकसभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियमों के तहत गठित की जाने वाली **स्थायी समितियां (Standing Committees)** हैं। इनका गठन प्रतिवर्ष किया जाता है तथा इनकी निर्वाचन पद्धति विशिष्ट लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित है।

1. सदस्यों द्वारा नामांकन(लोकसभा / राज्यसभा में)

↓

2. एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व(STV प्रणाली)

↓

3. दलीय शक्ति के अनुपात में चयन

↓

4. लोकसभा अध्यक्ष द्वारा सभापति का मनोनयन(PAC में 1967 से अनिवार्यतः मुख्य विपक्षी दल का नेता/सदस्य)

निर्वाचन एवं कार्यकाल संबंधी नियम

अ. **निर्वाचन की आनुपातिक पद्धति:** समितियों के सदस्यों का चुनाव संसद के दोनों सदनों द्वारा **आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote)** द्वारा प्रतिवर्ष गुप्त मतदान से किया जाता है। इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सदन में उपस्थित प्रत्येक राजनीतिक दल अथवा समूह को उसकी सदस्य संख्या के अनुपात में समितियों में यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके।

wincompete

ब. **कार्यकाल:** वित्तीय समितियों के सदस्यों का कार्यकाल **एक वर्ष** का होता है। प्रत्येक वर्ष इनका पुनर्गठन किया जाता है।

स. **मंत्रियों की सदस्यता पर पूर्ण प्रतिबंध:** किसी भी वित्तीय समिति में **केंद्रीय सरकार का कोई भी मंत्री निर्वाचित या सदस्य नहीं हो सकता**। यदि कोई सदस्य समिति का सदस्य चुने जाने के पश्चात बाद में मंत्री नियुक्त हो जाता है, तो मंत्री पद ग्रहण करने की तिथि से ही समिति में उसकी सदस्यता स्वतः समाप्त हो जाती

है। यह नियम कार्यपालिका से विधायी संवीक्षा की पूर्ण स्वायत्तता और निष्पक्षता सुनिश्चित करने हेतु अत्यंत कठोरता से लागू किया जाता है।

द. **सभापति का मनोनयन:** तीनों वित्तीय समितियों के सभापतियों का मनोनयन **लोकसभा अध्यक्ष** द्वारा समिति के चुने हुए सदस्यों में से किया जाता है।

लोक लेखा समिति (PAC): गठन, संरचना एवं परंपराएं

लोक लेखा समिति भारतीय संसद की सबसे पुरानी, प्रतिष्ठित एवं प्रमुख वित्तीय स्थायी समिति है। इसे प्रायः संसद का 'सर्वोच्च वित्तीय पहरुआ' माना जाता है।

समिति का संख्यात्मक ढांचा

अ. **कुल सदस्य संख्या:** समिति में कुल **22 सदस्य** होते हैं।

- **लोकसभा से सदस्य:** 15
- **राज्यसभा से सदस्य:** 07

ब. **ऐतिहासिक संरचनात्मक परिवर्तन:**

- वर्ष 1921 से 1954 तक लोक लेखा समिति में केवल केंद्रीय विधानसभा (बाद में लोकसभा) के सदस्य ही सम्मिलित होते थे।
- वर्ष **1954-55** में पहली बार नियमों में संशोधन कर राज्यसभा के 7 सदस्यों को समिति में सह-योजित (Associate) किया गया, जिससे संसद के दोनों सदनों की संयुक्त संवीक्षा संभव हो सके।

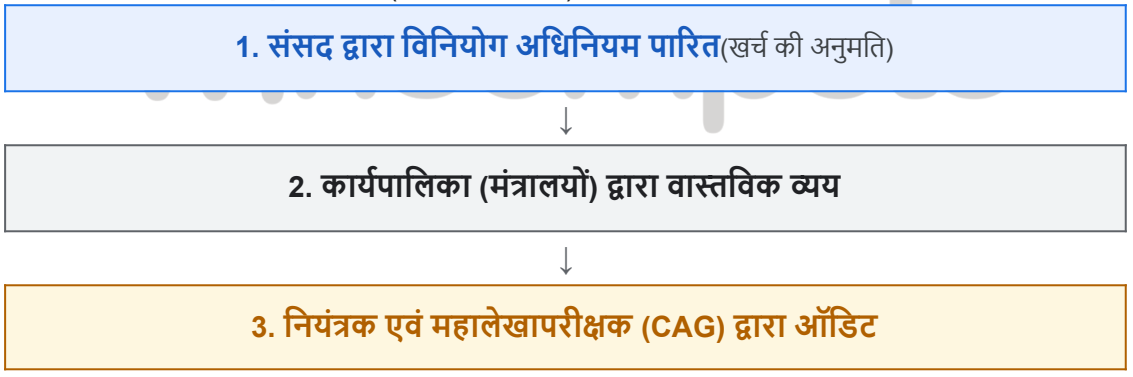
विपक्ष के सभापति की संवैधानिक परंपरा

अ. **1967 से पूर्व की स्थिति:** वर्ष 1966-67 तक लोक लेखा समिति के सभापति के रूप में लोकसभा अध्यक्ष द्वारा सदैव सत्ताधारी दल के किसी वरिष्ठ सदस्य को ही नामित किया जाता था।

ब. **1967 का युगांतकारी परिवर्तन:** चौथी लोकसभा (1967) के पश्चात एक स्वस्थ एवं अनिवार्य संसदीय परंपरा स्थापित हुई, जिसके तहत लोकसभा अध्यक्ष द्वारा **विपक्ष के किसी वरिष्ठ सदस्य** को ही इस समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है। स्वतंत्र भारत में इस परंपरा के तहत प्रथम विपक्षी सभापति बनने का श्रेय **मीनू मसानी** (स्वतंत्र पार्टी) को प्राप्त हुआ। 1969 के पश्चात सामान्यतः मुख्य विपक्षी दल के नेता अथवा वरिष्ठतम सांसद को ही यह उत्तरदायित्व सौंपा जाता है।

लोक लेखा समिति के अधिकार क्षेत्र, कार्य एवं प्रशासनिक सीमाएं

लोक लेखा समिति का मुख्य कार्य संसद द्वारा कार्यपालिका को स्वीकृत किए गए धन के वास्तविक व्यय की विधिक एवं आर्थिक शुद्धता की संवीक्षा करना है। यह कार्यपालिका द्वारा किए गए व्यय के उपरांत (Post-Mortem) जांच करती है।



↓

4. राष्ट्रपति द्वारा CAG की रिपोर्ट संसद में रखवाना

↓

5. लोक लेखा समिति (PAC) द्वारा गहन संवीक्षा(CAG 'मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक' के रूप में)

↓

6. संसद के पटल पर PAC का अंतिम प्रतिवेदन

समिति के मुख्य परीक्षण बिंदु

अ. **विनियोग लेखाओं (Appropriation Accounts) की जांच:** समिति यह जांच करती है कि जो धन संचित निधि से निकाला गया, वह उसी विशिष्ट सेवा या प्रयोजन पर व्यय हुआ जिसके लिए संसद ने उसे स्वीकृत किया था।

ब. **विधिक प्राधिकार की जांच:** क्या व्यय उस प्राधिकारी की औपचारिक वित्तीय स्वीकृति के अनुसार किया गया था जो इसके लिए कानूनी रूप से अधिकृत था?

स. **पुनर्विनियोग (Re-appropriation) की वैधता:** क्या एक मद से दूसरी मद में धन का अंतरण सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए विधिक नियमों के अनुसार हुआ है?

द. **अधिक अनुदान (Excess Grants) की अनिवार्य जांच:** यदि किसी वित्तीय वर्ष में किसी सेवा पर संसद द्वारा स्वीकृत राशि से अधिक धन वास्तव में व्यय हो गया हो, तो ऐसे अतिरिक्त व्यय को संसद द्वारा नियमित किए जाने से पूर्व लोक लेखा समिति का अनुमोदन अनिवार्य होता है (अनुच्छेद 115)।

य. **मितव्ययिता एवं वित्तीय औचित्य का परीक्षण:** समिति केवल वैधानिक नियमों की औपचारिकता तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह भी देखती है कि सार्वजनिक धन को व्यय करते समय क्या प्रशासनिक अधिकारियों ने 'वित्तीय औचित्य के सिद्धांतों' (Canons of Financial Propriety) का पालन किया था, अर्थात क्या धन को उसी सावधानी से खर्च किया गया जैसे एक सामान्य विवेकशील व्यक्ति अपना निजी धन खर्च करता।

समिति की कार्यप्रणालीगत सीमाएं

अ. **व्ययोपरांत संवीक्षा (Post-Mortem Examination):** समिति केवल उसी धन की जांच करती है जो पहले ही व्यय किया जा चुका है। यह व्यय को होने से रोक नहीं सकती।

ब. **नीतिगत मामलों में अहस्तक्षेप:** समिति संसद द्वारा निर्धारित व्यापक लोक नीतियों (Policies) पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकती; यह केवल उन नीतियों के वित्तीय क्रियान्वयन में हुई बर्बादी या वित्तीय अनियमितताओं की जांच कर सकती है।

wincompete

स. **आदेशात्मक शक्ति का अभाव:** समिति के निष्कर्ष और संस्तुतियां संसद अथवा सरकार के लिए केवल **सलाहकारी (Advisory)** होती हैं। यह किसी अधिकारी को स्वयं दंडित नहीं कर सकती, केवल सरकार से कार्रवाई की सिफारिश कर सकती है।

द. **दैनिक प्रशासन में हस्तक्षेप का निषेध:** यह प्रशासनिक मंत्रालयों के दैनिक कार्यों में कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

कैग एवं लोक लेखा समिति का सहजीवी संबंध: 'मित्र, दार्शनिक एवं पथ-प्रदर्शक'

भारत का नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General of India - CAG) संविधान के अनुच्छेद 148 से 151 के अधीन कार्य करने वाला सर्वोच्च स्वतंत्र लेखापरीक्षक है। सीएजी और लोक लेखा समिति के मध्य का संबंध संसदीय वित्तीय नियंत्रण का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ है।

सीएजी की सहायता का विधिक स्वरूप

अ. **संविधान का अनुच्छेद 151(1):** सीएजी संघ के लेखाओं संबंधी अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को देता है, जिसे राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के पटल पर रखवाता है। संसद में रखे जाते ही यह रिपोर्ट सीधे लोक लेखा समिति को संवीक्षा हेतु सौंप दी जाती है।

ब. **मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक (Friend, Philosopher and Guide):** लोक लेखा समिति स्वयं संपूर्ण जांच नहीं करती, बल्कि वह सीएजी द्वारा तैयार किए गए तीन प्रमुख लेखापरीक्षा प्रतिवेदनों पर अपनी जांच को केंद्रित करती है:

- विनियोग लेखाओं पर लेखापरीक्षा प्रतिवेदन
- वित्त लेखाओं पर लेखापरीक्षा प्रतिवेदन
- सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों/वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों पर लेखापरीक्षा प्रतिवेदन

स. **साक्ष्य बैठकों में सीएजी की प्रत्यक्ष उपस्थिति:** जब लोक लेखा समिति विभिन्न मंत्रालयों के वरिष्ठ प्रशासनिक सचिवों को साक्ष्य (Evidence) देने हेतु समन करती है, तो सीएजी अथवा उसके वरिष्ठ प्रतिनिधि (डिप्टी सीएजी) समिति की प्रत्येक बैठक में उपस्थित रहते हैं। सीएजी समिति के सदस्यों को तकनीकी प्रश्नों के निर्धारण, वित्तीय विसंगतियों को समझने तथा अधिकारियों के दावों की सत्यता परखने में विशेषज्ञ सहायता प्रदान करता है।

प्राक्कलन समिति: सबसे बड़ी वित्तीय समिति एवं 'सतत मितव्ययिता समिति'

प्राक्कलन समिति (Estimates Committee) भारतीय संसद की वित्तीय समितियों में सदस्य संख्या की दृष्टि से **सबसे बड़ी स्थायी समिति** है। इसका मूल कार्य बजट अनुमानों (Estimates) की संवीक्षा कर सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता, प्रशासनिक सुधार तथा कार्यकुशलता की सिफारिश करना है।

समिति का अनूठा संगठनात्मक ढांचा

अ. **कुल सदस्य संख्या:** समिति में कुल **30 सदस्य** होते हैं।

ब. **राज्यसभा के प्रतिनिधित्व का पूर्ण अभाव:**

- **समिति के सभी 30 सदस्य अनिवार्य रूप से केवल लोकसभा से ही निर्वाचित होते हैं।**
- **राज्यसभा का कोई भी सदस्य इस समिति में सम्मिलित नहीं होता।**

Wisecompete

स. **राज्यसभा को बाहर रखने का संवैधानिक दर्शन:** संविधान के अनुच्छेद 113(2) के अनुसार, संचित निधि से होने वाले व्यय के संबंध में 'अनुदानों की मांगों' (Demands for Grants) पर मतदान करने की अनन्य शक्ति केवल लोकसभा को प्राप्त है; राज्यसभा को अनुदान मांगों पर मतदान का कोई अधिकार नहीं है। चूंकि प्राक्कलन समिति सीधे तौर पर बजट प्राक्कलनों और अनुदान की मांगों की संवीक्षा करती है, अतः इसमें राज्यसभा का कोई प्रतिनिधित्व नहीं रखा गया है।

द. **सभापति का चयन:** समिति के सभापति का मनोनयन लोकसभा अध्यक्ष द्वारा अनिवार्य रूप से **सत्ताधारी दल के किसी वरिष्ठ सदस्य** में से किया जाता है (पीएसी के विपरीत जहां विपक्षी सदस्य को चुना जाता है)।

प्राक्कलन समिति के मुख्य कार्य एवं अधिकार

अ. **सतत मितव्ययिता समिति (Continuous Economy Committee):** इसे संसद की 'सतत मितव्ययिता समिति' कहा जाता है। इसका कार्य यह प्रतिवेदित करना है कि बजट में समाविष्ट प्राक्कलनों में अंतर्निहित नीतियों के ढांचे के भीतर क्या मितव्ययिताएं, संगठन में सुधार, कार्यकुशलता और प्रशासनिक पुनर्गठन किए जा सकते हैं।

ब. **वैकल्पिक नीतियों का सुझाव:** यह परीक्षण करना कि क्या उस नीति, जिस पर प्राक्कलन आधारित हैं, के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कोई वैकल्पिक नीति अधिक प्रभावी और कम खर्चीली सिद्ध हो सकती है।

स. **बजट प्रस्तुति के प्रारूप में सुधार:** यह जांचना कि क्या बजट में प्राक्कलनों को प्रस्तुत करने का तरीका स्पष्ट, पारदर्शी और संसद की समझ के अनुकूल है।

प्राक्कलन समिति की अंतर्निहित सीमाएं

अ. **बजट के पश्चात संवीक्षा:** यद्यपि इसका उद्देश्य प्राक्कलनों की जांच करना है, किंतु व्यावहारिक रूप से संसद द्वारा बजट पारित किए जाने के पश्चात ही यह विभिन्न मंत्रालयों के प्राक्कलनों की संवीक्षा कर पाती है। अतः यह बजट की किसी मांग को सीधे घटा नहीं सकती।

ब. **संसद द्वारा निर्धारित नीति से बंधी होना:** यह संसद द्वारा स्वीकृत किसी मूल राजकीय नीति पर तब तक आपत्ति नहीं कर सकती जब तक कि वह नीति व्यर्थ या अनुत्पादक वित्तीय भार न उत्पन्न कर रही हो।

स. **सीएजी की सहायता का अभाव:** लोक लेखा समिति की भांति प्राक्कलन समिति को सीएजी के लेखापरीक्षा प्रतिवेदनों की प्रत्यक्ष सहायता उपलब्ध नहीं होती; इसे मंत्रालयों द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रशासनिक दस्तावेजों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

सार्वजनिक उपक्रम समिति (CoPU): गठन, अधिकार एवं सीमाएं

स्वतंत्रता के पश्चात औद्योगीकरण की गति तेज होने पर भारत सरकार ने अनेक वैधानिक निगमों (Statutory Corporations) तथा सरकारी कंपनियों की स्थापना की। संसद के पास इन उपक्रमों के वाणिज्यिक संचालन की जांच के लिए कोई विशिष्ट मंच नहीं था। इस शून्य को भरने के लिए वर्ष 1964 में सार्वजनिक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings - CoPU) का गठन किया गया।

समिति का संख्यात्मक विन्यास एवं ऐतिहासिक विकास

अ. **1964 में प्रारंभिक संरचना:** कृष्ण मेनन समिति की संस्तुति पर जब इसका गठन हुआ, तब इसमें कुल 15 सदस्य थे (10 लोकसभा से तथा 5 राज्यसभा से)।

ब. **1974 का संरचनात्मक विस्तार:** वर्ष 1974 में समिति की सदस्य संख्या बढ़ाकर लोक लेखा समिति के समान कर दी गई। वर्तमान में इसमें कुल **22 सदस्य** होते हैं:

- **लोकसभा से सदस्य:** 15
- **राज्यसभा से सदस्य:** 07

स. **सभापति का मनोनयन:** समिति के सभापति का मनोनयन लोकसभा अध्यक्ष द्वारा समिति के **केवल लोकसभा सदस्यों में से** किया जाता है। राज्यसभा का कोई सदस्य इसका सभापति नहीं बन सकता।

wincompete

समिति के मुख्य कार्य एवं क्षेत्राधिकार

अ. **सार्वजनिक प्रतिष्ठानों के प्रतिवेदनों की जांच:** सरकारी उपक्रमों (जैसे ओएनजीसी, भेल, सेल, एलआईसी आदि) के वार्षिक प्रतिवेदनों और उनके लाभ-हानि खातों की सूक्ष्म जांच करना।

ब. **सीएजी के वाणिज्यिक प्रतिवेदनों का परीक्षण:** सार्वजनिक उपक्रमों के संबंध में सीएजी द्वारा संसद में प्रस्तुत किए गए लेखापरीक्षा प्रतिवेदनों की विस्तृत संवीक्षा करना।

स. **व्यापारिक स्वायत्तता एवं कार्यकुशलता की जांच:** यह देखना कि क्या सार्वजनिक उपक्रमों का प्रबंधन ठोस व्यापारिक सिद्धांतों और विवेकपूर्ण वाणिज्यिक पद्धतियों के अनुसार संचालित हो रहा है।

सार्वजनिक उपक्रम समिति के क्षेत्राधिकार से बाहर के विषय

अ. **प्रमुख सरकारी नीतियां:** सरकार की वे व्यापक नीतियां जिनके आधार पर उपक्रमों की स्थापना की गई है।

ब. **दैनिक प्रशासनिक मामले:** उपक्रमों के दैनिक वाणिज्यिक और प्रशासनिक निर्णयों में समिति कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती, जिससे उनकी व्यापारिक स्वायत्तता (Autonomy) बाधित न हो।

स. **विशिष्ट कानूनों द्वारा स्थापित विशेष अधिकरण:** वे उपक्रम जिनके लिए कानून द्वारा पृथक जांच तंत्र स्थापित किया गया है।

तीनों संसदीय वित्तीय समितियों का गहन तुलनात्मक विश्लेषण

संसदीय वित्तीय संवीक्षा के तीनों अंगों के मध्य संरचनात्मक, प्रक्रियात्मक तथा कार्यात्मक अंतरों को निम्नलिखित मानक तालिका के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है:

तुलना का आधार	**लोक लेखा समिति (PAC)**	**प्राक्कलन समिति (Estimates)**	**सार्वजनिक उपक्रम समिति (CoPU)**
स्थापना का वर्ष	1921 (भारत सरकार अधिनियम 1919 के तहत)	1950 (जॉन मथाई की अनुशंसा पर)	1964 (कृष्ण मेनन समिति की अनुशंसा पर)
कुल सदस्य संख्या	**22 सदस्य**	**30 सदस्य** (संसद की सबसे बड़ी समिति)	**22 सदस्य**
सदस्यों का सदनवार विभाजन	15 (लोकसभा) + 07 (राज्यसभा)	**समस्त 30 सदस्य केवल लोकसभा से**	15 (लोकसभा) + 07 (राज्यसभा)

wincompete

राज्यसभा की भागीदारी	उपस्थित (7 सदस्य)	**पूर्णतः अनुपस्थित** (शून्य सदस्य)	उपस्थित (7 सदस्य)
निर्वाचन की पद्धति	एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व	एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व	एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व
सदस्यों का कार्यकाल	1 वर्ष (प्रतिवर्ष पुनर्गठित)	1 वर्ष (प्रतिवर्ष पुनर्गठित)	1 वर्ष (प्रतिवर्ष पुनर्गठित)
मंत्रियों की सदस्यता	**पूर्णतः वर्जित**	**पूर्णतः वर्जित**	**पूर्णतः वर्जित**
सभापति का मनोनयन	लोकसभा अध्यक्ष द्वारा (1967 से **अनिवार्यतः विपक्षी दल** का सदस्य)	लोकसभा अध्यक्ष द्वारा (हमेशा **सत्ताधारी दल** का सदस्य)	लोकसभा अध्यक्ष द्वारा (केवल **लोकसभा के सदस्यों में से**)
सीएजी (CAG) से संबंध	सीएजी इसका 'मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक' होता है	सीएजी की प्रत्यक्ष सहायता उपलब्ध नहीं होती	सीएजी के वाणिज्यिक प्रतिवेदनों की जांच करती है
कार्य की मूल प्रकृति	व्यय के उपरांत (Post-Mortem) विधिक व औचित्य संवीक्षा	सतत मितव्ययिता, प्रशासनिक पुनर्गठन व व्यय पूर्व संवीक्षा	सार्वजनिक कंपनियों की व्यावसायिक दक्षता एवं वित्तीय शुद्धता की जांच

विभागीय स्थायी समितियां (DRSCs) एवं वित्तीय समितियों का समन्वय

वित्तीय समितियों के अतिरिक्त संसद में बजट अनुदानों की सूक्ष्म संवीक्षा हेतु विभागीय स्थायी समितियों की व्यवस्था की गई है, जो वित्तीय समितियों के समानांतर कार्यपालिका पर विधायी नियंत्रण को विस्तृत बनाती हैं।

wincompete

विभागीय स्थायी समितियों (DRSCs) द्वारा बजट संवीक्षा की प्रक्रिया



विभागीय स्थायी समितियों का ढांचा

अ. **उद्भव:** वर्ष 1993 में संसद में 17 विभागीय स्थायी समितियां (Departmentally Related Standing Committees - DRSCs) प्रारंभ की गईं, जिन्हें जुलाई **2004 में बढ़ाकर 24** कर दिया गया।

ब. **संरचना:** प्रत्येक विभागीय समिति में कुल **31 सदस्य** होते हैं:

- लोकसभा से: 21 सदस्य (लोकसभा अध्यक्ष द्वारा नामित)
- राज्यसभा से: 10 सदस्य (राज्यसभा सभापति द्वारा नामित)

स. **सदनवार प्रशासनिक नियंत्रण:**

- 16 समितियां लोकसभा अध्यक्ष के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करती हैं।
- 08 समितियां राज्यसभा के सभापति के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करती हैं।

द. **वित्तीय समन्वय:** जब वित्त मंत्री बजट प्रस्तुत करते हैं और उस पर सामान्य चर्चा समाप्त हो जाती है, तब संसद कुछ सप्ताहों के लिए स्थगित हो जाती है। इस अवधि में ये 24 समितियां अपने-अपने संबंधित मंत्रालयों की 'अनुदानों की मांगों' की विस्तृत जांच करती हैं। इनकी रिपोर्ट सदन के पटल पर आने के बाद ही लोकसभा में अनुदानों की मांगों पर अंतिम मतदान और 'गिलोटिन' की प्रक्रिया संपन्न होती है।

वित्तीय समितियों की सिफारिशों का प्रभाव एवं क्रियान्वयन तंत्र

यह एक सामान्य संवैधानिक तथ्य है कि वित्तीय समितियों के प्रतिवेदन और निष्कर्ष संसद अथवा सरकार पर सीधे बाध्यकारी (Binding) नहीं होते। तथापि, संसदीय नियमों ने इनकी संस्तुतियों को प्रभावी बनाने हेतु एक औपचारिक 'कार्रवाई प्रतिवेदन' (Action Taken Report - ATR) तंत्र विकसित किया है।

कार्रवाई प्रतिवेदन (ATR) की चक्रीय प्रक्रिया

अ. **समिति द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुति:** समिति अपनी जांच पूर्ण करने के पश्चात अपना मूल प्रतिवेदन संसद के दोनों सदनों के पटल पर प्रस्तुत करती है।

ब. **मंत्रालयों का दायित्व:** संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय को समिति के प्रतिवेदन की प्राप्ति के **छह माह के भीतर** यह सूचित करना अनिवार्य होता है कि उसने समिति की संस्तुतियों पर क्या प्रशासनिक कार्रवाई की है अथवा किन सिफारिशों को स्वीकार किया है।

स. **कार्रवाई प्रतिवेदन की संवीक्षा:** मंत्रालय से उत्तर प्राप्त होने के उपरांत समिति एक पृथक 'कार्रवाई प्रतिवेदन' (Action Taken Report) तैयार करती है। इसमें तीन स्पष्ट श्रेणियां बनाई जाती हैं:

- वे संस्तुतियां जिन्हें सरकार द्वारा पूर्णतः स्वीकार कर लिया गया है।
- वे संस्तुतियां जिन्हें समिति ने सरकार के स्पष्टीकरण से संतुष्ट होकर आगे न बढ़ाने का निर्णय लिया है।
- वे संस्तुतियां जहां सरकार के उत्तर से समिति असंतुष्ट है और उसने अपनी मूल सिफारिश को पुनः दोहराया है।

द. **सदन में अंतिम प्रस्तुति:** यह कार्रवाई प्रतिवेदन पुनः संसद के पटल पर रखा जाता है। इस प्रकार, यद्यपि सिफारिशें विधिक रूप से सलाहकारी होती हैं, किंतु सरकार द्वारा उनकी अवहेलना करना संसदीय विशेषाधिकार के हनन तथा सदन की अवमानना का गंभीर आधार बन सकता है।

संसदीय एवं वित्तीय पारिभाषिक शब्दावली

अ. **विनियोग लेखा (Appropriation Accounts):** संसद द्वारा पारित विनियोग अधिनियम के अंतर्गत अधिकृत धनराशि के सापेक्ष विभिन्न मंत्रालयों और विभागों द्वारा किए गए वास्तविक खर्च का आधिकारिक वार्षिक वित्तीय लेखा।

ब. **वित्त लेखा (Finance Accounts):** संघ सरकार की समग्र वार्षिक प्राप्तियों (राजस्व एवं पूंजीगत) तथा भुगतानों का व्यापक संकलित वित्तीय विवरण।

स. **वित्तीय औचित्य के सिद्धांत (Canons of Financial Propriety):** वे अलिखित एवं वैधानिक वित्तीय आचार-नियम जिनके अनुसार प्रत्येक लोक सेवक को सार्वजनिक धन व्यय करते समय उतनी ही सतर्कता, मितव्ययिता और ईमानदारी बरतनी चाहिए जितनी वह अपने निजी धन के व्यय में बरतता।

द. **व्ययोपरांत संवीक्षा (Post-Mortem Examination):** लोक लेखा समिति की कार्यप्रणाली को इंगित करने वाली पदावली, जिसका अर्थ है कि समिति किसी व्यय की जांच तब करती है जब धन राजकोष से पहले ही निकाला और खर्च किया जा चुका होता है।

य. **सतत मितव्ययिता (Continuous Economy):** प्राक्कलन समिति का वह निरंतर चलने वाला कार्य जिसके तहत वह सरकारी नीतियों के मूल ढांचे को छेड़े बिना प्रशासन में अनावश्यक व्यय को कम करने तथा संगठन की दक्षता को बढ़ाने के उपाय सुझाती है।

wincompete

र. **गिलोटिन (Guillotine):** बजटीय वित्तीय प्रक्रिया का वह नियम जिसके तहत लोकसभा में निर्धारित समयावधि की समाप्ति पर बिना बहस वाली सभी शेष अनुदान मांगों को अध्यक्ष द्वारा एक साथ सीधे मतदान हेतु रख दिया जाता है।

ल. **एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote):** समितियों के चुनावों में प्रयुक्त आनुपातिक निर्वाचन पद्धति जिसमें सांसद अपनी प्राथमिकताओं (1, 2, 3...) के आधार पर मतदान करते हैं, जिससे अल्पमत वाले विपक्षी दलों को भी अपनी सदस्य संख्या के अनुपात में समितियों में स्थान मिलना सुनिश्चित होता है।

अध्याय 12: संसदीय विशेषाधिकार एवं 10वीं अनुसूची: विशेषाधिकार, दल-बदल विरोधी कानून, अपवाद एवं पीठासीन अधिकारी की शक्तियां

संसदीय विशेषाधिकारों का विधिक आधार, दार्शनिक पृष्ठभूमि एवं संवैधानिक स्रोत

संसदीय विशेषाधिकार उन विशिष्ट अधिकारों, उन्मुक्तियों तथा छूटों का समुच्चय हैं जो संसद के दोनों सदनों, उनकी संसदीय समितियों तथा सदस्यों को सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप से प्राप्त होते हैं। इन विशेषाधिकारों का मुख्य उद्देश्य संसद की संप्रभुता, गरिमा तथा स्वतंत्रता की रक्षा करना है, ताकि जन-प्रतिनिधि बिना किसी बाह्य अवरोध, कार्यपालिका के दबाव अथवा न्यायपालिका के भय के अपने संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन कर सकें।

संविधान के भाग पांच के अध्याय दो के अंतर्गत **अनुच्छेद 105** प्रत्यक्ष रूप से संसद तथा उसके सदस्यों के विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करता है (राज्यों के विधानमंडलों के संदर्भ में समानांतर उपबंध **अनुच्छेद 194** में समाहित हैं)।

संसदीय विशेषाधिकारों के स्रोत

↓

संवैधानिक उपबंध	संसदीय विधियां	प्रक्रिया नियमावली	हाउस ऑफ कॉमन्स की परंपराएं
अनुच्छेद 105, 118, 122	विशेषाधिकार अधिनियम का अभाव; CPC 1908	लोकसभा एवं राज्यसभा की कार्य-नियमावली	संसदीय अभीसमय व परंपराएं (संविधान लागू होने पर)

विशेषाधिकारों के संवैधानिक स्रोत

अ. **संवैधानिक उपबंध:** संविधान का अनुच्छेद 105(1) संसद में वाक्-स्वतंत्रता प्रदान करता है, तथा अनुच्छेद 105(2) सदन में कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में न्यायालयी कार्यवाही से पूर्ण विधिक संरक्षण देता है। अनुच्छेद 118 प्रत्येक सदन को अपनी प्रक्रिया तथा कार्य संचालन को विनियमित करने हेतु नियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है। अनुच्छेद 122 न्यायालयों को संसद की आंतरिक कार्यवाहियों की जांच करने से स्पष्टतः रोकता है।

ब. **संसदीय संविधियां:** भारतीय संसद ने आज तक अपने विशेषाधिकारों को समग्र रूप से संहिताबद्ध (Codified) करने वाला कोई व्यापक अधिनियम पारित नहीं किया है। तथापि, सिविल प्रक्रिया संहिता (CPC), 1908 की धारा 135A सदस्यों को सिविल मामलों में गिरफ्तारी से संरक्षण प्रदान करती है।

स. **सदनों की प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियमावली:** लोकसभा तथा राज्यसभा द्वारा समय-समय पर निर्मित आंतरिक नियम, स्थायी निर्देश तथा पीठासीन अधिकारियों की व्यवस्थाएं।

vmcompete

द. **ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स के अभीसमय एवं परंपराएं:** मूल संविधान के अनुच्छेद 105(3) में यह प्रावधान था कि जब तक संसद विधि द्वारा विशेषाधिकारों को परिभाषित न करे, तब तक ये वही होंगे जो 26 जनवरी 1950 को ब्रिटिश 'हाउस ऑफ कॉमन्स' (संसद के निम्न सदन) और उसके सदस्यों को प्राप्त थे।

44वां संविधान संशोधन अधिनियम 1978 एवं अनुच्छेदों का संशोधन

अ. **संशोधन पूर्व स्थिति:** मूल संविधान में विशेषाधिकारों की तुलना सीधे विदेशी संस्था (ब्रिटिश संसद) से की गई थी, जिसे स्वतंत्र गणराज्य की संप्रभुता के प्रतिकूल माना गया।

ब. **44वें संशोधन द्वारा परिवर्तन:** 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद 105(3) और अनुच्छेद 194(3) से 'हाउस ऑफ कॉमन्स' का प्रत्यक्ष संदर्भ विलोपित कर दिया गया। इसके स्थान पर यह स्थापित किया गया कि संसद के विशेषाधिकार वे होंगे जो 44वें संशोधन के लागू होने (20 जून 1979) के ठीक पूर्व संसद, उसके सदस्यों और समितियों को प्राप्त थे। यद्यपि प्रत्यक्ष संदर्भ हटा दिया गया, किंतु व्यावहारिक रूप से आज भी ब्रिटिश संसद की 1979 पूर्व की परंपराएं ही भारतीय संदर्भ में मार्गदर्शक बनी हुई हैं।

व्यक्तिगत विशेषाधिकार: वाक्-स्वतंत्रता, सिविल गिरफ्तारी से उन्मुक्ति एवं साक्ष्य देने से छूट

व्यक्तिगत विशेषाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक सांसद को व्यक्तिगत हैसियत से प्राप्त होते हैं, ताकि वह अपने संसदीय कर्तव्यों का निष्पादन निष्पक्षता एवं निर्भीकता से कर सके।

सदन में पूर्ण वाक्-स्वतंत्रता (अनुच्छेद 105(1) एवं 105(2))

अ. **अनुच्छेद 19(1)(क) से श्रेष्ठता:** संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन सामान्य नागरिकों को प्राप्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अनुच्छेद 19(2) के युक्तियुक्त निर्बंधनों (जैसे मानहानि, न्यायालय की अवमानना, राज्य की सुरक्षा आदि) के अधीन है। इसके विपरीत, संसद सदस्य को अनुच्छेद 105(1) के तहत प्राप्त वाक्-स्वतंत्रता अनुच्छेद 19(2) के निर्बंधनों से पूर्णतः मुक्त है।

ब. **संवैधानिक निर्बंधन:** सदस्यों की वाक्-स्वतंत्रता केवल संसद की कार्य-संचालन नियमावली, पीठासीन अधिकारी के अनुशासन तथा **अनुच्छेद 121** के प्रतिबंधों के अधीन है। अनुच्छेद 121 यह उपबंध करता है कि उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए आचरण के विषय में संसद में कोई चर्चा नहीं होगी (सिवाय उस न्यायाधीश को हटाने के लिए महाभियोग प्रस्ताव के विचाराधीन होने के समय)।

स. **न्यायालयी कार्यवाहियों से पूर्ण उन्मुक्ति:** अनुच्छेद 105(2) के अनुसार, संसद में या उसकी किसी समिति में कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत (वोट) के संबंध में संसद के किसी सदस्य के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती।

सिविल मामलों में गिरफ्तारी से उन्मुक्ति

अ. **समय-सीमा की परिधि:** किसी भी संसद सदस्य को सिविल मामलों में संसद के **सत्र के दौरान**, तथा सत्र प्रारंभ होने के **40 दिन पूर्व** एवं सत्र समाप्त होने के **40 दिन पश्चात** तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता।

ब. **आपराधिक मामलों में उन्मुक्ति का पूर्ण अभाव:** यह उन्मुक्ति केवल **सिविल (दीवानी) मामलों** तक सीमित है। किसी भी आपराधिक मामले, देशद्रोह, निवारक निरोध (Preventive Detention) विधियों, अथवा आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत की गई गिरफ्तारी पर यह विशेषाधिकार लागू नहीं होता।

साक्षी के रूप में उपस्थित होने से छूट

सदन का सत्र चालू रहने के दौरान किसी भी सांसद को संसद की पूर्व अनुमति के बिना किसी न्यायालय में गवाही देने अथवा साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता, ताकि सदन के विधायी कार्य में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो।

सामूहिक विशेषाधिकार: कार्यवाहियों का प्रकाशन, आंतरिक नियंत्रण एवं अवमानना दंड

सामूहिक विशेषाधिकार संसद के दोनों सदनों को समग्र संस्था के रूप में प्राप्त होते हैं। इनका उपयोग सदन अपनी स्वतंत्रता, गरिमा और अधिकारों की रक्षा के लिए करता है।

सदन के सामूहिक विशेषाधिकार

↓

कार्यवाहियों के प्रकाशन का नियमन	अजनबियों को बाहर निकालने का अधिकार	आंतरिक मामलों के नियमन की शक्ति	अवमानना हेतु दंड देने का अधिकार
अनुच्छेद 105(2) व 361क	गोपनीय बैठक का आयोजन	न्यायालयों का प्रवेश वर्जित	फटकार, कारावास, निष्कासन

विशेषाधिकारों का संस्थागत वर्गीकरण

अ. **कार्यवाहियों के प्रकाशन को विनियमित एवं प्रतिबंधित करने का अधिकार:**

- अनुच्छेद 105(2) के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति को संसद के किसी सदन के प्राधिकार के अधीन किसी रिपोर्ट, पत्र, मत या कार्यवाही के प्रकाशन के संबंध में विधिक दायित्व से पूर्ण संरक्षण प्राप्त है।
- सदन को अपनी कार्यवाहियों, बहसों अथवा बहसों के विलोपित (Expunged) अंशों के अनधिकृत प्रकाशन को पूरी तरह प्रतिबंधित करने का संप्रभु अधिकार है।
- **अनुच्छेद 361क (44वां संविधान संशोधन, 1978):** इस संशोधन द्वारा एक ऐतिहासिक संतुलन स्थापित किया गया। इसके अनुसार, कोई भी व्यक्ति संसद के किसी सदन (या राज्य विधानसभा) की कार्यवाहियों का **सारतः सही विवरण (Substantially True Report)** समाचार पत्रों में प्रकाशित करने अथवा रेडियो/टेलीविजन पर प्रसारित करने के लिए किसी भी दीवानी या फौजदारी कार्यवाही का भागी नहीं होगा, बशर्ते ऐसा प्रकाशन दुर्भावनापूर्ण न हो। किंतु यह संरक्षण सदन की किसी **गोपनीय बैठक (Secret Sitting)** की कार्यवाहियों पर लागू नहीं होता।

ब. **अजनबियों को सदन से बाहर निकालने का अधिकार:** प्रत्येक सदन को यह अनन्य अधिकार है कि वह सुरक्षा अथवा गोपनीयता के आधार पर दर्शकों, अतिथियों तथा अजनबियों (Strangers) को दीर्घाओं से बाहर निकाल दे और बंद कमरे में गोपनीय सत्र आयोजित करे।

स. **अपनी आंतरिक प्रक्रिया को विनियमित करने का अधिकार:** संविधान के अनुच्छेद 122(1) के अनुसार, संसद की किसी कार्यवाही की विधिमान्यता को प्रक्रिया की किसी अभिकथित अनियमितता (Procedural Irregularity) के आधार पर किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता। सदन के भीतर अनुशासन बनाए रखने, कार्यसूची तय करने और व्यवस्था बनाए रखने का अधिकार केवल सदन और उसके पीठासीन अधिकारी का है।

wincompete

द. **सदस्यों की गिरफ्तारी, निरोध एवं मुक्ति की सूचना का अधिकार:** यदि किसी सांसद को किसी आपराधिक आरोप में गिरफ्तार किया जाता है, हिरासत में लिया जाता है, सजा सुनाई जाती है अथवा जेल भेजा जाता है, तो संबंधित पुलिस अधिकारी, दंडाधिकारी या जेल प्राधिकारी का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह तत्काल लोकसभा अध्यक्ष अथवा राज्यसभा के सभापति को गिरफ्तारी के कारण, स्थान और परिस्थितियों की लिखित सूचना प्रेषित करे।

य. **जांच करने तथा गवाहों को समन करने की शक्ति:** सदन अथवा उसकी संसदीय समितियों को किसी भी व्यक्ति (चाहे वह लोक सेवक हो या सामान्य नागरिक) को साक्ष्य देने अथवा दस्तावेज प्रस्तुत करने हेतु बाध्यकारी समन जारी करने का पूर्ण अधिकार है।

विशेषाधिकार हनन बनाम सदन की अवमानना एवं दंडात्मक शक्तियां

विशेषाधिकार हनन (Breach of Privilege) तथा सदन की अवमानना (Contempt of the House) में सूक्ष्म विधिक अंतर पाया जाता है, यद्यपि दोनों ही परिस्थितियों में सदन को दंडात्मक कार्रवाई का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

अवधारणात्मक एवं तकनीकी विभेद

अ. **विशेषाधिकार हनन (Breach of Privilege):** जब किसी व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा संसद के किसी विशिष्ट, संहिताबद्ध या स्थापित विशेषाधिकार, उन्मुक्ति या अधिकार का प्रत्यक्ष उल्लंघन किया जाता है (जैसे किसी सांसद को संसद भवन आने से बलपूर्वक रोकना, सदन में दिए गए भाषण के कारण उस पर मुकदमा चलाना आदि)।

ब. **सदन की अवमानना (Contempt of the House):** यह एक व्यापक एवं लचीली अवधारणा है। कोई भी ऐसा कृत्य जो यद्यपि किसी विशिष्ट विशेषाधिकार का प्रत्यक्ष उल्लंघन न करता हो, किंतु जो संसद के किसी सदन के कार्य में बाधा डालता हो, उसके कर्तव्यों के निष्पादन में रुकावट उत्पन्न करता हो, अथवा सदन के प्राधिकार, निष्पक्षता और गरिमा को जनता की दृष्टि में गिराता हो या अपमानित करता हो, वह 'सदन की अवमानना' कहलाता है। अतः प्रत्येक विशेषाधिकार हनन सदन की अवमानना होता है, किंतु सदन की प्रत्येक अवमानना विशेषाधिकार हनन हो, यह आवश्यक नहीं है।

सदन द्वारा दिए जा सकने वाले दंड

संसद किसी न्यायालय की भांति एक अर्धन्यायिक अधिकरण (Quasi-Judicial Body) के रूप में कार्य करते हुए अवमानना के दोषियों को निम्नलिखित दंड दे सकती है:

दंड का स्वरूप	प्रक्रियात्मक विवरण	ऐतिहासिक दृष्टांत
ताड़ना या फटकार (Reprimand / Admonition)	दोषी व्यक्ति को सदन के कटघरे (Bar of the House) में बुलाकर पीठासीन अधिकारी द्वारा कठोर	वर्ष 1961 में 'ब्लिट्ज़' पत्रिका के संपादक आर. के. करंजिया को सदन की अवमानना हेतु लोकसभा

wincompete

	शब्दों में सार्वजनिक रूप से निंदा करना।	के कटघरे में खड़ा कर फटकार लगाई गई थी।
कारावास (Imprisonment)	सदन दोषी को सत्र की समाप्ति तक के लिए कारागार (तिहाड़ जेल अथवा संसद के बंदीगृह) भेजने का आदेश दे सकता है।	वर्ष 1978 में इंदिरा गांधी को विशेषाधिकार समिति की रिपोर्ट के आधार पर लोकसभा द्वारा सत्र की समाप्ति तक कारावास और सदन से निष्कासन का दंड दिया गया था।
सदन से निलंबन (Suspension)	अनुशासनहीनता अथवा सदन की अवमानना करने वाले सांसदों को एक निश्चित अवधि या संपूर्ण सत्र के लिए निलंबित करना।	विभिन्न सत्रों में अमर्यादित आचरण करने वाले सांसदों को कार्य संचालन नियमों के नियम 374 एवं 374A के तहत निलंबित किया जाना।
सदन से निष्कासन (Expulsion)	सदन किसी सदस्य के घोर भ्रष्ट अथवा अनैतिक आचरण पर उसकी संसद सदस्यता को समाप्त कर उसे निष्कासित कर सकता है।	वर्ष 2005 के 'कैश फॉर क्वेरी' (पैसे लेकर प्रश्न पूछने) कांड में लोकसभा के 10 और राज्यसभा के 1 सदस्य को संसद से निष्कासित किया गया।

संसदीय विशेषाधिकार बनाम मूल अधिकार: ऐतिहासिक न्यायिक वाद

संसदीय विशेषाधिकारों और नागरिकों के मूल अधिकारों (विशेषकर भाग तीन के अनुच्छेद 19(1)(क) एवं अनुच्छेद 21) के मध्य टकराव भारतीय संवैधानिक विधि का अत्यंत संवेदनशील विषय रहा है। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न ऐतिहासिक वादों में संतुलनकारी सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं।

एमएसएम शर्मा वाद (1959)	केशव सिंह वाद (1965)	राजा राम पाल वाद (2007)
अनुच्छेद 105 की सर्वोच्चता (अनुच्छेद 19 पर अधिमान्यता)	**अनुच्छेद 21 एवं 226 की सर्वोच्चता** (न्यायालय की अवमानना शक्ति स्वतंत्र)	**न्यायिक समीक्षा की सीमाएं** (प्रक्रियात्मक अवैधता समीक्षा योग्य)

प्रमुख संवैधानिक वादों का विश्लेषण

अ. **जी. के. रेड्डी बनाम हसन जी (ब्लिट्ज वाद - 1954):** सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि यदि किसी व्यक्ति को विधायिका के विशेषाधिकार वारंट के तहत गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे अनुच्छेद 22(2) के तहत 24 घंटे के भीतर निकटतम दंडाधिकारी (मजिस्ट्रेट) के समक्ष प्रस्तुत करना अनिवार्य है। यहां मूल अधिकार को प्राथमिकता दी गई।

ब. **एम. एस. एम. शर्मा बनाम श्रीकृष्ण सिन्हा (सर्चलाइट वाद - 1959):** बिहार विधानसभा द्वारा 'सर्चलाइट' अखबार के संपादक को कार्यवाही के विलोपित अंशों के प्रकाशन पर अवमानना नोटिस जारी किया गया। पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 194(3) [तथा अनुच्छेद 105(3)] के तहत प्राप्त विशेषाधिकार अनुच्छेद 19(1)(क) में प्रदत्त सामान्य वाक्-स्वतंत्रता के अधीन नहीं हैं। विशेषाधिकारों को मूल अधिकारों के सामान्य प्रावधानों पर वरीयता दी गई।

स. **केशव सिंह वाद (राष्ट्रपति संदर्भ - अनुच्छेद 143, वर्ष 1965):** उत्तर प्रदेश विधानसभा ने केशव सिंह को अवमानना हेतु कारावास का दंड दिया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की खंडपीठ ने उसे अंतरिम जमानत दे दी। विधानसभा ने दोनों उच्च न्यायालय न्यायाधीशों और केशव सिंह के वकील को विशेषाधिकार हनन के आरोप में हिरासत में लेने का वारंट जारी कर दिया। राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 143 के तहत मांगे गए परामर्श पर सर्वोच्च न्यायालय की सात न्यायाधीशों की वृहद संविधान पीठ ने ऐतिहासिक सिद्धांत प्रतिपादित किए:

- संविधान के **अनुच्छेद 21 (जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता)** तथा **अनुच्छेद 32/226 (संवैधानिक उपचारों का अधिकार)** संसदीय विशेषाधिकारों से सर्वोच्च हैं।
- नागरिक अथवा न्यायाधीश विशेषाधिकार कार्रवाई के विरुद्ध उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर कर सकते हैं।
- संसद या विधानमंडल न्यायाधीशों को उनके न्यायिक कार्यों के लिए अवमानना का दोषी नहीं ठहरा सकते (अनुच्छेद 121 एवं 211 का संरक्षण)।

द. **पी. वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य (1998):** वर्ष 1993 के झारखंड मुक्ति मोर्चा (JMM) रिश्वत कांड में सांसदों पर अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मतदान करने हेतु रिश्वत लेने का आरोप था। पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 3:2 के बहुमत से निर्णय दिया कि अनुच्छेद 105(2) के तहत सांसदों को संसद में 'दिए गए किसी मत' के संबंध में न्यायालय में मुकदमे से पूर्ण विधिक संरक्षण प्राप्त है। अतः जिन सांसदों ने रिश्वत लेकर मतदान किया, वे अभियोजन से सुरक्षित रहे (यद्यपि जिन्होंने रिश्वत ली किंतु मतदान नहीं किया, वे इस संरक्षण से वंचित रहे)।

य. **सीता सोरेन बनाम भारत संघ (2024 - सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ):** सर्वोच्च न्यायालय की सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से **पी. वी. नरसिम्हा राव वाद (1998) के निर्णय को पलट दिया**। न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्णय देते हुए व्यवस्था दी कि:

- सदन में भाषण देने या मतदान करने के लिए रिश्वत (घूस) लेना विशेषाधिकारों के संरक्षण के दायरे में नहीं आता।
- रिश्वतखोरी का अपराध उसी क्षण पूर्ण हो जाता है जिस क्षण धन स्वीकार किया जाता है, इसका इस बात से कोई संबंध नहीं है कि सदस्य ने बाद में सदन में मतदान किया या नहीं।
- अनुच्छेद 105(2) तथा 194(2) का उद्देश्य सांसदों को सार्वजनिक कर्तव्यों के निर्वहन हेतु भयमुक्त बनाना है, न कि उन्हें सामान्य आपराधिक कानूनों के उल्लंघन और भ्रष्टाचार हेतु विशेष उन्मुक्ति प्रदान करना।

र. **राजा राम पाल बनाम मूल माननीय अध्यक्ष, लोकसभा (2007):** 2005 के कैश फॉर क्वेरी मामले में 11 सांसदों के निष्कासन की वैधता को चुनौती दी गई। सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने माना कि संसद को अपने भ्रष्ट सदस्यों को सदन से निष्कासित करने की संप्रभु शक्ति प्राप्त है। न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि

संसद के विशेषाधिकार पूर्णतः अनियंत्रित नहीं हैं; यदि विशेषाधिकार का प्रयोग असंवैधानिक, दुर्भावनापूर्ण अथवा नैसर्गिक न्याय के विपरीत पाया जाता है, तो न्यायपालिका उसकी समीक्षा कर सकती है।

10वीं अनुसूची: दल-बदल विरोधी कानून की पृष्ठभूमि एवं 52वां संविधान संशोधन

भारतीय राजनीति में 1960 और 1970 के दशक में राजनीतिक दलों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत लाभ, मंत्री पद के प्रलोभन अथवा वित्तीय कारणों से निष्ठाएं बदलने की व्यापक कुप्रथा विकसित हुई, जिसे 'आया राम, गया राम' की संस्कृति कहा गया। इस विकृति ने लोकतांत्रिक संस्थाओं के स्थायित्व और जनादेश की विश्वसनीयता को गंभीर संकट में डाल दिया।

52वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1985

राजीव गांधी सरकार के कार्यकाल में पारित 52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा संविधान में व्यापक परिवर्तन किए गए:

- संविधान के अनुच्छेद 101, 102, 190 एवं 191 में संशोधन किया गया।
- संसद एवं राज्य विधानमंडलों के सदस्यों की दल-बदल के आधार पर अयोग्यता के निर्धारण हेतु संविधान में **दसवीं अनुसूची (Tenth Schedule)** जोड़ी गई।
- अनुच्छेद 102(2) एवं अनुच्छेद 191(2) के तहत यह स्पष्ट किया गया कि यदि कोई व्यक्ति दसवीं अनुसूची के अधीन निरर्हित (अयोग्य) हो जाता है, तो वह संसद या विधानसभा का सदस्य रहने हेतु पात्र नहीं होगा।

दल-बदल के आधार पर अयोग्यता (Disqualification) के मापदंड

दसवीं अनुसूची के पैरा दो के अंतर्गत संसद अथवा राज्य विधानमंडलों के सदस्यों को तीन पृथक श्रेणियों में वर्गीकृत कर उनके लिए अयोग्यता के विशिष्ट मापदंड निर्धारित किए गए हैं:

स्वेच्छा से सदस्यता त्याग (पैरा 2(1)(क))	व्हिप (सचेतक) का उल्लंघन (पैरा 2(1)(ख))	निर्दलीय सदस्य द्वारा दल में शामिल होना (पैरा 2(2))	मनोनीत सदस्य (6 माह पश्चात) (पैरा 2(3))
अपने राजनीतिक दल की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देना।	दल के निर्देश के विरुद्ध मतदान करना/अनुपस्थित रहना और 15 दिन में क्षमा न मिलना।	निर्दलीय चुना गया सदस्य यदि किसी भी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।	पद ग्रहण के 6 माह की अवधि बीतने के बाद किसी राजनीतिक दल में प्रवेश करना।

विस्तृत वैधानिक श्रेणियां

अ. **राजनीतिक दल के निर्वाचित सदस्य (पैरा 2(1)):**

- **स्वेच्छा से सदस्यता छोड़ना (पैरा 2(1)(क)):** यदि कोई सदस्य किसी राजनीतिक दल के टिकट पर निर्वाचित होने के उपरांत स्वेच्छा से उस दल की सदस्यता छोड़ देता है। (सर्वोच्च न्यायालय ने रवि नाइक वाद में स्पष्ट किया कि 'स्वेच्छा से सदस्यता छोड़ने' का अर्थ केवल औपचारिक त्यागपत्र देना ही नहीं है; यदि किसी सदस्य के आचरण, भाषणों या गतिविधियों से यह सिद्ध होता है कि उसने दल के प्रति निष्ठा समाप्त कर ली है, तो उसे सदस्यता छोड़ना माना जाएगा)।
- **व्हिप (सचेतक) का उल्लंघन (पैरा 2(1)(ख)):** यदि कोई सदस्य अपने राजनीतिक दल के अधिकृत सचेतक (Whip) द्वारा जारी किए गए निर्देशों के विरुद्ध जाकर सदन में मतदान करता है, या मतदान

wincompete

से अनुपस्थित रहता है, और उसके इस कृत्य को उसके राजनीतिक दल द्वारा **15 दिन के भीतर क्षमा (Condone) नहीं किया जाता**, तो वह सदन की सदस्यता हेतु अयोग्य हो जाता है।

ब. **निर्दलीय निर्वाचित सदस्य (पैरा 2(2)):**

- यदि कोई सदस्य किसी चुनाव में किसी राजनीतिक दल के प्रत्याशी के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र या निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में निर्वाचित होता है, और निर्वाचन के पश्चात वह **किसी भी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है**, तो उसकी सदस्यता तत्काल समाप्त हो जाती है। (वह सरकार को बाहर से समर्थन दे सकता है अथवा मंत्री बन सकता है, किंतु किसी दल का औपचारिक सदस्य नहीं बन सकता)।

स. **नामनिर्देशित (मनोनीत) सदस्य (पैरा 2(3)):**

- राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा मनोनीत सदस्य (जैसे राज्यसभा के 12 सदस्य) यदि अपने पद ग्रहण की तारीख से **छह माह की समाप्ति के पश्चात** किसी राजनीतिक दल में शामिल होते हैं, तो वे अयोग्य घोषित हो जाते हैं।
- यदि ऐसा मनोनीत सदस्य पद ग्रहण करने के आरंभिक **छह माह के भीतर** किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण करता है, तो उस पर कोई अयोग्यता लागू नहीं होती।

10वीं अनुसूची के वैधानिक अपवाद एवं 91वां संविधान संशोधन

दल-बदल कानून राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करने के साथ-साथ कतिपय परिस्थितियों में वैध राजनीतिक पुनर्गठन और संवैधानिक पदाधिकारियों की निष्पक्षता की रक्षा हेतु अपवाद भी प्रदान करता है।

संवैधानिक पदाधिकारियों हेतु संरक्षण (पैरा पांच)

लोकसभा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, राज्यसभा के उपसभापति, तथा राज्यों की विधानसभाओं के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष को निष्पक्ष कार्य संचालन हेतु यह संरक्षण प्राप्त है कि:

- यदि वे अपने पद पर निर्वाचित होने के कारण अपने राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ देते हैं, और जब तक वे पद पर रहते हैं तब तक किसी दल में शामिल नहीं होते, तो वे अयोग्य नहीं होंगे।
- यदि वे अपना पद समाप्त होने के पश्चात पुनः अपने मूल राजनीतिक दल में लौट आते हैं, तब भी उन पर कोई निरर्हता लागू नहीं होगी।

एक-तिहाई विभाजन का मूल प्रावधान एवं 91वां संविधान संशोधन (2003)

अ. **मूल 52वें संशोधन की व्यवस्था (पैरा तीन):** 1985 के मूल कानून के पैरा तीन में यह प्रावधान था कि यदि किसी दल के निर्वाचित सदस्यों का कम से कम **एक-तिहाई (1/3)** भाग एक साथ अलग होकर नया गुट बनाता है, तो इसे 'विभाजन' (Split) माना जाएगा और सदस्यों पर कोई अयोग्यता लागू नहीं होगी।

ब. **थोक दल-बदल की समस्या:** इस प्रावधान का दुरुपयोग कर राजनीतिक दल बड़े पैमाने पर थोक दल-बदल (Wholesale Defection) को अंजाम देने लगे, जिससे छोटे दलों का अस्तित्व संकट में पड़ने लगा।

Wincompete

स. **91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003:** विधि आयोग और वेंकटचलैया संविधान समीक्षा आयोग (NCRWC) की सिफारिशों के आधार पर संसद ने 91वां संविधान संशोधन पारित किया:

- **पैरा तीन को पूर्णतः विलोपित किया गया:** दल में विभाजन (Split) के आधार पर मिलने वाले संरक्षण को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया। अब किसी भी दल के सदस्यों का कितना भी बड़ा वर्ग अलग होकर अलग गुट बनाए, वे सभी दल-बदल कानून के तहत अयोग्य घोषित होंगे।

राजनीतिक दलों का विलय (Merger - पैरा चार)

दसवीं अनुसूची के पैरा चार के तहत वर्तमान में केवल 'विलय' ही एकमात्र वैध आधार शेष है:

- जब किसी मूल राजनीतिक दल का किसी अन्य राजनीतिक दल में विलय हो जाता है, और
- संबंधित सदन में उस राजनीतिक दल के कम से कम **दो-तिहाई (2/3) निर्वाचित सदस्य** ऐसे विलय के लिए अपनी सहमति दे देते हैं।
- ऐसी दशा में न तो विलय स्वीकार करने वाले दो-तिहाई सदस्यों पर कोई अयोग्यता लागू होगी, और न ही उन सदस्यों पर जो ऐसे विलय को अस्वीकार कर पृथक समूह के रूप में बने रहने का निर्णय लेते हैं।

पीठासीन अधिकारी की शक्तियां, किहोटो होलोहन वाद एवं अर्धन्यायिक अधिकरण

दसवीं अनुसूची के पैरा छह के अनुसार, दल-बदल के आधार पर किसी सदस्य की अयोग्यता से संबंधित सभी प्रश्नों पर निर्णय करने का अनन्य विधिक अधिकार संबंधित सदन के **पीठासीन अधिकारी** (लोकसभा अध्यक्ष अथवा राज्यसभा के सभापति) में निहित है।

दसवीं अनुसूची: दल-बदल याचिका एवं न्यायिक समीक्षा प्रक्रिया

1. दल-बदल याचिका की सदन में प्रस्तुति
(सदन के किसी सदस्य द्वारा औपचारिक आवेदन)

↓

2. पीठासीन अधिकारी द्वारा अर्धन्यायिक जांच
(अधिकरण/Tribunal के रूप में कार्य एवं प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन)

↓

3. पीठासीन अधिकारी का अंतिम निर्णय / आदेश
(निर्णय से पूर्व न्यायपालिका का कोई अहस्तक्षेप नहीं)

↓

4. न्यायिक समीक्षा (Judicial Review)
(किहोटो होलोहन वाद 1992: अनुच्छेद 32, 136 एवं 226 के अंतर्गत सीमित समीक्षा)

wincompete

किहोटो होलोहन बनाम जाचिल्हू वाद (1992)

मूल 52वें संशोधन के पैरा 6(2) में यह व्यवस्था थी कि पीठासीन अधिकारी की कार्यवाही को संसदीय कार्यवाही माना जाएगा, तथा पैरा सात में स्पष्ट उपबंध था कि इसके निर्णयों पर किसी भी न्यायालय का क्षेत्राधिकार नहीं होगा। सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने किहोटो होलोहन वाद में अत्यंत युगांतकारी निर्णय दिए:

अ. **पैरा सात को असंवैधानिक घोषित करना:** चूंकि पैरा सात ने उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्तियों को छीना था, अतः इसे अनुच्छेद 368(2) के तहत कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा अनुमोदित कराया जाना अनिवार्य था। चूंकि ऐसा नहीं किया गया था, अतः न्यायालय ने पैरा सात को संवैधानिक प्रक्रिया के अभाव में शून्य घोषित कर दिया।

ब. **पीठासीन अधिकारी की विधिक स्थिति (अधिकरण):** न्यायालय ने निर्धारित किया कि दसवीं अनुसूची के तहत अयोग्यता याचिकाओं का निस्तारण करते समय अध्यक्ष या सभापति एक पारंपरिक विधायी पीठासीन अधिकारी के रूप में नहीं, बल्कि एक **अर्धन्यायिक अधिकरण (Quasi-Judicial Tribunal)** के रूप में कार्य करता है।

स. **सीमित न्यायिक समीक्षा की पुनर्स्थापना:** एक अधिकरण के रूप में कार्य करने के कारण पीठासीन अधिकारी का निर्णय संविधान के अनुच्छेद 32, 136, 226 और 227 के तहत न्यायिक समीक्षा के अधीन है। न्यायालय दुर्भावना (Mala fides), प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन, अथवा क्षेत्राधिकार की त्रुटियों के आधार पर पीठासीन अधिकारी के निर्णय को रद्द कर सकता है।

द. **कार्यवाही के दौरान न्यायालयी अहस्तक्षेप:** न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि जब तक पीठासीन अधिकारी किसी मामले में अपना अंतिम आदेश पारित नहीं कर देता, तब तक न्यायालय अंतरिम प्रक्रिया में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा।

अद्यतन न्यायिक निर्णय, दल-बदल कानून की चुनौतियां एवं सुधार समितियां

यद्यपि दसवीं अनुसूची का उद्देश्य राजनीतिक शुचिता स्थापित करना था, किंतु व्यावहारिक संचालन में पीठासीन अधिकारी के पद की दलीय निष्ठा, याचिकाओं के निस्तारण में अत्यधिक विलंब तथा सरकार गिराने के नवीन तकनीकी तरीकों ने गंभीर विधिक चुनौतियां प्रस्तुत की हैं।

सर्वोच्च न्यायालय के परवर्ती युगांतकारी निर्णय

वाद का नाम	वर्ष	सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य निर्णय एवं विधिक सिद्धांत
श्रीमन नारायण राव बनाम अध्यक्ष, कर्नाटक विधानसभा	2019	न्यायालय ने व्यवस्था दी कि अध्यक्ष को किसी बागी विधायक का त्यागपत्र स्वीकार करने से इनकार करने तथा उसे आगामी चुनाव लड़ने से अयोग्य ठहराने का अधिकार नहीं है। अयोग्यता केवल वर्तमान सदन की अवधि तक ही प्रभावी हो सकती है।
केशम मेघचंद्र सिंह बनाम माननीय अध्यक्ष, मणिपुर	2020	न्यायालय ने निर्देश दिया कि विधानसभा अध्यक्ष को दल-बदल याचिकाओं का निस्तारण अधिकतम **तीन माह (3 Months)** की युक्तियुक्त अवधि के भीतर अनिवार्यतः कर देना चाहिए। न्यायालय ने यह भी सिफारिश की कि दल-बदल पर निर्णय का अधिकार अध्यक्ष के स्थान पर एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता वाले **स्वतंत्र स्थायी अधिकरण** को सौंपा जाना चाहिए।

vineetsingh

सुभाष देसाई बनाम प्रधान सचिव, महाराष्ट्र राज्यपाल	2023	न्यायालय ने स्पष्ट किया कि व्हिप (सचेतक) की नियुक्ति का अधिकार मूल राजनीतिक दल (Political Party) को है, न कि सदन के भीतर उपस्थित विधायी दल (Legislature Party) को। अध्यक्ष को दल-बदल का निर्णय करते समय मूल संगठन की आधिकारिक इच्छा का संज्ञान लेना अनिवार्य है।

दल-बदल विरोधी कानून के समक्ष वर्तमान संरचनात्मक विसंगतियां

अ. **पीठासीन अधिकारी का पक्षपातपूर्ण आचरण:** पीठासीन अधिकारी मूलतः सत्ताधारी दल से ही चुना जाता है। विपक्षी सदस्यों की याचिकाओं पर त्वरित निर्णय लेना और सत्ताधारी दल में शामिल होने वाले बागी विधायकों की याचिकाओं को वर्षों तक लंबित रखना एक आम प्रशासनिक प्रवृत्ति बन गई है।

ब. **इस्तीफा देकर पुनः चुनाव लड़ने की रणनीति:** बागी विधायक दल-बदल की अयोग्यता से बचने के लिए सदन की सदस्यता से सीधे इस्तीफा दे देते हैं, जिससे सरकार अल्पमत में आकर गिर जाती है। इसके पश्चात वे नई सरकार में मंत्री बन जाते हैं और उपचुनाव जीतकर पुनः सदन में आ जाते हैं।

स. **स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर आघात:** पैरा 2(1)(ख) के तहत प्रत्येक प्रकार के विधायी प्रस्ताव पर व्हिप जारी करने की परंपरा ने सांसदों और विधायकों की व्यक्तिगत अंतरात्मा, स्थानीय क्षेत्र के हितों तथा खुली बहस की स्वतंत्रता को पार्टी आलाकमान के अधीन कर दिया है।

विभिन्न आयोगों की आधिकारिक सुधार सिफारिशें

अ. **दिनेश गोस्वामी समिति (1990):** दल-बदल कानून के तहत अयोग्यता केवल उन्हीं मामलों तक सीमित होनी चाहिए जहां सरकार के अस्तित्व का प्रश्न हो (जैसे अविश्वास प्रस्ताव, विश्वास मत, अथवा धन विधेयक पर मतदान)। सामान्य विधायी विधेयकों पर सांसदों को व्हिप से मुक्त रखा जाना चाहिए।

ब. **विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट (1999):** चुनाव पूर्व बने गठबंधन (Pre-poll Alliances) को दल-बदल कानून के प्रयोजन हेतु एक एकल राजनीतिक दल माना जाना चाहिए। यदि चुनाव पूर्व गठबंधन का कोई दल पाला बदलता है, तो उसके सदस्यों पर दल-बदल कानून लागू होना चाहिए।

स. **संविधान समीक्षा राष्ट्रीय आयोग (NCRWC - 2002):** दल-बदल के आधार पर अयोग्य घोषित किए गए किसी भी व्यक्ति को वर्तमान सदन के संपूर्ण शेष कार्यकाल अथवा अगले चुनाव तक (जो भी पहले हो) किसी भी राजनीतिक पद या लाभ के पद (जैसे मंत्री पद) पर नियुक्त होने से पूर्णतः प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।

द. **भारत का निर्वाचन आयोग (ECI संस्तुति):** संविधान के अनुच्छेद 103 के समान, दल-बदल के मामलों में भी अंतिम निर्णय लेने की शक्ति **भारत के राष्ट्रपति अथवा संबंधित राज्यपाल** को सौंपी जानी चाहिए, जो **निर्वाचन आयोग की बाध्यकारी सलाह** पर कार्य करें, जिससे पीठासीन अधिकारियों की राजनीतिक पक्षपातपूर्ण भूमिका समाप्त हो सके।

संसदीय एवं विधिक पारिभाषिक शब्दावली

winoompete

अ. **संहिताबद्धता का अभाव (Non-Codification):** संसद द्वारा अपने विशेषाधिकारों को स्पष्ट कानूनी अधिनियम के रूप में संहिताबद्ध न करने की स्थिति, जिससे विशेषाधिकारों की परिधि व्यापक, परंपरा-आधारित और लोचशील बनी रहती है।

ब. **कटघरा (Bar of the House):** संसद के सदन के प्रवेश द्वार पर स्थित वह औपचारिक विधिक स्थान जहां खड़े होकर किसी बाहरी व्यक्ति अथवा दोषी सांसद को सदन की अवमानना हेतु पीठासीन अधिकारी द्वारा आधिकारिक रूप से डांटा या दंडित किया जाता है।

स. **सचेतक / व्हिप (Whip):** किसी राजनीतिक दल द्वारा सदन के भीतर अपने सदस्यों की उपस्थिति सुनिश्चित करने तथा दल के आधिकारिक निर्देशों के अनुरूप अनिवार्य मतदान कराने हेतु नियुक्त आंतरिक पदाधिकारी; इसके लिखित निर्देश को भी 'व्हिप' कहा जाता है।

द. **विलोपित करना (Expunction):** पीठासीन अधिकारी के आदेश द्वारा संसद की आधिकारिक कार्यवाहियों (वाद-विवाद के रिकॉर्ड) में से असंसदीय, अमर्यादित अथवा आपत्तिजनक शब्दों को स्थायी रूप से हटा दिए जाने की प्रक्रिया।

य. **मूल राजनीतिक दल (Political Party) बनाम विधायी दल (Legislature Party):** मूल राजनीतिक दल संपूर्ण पंजीकृत राजनीतिक संगठन है जो जनता के बीच चुनाव लड़ता है, जबकि विधायी दल केवल उस दल के सदन में निर्वाचित सांसदों/विधायकों का समूह होता है; कानून की दृष्टि में मूल दल की इच्छा विधायी दल पर प्रभावी होती है।

र. **अर्धन्यायिक अधिकरण (Quasi-Judicial Tribunal):** वह प्रशासनिक या विधायी प्राधिकारी (जैसे लोकसभा अध्यक्ष) जो सामान्य न्यायालय न होते हुए भी कानून की व्याख्या करने, साक्ष्य लेने तथा नागरिकों अथवा सदस्यों के अधिकारों पर बाध्यकारी न्यायिक निर्णय देने की शक्ति रखता है।

अध्याय 13: उच्चतम न्यायालय: गठन, न्यायाधीशों की अर्हताएं, नियुक्ति (कॉलेजियम प्रणाली बनाम NJAC), कार्यकाल एवं महाभियोग प्रक्रिया

एकीकृत न्यायपालिका का संवैधानिक दर्शन एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय संविधान ने एक एकीकृत, अविभाज्य तथा स्वतंत्र न्यायपालिका की संरचना स्थापित की है। संयुक्त राज्य अमेरिका के दोहरे न्यायिक तंत्र (संघीय कानून हेतु संघीय न्यायालय तथा राज्य कानून हेतु राज्य न्यायालय) के विपरीत भारत में केंद्र तथा राज्यों दोनों के कानूनों को लागू करने के लिए 'न्यायालयों की एकल एकीकृत प्रणाली' अपनाई गई है। इस पदानुक्रमित संरचना के शीर्ष पर भारत का उच्चतम न्यायालय (Supreme Court of India) अवस्थित है, जिसके नीचे राज्यों के उच्च न्यायालय तथा उनके अधीनस्थ अधीनस्थ न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय) कार्य करते हैं।

भारतीय संविधान के भाग पांच (संघ) के अध्याय चार के अंतर्गत **अनुच्छेद 124 से 147** तक उच्चतम न्यायालय के गठन, स्वतंत्रता, अधिकारिता, शक्तियों तथा प्रक्रियाओं का विस्तृत विन्यास प्रस्तुत किया गया है।

wincompete

भारत का उच्चतम न्यायालय (शीर्षस्थ अपीलीय न्यायालय)

↓

उच्च न्यायालय (राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों हेतु)

↓

अधीनस्थ न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय, मुंसिफ आदि)

ऐतिहासिक संस्थागत विकास

अ. **रेग्युलेटिंग एक्ट, 1773:** कलकत्ता (फोर्ट विलियम) में वर्ष 1774 में एक 'अभिलेख न्यायालय' के रूप में उच्चतम न्यायालय की स्थापना हुई, जिसके प्रथम मुख्य न्यायाधीश सर एलिजा इम्पे थे।

ब. **भारत शासन अधिनियम, 1935 एवं संघीय न्यायालय:** इस अधिनियम के तहत 1 अक्टूबर 1937 को दिल्ली में 'भारत का संघीय न्यायालय' (Federal Court of India) स्थापित किया गया। इसके प्रथम मुख्य न्यायाधीश सर मॉरिस ग्वेयर थे। संघीय न्यायालय भारत का अंतिम अपीलीय न्यायालय नहीं था; इसके निर्णयों के विरुद्ध लंदन स्थित 'प्रिवी कौंसिल' (Privy Council) में अपील की जा सकती थी।

स. **स्वतंत्र भारत के उच्चतम न्यायालय का उद्घाटन:** संविधान लागू होने के दो दिन पश्चात **28 जनवरी 1950** को भारत के उच्चतम न्यायालय का विधिवत उद्घाटन संसद भवन के 'नरेंद्र मंडल' (चेंबर ऑफ प्रिंसेस) के कक्ष में हुआ। वर्ष 1958 में उच्चतम न्यायालय अपने वर्तमान परिसर (तिलक मार्ग, नई दिल्ली) में स्थानांतरित हुआ।

द. **प्रिवी कौंसिल अधिकारिता की समाप्ति:** 'प्रिवी कौंसिल अधिकारिता समाप्ति अधिनियम, 1949' पारित कर प्रिवी कौंसिल के अपीलीय क्षेत्राधिकार को समाप्त कर दिया गया। परिणामस्वरूप 1950 में स्थापित उच्चतम न्यायालय ने पूर्ववर्ती 'संघीय न्यायालय' तथा ब्रिटिश 'प्रिवी कौंसिल' दोनों के विधिक अधिकार क्षेत्रों को समाहित कर लिया।

उच्चतम न्यायालय का गठन एवं न्यायाधीशों की संख्या का विस्तार (अनुच्छेद 124(1))

संविधान का अनुच्छेद 124(1) उच्चतम न्यायालय के गठन और न्यायाधीशों की संख्या का उपबंध करता है। इसके अनुसार, "भारत का एक उच्चतम न्यायालय होगा जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और, जब तक संसद विधि द्वारा अधिक संख्या विहित न करे तब तक, सात से अनधिक अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा।"

संसद की अनन्य विधायी शक्ति

न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि करने का अनन्य अधिकार केवल **संसद** को प्राप्त है; इसके लिए संविधान में औपचारिक संशोधन की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि संसद साधारण विधि बनाकर न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या में वृद्धि कर सकती है। इसके विपरीत, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या का निर्धारण राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर करता है।

wincompete

न्यायाधीशों की संख्या का ऐतिहासिक एवं वैधानिक विस्तार

संसद द्वारा समय-समय पर 'उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) अधिनियम, 1956' में संशोधन करके न्यायाधीशों के स्वीकृत पदों में वृद्धि की गई है:

अधिनियम / संशोधन वर्ष	मुख्य न्यायमूर्ति (CJI)	अन्य न्यायाधीश	कुल स्वीकृत संख्या
मूल संविधान (1950)	1	7	**8**
1956 का संशोधन	1	10	**11**
1960 का संशोधन	1	13	**14**
1977 का संशोधन	1	17	**18**
1986 का संशोधन	1	25	**26**
2008 का संशोधन	1	30	**31**
2019 का संशोधन (अद्यतन)	1	33	**34**

वर्तमान में उच्चतम न्यायालय में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति सहित कुल स्वीकृत पदों की संख्या **34 (1 + 33)** है।

न्यायाधीशों की संवैधानिक अर्हताएं एवं शपथ (अनुच्छेद 124(3) एवं 124(6))

संविधान का अनुच्छेद 124(3) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए कतिपय अनिवार्य अर्हताएं निर्धारित करता है।

अनिवार्य विधिक अर्हताएं

अ. वह **भारत का नागरिक** हो।

ब. वह किसी उच्च न्यायालय (या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का लगातार) कम से कम **पांच वर्ष** तक न्यायाधीश रहा हो; अथवा

स. वह किसी उच्च न्यायालय (या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों का लगातार) कम से कम **दस वर्ष** तक अधिवक्ता (Advocate) रहा हो; अथवा

wincompete

द. वह राष्ट्रपति की राय में एक **पारंगत विधिवेत्ता (Distinguished Jurist)** हो।

अर्हताओं के विशिष्ट संवैधानिक आयाम

अ. **न्यूनतम आयु सीमा का अभाव:** संविधान में उच्चतम न्यायालय (तथा उच्च न्यायालय) के न्यायाधीश पद पर नियुक्ति हेतु किसी **न्यूनतम आयु सीमा का कोई उल्लेख नहीं** है।

ब. **पारंगत विधिवेत्ता का उपबंध:** राष्ट्रपति की दृष्टि में प्रख्यात विधिवेत्ता होने का आधार केवल उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति हेतु उपलब्ध है। यह प्रावधान उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अर्हता (अनुच्छेद 217) में शामिल नहीं है। भारतीय न्यायिक इतिहास में इस उपखंड के आधार पर अब तक किसी भी गैर-न्यायिक शिक्षाविद या विधिवेत्ता की सीधी नियुक्ति उच्चतम न्यायालय में नहीं की गई है।

स. **बार से सीधे नियुक्तियां:** उच्च न्यायालय में 10 वर्ष की वकालत के आधार पर बार (वकीलों) में से सीधे उच्चतम न्यायालय में पदोन्नत होने वाले प्रथम न्यायाधीश **न्यायमूर्ति एस. एम. सीकरी (1964)** थे, जो कालांतर में भारत के 13वें मुख्य न्यायमूर्ति (1971) भी बने। महिला न्यायाधीशों में **न्यायमूर्ति इंदु मल्होत्रा (2018)** बार से सीधे उच्चतम न्यायालय की न्यायाधीश नियुक्त होने वाली प्रथम महिला बनीं।

शपथ या प्रतिज्ञान (अनुच्छेद 124(6))

उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश पद ग्रहण करने से पूर्व **राष्ट्रपति** अथवा उसके द्वारा इस प्रयोजन के लिए नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान की **तीसरी अनुसूची** में निर्धारित प्रारूप के अनुसार शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है। शपथ के अंतर्गत न्यायाधीश निम्नलिखित प्रतिज्ञाएं करता है:

- विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखेगा।
- भारत की संप्रभुता और अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।
- अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करेगा।
- संविधान और विधियों की मर्यादा बनाए रखेगा (संविधान का परिरक्षण)।

न्यायाधीशों की नियुक्ति का मूल संवैधानिक उपबंध एवं कार्यपालिका बनाम न्यायपालिका द्वंद्व

मूल संविधान में न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में कार्यपालिका और न्यायपालिका के परामर्श को संतुलित करने का प्रयास किया गया था।

अनुच्छेद 124(2) का मूल पाठ

अनुच्छेद 124(2) के अनुसार, उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात, जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझे, राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (वारंट) द्वारा उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा।

- **परंतुक:** मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श **अनिवार्य (Shall be consulted)** होगा।

vi.compete

कार्यपालिका के वर्चस्व का कालखंड एवं 'परामर्श' का अर्थ

प्रारंभिक तीन दशकों में यह माना जाता रहा कि 'परामर्श' (Consultation) का अर्थ 'सहमति' (Concurrence) नहीं है। अंतिम निर्णय राष्ट्रपति (अर्थात केंद्रीय मंत्रिपरिषद) के हाथ में था। इस व्यवस्था के अंतर्गत दो बार वरिष्ठता की स्थापित परंपरा का खुला उल्लंघन देखा गया:

अ. **वर्ष 1973 (ए. एन. रे की नियुक्ति):** केशवानंद भारती वाद के ऐतिहासिक निर्णय के ठीक अगले दिन तत्कालीन सरकार ने तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों—न्यायमूर्ति जे. एम. शेलत, न्यायमूर्ति के. एस. हेगड़े तथा न्यायमूर्ति ए. एन. ग्रोवर—की वरिष्ठता की अनदेखी करते हुए न्यायमूर्ति **ए. एन. रे** को भारत का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त कर दिया। विरोध स्वरूप तीनों वरिष्ठ न्यायाधीशों ने त्यागपत्र दे दिया।

ब. **वर्ष 1977 (एम. यू. बेग की नियुक्ति):** एडीएम जबलपुर (बंदी प्रत्यक्षीकरण) वाद में आपातकाल के दौरान नागरिक स्वतंत्रताओं के पक्ष में एकमात्र असहमतिपूर्ण निर्णय देने वाले वरिष्ठतम न्यायाधीश न्यायमूर्ति एच. आर. खन्ना को दरकिनार करते हुए न्यायमूर्ति **एम. यू. बेग** को मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्त किया गया। न्यायमूर्ति खन्ना ने तुरंत इस्तीफा दे दिया।

जजेस केसेज एवं कॉलेजियम प्रणाली का संस्थागत उद्भव

कार्यपालिका के राजनीतिक हस्तक्षेप को समाप्त करने तथा न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा हेतु उच्चतम न्यायालय ने चार ऐतिहासिक वादों (जजेस केसेज) के माध्यम से वर्तमान **कॉलेजियम प्रणाली (Collegium System)** का निर्माण किया। यह व्यवस्था संविधान के किसी लिखित अनुच्छेद से नहीं, बल्कि न्यायिक निर्णयों के निर्वचन से विकसित हुई है।

प्रथम न्यायाधीश वाद (1981)	द्वितीय न्यायाधीश वाद (1993)	तृतीय न्यायाधीश वाद (1998)
• 'परामर्श' = 'सहमति' नहीं • कार्यपालिका का वर्चस्व स्थापित	• 'परामर्श' = 'सहमति' (कॉलेजियम जन्म) • CJI + 2 वरिष्ठतम न्यायाधीश • वरिष्ठता का नियम अनिवार्य	• कॉलेजियम का लोकतांत्रिक विस्तार • CJI + 4 वरिष्ठतम न्यायाधीश • बहुमत संस्तुति अनिवार्य

चार प्रमुख न्यायाधीश वाद (Judges Cases)

अ. **प्रथम न्यायाधीश वाद (एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ - 1981):** सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 124(2) में प्रयुक्त 'परामर्श' शब्द का अर्थ 'सहमति' नहीं है। कार्यपालिका मुख्य न्यायमूर्ति की सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं है; वह ठोस कारणों के आधार पर न्यायिक संस्तुति को अस्वीकार कर सकती है। इस निर्णय ने न्यायिक नियुक्तियों में कार्यपालिका के अंतिम वर्चस्व पर मुहर लगाई।

ब. **द्वितीय न्यायाधीश वाद (सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ - 1993):** नौ न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 7:2 के बहुमत से अपने 1981 के निर्णय को उलट दिया। न्यायालय ने स्थापित किया कि:

- 'परामर्श' का वास्तविक अर्थ **'सहमति' (Concurrence)** है।
- मुख्य न्यायमूर्ति की राय व्यक्तिगत नहीं होगी; वह अपने दो वरिष्ठतम सहयोगी न्यायाधीशों से विमर्श करने के बाद ही राष्ट्रपति को संस्तुति प्रेषित करेंगे। इस प्रकार यहीं से **कॉलेजियम व्यवस्था का जन्म** हुआ।
- भारत के मुख्य न्यायमूर्ति पद पर नियुक्ति हेतु **वरिष्ठता के सिद्धांत (Seniority Principle)** को अनिवार्य संवैधानिक नियम घोषित किया गया।

स. **तृतीय न्यायाधीश वाद (राष्ट्रपति संदर्भ - 1998):** संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत राष्ट्रपति के. आर. नारायणन द्वारा मांगे गए विधिक परामर्श पर नौ न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने कॉलेजियम के आकार और संचालन नियमों का विस्तृत विन्यास प्रस्तुत किया:

wincomplete

- उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति हेतु कॉलेजियम में **भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (CJI) तथा उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीश** सम्मिलित होंगे (कुल 5 सदस्य)।
- यदि चार में से दो न्यायाधीश भी किसी नाम पर असहमत होते हैं, तो सीजेआई उस संस्तुति को सरकार को प्रेषित नहीं करेंगे।
- उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा स्थानांतरण के लिए कॉलेजियम में सीजेआई और उच्चतम न्यायालय के **दो वरिष्ठतम न्यायाधीश** होंगे।

द. **चतुर्थ न्यायाधीश वाद (सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ - 2015):** पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 99वें संविधान संशोधन तथा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) अधिनियम को असंवैधानिक घोषित कर कॉलेजियम प्रणाली को पुनः बहाल कर दिया।

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) बनाम कॉलेजियम: 99वां संविधान संशोधन

कॉलेजियम प्रणाली की अपारदर्शिता, भाई-भतीजावाद (Nepotism) के आरोपों तथा कार्यपालिका की पूर्ण अनुपस्थिति की आलोचना के समाधान हेतु संसद ने ऐतिहासिक आम सहमति से एक नया तंत्र प्रस्तुत किया था।

99वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 एवं नए अनुच्छेद

संसद के दोनों सदनों द्वारा सर्वसम्मति से पारित तथा 16 से अधिक राज्य विधानमंडलों द्वारा अनुमोदित 99वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में तीन नए अनुच्छेद जोड़े गए:

- **अनुच्छेद 124क (124A):** राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) का गठन एवं संरचना।
- **अनुच्छेद 124ख (124B):** आयोग के कार्य (उच्चतम व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संस्तुति तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानांतरण की सिफारिश)।
- **अनुच्छेद 124ग (124C):** संसद को आयोग की कार्यप्रणाली के विनियमन हेतु विधि बनाने की शक्ति।

NJAC की छह सदस्यीय संरचना (अनुच्छेद 124क)

अ. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (पदेन अध्यक्ष)।

ब. उच्चतम न्यायालय के दो अन्य वरिष्ठतम न्यायाधीश (पदेन सदस्य)।

स. केंद्रीय विधि एवं न्याय मंत्री (पदेन सदस्य)।

द. **दो प्रख्यात व्यक्ति (Eminent Persons):** जिनका चयन भारत के प्रधानमंत्री, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति तथा लोकसभा में विपक्ष के नेता (अथवा सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता) की तीन सदस्यीय समिति द्वारा किया जाना था। इनमें से एक व्यक्ति का अनिवार्यतः अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक अथवा महिला वर्ग से होना विहित था।

विवाद का मुख्य कारण: वीटो शक्ति (Veto Power)

NJAC अधिनियम, 2014 की धारा 6(6) में उपबंध था कि यदि आयोग के किन्हीं भी **दो सदस्यों** ने किसी व्यक्ति की नियुक्ति की संस्तुति पर असहमति व्यक्त कर दी, तो आयोग उस व्यक्ति के नाम की सिफारिश नहीं करेगा। इसका विधिक प्रभाव यह था कि दो प्रख्यात व्यक्ति मिलकर संपूर्ण न्यायिक बिरादरी (तीन शीर्ष न्यायाधीशों) के सर्वसम्मत निर्णय को वीटो कर सकते थे।

न्यायिक समीक्षा एवं असंवैधानिकता का ऐतिहासिक निर्णय (16 अक्टूबर 2015)

न्यायमूर्ति जे. एस. खेहर की अध्यक्षता वाली पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 4:1 के बहुमत से 99वें संविधान संशोधन तथा NJAC अधिनियम को **शून्य एवं असंवैधानिक** घोषित कर दिया:

- **न्यायपालिका की स्वतंत्रता मूल संरचना का अंग:** न्यायालय ने अभीर्धारित किया कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence of Judiciary) संविधान की आधारभूत संरचना (Basic Structure) है। न्यायिक नियुक्तियों में न्यायपालिका की प्रधानता (Primacy) इस स्वतंत्रता का अनिवार्य तत्व है।
- **कार्यपालिका की उपस्थिति का विरोध:** आयोग में केंद्रीय विधि मंत्री की उपस्थिति तथा गैर-न्यायिक व्यक्तियों को वीटो शक्ति प्रदान करना न्यायिक स्वतंत्रता पर सीधा कुठाराघात है।
- **एकमात्र असहमतिपूर्ण मत:** न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर ने अल्पमत निर्णय देते हुए NJAC की संवैधानिकता का समर्थन किया तथा कॉलेजियम प्रणाली को पूर्णतः अपारदर्शी एवं जवाबदेही-विहीन बताया।

कॉलेजियम बनाम NJAC का तुलनात्मक चार्ट

तुलनात्मक बिंदु	कॉलेजियम प्रणाली (वर्तमान में प्रभावी)	राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (रद्द घोषित)
विधिक आधार	न्यायालयी निर्णय (1993 एवं 1998 के जजेस केसेज)।	99वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 एवं NJAC अधिनियम।
निकाय की प्रकृति	पूर्णतः बंद न्यायिक निकाय (केवल न्यायाधीश सम्मिलित)।	नागरिक समाज एवं कार्यपालिका का प्रतिनिधित्व करने वाला मिश्रित निकाय।
कुल सदस्य संख्या	**5 सदस्य** (CJI + 4 वरिष्ठतम न्यायाधीश)।	**6 सदस्य** (3 न्यायिक + 1 विधि मंत्री + 2 प्रख्यात व्यक्ति)।
कार्यपालिका की भूमिका	शून्य (केवल आसूचना ब्यूरो द्वारा जांच एवं औपचारिक अधिसूचना)।	सक्रिय एवं निर्णायक (केंद्रीय विधि मंत्री पूर्ण सदस्य के रूप में)।
वीटो का अधिकार	2 वरिष्ठतम न्यायाधीश असहमत हों तो नाम खारिज।	किन्हीं भी 2 सदस्यों के विरोध पर नाम खारिज।
संवैधानिक स्थिति	विधिक रूप से मान्य एवं निरंतर क्रियाशील।	16 अक्टूबर 2015 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **असंवैधानिक एवं रद्द**।

wincompete

न्यायाधीशों की पदावधि, त्यागपत्र एवं पदमुक्ति के संवैधानिक आधार

संविधान ने न्यायाधीशों को कार्यपालिका के किसी भी अनुचित हस्तक्षेप से मुक्त रखने के लिए उनकी पदावधि की निश्चितता सुनिश्चित की है।

कार्यकाल की संवैधानिक सीमाएं (अनुच्छेद 124(2))

अ. **65 वर्ष की आयु तक पद धारण:** उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश **65 वर्ष की आयु** प्राप्त करने तक अपने पद पर बना रहता है। (उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए यह आयु सीमा **62 वर्ष** है)।

ब. **आयु संबंधी विवाद का निपटारा (अनुच्छेद 124(2क)):** उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की आयु के संबंध में किसी भी संशय या विवाद का निर्धारण ऐसी रीति से किया जाएगा जो संसद विधि द्वारा उपबंधित करे।

स. **त्यागपत्र:** कोई भी न्यायाधीश किसी भी समय **राष्ट्रपति को संबोधित** अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा त्यागपत्र दे सकता है।

पदच्युति के केवल दो संवैधानिक आधार (अनुच्छेद 124(4))

संविधान स्पष्ट करता है कि उच्चतम न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को उसके पद से केवल और केवल निम्नलिखित दो आधारों पर ही हटाया जा सकता है:

- **सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour)**
- **असमर्थता (Incapacity)**

संविधान में इन दोनों शब्दों की कोई तकनीकी परिभाषा नहीं दी गई है; इनका निर्धारण न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के तहत गठित न्यायिक समिति द्वारा साक्ष्यों के आधार पर किया जाता है।

महाभियोग की संसदीय एवं न्यायिक प्रक्रिया (अनुच्छेद 124(4) एवं न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968)

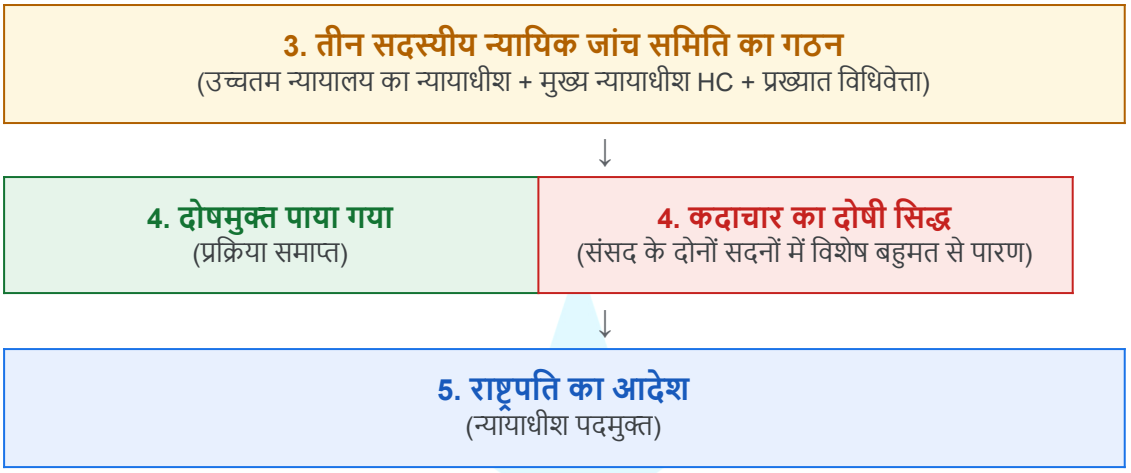
यद्यपि संविधान में न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया के लिए 'महाभियोग' (Impeachment) शब्द का औपचारिक प्रयोग नहीं हुआ है (संविधान में यह शब्द केवल अनुच्छेद 61 में राष्ट्रपति के लिए प्रयुक्त है), किंतु विधिक शब्दावली में इस अत्यंत कठोर प्रक्रिया को सामान्यतः महाभियोग ही कहा जाता है। संविधान के अनुच्छेद 124(5) के तहत संसद ने प्रक्रिया को विनियमित करने हेतु **न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 (Judges Inquiry Act, 1968)** अधिनियमित किया है।

1. हटाने का प्रस्ताव प्रस्तुत करना
(लोकसभा में 100 सदस्य अथवा राज्यसभा में 50 सदस्य)

↓

2. पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष / सभापति) का निर्णय
(स्वीकार अथवा अस्वीकार करना)

↓



महाभियोग के सात चरणबद्ध सोपान

अ. **प्रस्ताव की प्रस्तुति:**

- यदि प्रस्ताव **लोकसभा** में लाया जाता है, तो न्यूनतम **100 सदस्यों** के हस्ताक्षर आवश्यक हैं।
- यदि प्रस्ताव **राज्यसभा** में लाया जाता है, तो न्यूनतम **50 सदस्यों** के हस्ताक्षर आवश्यक हैं।

ब. **प्रस्ताव की प्रारंभिक स्वीकृति:** लोकसभा अध्यक्ष अथवा राज्यसभा सभापति को यह विवेकाधिकार है कि वह प्रस्ताव को स्वीकार करे अथवा आरंभ में ही खारिज कर दे।

स. **तीन सदस्यीय जांच समिति का गठन:** प्रस्ताव स्वीकार होने पर पीठासीन अधिकारी आरोपों की जांच हेतु तीन सदस्यीय समिति का गठन करता है, जिसमें सम्मिलित होते हैं:

- उच्चतम न्यायालय का एक न्यायाधीश।
- किसी उच्च न्यायालय का एक मुख्य न्यायाधीश।
- एक प्रख्यात विधिवेत्ता (Distinguished Jurist)।

द. **आरोपों की जांच:** यदि समिति पाती है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी नहीं है अथवा असमर्थ नहीं है, तो प्रक्रिया वहीं समाप्त हो जाती है। यदि समिति आरोपों को सही पाती है, तो उसकी रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों के पटल पर रखी जाती है।

य. **विशेष बहुमत द्वारा अभिभाषण का पारण (अनुच्छेद 124(4)):** समिति द्वारा दोषी पाए जाने के पश्चात संसद के प्रत्येक सदन द्वारा यह प्रस्ताव पृथक-पृथक विशेष बहुमत से पारित होना अनिवार्य है:

- **सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत**; तथा
- **उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का कम से कम दो-तिहाई (2/3) बहुमत**।

र. **एक ही सत्र में प्रस्तुति की अनिवार्यता:** यह संवैधानिक रूप से आवश्यक है कि दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित समावेदन (Address) **उसी सत्र में** राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

ल. **राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन आदेश:** संसद द्वारा समावेदन प्रस्तुत किए जाने के उपरांत राष्ट्रपति न्यायाधीश को पद से हटाने का औपचारिक आदेश जारी करता है।

wincompete

ऐतिहासिक महाभियोग प्रयास एवं प्रमुख दृष्टांत

स्वतंत्र भारत के इतिहास में अब तक उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को महाभियोग की पूर्ण प्रक्रिया द्वारा अंतिम रूप से **पदच्युत नहीं किया जा सका है**।

प्रमुख ऐतिहासिक मामले

न्यायाधीश का नाम	न्यायालय एवं वर्ष	आरोपों की प्रकृति	प्रक्रिया का अंतिम परिणाम
न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी	उच्चतम न्यायालय (1991-1993)	पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में वित्तीय अनियमितताएं।	जांच समिति ने दोषी पाया; 1993 में लोकसभा में मतदान के दौरान सत्ताधारी दल (कांग्रेस) के अनुपस्थित रहने से **दो-तिहाई बहुमत के अभाव में प्रस्ताव गिर गया**। वे महाभियोग का सामना करने वाले प्रथम न्यायाधीश थे।
न्यायमूर्ति सौमित्र सेन	कलकत्ता उच्च न्यायालय (2011)	वकील रहते हुए सरकारी धन का दुरुपयोग।	**राज्यसभा ने प्रस्ताव पारित किया**; किंतु लोकसभा में मतदान होने से पूर्व ही उन्होंने पद से त्यागपत्र दे दिया।
न्यायमूर्ति पी. डी. दिनाकरण	सिक्किम उच्च न्यायालय (2011)	आय से अधिक संपत्ति, भ्रष्टाचार व भूमि कब्जा।	जांच समिति की रिपोर्ट आने और संसद में चर्चा से पूर्व ही उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।
न्यायमूर्ति जे. बी. पारदीवाला	गुजरात उच्च न्यायालय (2015)	आरक्षण पर विवादित न्यायिक टिप्पणियां।	सांसदों द्वारा नोटिस दिए जाने के पश्चात उन्होंने निर्णय से विवादित अंश स्वयं विलोपित कर दिए, जिससे कार्यवाही आगे नहीं बढ़ी।
न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा	भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (2018)	प्रशासनिक विसंगतियां एवं रोस्टर निर्धारण के आरोप।	राज्यसभा के सभापति (एम. वेंकैया नायडू) ने प्रथम दृष्टया साक्ष्य के अभाव में **प्रस्ताव को आरंभिक चरण में ही खारिज कर दिया**। यह किसी सीजेआई के विरुद्ध प्रथम प्रस्ताव था।

wincompete

कार्यकारी, तदर्थ एवं सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के उपबंध (अनुच्छेद 126, 127, 128)

न्यायिक कार्यों की निरंतरता तथा कोरम के अभाव को दूर करने के लिए संविधान में तदर्थ एवं कार्यकारी व्यवस्थाएं की गई हैं।

कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति (अनुच्छेद 126)

जब भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का पद रिक्त हो, अथवा वह अपनी अनुपस्थिति के कारण या अन्यथा अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो, तब उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से ऐसा एक न्यायाधीश, जिसे **राष्ट्रपति** इस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे, उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा।

तदर्थ (एड-हॉक) न्यायाधीशों की नियुक्ति (अनुच्छेद 127)

अ. **नियुक्ति का आधार (कोरम की कमी):** यदि किसी समय उच्चतम न्यायालय के किसी सत्र को आयोजित करने या चालू रखने के लिए उस न्यायालय के न्यायाधीशों की गणपूर्ति (Quorum) उपलब्ध न हो, तो तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है।

ब. **प्राधिकृत अधिकारी एवं प्रक्रिया:** भारत का मुख्य न्यायमूर्ति राष्ट्रपति की **पूर्व सहमति** से तथा संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से **परामर्श** के पश्चात किसी उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीश को (जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्ह हो) लिखित रूप में तदर्थ न्यायाधीश के रूप में उपस्थित रहने का अनुरोध कर सकता है।

स. **विशिष्ट स्थिति:** तदर्थ न्यायाधीश की नियुक्ति का उपबंध **केवल उच्चतम न्यायालय के लिए** है; उच्च न्यायालयों में तदर्थ न्यायाधीश नियुक्त नहीं किए जाते (वहां अतिरिक्त एवं कार्यवाहक न्यायाधीश होते हैं)।

सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की उपस्थिति (अनुच्छेद 128)

भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से, उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी सेवानिवृत्त न्यायाधीश से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकता है। ऐसे न्यायाधीश को राष्ट्रपति द्वारा अवधारित भत्ते प्राप्त होते हैं तथा न्यायालय के सभी अधिकार प्राप्त होते हैं, किंतु वह उच्चतम न्यायालय का नियमित न्यायाधीश नहीं समझा जाता।

उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता के संवैधानिक सुरक्षा उपाय

संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका को कार्यपालिका तथा विधायिका के अनुचित दबाव से पूर्णतः मुक्त रखने के लिए विस्तृत संरचनात्मक प्रावधान किए हैं:

अ. **नियुक्ति की कठोर प्रक्रिया:** न्यायाधीशों की नियुक्ति में राजनीतिक हस्तक्षेप को सीमित करने हेतु कॉलेजियम परामर्श अनिवार्य है।

ब. **पदावधि की सुरक्षा:** न्यायाधीश राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत (Pleasure of the President) पद धारण नहीं करते; उन्हें केवल संसद के दोनों सदनों के विशेष बहुमत द्वारा सिद्ध कदाचार या असमर्थता के आधार पर ही हटाया जा सकता है।

स. **निश्चित सेवा शर्तें (अनुच्छेद 125(2)):** न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते, विशेषाधिकार और अवकाश का निर्धारण संसद विधि द्वारा करती है। नियुक्ति के पश्चात उनकी पदावधि के दौरान उनके अधिकारों में कोई **अलाभकारी परिवर्तन (Disadvantageous Change)** नहीं किया जा सकता (अनुच्छेद 360 के वित्तीय आपातकाल को छोड़कर)।

द. **संचित निधि पर भारित व्यय (अनुच्छेद 146(3)):** उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते, पेंशन तथा प्रशासनिक व्यय **भारत की संचित निधि पर भारित (Charged)** होते हैं। संसद में इस पर चर्चा हो सकती है, किंतु **मतदान नहीं कराया जा सकता**।

य. **आचरण पर बहस पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 121):** उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए किसी आचरण पर संसद या राज्य विधानमंडल में कोई चर्चा नहीं की जा सकती, सिवाय तब जब उसे हटाने के लिए महाभियोग प्रस्ताव संसद के विचाराधीन हो।

र. **वकालत पर पूर्ण प्रतिबंध (अनुच्छेद 124(7)):** कोई व्यक्ति जिसने उच्चतम न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश के रूप में पद धारण किया है, सेवानिवृत्ति के पश्चात भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर **किसी भी न्यायालय में या किसी प्राधिकारी के समक्ष वकालत या कार्य नहीं करेगा**। (यह उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से भिन्न है, जो सेवानिवृत्ति के बाद अन्य उच्च न्यायालयों अथवा उच्चतम न्यायालय में वकालत कर सकते हैं)।

ल. **अवमानना हेतु दंडित करने की शक्ति (अनुच्छेद 129 एवं 142(2)):** उच्चतम न्यायालय एक 'अभिलेख न्यायालय' (Court of Record) है। उसे अपनी अवमानना (Contempt of Court) के लिए किसी भी व्यक्ति को कारावास या अर्थदंड से दंडित करने की संप्रभु शक्ति प्राप्त है।

व. **कर्मचारियों की नियुक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 146):** उच्चतम न्यायालय के अधिकारियों और सेवकों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की जाती है। इस पर कार्यपालिका का कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता।

संवैधानिक एवं न्यायिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **कॉलेजियम (Collegium):** भारत के मुख्य न्यायमूर्ति तथा उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों का वह आंतरिक न्यायिक निकाय जो उच्चतर न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति एवं स्थानांतरण हेतु सरकार को बाध्यकारी संस्तुति प्रेषित करता है।

ब. **प्रख्यात विधिवेत्ता (Distinguished Jurist):** संविधान के अनुच्छेद 124(3)(ग) के अंतर्गत राष्ट्रपति के विवेक पर आधारित वह अर्हता जिसके आधार पर किसी प्रख्यात कानूनविद् या विधि आचार्य को बिना किसी न्यायिक या वकालत के पूर्व अनुभव के सीधे उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है।

स. **अभिलेख न्यायालय (Court of Record):** अनुच्छेद 129 के अनुसार उच्चतम न्यायालय के सभी निर्णयों, कार्यवाहियों और साक्ष्यों को स्थायी स्मृति एवं साक्ष्य के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। इनके पूर्वोदाहरण (Precedents) अधीनस्थ न्यायालयों पर बाध्यकारी होते हैं तथा न्यायालय को अपनी अवमानना हेतु दंडित करने का अधिकार होता है।

द. **विशेष बहुमत (Special Majority):** महाभियोग प्रक्रिया में प्रयुक्त वह कठोर संसदीय बहुमत जिसके तहत सदन की कुल सदस्य संख्या का 50 प्रतिशत से अधिक तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों का कम से कम दो-तिहाई (2/3) समर्थन एक साथ आवश्यक होता है।

य. **तदर्थ न्यायाधीश (Ad-hoc Judge):** अनुच्छेद 127 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय में गणपूर्ति (कोरम) के अभाव को पूरा करने के लिए उच्च न्यायालय से अस्थायी रूप से आमंत्रित किया गया अर्हताप्राप्त न्यायाधीश।

र. **अलाभकारी परिवर्तन का निषेध (Immunity from Detrimental Alteration):** संविधान द्वारा प्रदत्त वह गारंटी जिसके अनुसार किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के उपरांत संसद विधि बनाकर भी उसके वेतन, भत्तों, छुट्टियों अथवा पेंशन में उसके कार्यकाल के दौरान कोई नकारात्मक कटौती नहीं कर सकती।

wincompete

अध्याय 14: उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार: मूल/आरंभिक क्षेत्राधिकार, अपीलीय क्षेत्राधिकार, विशेष अनुमति याचिका एवं परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार

उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार का संवैधानिक विन्यास एवं वर्गीकरण

भारतीय संविधान के भाग पांच (संघ) के अध्याय चार के अंतर्गत अनुच्छेद 131 से 144 तक भारत के उच्चतम न्यायालय के विस्तृत एवं बहुआयामी क्षेत्राधिकार का विन्यास किया गया है। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की तुलना में, जो केवल संघीय मामलों और संविधान की व्याख्या तक सीमित है, अथवा ब्रिटिश हाउस ऑफ लॉर्ड्स (वर्तमान यूके सुप्रीम कोर्ट) की तुलना में, भारत के शीर्ष न्यायालय को विश्व के किसी भी अन्य लोकतांत्रिक देश के उच्चतम न्यायालय की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक अधिकारिता सौंपी गई है।

भारतीय उच्चतम न्यायालय एक साथ संघीय न्यायालय (Federal Court), मूल अधिकारों का संरक्षक, अंतिम अपीलीय न्यायालय (Final Court of Appeal), तथा राष्ट्रपति का संवैधानिक परामर्शदाता है।

उच्चतम न्यायालय का बहुआयामी क्षेत्राधिकार

↓

आरंभिक/मूल क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 131)	रिट अधिकारिता (अनुच्छेद 32)	अपीलीय अधिकारिता (अनुच्छेद 132-134)	विशेष अनुमति याचिका (SLP - 136)	परामर्शदात्री अधिकारिता (अनुच्छेद 143)

क्षेत्राधिकारों की मूल श्रेणियां

अ. **अनन्य एवं मूल क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 131):** भारतीय संघ की विभिन्न इकाइयों (केंद्र एवं राज्यों) के मध्य उत्पन्न होने वाले अंतर-सरकारी कानूनी विवादों का सीधे निपटारा।

ब. **समवर्ती मूल क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 32):** नागरिकों के मूल अधिकारों के प्रवर्तन हेतु रिट जारी करने का अधिकार, जो उच्च न्यायालयों (अनुच्छेद 226) के साथ समवर्ती है।

स. **अपीलीय क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 132 से 134A):** संवैधानिक, दीवानी एवं दांडिक मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अंतिम अपील सुनने की शक्ति।

द. **विशेष अनुमति याचिका (अनुच्छेद 136):** भारत के राज्यक्षेत्र में किसी भी न्यायालय या अधिकरण द्वारा दिए गए किसी भी निर्णय, डिक्री, अवधारण या दंडादेश के विरुद्ध अपील की विशेष अनुमति देने की असाधारण शक्ति।

य. **सलाहकारी अथवा परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 143):** विधि या तथ्य के व्यापक लोक महत्व के प्रश्नों पर राष्ट्रपति को विधिक राय देने का अधिकार।

wincomplete

र. **अभिलेख न्यायालय एवं अंतर्निहित शक्तियां (अनुच्छेद 129, 137 एवं 142):** अपने स्वयं के निर्णयों के पुनरावलोकन तथा किसी मामले में 'पूर्ण न्याय' (Complete Justice) प्रदान करने की संप्रभु शक्तियां।

आरंभिक या मूल क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 131): संघीय विवाद एवं सीमाएं

संविधान का अनुच्छेद 131 उच्चतम न्यायालय को 'आरंभिक' (Original) तथा 'अनन्य' (Exclusive) क्षेत्राधिकार प्रदान करता है। 'आरंभिक' का अर्थ है कि ऐसे विवादों की सुनवाई की शुरुआत सीधे उच्चतम न्यायालय में ही हो सकती है, किसी अधीनस्थ न्यायालय में नहीं; और 'अनन्य' का तात्पर्य है कि भारत का कोई भी अन्य न्यायालय (उच्च न्यायालय सहित) इन मामलों की सुनवाई नहीं कर सकता।

अनुच्छेद 131 के अंतर्गत आने वाले संघीय विवाद

उच्चतम न्यायालय को निम्नलिखित तीन प्रकार के विवादों में अनन्य अधिकारिता प्राप्त है:

अ. **केंद्र बनाम एक या अधिक राज्य:** भारत सरकार और एक या अधिक राज्यों के बीच विवाद।

ब. **केंद्र व कुछ राज्य बनाम अन्य राज्य:** एक ओर भारत सरकार और कोई राज्य या राज्य हों तथा दूसरी ओर एक या अधिक अन्य राज्य हों।

स. **राज्य बनाम राज्य:** दो या अधिक राज्यों के मध्य आपसी विवाद।

आरंभिक क्षेत्राधिकार की अनिवार्य पूर्व-शर्तें

अ. **विधिक अधिकार का प्रश्न (Question of Law):** अनुच्छेद 131 का मुख्य उपबंध स्पष्ट करता है कि उक्त विवाद में "विधि या तथ्य का ऐसा कोई प्रश्न अंतर्वलित होना चाहिए जिस पर किसी विधिक अधिकार (Legal Right) का अस्तित्व या विस्तार निर्भर करता है।"

ब. **राजनीतिक विवादों का अपवर्जन:** यदि विवाद का आधार विशुद्ध रूप से राजनीतिक, दलीय अथवा नैतिक है और उसमें किसी संवैधानिक या वैधानिक अधिकार का उल्लंघन नहीं हुआ है, तो न्यायालय अनुच्छेद 131 के तहत वाद को खारिज कर देगा।

स. **वाद की प्रकृति (केवल राज्य सरकारें):** इस अनुच्छेद के अधीन केवल और केवल 'संघ' और 'राज्य' ही पक्षकार हो सकते हैं। किसी निजी नागरिक, फर्म, कंपनी, निगम अथवा स्थानीय निकाय (जैसे नगर पालिका) द्वारा संघ या राज्य के विरुद्ध दायर वाद अनुच्छेद 131 के अंतर्गत ग्राह्य नहीं होता।

अनुच्छेद 131 से बाहर रखे गए विषय (अपवाद)

संविधान तथा विधिक उपबंधों द्वारा कतिपय विवादों को उच्चतम न्यायालय के इस आरंभिक क्षेत्राधिकार से स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है:

wincompete

संवैधानिक / विधिक अपवर्जन	संबंधित संवैधानिक अनुच्छेद	विधिक स्थिति एवं निपटारा तंत्र
संविधान-पूर्व संधियां एवं समझौते	अनुच्छेद 131 का परंतुक	26 जनवरी 1950 से पूर्व की संधियों, सनदों, प्रसंविदाओं या करारों से उत्पन्न विवाद उच्चतम न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार से बाहर हैं।
अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद	अनुच्छेद 262(2) एवं अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956	संसद विधि द्वारा नदी जल विवादों में उच्चतम न्यायालय सहित किसी भी न्यायालय की अधिकारिता को समाप्त कर सकती है। इसके लिए संसद पृथक न्यायाधिकरण (Tribunal) बनाती है।
वित्त आयोग के विचारार्थ विषय	अनुच्छेद 280	वित्त आयोग को संदर्भित मामलों और सिफारिशों पर अनुच्छेद 131 के तहत वाद संस्थित नहीं हो सकता।
केंद्र एवं राज्यों के मध्य खर्चों का समायोजन	अनुच्छेद 290	कतिपय व्ययों एवं पेंशनों के संबंध में केंद्र-राज्य वित्तीय समायोजन का निर्णय मध्यस्थ (Arbitrator) द्वारा होता है।

अनुच्छेद 131 से संबंधित प्रमुख न्यायिक निर्णय

अ. **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम भारत संघ (1963):** पश्चिम बंगाल सरकार ने संसद द्वारा पारित 'कोयला वहन क्षेत्र (अर्जन एवं विकास) अधिनियम, 1957' को इस आधार पर चुनौती दी कि संघ को राज्य की स्वामित्व वाली भूमि का अधिग्रहण करने का अधिकार नहीं है। उच्चतम न्यायालय की छह न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि भारतीय संविधान विशुद्ध रूप से पारंपरिक परिसंघीय नहीं है; संसद की संप्रभुता के अधीन संघ को राज्य की संपत्ति का अधिग्रहण करने का पूर्ण अधिकार है।

ब. **कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ (1977):** केंद्र सरकार ने राज्य के मुख्यमंत्री के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच हेतु 'जांच आयोग अधिनियम, 1952' के तहत एक न्यायिक जांच आयोग गठित किया। कर्नाटक सरकार ने अनुच्छेद 131 के तहत वाद दायर किया कि केंद्र का यह कृत्य राज्य की स्वायत्तता का हनन है। न्यायालय ने बहुमत से वाद को विचारणीय माना किंतु गुण-दोष के आधार पर केंद्र के निर्णय को वैध ठहराया।

स. **केरल राज्य बनाम भारत संघ (2020 एवं 2024):** केरल सरकार ने नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2019 (CAA) के विरुद्ध अनुच्छेद 131 के अंतर्गत वाद दायर किया। न्यायालय ने दोहराया कि राज्य सरकार केंद्रीय कानूनों की संवैधानिकता को इस अनुच्छेद के तहत तभी चुनौती दे सकती है जब उसके अपने विधिक या संवैधानिक अधिकारों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ रहा हो।

wincompete

मूल अधिकारों का प्रवर्तन एवं रिट क्षेत्राधिकार: अनुच्छेद 32 बनाम अनुच्छेद 226

संविधान का अनुच्छेद 32 नागरिकों के मूल अधिकारों के उल्लंघन की दशा में उच्चतम न्यायालय को सीधे निर्देश, आदेश या रिट जारी करने का अधिकार देता है। डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने संविधान सभा में अनुच्छेद 32 को "संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद", "संविधान का हृदय" तथा "संविधान की आत्मा" की संज्ञा दी थी।

संवैधानिक विशेषताएं एवं पांच प्रमुख रिटें

अनुच्छेद 32(2) के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों के प्रवर्तन हेतु पांच प्रकार की रिटें जारी करने की शक्ति प्राप्त है:

अ. **बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus):** इसका शाब्दिक अर्थ है 'शरीर को प्रस्तुत किया जाए'। यह अवैध या गैर-कानूनी रूप से निरुद्ध किए गए किसी भी व्यक्ति को मुक्त कराने हेतु जारी की जाती है। यह सार्वजनिक एवं निजी दोनों निकायों के विरुद्ध जारी हो सकती है।

ब. **परमादेश (Mandamus):** इसका शाब्दिक अर्थ है 'हम आदेश देते हैं'। यह किसी सार्वजनिक अधिकारी, प्रशासनिक निकाय, अथवा अधीनस्थ न्यायालय को अपने विधिक एवं वैधानिक कर्तव्यों का पालन करने हेतु बाध्य करने के लिए जारी की जाती है। यह निजी व्यक्तियों, भारत के राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के विरुद्ध जारी नहीं की जा सकती।

स. **प्रतिषेध (Prohibition):** इसका शाब्दिक अर्थ है 'रोकना या निषेध करना'। यह उच्चतर न्यायालय द्वारा किसी अधीनस्थ न्यायालय या अर्ध-न्यायिक अधिकरण को तब जारी की जाती है जब वह अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य कर रहा हो। यह केवल न्यायिक एवं अर्ध-न्यायिक प्राधिकारियों के विरुद्ध ही जारी होती है।

द. **उत्प्रेषण (Certiorari):** इसका शाब्दिक अर्थ है 'पूर्णतः सूचित होना या प्रमाणित करना'। यह किसी अधीनस्थ न्यायालय या अधिकरण द्वारा अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण करने या नैसर्गिक न्याय के उल्लंघन के आधार पर उसके निर्णय को रद्द करने अथवा लंबित मामले को अपने पास स्थानांतरित कराने हेतु जारी की जाती है। (वर्ष 1991 के पश्चात यह प्रशासनिक अधिकारियों के विरुद्ध भी जारी की जा सकती है)।

य. **अधिकार पृच्छा (Quo-Warranto):** इसका शाब्दिक अर्थ है 'आपका प्राधिकार क्या है?'। यह किसी व्यक्ति द्वारा किसी सार्वजनिक पद (Public Office) को अवैध रूप से धारण करने पर उसके पद के विधिक दावे की जांच करने हेतु जारी की जाती है।

अनुच्छेद 32 (उच्चतम न्यायालय) एवं अनुच्छेद 226 (उच्च न्यायालय) का तुलनात्मक अध्ययन

यद्यपि दोनों न्यायालयों को रिट जारी करने का संप्रभु अधिकार है, किंतु उनके क्षेत्राधिकार के विस्तार और प्रकृति में स्पष्ट संवैधानिक विभेद है:

wincompete

तुलना का आधार	उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32)	उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 226)
अधिकार का स्वरूप	**अनुच्छेद 32 स्वयं एक मौलिक अधिकार है** (भाग तीन का अंग)। उच्चतम न्यायालय रिट जारी करने से इनकार नहीं कर सकता।	**अनुच्छेद 226 एक संवैधानिक अधिकार है**, किंतु मूल अधिकार नहीं है। उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार विवेकाधीन (Discretionary) है।
प्रवर्तन का दायरा	यह **केवल मूल अधिकारों** (भाग तीन) के उल्लंघन पर ही रिट जारी कर सकता है; अन्य किसी प्रयोजन हेतु नहीं।	यह मूल अधिकारों के साथ-साथ **'अन्य किसी प्रयोजन'** (सामान्य विधिक अधिकारों के उल्लंघन) हेतु भी रिट जारी कर सकता है। (इस दृष्टि से उच्च न्यायालय का रिट दायरा व्यापक है)।
प्रादेशिक सीमा	यह संपूर्ण भारत के राज्यक्षेत्र में किसी भी प्राधिकारी, सरकार या व्यक्ति के विरुद्ध रिट जारी कर सकता है।	यह केवल अपने संबंधित राज्य की भौगोलिक सीमा के भीतर अथवा जहां वाद-कारण (Cause of Action) उत्पन्न हुआ हो, वहीं रिट जारी कर सकता है।

अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction): अनुच्छेद 132 से 134A

भारत का उच्चतम न्यायालय देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है। यह प्राथमिक रूप से उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करता है। इसके अपीलीय क्षेत्राधिकार को चार स्पष्ट उप-वर्गों में संहिताबद्ध किया गया है:

उच्चतम न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार

↓

संवैधानिक मामले (अनुच्छेद 132)	दीवानी मामले (अनुच्छेद 133)	आपराधिक मामले (अनुच्छेद 134)	अपील का प्रमाण-पत्र (अनुच्छेद 134A)

1. संवैधानिक मामलों में अपील (अनुच्छेद 132)

यदि किसी उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या अंतिम आदेश के संबंध में उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि उस मामले में **"संविधान के निर्वचन (व्याख्या) के बारे में विधि का कोई सारवान प्रश्न" (Substantial Question of Law as to Interpretation of Constitution)** अंतर्वलित है, तो उस निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

2. दीवानी (सिविल) मामलों में अपील (अनुच्छेद 133)

अ. **मूल 1950 की स्थिति:** मूल संविधान में दीवानी मामलों में अपील के लिए 20,000 रुपये की न्यूनतम वित्तीय सीमा तय की गई थी।

ब. **30वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1972:** इस संशोधन द्वारा वित्तीय सीमा (Monetary Limit) को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया।

स. **वर्तमान विधिक मापदंड:** अब किसी भी दीवानी मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील केवल तभी हो सकती है जब उच्च न्यायालय अनुच्छेद 134A के अधीन यह प्रमाणित करे कि:

- उस मामले में व्यापक सामान्य महत्व की विधि का कोई सारवान प्रश्न अंतर्वलित है; तथा
- उच्च न्यायालय की राय में उस प्रश्न का उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चय किया जाना आवश्यक है।

3. आपराधिक (दांडिक) मामलों में अपील (अनुच्छेद 134)

आपराधिक मामलों में उच्च न्यायालय के किसी निर्णय, अंतिम आदेश या दंडादेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील दो विधियों से होती है:

अ. **बिना प्रमाण-पत्र के अपील (अधिकार स्वरूप अपील - अनुच्छेद 134(1)(क) एवं (ख)):**

- यदि उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त की **दोषमुक्ति (Acquittal) के आदेश को उलट दिया हो और उसे मृत्यु दंडादेश** सुनाया हो।
- यदि उच्च न्यायालय ने अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय से किसी मामले को विचारण हेतु अपने पास मंगा लिया हो और ऐसे विचारण में अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराकर **मृत्यु दंडादेश** दिया हो।
- *(सर्वोच्च न्यायालय (आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार विस्तार) अधिनियम, 1970 द्वारा इसका विस्तार करते हुए यह उपबंधित किया गया कि यदि उच्च न्यायालय दोषमुक्ति को पलटकर अभियुक्त को आजीवन कारावास या 10 वर्ष या उससे अधिक के कारावास का दंड देता है, तब भी अधिकार स्वरूप उच्चतम न्यायालय में अपील होगी)।*

ब. **उच्च न्यायालय के प्रमाण-पत्र द्वारा अपील (अनुच्छेद 134(1)(ग)):** यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने योग्य है।

4. उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाण-पत्र (अनुच्छेद 134A)

यह अनुच्छेद **44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978** द्वारा अंतःस्थापित किया गया। इसके अनुसार, उच्च न्यायालय किसी निर्णय या आदेश के पारित होने के उपरांत या तो **स्वतः संज्ञान (Suo Motu)** लेकर अथवा व्यथित पक्षकार द्वारा मौखिक आवेदन किए जाने पर तुरंत यह अवधारित करेगा कि क्या अनुच्छेद 132, 133 या 134(1)(ग) के अधीन अपील हेतु प्रमाण-पत्र दिया जाना चाहिए अथवा नहीं।

विशेष अनुमति याचिका (SLP - अनुच्छेद 136): प्रकृति, असाधारण शक्तियां एवं सीमाएं

wincompete

संविधान का अनुच्छेद 136 उच्चतम न्यायालय को एक अवशिष्ट, विवेकाधीन तथा असाधारण अपीलीय शक्ति प्रदान करता है जिसे 'विशेष अनुमति याचिका' (Special Leave Petition - SLP) कहा जाता है।

अनुच्छेद 136(1) का व्यापक विधिक पाठ

"इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, उच्चतम न्यायालय अपने विवेकानुसार भारत के राज्यक्षेत्र में किसी भी न्यायालय या अधिकरण द्वारा किसी वाद या मामले में पारित किए गए या किए गए किसी निर्णय, डिक्री, अवधारण, दंडादेश या आदेश की अपील के लिए विशेष अनुमति दे सकेगा।"

अनुच्छेद 136 के चार असाधारण आयाम

↓

किसी भी न्यायालय/अधिकरण से	किसी भी प्रकार के मामले में	किसी भी चरण पर	सर्वोच्च न्यायालय का विवेकानुसार अधिकार
उच्च न्यायालय होना अनिवार्य नहीं; जिला न्यायालय या ट्रिब्यूनल से भी सीधी अपील संभव।	संवैधानिक, दीवानी, आपराधिक, आयकर, श्रम आदि विषयों से संबंधित।	अंतिम निर्णय होना अनिवार्य नहीं; अंतरिम आदेश के विरुद्ध भी ग्राह्य।	विशेष अनुमति देना या न देना पूरी तरह न्यायालय के स्वविवेकाधिकार पर निर्भर।

अनुच्छेद 136 की प्रमुख विशेषताएं

अ. **विवेकाधीन शक्ति (Discretionary Power):** एसएलपी के तहत अपील सुनना नागरिकों का कोई विधिक या मौलिक अधिकार नहीं है; यह पूरी तरह उच्चतम न्यायालय का स्वविवेकाधिकार है कि वह याचिका को स्वीकार करे या प्रारंभिक चरण में ही खारिज कर दे।

ब. **व्यापक क्षेत्राधिकार:** यह शक्ति उच्च न्यायालयों तक सीमित नहीं है। भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भी अधीनस्थ न्यायालय अथवा अर्ध-न्यायिक अधिकरण (जैसे राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग, आयकर अपीलीय अधिकरण, एनजीटी आदि) के निर्णय के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में एसएलपी दायर की जा सकती है।

स. **अंतरिम आदेशों के विरुद्ध भी ग्राह्य:** सामान्य अपीलों के विपरीत अनुच्छेद 136 के अंतर्गत किसी मामले के अंतिम निर्णय के साथ-साथ किसी अंतरिम (Interlocutory) आदेश के विरुद्ध भी विशेष अनुमति दी जा सकती है।

संवैधानिक अपवाद: सैन्य न्यायालयों का अपवर्जन (अनुच्छेद 136(2))

संविधान का अनुच्छेद 136(2) स्पष्ट रूप से यह प्रतिबंध लगाता है कि अनुच्छेद 136 की यह असाधारण शक्ति **सशस्त्र बलों से संबंधित किसी विधि द्वारा या उसके अधीन गठित किसी न्यायालय या अधिकरण (Court Martial / सैन्य न्यायालय)** द्वारा दिए गए किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश पर लागू नहीं होगी।

प्रमुख न्यायिक निर्वचन एवं सिद्धांत

अ. **प्रीतम सिंह बनाम राज्य (1950):** संविधान लागू होने के तुरंत बाद उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 136 के अधीन असाधारण शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण और विशेष परिस्थितियों में ही किया जाएगा, जहां विधि की घोर अवहेलना हुई हो अथवा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से 'गंभीर एवं व्यापक अन्याय' (Grave and Substantial Injustice) घटित हुआ हो।

ब. **कुन्हीअम्मद बनाम केरल राज्य (2000):** न्यायालय ने 'विलय का सिद्धांत' (Doctrine of Merger) प्रतिपादित किया। यदि उच्चतम न्यायालय एसएलपी को स्वीकार कर लेती है और मामले पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय देती है, तो अधीनस्थ न्यायालय या उच्च न्यायालय का आदेश उच्चतम न्यायालय के आदेश में

wincompete

विलीन हो जाता है। किंतु यदि एसएलपी को बिना कारण बताए प्रारंभिक स्तर पर ही खारिज (Dismissed in limine) कर दिया जाता है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उच्चतम न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय पर अपनी विधिक मुहर लगा दी है।

परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार (अनुच्छेद 143): राष्ट्रपति एवं उच्चतम न्यायालय

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 143 भारत के राष्ट्रपति को लोक महत्व के जटिल कानूनी प्रश्नों पर उच्चतम न्यायालय से परामर्श प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करता है। यह उपबंध कनाडा के संविधान (सुप्रीम कोर्ट एक्ट ऑफ कनाडा) के सलाहकार क्षेत्राधिकार से प्रेरित है।

अनुच्छेद 143 के अंतर्गत दो पृथक श्रेणियां

अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति दो विशिष्ट श्रेणियों में उच्चतम न्यायालय से परामर्श मांग सकता है:

अनुच्छेद 143 के दो विधिक वर्ग

↓

अनुच्छेद 143(1): सामान्य विधिक विषय	अनुच्छेद 143(2): संविधान-पूर्व संधियां
• विधि या तथ्य का व्यापक प्रश्न • न्यायालय सलाह देने हेतु बाध्य नहीं (सलाह देने से इनकार कर सकता है)	• संविधान लागू होने से पूर्व के समझौते • न्यायालय द्वारा सलाह देना विधिक रूप से अनिवार्य (बाध्यकारी) है

अ. **अनुच्छेद 143(1) - विधि या तथ्य का लोक महत्व का प्रश्न:**

- यदि किसी समय राष्ट्रपति को प्रतीत हो कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है, जो ऐसी प्रकृति और ऐसे व्यापक लोक महत्व का है कि उस पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना समीचीन है।
- **न्यायालय का अधिकार:** उच्चतम न्यायालय ऐसी सुनवाई के पश्चात जो वह ठीक समझता है, राष्ट्रपति को अपनी राय प्रतिवेदित कर सकेगा। न्यायालय इस श्रेणी के मामलों में **सलाह देने के लिए बाध्य नहीं है; वह राय देने से इनकार कर सकता है**।

ब. **अनुच्छेद 143(2) - संविधान-पूर्व संधियों से संबंधित मामले:**

- अनुच्छेद 131 के परंतुक में उल्लिखित किसी संधि, करार, सनद या प्रसंविदा (जो 26 जनवरी 1950 से पूर्व की हो) से उत्पन्न विवाद।
- **न्यायालय की बाध्यता:** इस श्रेणी के मामलों में राष्ट्रपति द्वारा संदर्भित किए जाने पर **उच्चतम न्यायालय के लिए अपनी विधिक सलाह देना अनिवार्य (Shall report to the President) है**; वह परामर्श देने से इनकार नहीं कर सकता।

सलाह की विधिक प्रकृति एवं बाध्यता

अ. **राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं:** उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई राय केवल एक 'सलाह' (Advice) होती है; यह कोई न्यायिक निर्णय या डिक्री नहीं है। अतः राष्ट्रपति (अर्थात केंद्रीय मंत्रिपरिषद) इसे स्वीकार करने के लिए विधिक रूप से बाध्य नहीं है।

wincompete

ब. **न्यायालयों पर प्रभाव:** यद्यपि अनुच्छेद 143 के अधीन दी गई राय अनुच्छेद 141 के अंतर्गत पारंपरिक अर्थों में देश के सभी न्यायालयों पर आबद्धकारी विधि नहीं मानी जाती, तथापि देश के शीर्ष न्यायालय की राय होने के कारण इसका उच्चतर प्रेरक मूल्य (High Persuasive Value) होता है और अधीनस्थ न्यायालय सामान्यतः इसका सम्मान करते हैं।

स. **पीठ का आकार (अनुच्छेद 145(3)):** अनुच्छेद 143 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा किए गए किसी भी संदर्भ की सुनवाई **कम से कम पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ (Constitution Bench)** द्वारा ही की जा सकती है।

अनुच्छेद 143 के अंतर्गत प्रमुख ऐतिहासिक राष्ट्रपति संदर्भ

वर्ष	ऐतिहासिक संदर्भ (वाद)	संदर्भित विषय-वस्तु एवं विधिक परिणाम
1951	**इन री देहली लाज एक्ट संदर्भ**	प्रत्यायोजित विधान (Delegated Legislation) की संवैधानिक सीमाओं पर विचार; न्यायालय ने माना कि संसद अपनी अनिवार्य विधायी शक्तियां प्रत्यायोजित नहीं कर सकती।
1958	**इन री केरल शिक्षा विधेयक संदर्भ**	मूल अधिकारों (अनुच्छेद 30 - अल्पसंख्यकों के अधिकार) तथा नीति निदेशक तत्वों (अनुच्छेद 45) के मध्य सामंजस्यपूर्ण निर्वचन का सिद्धांत स्थापित किया।
1965	**केशव सिंह वाद (उत्तर प्रदेश विधानसभा संदर्भ)**	विधानमंडल के विशेषाधिकारों बनाम न्यायपालिका की अवमानना शक्ति और अनुच्छेद 21 व 226 की सर्वोच्चता पर विस्तृत विधिक राय दी।
1974	**राष्ट्रपति चुनाव संदर्भ**	गुजरात विधानसभा के विघटन के पश्चात राय मांगी गई; न्यायालय ने कहा कि निर्वाचक मंडल में किसी विधानसभा के विघटित रहने पर भी राष्ट्रपति चुनाव नहीं रोका जा सकता।
1993	**राम जन्मभूमि संदर्भ (अयोध्या वाद)**	राष्ट्रपति द्वारा पूछा गया कि क्या विवादित स्थल पर पूर्व में कोई हिंदू मंदिर था? उच्चतम न्यायालय ने **सलाह देने से स्पष्ट इनकार कर दिया** (अनुच्छेद 143(1) के तहत), यह कहते हुए कि यह प्रश्न विशुद्ध ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक है, न कि विधिक।

winnersias

1998	**तृतीय न्यायाधीश वाद (कॉलेजियम संदर्भ)**	राष्ट्रपति के. आर. नारायणन द्वारा परामर्श मांगा गया; न्यायालय ने स्पष्ट किया कि न्यायिक नियुक्तियों हेतु कॉलेजियम में सीजेआई के साथ 4 वरिष्ठतम न्यायाधीश होंगे।
2012	**2जी स्पेक्ट्रम (प्राकृतिक संसाधन) संदर्भ**	2जी फैसले के बाद पूछा गया कि क्या सभी प्राकृतिक संसाधनों का आवंटन केवल नीलामी (Auction) से ही होना चाहिए? न्यायालय ने राय दी कि नीलामी एकमात्र संवैधानिक तरीका नहीं है; आर्थिक नीतियों में अन्य पारदर्शी तरीके भी मान्य हैं।

अभिलेख न्यायालय, निर्णयों का पुनरावलोकन एवं अंतर्निहित शक्तियां (अनुच्छेद 129, 137 एवं 142)

उच्चतम न्यायालय को न्यायिक सर्वोच्चता बनाए रखने के लिए असाधारण शक्तियां सौंपी गई हैं।

1. अभिलेख न्यायालय के रूप में (अनुच्छेद 129)

उच्चतम न्यायालय एक 'अभिलेख न्यायालय' (Court of Record) है। इसके दो विशिष्ट विधिक अर्थ होते हैं:

अ. **साक्ष्यात्मक मूल्य (Evidentiary Value):** इस न्यायालय की कार्यवाहियां, दस्तावेज और निर्णय सर्वकालिक स्मृति और साक्ष्य के रूप में सुरक्षित रखे जाते हैं। किसी भी अधीनस्थ न्यायालय में इन पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता और इन्हें अचूक पूर्वोदाहरणों (Precedents) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

ब. **अवमानना हेतु दंडित करने की शक्ति:** इसे अपनी स्वयं की अवमानना (Contempt of Court) के लिए दंड देने की शक्ति प्राप्त है, जिसमें कारावास अथवा अर्थदंड या दोनों शामिल हैं।

- **न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971:** अवमानना को दो भागों में बांटा गया है—**सिविल अवमानना** (न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश की जानबूझकर की गई अवज्ञा) तथा **आपराधिक अवमानना** (कोई ऐसा प्रकाशन या कृत्य जो न्यायालय की गरिमा को गिराता हो, न्याय प्रशासन में बाधा डालता हो)।
- उच्चतम न्यायालय ने 'इन री विनय चंद्र मिश्र (1995)' तथा 'दिल्ली ज्यूडिशियल सर्विस एसोसिएशन (1991)' वादों में स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 129 के तहत उसकी अवमानना शक्ति को संसद द्वारा भी सीमित नहीं किया जा सकता; यह अपने अधीनस्थ न्यायालयों की अवमानना हेतु भी दंड दे सकता है।

2. निर्णयों का पुनरावलोकन (Review Jurisdiction - अनुच्छेद 137)

सामान्यतः किसी न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय अंतिम होता है। किंतु उच्चतम न्यायालय 'स्टेयर डिसीसिस' (Stare Decisis - पूर्व निर्णयों से बंधे रहने) के नियम से पूर्णतः बंधा नहीं है। अनुच्छेद 137 के अधीन संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि या नियमों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा सुनाए गए किसी निर्णय या दिए गए आदेश का **पुनरावलोकन (Review)** करने की शक्ति प्राप्त है।

- **आधार:** सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 के अनुरूप पुनरावलोकन केवल तभी ग्राह्य होता है जब रिकॉर्ड के पटल पर कोई प्रत्यक्ष भूल (Error apparent on the face of the record) हो अथवा कोई नवीन अकाट्य साक्ष्य प्रकाश में आया हो।
- **समय-सीमा:** निर्णय के **30 दिनों के भीतर** पुनरावलोकन याचिका दायर करना अनिवार्य होता है।

3. क्यूरेटिव पिटीशन (उपचारात्मक याचिका) का उद्भव

पुनरावलोकन याचिका भी खारिज हो जाने के पश्चात अंतिम उपचार के रूप में उच्चतम न्यायालय ने **रूपा अशोक हुर्रा बनाम अशोक हुर्रा वाद (2002)** में 'क्यूरेटिव पिटीशन' (Curative Petition) की संस्थागत रचना की।

- यह न्याय के घोर हनन अथवा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पूर्ण उल्लंघन (जैसे पक्षकार की सुनवाई न होना या न्यायाधीश का व्यक्तिगत पूर्वाग्रह) को रोकने हेतु दायर की जाने वाली अंतिम याचिका है।
- इसे वरिष्ठतम अधिवक्ता द्वारा प्रमाणित किया जाना तथा वरिष्ठतम न्यायाधीशों की पीठ द्वारा विचार किया जाना आवश्यक होता है।

4. पूर्ण न्याय प्रदान करने की असाधारण शक्ति (अनुच्छेद 142)

अनुच्छेद 142(1) उपबंध करता है कि उच्चतम न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए ऐसा आदेश या डिक्री पारित कर सकेगा जो उसके समक्ष लंबित किसी भी मामले में **"पूर्ण न्याय" (Complete Justice)** करने के लिए आवश्यक हो।

- यह एक संप्रभु एवं असीमित शक्ति है जो किसी तकनीकी कानून के अभाव में भी न्यायपालिका को पीड़ित को पूर्ण राहत प्रदान करने का अधिकार देती है।
- उदाहरणार्थ, भोपाल गैस त्रासदी वाद में पीड़ितों को मुआवजा दिलाना, अयोध्या विवाद में मुस्लिम पक्ष को वैकल्पिक 5 एकड़ भूमि आवंटित करने का निर्देश देना, तथा अनुच्छेद 142 के तहत असाध्य वैवाहिक विच्छेदों में सीधे तलाक की डिक्री प्रदान करना।

न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) एवं संविधान का मूल ढांचा

न्यायिक समीक्षा उच्चतम न्यायालय की वह सर्वोच्च शक्ति है जिसके माध्यम से वह विधायिका द्वारा पारित विधियों तथा कार्यपालिका द्वारा जारी प्रशासनिक आदेशों की संवैधानिकता की जांच करता है। यदि कोई विधि या आदेश संविधान के किसी उपबंध (विशेषकर भाग तीन के मूल अधिकारों) का उल्लंघन करता है, तो न्यायालय उसे असंवैधानिक तथा अमान्य (Ultra Vires) घोषित कर सकता है।

संवैधानिक अधिष्ठान

यद्यपि संविधान में 'न्यायिक समीक्षा' (Judicial Review) पदबंध का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किंतु यह शक्ति प्रत्यक्ष रूप से अनुच्छेदों **13, 32, 131, 132, 136, 141, 142 एवं 246** से निःसृत होती है। अनुच्छेद 13(2) स्पष्ट रूप से राज्य को ऐसी कोई विधि बनाने से रोकता है जो मूल अधिकारों को छीनती या न्यून करती है।

ऐतिहासिक न्यायिक विकास एवं मूल संरचना का सिद्धांत

शंकरी प्रसाद वाद (1951)	गोलकनाथ वाद (1967)	केशवानंद भारती वाद (1973)
संसद किसी भी भाग (मूल अधिकारों सहित) में संशोधन कर सकती है।	संसद मूल अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती (अनुच्छेद 13(2))।	संसद संशोधन कर सकती है, किंतु 'मूल ढांचे' को नष्ट नहीं कर सकती।

अ. **शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ (1951):** न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 के अधीन संसद की संविधान संशोधन की शक्ति संप्रभु है; अनुच्छेद 13(2) के अंतर्गत 'विधि' शब्द में केवल सामान्य विधियां आती हैं, संवैधानिक संशोधन नहीं। अतः संसद मूल अधिकारों में भी संशोधन कर सकती है।

ब. **गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967):** ग्यारह न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 6:5 के बहुमत से पूर्व निर्णयों को पलटते हुए निर्णय दिया कि संसद संविधान के भाग तीन में प्रदत्त मूल अधिकारों को छीनने या कम करने के लिए कोई संशोधन नहीं कर सकती। अनुच्छेद 368 केवल संशोधन की प्रक्रिया बताता है, संप्रभु शक्ति नहीं देता।

स. **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (24 अप्रैल 1973):** भारतीय न्यायिक इतिहास की सबसे बड़ी **13 न्यायाधीशों की संविधान पीठ** ने 7:6 के बहुमत से ऐतिहासिक निर्णय सुनाया:

- गोलकनाथ वाद के निर्णय को निरस्त कर दिया गया और माना गया कि संसद संविधान के किसी भी भाग (मूल अधिकारों सहित) में संशोधन कर सकती है।
- किंतु न्यायालय ने **'संविधान के मूल ढांचे का सिद्धांत' (Doctrine of Basic Structure)** प्रतिपादित किया। संसद अनुच्छेद 368 का प्रयोग करते हुए संविधान के मूल ढांचे या उसके आधारभूत लक्षणों को विकृत, नष्ट या समाप्त नहीं कर सकती।
- न्यायिक समीक्षा की शक्ति को स्वयं संविधान के मूल ढांचे का अभिन्न अंग घोषित किया गया।

द. **मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980):** 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 368 में जोड़े गए खंड (4) और (5)—जिन्होंने संविधान संशोधनों को किसी भी न्यायालय में चुनौती दिए जाने से पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया था—को न्यायालय ने असंवैधानिक घोषित कर दिया। न्यायालय ने दोहराया कि असीमित संशोधन शक्ति का अभाव तथा न्यायिक समीक्षा संविधान की मूल संरचना है।

अभिभावी विधि, बाध्यकारिता एवं प्रशासनिक स्वायत्तता (अनुच्छेद 141 से 146)

संविधान ने उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की प्रभावशीलता तथा न्यायालय की प्रशासनिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने हेतु स्पष्ट विधिक निर्देश दिए हैं:

घोषित विधि की बाध्यकारिता (अनुच्छेद 141)

"उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर **सभी न्यायालयों पर आबद्धकारी (Binding)** होगी।" इसका विधिक प्रभाव यह है कि उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक विधि-सिद्धांत अधीनस्थ न्यायपालिका हेतु कानून का रूप धारण कर लेता है।

डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन (अनुच्छेद 142(2) एवं 144)

अ. **अनुच्छेद 142(2):** उच्चतम न्यायालय को भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र के भीतर किसी व्यक्ति की उपस्थिति कराने, दस्तावेजों को पेश कराने तथा अपनी अवमानना की जांच कराने हेतु आदेश जारी करने की संप्रभु शक्ति है।

ब. **अनुच्छेद 144 (सिविल और न्यायिक प्राधिकारियों का दायित्व):** "भारत के राज्यक्षेत्र के सभी सिविल और न्यायिक प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे।" कोई भी प्रशासनिक अधिकारी या राज्य सरकार उच्चतम न्यायालय के आदेशों की अवज्ञा नहीं कर सकती।

wincompete

न्यायालय की प्रशासनिक स्वायत्तता (अनुच्छेद 146)

अ. **कर्मचारियों की नियुक्ति:** उच्चतम न्यायालय के अधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियां **भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (CJI)** द्वारा अथवा न्यायालय के ऐसे अन्य न्यायाधीश या अधिकारी द्वारा की जाएंगी जिसे वह निर्दिष्ट करे। इस पर कार्यपालिका का कोई हस्तक्षेप नहीं होता।

ब. **प्रशासनिक व्यय:** उच्चतम न्यायालय के सभी प्रशासनिक व्यय (जिनके अंतर्गत न्यायाधीशों तथा कर्मचारियों के सभी वेतन, भत्ते और पेंशन सम्मिलित हैं) **भारत की संचित निधि पर भारित (Charged)** होंगे और संसद द्वारा इस पर मतदान नहीं कराया जा सकता (अनुच्छेद 146(3))।

संवैधानिक एवं न्यायिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **अनन्य अधिकारिता (Exclusive Jurisdiction):** वह विधिक अधिकार क्षेत्र जिसके तहत किसी मामले की सुनवाई केवल और केवल एक विशिष्ट न्यायालय में ही हो सकती है, किसी अन्य न्यायालय में नहीं; जैसे अनुच्छेद 131 के तहत राज्यों और केंद्र के मध्य विवाद केवल उच्चतम न्यायालय सुन सकता है।

ब. **अभिलेख न्यायालय (Court of Record):** वह शीर्ष न्यायालय जिसकी कार्यवाहियों और निर्णयों का साक्ष्यात्मक मूल्य होता है, जिन्हें किसी भी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती, तथा जिसे अपनी अवमानना हेतु दंडित करने की संप्रभु शक्ति प्राप्त होती है (अनुच्छेद 129)।

स. **सारवान विधिक प्रश्न (Substantial Question of Law):** ऐसा कानूनी विवाद जो पूर्व स्थापित न्यायिक निर्णयों से सीधे स्पष्ट न होता हो, जिसमें विधि के निर्वाचन पर गंभीर मतभेद की गुंजाइश हो, अथवा जिसके समाधान का प्रभाव व्यापक जनसमूह पर पड़ना निश्चित हो।

द. **विशेष अनुमति (Special Leave):** संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा किसी पक्षकार को पारंपरिक अपीलीय नियमों को दरकिनार कर सीधे शीर्ष न्यायालय में अपील प्रस्तुत करने हेतु दिया जाने वाला असाधारण न्यायिक विशेषाधिकार।

य. **पूर्ण न्याय (Complete Justice):** अनुच्छेद 142 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय की वह अंतर्निहित संप्रभु शक्ति जिसके द्वारा वह कानून की तकनीकी खामियों से ऊपर उठकर किसी मामले में वास्तविक और पूर्ण न्याय स्थापित करने हेतु आवश्यक कोई भी निर्देश जारी कर सकता है।

र. **उपचारात्मक याचिका (Curative Petition):** पुनरावलोकन याचिका (Review Petition) के भी खारिज हो जाने के उपरांत प्राकृतिक न्याय के घोर उल्लंघन को सुधारने हेतु शीर्ष अदालत में दायर की जाने वाली अंतिम असाधारण याचिका।

ल. **विलय का सिद्धांत (Doctrine of Merger):** वह विधिक सिद्धांत जिसके अनुसार जब किसी उच्चतर अपीलीय न्यायालय द्वारा किसी अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय पर अपील स्वीकार कर अंतिम निर्णय दिया जाता है, तो अधीनस्थ न्यायालय का आदेश उच्चतर न्यायालय के आदेश में पूर्णतः विलीन हो जाता है।

अध्याय 15: न्यायिक समीक्षा एवं सक्रियता: न्यायिक पुनरावलोकन का आधार, आधारभूत संरचना का सिद्धांत, न्यायिक सक्रियता एवं जनहित याचिका

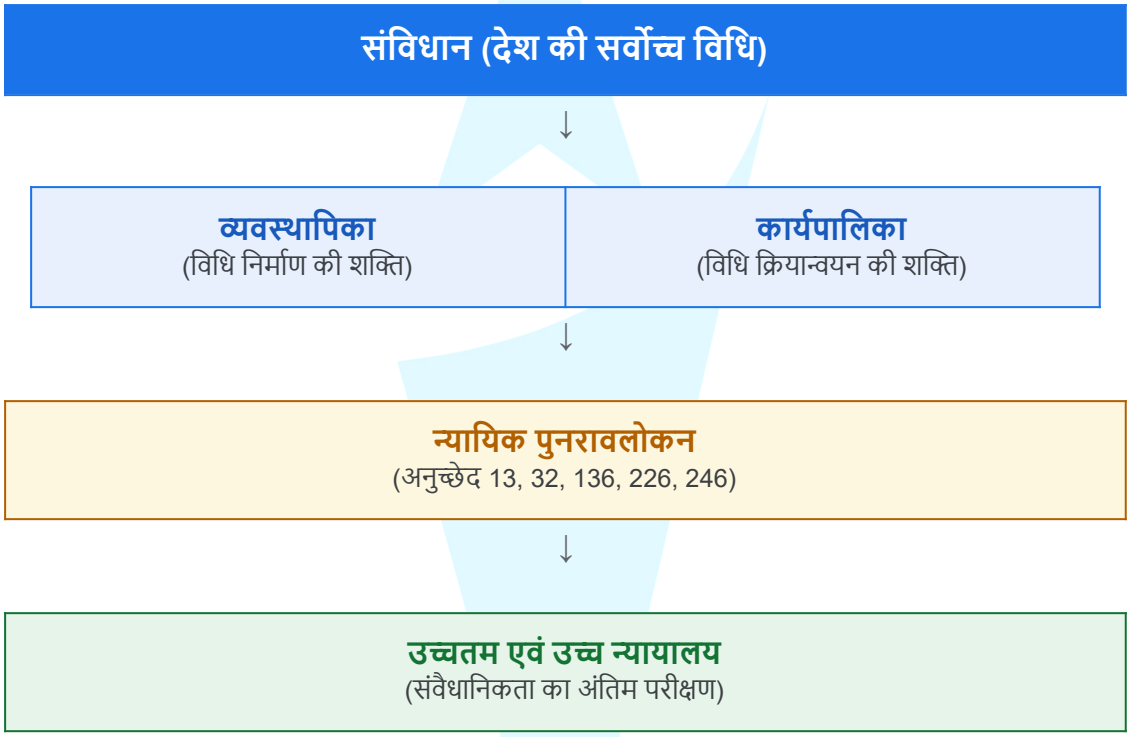
wincompete

न्यायिक समीक्षा की संकल्पना, दार्शनिक आधार एवं संवैधानिक अधिष्ठान

न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) न्यायपालिका की वह संप्रभु शक्ति है जिसके द्वारा वह विधायिका द्वारा निर्मित संविधियों, कार्यपालिका द्वारा जारी आदेशों तथा संवैधानिक संशोधनों की संवैधानिक वैधता की परीक्षा

करती है। यदि कोई विधायी अधिनियम अथवा प्रशासनिक कार्रवाई संविधान के उपबंधों, सीमाओं अथवा मूल अधिकारों से असंगत पाई जाती है, तो न्यायपालिका उसे अधिकार-बाह्य (Ultra Vires) तथा शून्य (Void) घोषित करने का प्राधिकार रखती है।

संविधान के अंतर्गत शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत को पूर्णतः कठोर रूप में नहीं, अपितु नियंत्रण और संतुलन (Checks and Balances) के व्यावहारिक समन्वय के रूप में अंगीकार किया गया है। भारत में संसदीय संप्रभुता (ब्रिटिश मॉडल) तथा न्यायिक सर्वोच्चता (अमेरिकी मॉडल) के मध्य एक मध्यम मार्ग स्थापित किया गया है।



वैश्विक उत्पत्ति एवं भारतीय प्रारूप

अ. **मार्बरी बनाम मैडिसन वाद (1803):** संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति जॉन मार्शल ने मार्बरी बनाम मैडिसन के ऐतिहासिक वाद में न्यायिक समीक्षा के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अमेरिकी संविधान में इस शक्ति का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं था, अपितु यह न्यायिक निर्वचन से उत्पन्न हुई।

ब. **भारतीय व्यवस्था की विशिष्टता:** भारतीय संविधान में न्यायिक समीक्षा किसी न्यायिक कल्पना का परिणाम नहीं है, बल्कि यह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष संवैधानिक अनुच्छेदों के माध्यम से संहिताबद्ध की गई है। मुख्य न्यायमूर्ति पतंजलि शास्त्री ने ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य (1950) वाद में स्पष्ट किया कि भारत में न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान द्वारा प्रदत्त एक स्पष्ट विधिक दायित्व है, न कि न्यायालयों द्वारा कार्यपालिका या विधायिका पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने का कोई प्रयास।

wincompete

न्यायिक समीक्षा के प्राथमिक संवैधानिक स्रोत

यद्यपि 'न्यायिक समीक्षा' अथवा 'न्यायिक पुनरावलोकन' शब्दावली का स्पष्ट प्रयोग संविधान के किसी भी अनुच्छेद के शीर्षक में नहीं किया गया है, तथापि निम्नलिखित अनुच्छेद इस शक्ति के मूल स्तंभ हैं:

अ. **अनुच्छेद 13:** मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियों को शून्य घोषित करने का प्रत्यक्ष आदेश।

ब. **अनुच्छेद 32:** मूल अधिकारों के प्रवर्तन हेतु सीधे उच्चतम न्यायालय में याचिका संस्थित करने तथा रिटें जारी करने का अधिकार।

स. **अनुच्छेद 226:** उच्च न्यायालयों को मूल अधिकारों तथा 'अन्य किसी प्रयोजन' के लिए रिट, निर्देश एवं आदेश जारी करने की व्यापक शक्ति।

द. **अनुच्छेद 131 से 136:** उच्चतम न्यायालय का आरंभिक, अपीलीय तथा विशेष अनुमति याचिका संबंधी क्षेत्राधिकार।

य. **अनुच्छेद 143:** विधि या तथ्य के लोक महत्व के प्रश्नों पर उच्चतम न्यायालय का परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार।

र. **अनुच्छेद 245 एवं 246:** सातवीं अनुसूची के अंतर्गत संघ तथा राज्यों के मध्य विधायी शक्तियों का सीमांकन; अपनी विधायी सीमाओं से बाहर जाकर बनाए गए कानून को 'छद्म विधान का सिद्धांत' (Doctrine of Colourable Legislation) लागू कर रद्द करने का आधार।

ल. **अनुच्छेद 372:** संविधान-पूर्व विधियों की संवैधानिकता की जांच का आधार।

अनुच्छेद 13: न्यायिक पुनरावलोकन का केंद्रीय आधार एवं इसके विधिक सिद्धांत

अनुच्छेद 13 को भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का 'सुरक्षा कवच' (Shield) कहा जाता है। यह अनुच्छेद स्पष्ट रूप से यह घोषणा करता है कि राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो भाग तीन में प्रदत्त अधिकारों को छीनती है या उन्हें कम करती है।

अनुच्छेद 13 की संवैधानिक संरचना

↓

अनुच्छेद 13(1)	अनुच्छेद 13(2)	अनुच्छेद 13(3)	अनुच्छेद 13(4)
संविधान-पूर्व विधियां (ग्रहण/आच्छादन का सिद्धांत)	**संविधान-पश्चात विधियां** (पृथक्करणीयता का सिद्धांत)	**'विधि' की परिभाषा** (अध्यादेश, नियम, विनियम, रूढ़ि आदि)	**संशोधन का दायरा** (24वां संशोधन एवं केशवानंद निर्णय)

अनुच्छेद 13 के विभिन्न खंडों का विधिक विश्लेषण

अ. **अनुच्छेद 13(1) - संविधान-पूर्व विधियां (Pre-Constitutional Laws):** 26 जनवरी 1950 से ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां उस मात्रा तक शून्य होंगी जिस तक वे भाग तीन के उपबंधों से असंगत हैं। यह खंड भूतलक्षी (Retrospective) नहीं है, बल्कि भविष्यलक्षी (Prospective) प्रभाव रखता है।

ब. **अनुच्छेद 13(2) - संविधान-पश्चात विधियां (Post-Constitutional Laws):** राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो भाग तीन द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है। इस खंड के उल्लंघन में बनाई गई प्रत्येक विधि अपने निर्माण के क्षण से ही प्रारंभतः शून्य (Void ab initio) होगी।

स. **अनुच्छेद 13(3)(क) - 'विधि' की व्यापक परिभाषा:** 'विधि' के अंतर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में विधि का बल रखने वाला कोई भी **अध्यादेश (Ordinance), आदेश (Order), उपविधि (Bye-law), नियम (Rule), विनियम (Regulation), अधिसूचना (Notification), रूढ़ि या प्रथा (Custom or Usage)** सम्मिलित है।

द. **अनुच्छेद 13(3)(ख) - 'प्रवृत्त विधि' (Laws in force):** इसके अंतर्गत संविधान लागू होने से पूर्व किसी विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित वे सभी संविधियां शामिल हैं जिन्हें निरसित नहीं किया गया है।

अनुच्छेद 13 से निसृत होने वाले प्रमुख न्यायिक सिद्धांत

अ. **पृथक्करणीयता का सिद्धांत (Doctrine of Severability):**

- यदि किसी अधिनियम का कोई विशिष्ट भाग या खंड मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो संपूर्ण अधिनियम को अमान्य घोषित नहीं किया जाएगा।
- यदि असंवैधानिक भाग को शेष वैध भाग से इस प्रकार अलग (पृथक) किया जा सकता है कि शेष भाग स्वतंत्र रूप से प्रभावी रह सके, तो केवल असंवैधानिक भाग ही शून्य होगा।
- यदि वैध और अवैध भाग इस प्रकार आपस में जुड़े हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता, तो संपूर्ण अधिनियम शून्य हो जाएगा (ए. के. गोपालन वाद, 1950 तथा आर. एम. डी. सी. बनाम भारत संघ वाद, 1957)।

ब. **आच्छादन या ग्रहण का सिद्धांत (Doctrine of Eclipse):**

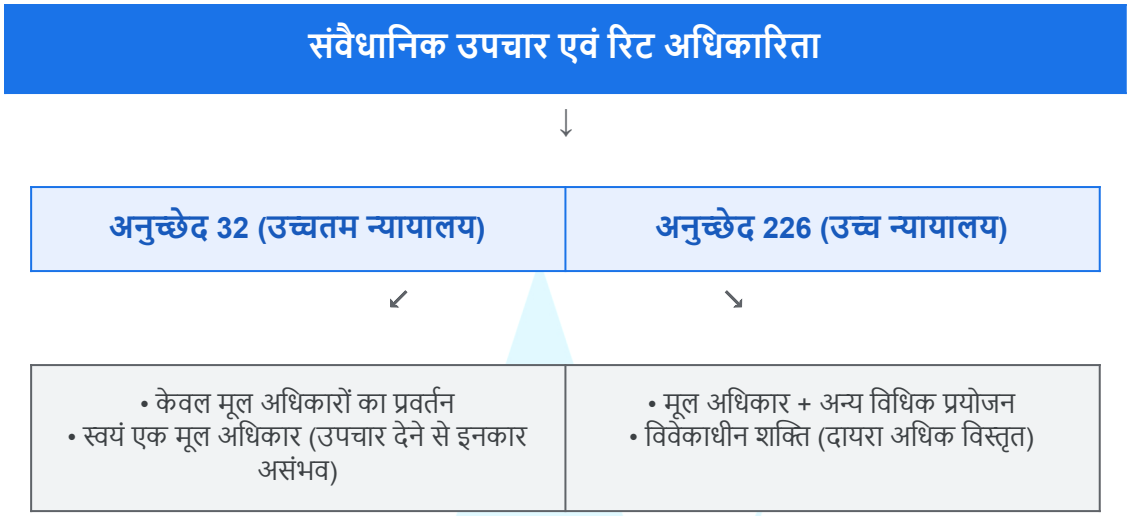
- यह सिद्धांत मुख्य रूप से संविधान-पूर्व विधियों (अनुच्छेद 13(1)) पर लागू होता है।
- जब कोई संविधान-पूर्व विधि किसी मूल अधिकार के लागू होने से असंगत हो जाती है, तो वह पूरी तरह मृत या समाप्त नहीं होती, बल्कि वह मूल अधिकार द्वारा आच्छादित (ढक) ली जाती है और सुप्त (Dormant) अवस्था में पड़ी रहती है।
- यदि भविष्य में किसी संवैधानिक संशोधन द्वारा उस मूल अधिकार की सीमा को हटा दिया जाए, तो वह विधि बिना पुनः बनाए स्वतः जीवित और प्रभावी हो जाती है (भीकाजी नारायण बनाम मध्य प्रदेश राज्य वाद, 1955)।

स. **अधित्याग का सिद्धांत (Doctrine of Waiver):**

- बहराम खुर्शीद वाद (1955) तथा बशेशर नाथ बनाम आयकर आयुक्त वाद (1959) में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने स्पष्ट किया कि कोई भी भारतीय नागरिक अपने मूल अधिकारों का स्वेच्छा से त्याग (Waiver) नहीं कर सकता।
- मूल अधिकार केवल व्यक्तिगत हित के लिए नहीं, बल्कि लोक नीति (Public Policy) और संवैधानिक व्यवस्था के अंग के रूप में स्थापित किए गए हैं। अमेरिकी व्यवस्था के विपरीत भारत में कोई नागरिक यह नहीं कह सकता कि वह अपने मौलिक अधिकारों का प्रयोग नहीं करना चाहता।

अनुच्छेद 32 बनाम अनुच्छेद 226: न्यायिक समीक्षा की रिट अधिकारिता का तुलनात्मक विश्लेषण

संवैधानिक उपचारों का अधिकार न्यायपालिका को कार्यपालिका के मनमाने कृत्यों तथा विधायिका के असंवैधानिक कानूनों के विरुद्ध नागरिकों को त्वरित विधिक राहत प्रदान करने का संप्रभु माध्यम है।



विस्तृत तुलनात्मक मापदंड तालिका

तुलना का आधार	उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32)	उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 226)
अधिकार का विधिक स्वरूप	अनुच्छेद 32 **स्वयं भाग तीन के अंतर्गत एक मौलिक अधिकार है**। अतः इसका उपचार प्राप्त करना नागरिक का मूल अधिकार है।	अनुच्छेद 226 एक **संवैधानिक प्रावधान है, मौलिक अधिकार नहीं**। उच्च न्यायालय उपचार देने हेतु विवेकाधीन शक्ति रखता है।
क्षेत्राधिकार का विषयगत दायरा	यह **केवल मूल अधिकारों (भाग तीन)** के उल्लंघन पर ही रिट जारी कर सकता है; सामान्य विधिक या प्रशासनिक अधिकारों हेतु नहीं।	यह मूल अधिकारों के साथ-साथ **'अन्य किसी प्रयोजन' (सामान्य विधिक व संविधिक अधिकारों)** हेतु भी रिट जारी कर सकता है।
प्रादेशिक/भौगोलिक विस्तार	संपूर्ण भारत के राज्यक्षेत्र में किसी भी सरकार, अधिकारी या प्राधिकारी के विरुद्ध रिट जारी करने की सर्वव्यापी शक्ति।	केवल अपने संबंधित राज्य की भौगोलिक सीमा के भीतर अथवा जहां **वाद-कारण (Cause of Action)** उत्पन्न हुआ हो (अनुच्छेद 226(2))।
याचिका अस्वीकार करने की शक्ति	चूंकि यह स्वयं मूल अधिकार है, अतः उचित आधार होने पर उच्चतम न्यायालय **याचिका पर विचार करने से मना नहीं कर सकता**।	उच्च न्यायालय यह कहते हुए याचिका खारिज कर सकता है कि प्रार्थी के पास वैकल्पिक विधिक उपचार (Alternative Remedy) उपलब्ध है।

wincompete

निलंबन की विधिक स्थिति	अनुच्छेद 359 के तहत राष्ट्रपति के आदेश द्वारा आपातकाल के दौरान इसका प्रवर्तन निलंबित किया जा सकता है (अनुच्छेद 20 व 21 को छोड़कर)।	किसी भी आपातकालीन उपबंध के तहत अनुच्छेद 226 की शक्ति को सीधे निलंबित नहीं किया जा सकता।

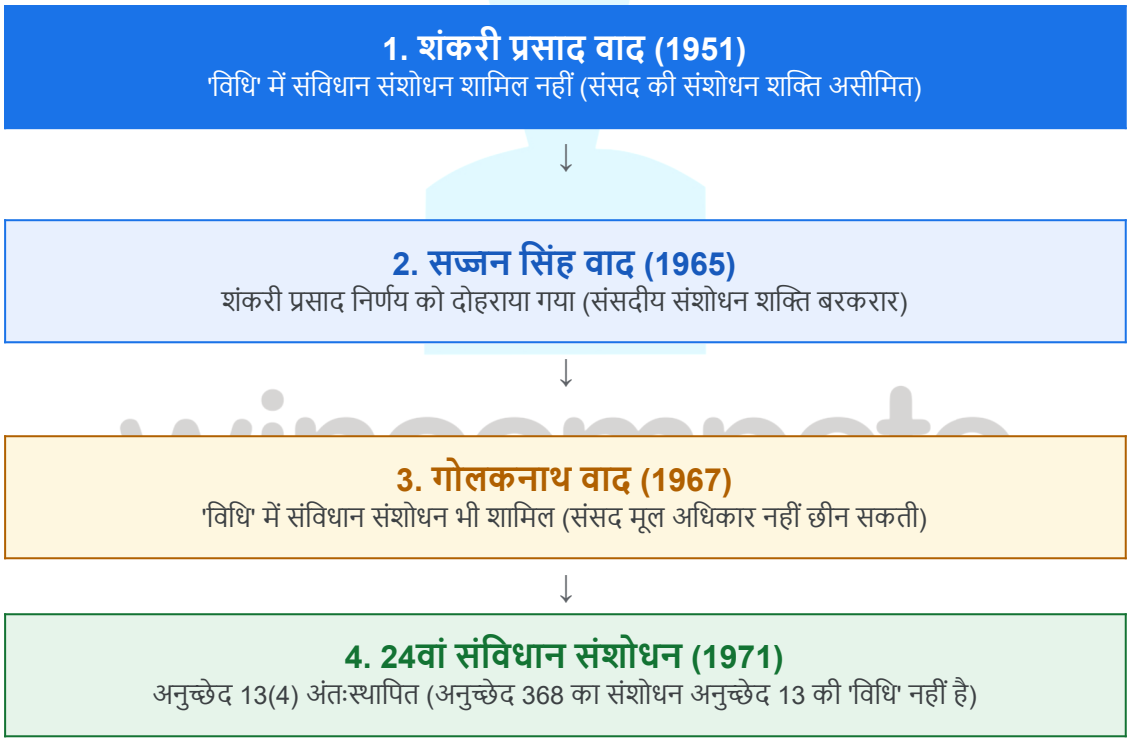
चंद्र कुमार बनाम भारत संघ (1997) का युगांतकारी निर्णय

सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने एल. चंद्र कुमार वाद में ऐतिहासिक निर्णय देते हुए यह घोषित किया कि **अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को प्राप्त न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान के 'मूल ढांचे' (Basic Structure) का अभिन्न अंग है**।

- संसद अनुच्छेद 368 के तहत संविधान में संशोधन करके भी इस शक्ति को छीन या सीमित नहीं कर सकती।
- प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 28, जिसने उच्च न्यायालयों के रिट क्षेत्राधिकार को अधिकरणों के निर्णयों पर अपवर्जित कर दिया था, को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया। अब केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (CAT) के निर्णयों की समीक्षा पहले अनिवार्यतः उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा ही की जाएगी।

अनुच्छेद 13 बनाम अनुच्छेद 368: मूल अधिकारों में संशोधन का ऐतिहासिक न्यायिक द्वंद्व

संविधान के लागू होने के पश्चात संसद की संविधान संशोधन शक्ति (अनुच्छेद 368) और मूल अधिकारों के संरक्षण (अनुच्छेद 13(2)) के मध्य सर्वोच्चता को लेकर एक लंबा विधिक संघर्ष चला। इस द्वंद्व का केंद्र बिंदु यह प्रश्न था: *क्या अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त 'विधि' शब्द के अंतर्गत अनुच्छेद 368 के तहत किया गया 'संविधान संशोधन' भी सम्मिलित है?*



चरणबद्ध ऐतिहासिक वादों की श्रृंखला

अ. **शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ (1951):** प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 (जिसके द्वारा संपत्ति के अधिकार को सीमित किया गया तथा नौवीं अनुसूची जोड़ी गई) को चुनौती दी गई। पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से निर्णय दिया कि:

- संविधान में 'साधारण विधायी शक्ति' (Ordinary Legislative Power) तथा 'संविधान निर्मात्री शक्ति' (Constituent Power) में स्पष्ट अंतर है।
- अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त 'विधि' शब्द केवल संसद की सामान्य विधायी शक्ति के तहत बनाए गए कानूनों पर लागू होता है।
- अनुच्छेद 368 के तहत किया गया 'संविधान संशोधन' एक संवैधानिक शक्ति है, अतः यह अनुच्छेद 13(2) के प्रतिबंधों के अधीन नहीं है। संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है।

ब. **सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य (1965):** 17वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1964 को चुनौती दी गई। पांच न्यायाधीशों की पीठ ने 3:2 के बहुमत से शंकरी प्रसाद वाद के निर्णय को यथावत रखा। तथापि, न्यायमूर्ति मोहम्मद हिदायतुल्लाह और न्यायमूर्ति जे. आर. मधोलकर ने अपने असहमतिपूर्ण निर्णयों में पहली बार यह आशंका व्यक्त की कि क्या संविधान के मौलिक लक्षणों को संसद की संशोधन शक्ति के माध्यम से पूरी तरह नष्ट किया जा सकता है।

स. **गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967):** पंजाब के एक जमींदारी उन्मूलन कानून और 17वें संशोधन को चुनौती दी गई। मुख्य न्यायमूर्ति के. सुब्बा राव की अध्यक्षता वाली 11 न्यायाधीशों की वृहद संविधान पीठ ने 6:5 के संकीर्ण बहुमत से अपने पूर्ववर्ती दोनों निर्णयों (शंकरी प्रसाद व सज्जन सिंह) को पूरी तरह उलट दिया:

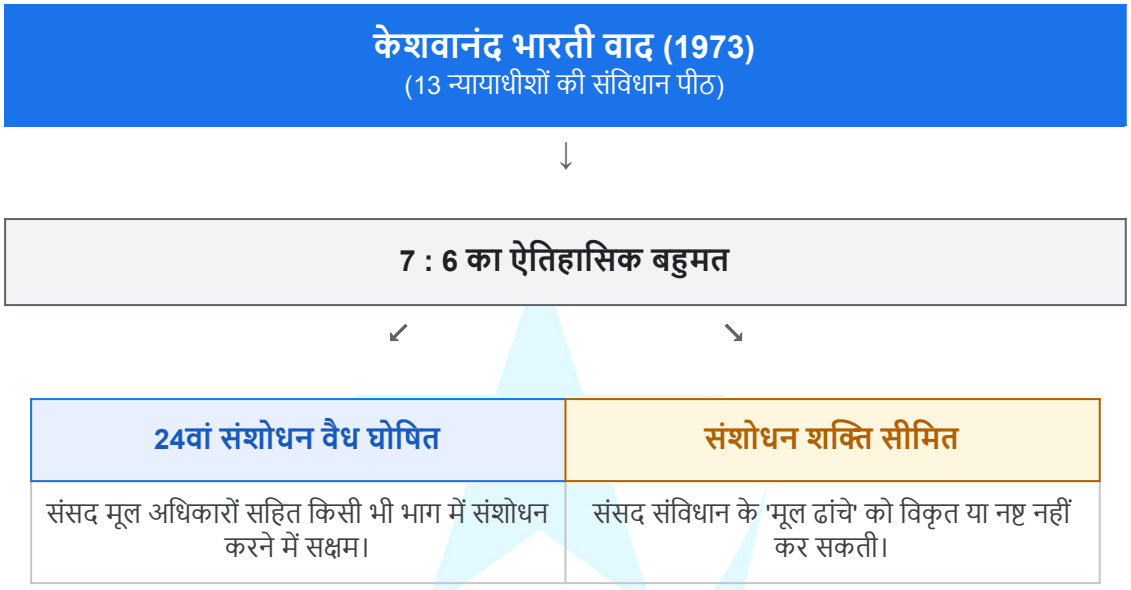
- न्यायालय ने अभीर्धारित किया कि अनुच्छेद 368 केवल संशोधन की 'प्रक्रिया' (Procedure) बताता है, संशोधन की संप्रभु 'शक्ति' प्रदान नहीं करता।
- अनुच्छेद 368 के तहत किया गया संविधान संशोधन भी अनुच्छेद 13(2) के अर्थ में एक 'विधि' ही है।
- अतः संसद कोई ऐसा संविधान संशोधन पारित नहीं कर सकती जो भाग तीन में दिए गए किसी भी मूल अधिकार को छीनता या कम करता हो।
- **भविष्यलक्षी प्रभाव का सिद्धांत (Doctrine of Prospective Overruling):** न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यह निर्णय केवल भविष्य के संशोधनों पर लागू होगा; पूर्व में किए गए प्रथम, चौथे और 17वें संशोधन वैध बने रहेंगे ताकि प्रशासनिक अराजकता उत्पन्न न हो।

द. **24वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971:** गोलकनाथ वाद के निर्णय के प्रभाव को पूरी तरह निष्प्रभावी करने के लिए तत्कालीन सरकार ने 24वां संशोधन पारित किया:

- अनुच्छेद 13 में एक नया खंड जोड़कर **अनुच्छेद 13(4)** अंतःस्थापित किया गया: "इस अनुच्छेद की कोई बात अनुच्छेद 368 के अधीन किए गए संविधान के किसी संशोधन को लागू नहीं होगी।"
- अनुच्छेद 368 के शीर्षक को बदलकर "संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति और उसके लिए प्रक्रिया" कर दिया गया तथा अनुच्छेद 368(3) जोड़कर स्पष्ट किया गया कि अनुच्छेद 13 की कोई बात इस अनुच्छेद के संशोधनों पर लागू नहीं होगी।

आधारभूत संरचना का सिद्धांत: केशवानंद भारती वाद (1973)

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (निर्णय तिथि: 24 अप्रैल 1973) भारतीय न्यायशास्त्र का सबसे युगांतकारी वाद है। इस मामले की सुनवाई अब तक की सबसे बड़ी **13 न्यायाधीशों की संविधान पीठ** ने निरंतर 68 दिनों तक की। यह वाद केरल सरकार के भूमि सुधार कानूनों के विरुद्ध एडनीर मठ के मठाधीश द्वारा दायर किया गया था, जिसमें 24वें, 25वें तथा 29वें संविधान संशोधनों की वैधता को चुनौती दी गई।



ऐतिहासिक निर्णय के मुख्य आयाम

अ. **गोलकनाथ वाद का निरस्तीकरण:** न्यायालय ने गोलकनाथ वाद के निर्णय को निरस्त कर दिया और 24वें संविधान संशोधन की वैधता को स्वीकार किया। न्यायालय ने माना कि संसद संविधान के किसी भी उपबंध (प्रस्तावना तथा मूल अधिकारों सहित) में संशोधन कर सकती है।

ब. **'संविधान के मूल ढांचे का सिद्धांत' (Doctrine of Basic Structure):** न्यायालय ने 7:6 के बहुमत से यह क्रांतिकारी सिद्धांत स्थापित किया कि यद्यपि संसद की संशोधन शक्ति अत्यंत व्यापक है, किंतु यह असीमित नहीं है। अनुच्छेद 368 के अंतर्गत प्रयुक्त शब्द 'संशोधन' (Amend) का अर्थ संविधान के मूल ढांचे को बनाए रखते हुए सुधार करना है, न कि उसके मूलभूत ताने-बाने को ही नष्ट कर देना।

स. **25वें संविधान संशोधन की समीक्षा:** न्यायालय ने 25वें संशोधन के उस भाग को असंवैधानिक घोषित कर दिया जिसने अनुच्छेद 31C के तहत यह प्रावधान किया था कि यदि कोई कानून नीति निदेशक तत्वों (अनुच्छेद 39(ख) और (ग)) को लागू करने हेतु बनाया जाता है, तो उसे किसी भी न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह उक्त नीति को प्रभावी नहीं करता। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि **न्यायिक समीक्षा की शक्ति को किसी भी संशोधन द्वारा छीना नहीं जा सकता**।

आधारभूत संरचना के प्रमुख तत्व (न्यायाधीशों के कथनानुसार)

संविधान में 'मूल ढांचे' को कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों के माध्यम से इसके तत्वों को समय-समय पर स्पष्ट किया है:

- **मुख्य न्यायमूर्ति एस. एम. सीकरी के अनुसार:** संविधान की सर्वोच्चता; शासन का गणतांत्रिक एवं लोकतांत्रिक स्वरूप; संविधान का धर्मनिरपेक्ष चरित्र; विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य शक्तियों का पृथक्करण; तथा संविधान का संघीय चरित्र।
- **न्यायमूर्ति शेलत एवं ग्रोवर के अनुसार:** कल्याणकारी राज्य की स्थापना का अधिदेश (भाग चार); राष्ट्र की एकता और अखंडता; तथा नागरिकों की गरिमा और स्वतंत्रता।
- **न्यायमूर्ति हेगड़े एवं मुखर्जी के अनुसार:** भारत की संप्रभुता; लोकतांत्रिक शासन प्रणाली; तथा मूल अधिकारों में सन्निहित व्यक्ति की स्वतंत्रता।

मूल ढांचे के सिद्धांत का विकास एवं युगांतकारी न्यायिक वाद

केशवानंद भारती वाद के पश्चात सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक ऐतिहासिक मामलों में इस सिद्धांत को लागू कर विधायिका के शक्ति-अतिक्रमण को नियंत्रित किया।

प्रमुख संवैधानिक वादों का क्रमबद्ध विश्लेषण

वाद का नाम	वर्ष	पीठ का स्वरूप	शून्य घोषित किए गए असंवैधानिक प्रावधान एवं प्रतिपादित सिद्धांत
इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण	1975	5 न्यायाधीश	**39वां संविधान संशोधन (1975):** इसके द्वारा अनुच्छेद 329A जोड़कर प्रधानमंत्री एवं लोकसभा अध्यक्ष के निर्वाचन को किसी भी न्यायालय की समीक्षा से बाहर कर दिया गया था। न्यायालय ने इसे रद्द करते हुए **'स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव'** तथा **'विधि का शासन'** को मूल ढांचा घोषित किया।
मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ	1980	5 न्यायाधीश	**42वां संविधान संशोधन (1976):** इसके द्वारा अनुच्छेद 368 में खंड (4) और (5) जोड़कर संसद की संशोधन शक्ति को निरंकुश बना दिया गया था। न्यायालय ने इन्हें असंवैधानिक घोषित कर दिया और कहा कि **'संसद की सीमित संशोधन शक्ति'** तथा **'भाग तीन और भाग चार के मध्य संतुलन'** संविधान का मूल ढांचा है।
वामन राव बनाम भारत संघ	1981	5 न्यायाधीश	न्यायालय ने **लक्ष्मण रेखा (Cut-off Date)** निर्धारित की: 24 अप्रैल 1973 (केशवानंद भारती निर्णय की तिथि) के पश्चात नौवीं अनुसूची में शामिल किए जाने वाले सभी अधिनियम न्यायिक समीक्षा के दायरे में होंगे।
एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ	1994	9 न्यायाधीश	अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) के दुरुपयोग को रोकने हेतु न्यायालय ने **'धर्मनिरपेक्षता' (Secularism)**, **'संघवाद' (Federalism)** तथा **'लोकतंत्र'** को संविधान की आधारभूत संरचना का अभिन्न अंग घोषित किया।
एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ	1997	7 न्यायाधीश	अनुच्छेद 32 एवं 226 के तहत उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों की **'न्यायिक समीक्षा की शक्ति'** को संविधान का अनुल्लंघनीय मूल ढांचा घोषित किया गया।
आई. आर. कोएल्हो बनाम तमिलनाडु राज्य	2007	9 न्यायाधीश	सर्वसम्मत निर्णय दिया गया कि नौवीं अनुसूची को किसी भी प्रकार की न्यायिक समीक्षा से पूर्ण मुक्ति (Blanket Immunity) प्राप्त नहीं है। यदि 24 अप्रैल 1973 के बाद नौवीं अनुसूची में डाला गया कोई कानून मूल ढांचे (विशेषकर अनुच्छेद 14, 19, 21) का उल्लंघन करता है, तो उसे रद्द किया जा सकता है।

winsomparle

सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड एसोसिएशन (NJAC वाद)	2015	5 न्यायाधीश	**99वां संविधान संशोधन अधिनियम (2014):** राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) को रद्द करते हुए न्यायालय ने **'न्यायपालिका की स्वतंत्रता'** तथा न्यायिक नियुक्तियों में न्यायपालिका की प्रधानता को मूल ढांचा घोषित किया।

नौवीं अनुसूची की संवैधानिक स्थिति एवं आई. आर. कोएल्हो वाद (2007)

प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 द्वारा संविधान में **अनुच्छेद 31B** तथा **नौवीं अनुसूची (Ninth Schedule)** को अंतःस्थापित किया गया था। इसका मूल उद्देश्य जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार कानूनों को मूल अधिकारों (विशेषकर तत्कालीन अनुच्छेद 31 - संपत्ति का अधिकार) के उल्लंघन के आधार पर न्यायालयों में चुनौती दिए जाने से विधिक संरक्षण प्रदान करना था।

नौवीं अनुसूची की विकास यात्रा

↓

1951 से 1973 तक की स्थिति	1973 के पश्चात की स्थिति
• अनुच्छेद 31B का पूर्ण सुरक्षा आवरण • इसमें शामिल किसी भी कानून की न्यायिक समीक्षा पूरी तरह प्रतिबंधित (कवच)	• आई. आर. कोएल्हो वाद (2007) • 24 अप्रैल 1973 के बाद शामिल कानून न्यायिक समीक्षा के दायरे में • मूल अधिकारों का हनन होने पर रद्द

आई. आर. कोएल्हो वाद (2007) के नौ न्यायाधीशों की पीठ के सर्वसम्मत दिशानिर्देश

अ. **न्यायिक समीक्षा की पुनर्स्थापना:** नौवीं अनुसूची में रखे गए किसी भी कानून को न्यायिक समीक्षा से निरपेक्ष उन्मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। न्यायिक समीक्षा संविधान का मूल लक्षण है।

ब. **दोहरा परीक्षण (Dual Test):** 24 अप्रैल 1973 के बाद नौवीं अनुसूची में डाले गए किसी भी कानून की वैधता का परीक्षण दो स्तरों पर होगा:

- क्या वह कानून संविधान के भाग तीन में दिए गए किसी मूल अधिकार का उल्लंघन करता है?
- यदि हाँ, तो क्या ऐसा उल्लंघन संविधान के 'मूल ढांचे' को नष्ट या क्षति पहुंचाता है?

स. **प्रभाव का परीक्षण (Rights Test / Effect Test):** कानून के स्वरूप के स्थान पर उसके वास्तविक प्रभाव का परीक्षण किया जाएगा। यदि नौवीं अनुसूची में शामिल कोई अधिनियम मूल अधिकारों के सार-तत्व (Essence of Fundamental Rights) को समाप्त करता है, तो न्यायालय उसे शून्य घोषित कर देगा।

न्यायिक सक्रियता: उद्भव, उपकरण एवं सीमाएं

न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) न्यायपालिका द्वारा अपने पारंपरिक विधिक क्षेत्राधिकार से आगे बढ़कर शासन के अन्य दो अंगों—कार्यपालिका और विधायिका—को उनके संवैधानिक दायित्वों के निर्वहन हेतु विवश करने, नीतिगत शून्यता को भरने तथा नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हेतु आगे आने की एक गतिशील प्रक्रिया है।

उद्भव एवं विकास

अ. **शब्दावली का उद्गम:** 'ज्यूडिशियल एक्टिविज्म' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वर्ष 1947 में अमेरिकी इतिहासकार एवं पत्रकार **आर्थर श्लेसिंगर जूनियर** ने फॉर्च्यून पत्रिका के एक लेख में किया था।

ब. **भारतीय परिप्रेक्ष्य में विकास:** भारत में न्यायिक सक्रियता का वास्तविक प्रादुर्भाव 1970 के दशक के उत्तरार्ध में (आपातकाल की समाप्ति के पश्चात) हुआ। सर्वोच्च न्यायालय के दो प्रख्यात न्यायाधीशों—**न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती** तथा **न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्णा अय्यर**—को भारत में न्यायिक सक्रियता एवं जनहित याचिका का जनक माना जाता है।

न्यायिक सक्रियता के प्रमुख उपकरण

अ. **अनुच्छेद 21 का व्यापक विस्तार:** मेनका गांधी वाद (1978) के पश्चात न्यायालय ने अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (Procedure Established by Law) को वस्तुतः अमेरिकी 'विधि की सम्यक प्रक्रिया' (Due Process of Law) के समतुल्य बना दिया। न्यायालय ने जीवन के अधिकार में स्वच्छ पर्यावरण, त्वरित विचारण, विधिक सहायता, शिक्षा, निजता तथा मानवीय गरिमा के साथ जीने के अधिकारों को अंतर्निहित माना।

ब. **संवैधानिक शून्यता की पूर्ति हेतु दिशानिर्देश:** जब किसी विषय पर संसद द्वारा कानून नहीं बनाया गया हो, तब मानवाधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालय स्वयं दिशानिर्देश जारी करता है जो कानून की भांति प्रभावी होते हैं:

- **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997):** कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न की रोकथाम हेतु संसद द्वारा कानून (2013) बनाए जाने तक बाध्यकारी दिशानिर्देश जारी किए गए।
- **डी. के. बासु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997):** पुलिस द्वारा गिरफ्तारी एवं हिरासत के दौरान अपनाए जाने वाले 11 अनिवार्य दिशानिर्देश तय किए गए।
- **प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ (2006):** देश में पुलिस सुधारों को लागू करने हेतु सात बाध्यकारी निर्देश दिए गए।

जनहित याचिका (PIL): लोकस स्टैंडाई का उदारीकरण एवं प्रक्रिया

जनहित याचिका (Public Interest Litigation - PIL) न्यायिक सक्रियता का सबसे व्यावहारिक और लोकप्रिय माध्यम है। इसका मूल उद्देश्य समाज के उन निर्धन, वंचित, शोषित तथा साधनहीन वर्गों को न्याय सुलभ कराना है जो सामाजिक या आर्थिक अक्षमताओं के कारण स्वयं न्यायालय की शरण में आने में असमर्थ हैं।

पारंपरिक वाद बनाम जनहित याचिका (PIL)

wincompete

पारंपरिक अधिकारिता (Locus Standi)	उदारीकृत अधिकारिता (PIL)
• केवल वही व्यक्ति वाद ला सकता है जिसके व्यक्तिगत कानूनी अधिकार का हनन हुआ हो • पक्षकार बनाम प्रतिवादी का व्यक्तिगत विवाद	• समाज का कोई भी प्रबुद्ध नागरिक या संगठन वंचितों के अधिकारों हेतु याचिका दायर कर सकता है • जनहित, मानवाधिकार व पर्यावरण की सामूहिक रक्षा

लोकस स्टैंडाई (विधिक स्थिति) के नियम का उदारीकरण

अ. **पारंपरिक नियम:** आंग्ल-सैक्सन न्यायशास्त्र का कठोर नियम था कि केवल वही व्यक्ति अदालत का दरवाजा खटखटा सकता है जिसके किसी विधिक अधिकार का प्रत्यक्ष उल्लंघन हुआ हो (Locus Standi)।

ब. **जनहित याचिका द्वारा परिवर्तन:** सर्वोच्च न्यायालय ने इस नियम को शिथिल करते हुए यह व्यवस्था दी कि सार्वजनिक हित अथवा व्यापक जन-समुदाय के मूल अधिकारों के हनन की स्थिति में कोई भी जागरूक नागरिक, गैर-सरकारी संगठन (NGO) अथवा संस्था न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 (उच्चतम न्यायालय) अथवा अनुच्छेद 226 (उच्च न्यायालय) के तहत याचिका प्रस्तुत कर सकती है।

स. **पत्र याचिका (Epistolary Jurisdiction):** न्यायालय ने प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं को समाप्त करते हुए यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि यदि कोई शोषित व्यक्ति या संस्था केवल एक साधारण पत्र, टेलीग्राम अथवा पोस्टकार्ड भी मुख्य न्यायमूर्ति के नाम भेजती है, तो न्यायालय उसे जनहित याचिका के रूप में स्वीकार कर संज्ञान ले सकता है।

प्रमुख ऐतिहासिक जनहित याचिका वाद

अ. **हुसैनआरा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (1979):** इसे **भारत की प्रथम जनहित याचिका** माना जाता है। अधिवक्ता कपिला हिंगोरानी द्वारा समाचार पत्र की रिपोर्ट के आधार पर बिहार की जेलों में वर्षों से सड़ रहे विचाराधीन कैदियों (Undertrial Prisoners) के संबंध में याचिका दायर की गई थी। इसके परिणामस्वरूप 40,000 से अधिक कैदियों को रिहा किया गया तथा 'त्वरित विचारण का अधिकार' (Right to Speedy Trial) अनुच्छेद 21 के तहत मूल अधिकार घोषित हुआ।

ब. **एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ (जजेस ट्रांसफर केस - 1981):** न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती ने जनहित याचिका की अवधारणा को पूर्ण संवैधानिक एवं संस्थागत आधार प्रदान किया। न्यायालय ने घोषित किया कि लोकस स्टैंडाई का नियम ऐसे किसी भी मामले में लागू नहीं होगा जहां किसी सार्वजनिक दायित्व के उल्लंघन से आम जनता या किसी कमजोर वर्ग को क्षति पहुंच रही हो।

स. **एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ (पर्यावरण संरक्षण वाद शृंखला):** अधिवक्ता एम. सी. मेहता द्वारा दायर याचिकाओं के आधार पर गंगा नदी प्रदूषण नियंत्रण, ताजमहल का संरक्षण (ताज ट्रेपेजियम जोन), दिल्ली में वाहनों हेतु सीएनजी का अनिवार्य प्रयोग, तथा 'प्रदूषणकर्ता भुगतान करे का सिद्धांत' (Polluter Pays Principle) लागू किया गया।

द. **बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ (1984):** फरीदाबाद के पत्थर खदानों में अमानवीय परिस्थितियों में कार्य कर रहे बंधुआ मजदूरों को मुक्त कराने हेतु दायर याचिका; न्यायालय ने माना कि गरिमा के साथ जीने का अधिकार केवल जीवित रहने तक सीमित नहीं है।

न्यायिक अतिरेक बनाम न्यायिक संयम: कार्यपालिका एवं विधायिका के साथ द्वंद्व

यद्यपि न्यायिक सक्रियता ने शासन में पारदर्शिता, पर्यावरण संरक्षण और मानवाधिकारों की रक्षा में युगांतकारी योगदान दिया है, किंतु जब न्यायपालिका सक्रियता की सीमा लांघकर कार्यपालिका के नीतिगत प्रशासनिक कार्यों अथवा विधायिका के विधि-निर्माण के क्षेत्राधिकार में सीधा हस्तक्षेप करने लगती है, तो इसे **'न्यायिक अतिरेक' (Judicial Overreach)** अथवा **'न्यायिक अतिक्रमण'** कहा जाता है।

न्यायिक संयम (Judicial Restraint) की आवश्यकता

अ. **शक्ति पृथक्करण का क्षरण:** संविधान के अनुच्छेद 50 के अंतर्गत कार्यपालिका और न्यायपालिका का पृथक्करण एक निर्देशक सिद्धांत है। जब न्यायालय नीति निर्माण करने लगते हैं (जैसे राजमार्गों पर शराब की

बिक्री पर प्रतिबंध लगाना, पटाखों पर प्रतिबंध का नियमन, अथवा फिल्मों के प्रदर्शन पर नियंत्रण), तो इससे शक्ति संतुलन बिगड़ता है।

ब. **लोकतांत्रिक जवाबदेही का अभाव:** कार्यपालिका और विधायिका जनता के प्रति प्रत्यक्ष रूप से जवाबदेह (निर्वाचनों के माध्यम से) होती हैं, जबकि न्यायपालिका सीधे निर्वाचित नहीं होती। अतः शासन के नीतिगत विकल्प निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा ही तय किए जाने चाहिए।

स. **संसाधनों की सीमाओं की अनदेखी:** न्यायालयों के पास वित्तीय संसाधनों और प्रशासनिक तंत्र का प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता। कई बार न्यायालय ऐसे आदेश जारी कर देते हैं जिनका आर्थिक और व्यावहारिक क्रियान्वयन कार्यपालिका हेतु असंभव होता है।

न्यायिक सक्रियता एवं न्यायिक अतिरेक का तुलनात्मक अध्ययन

तुलना का आधार	न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism)	न्यायिक अतिरेक (Judicial Overreach)
सैद्धांतिक प्रकृति	यह संविधान की मूल भावना के अनुरूप शासन के अन्य अंगों की निष्क्रियता को दूर करने का एक वैध सुधारात्मक साधन है।	यह शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन कर कार्यपालिका या विधायिका के अनन्य अधिकार क्षेत्र में अनुचित हस्तक्षेप है।
विधिक औचित्य	यह अनुच्छेद 142 (पूर्ण न्याय) तथा मूल अधिकारों के संरक्षण की परिधि के भीतर संचालित होती है।	यह न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का मनमाना विस्तार है, जिसका कोई ठोस संवैधानिक आधार नहीं होता।
प्रशासन पर प्रभाव	यह निष्क्रिय प्रशासन को अपने विधिक दायित्वों का पालन करने हेतु जागृत करती है (दिशा-निर्देश देती है)।	यह प्रशासन के नीतिगत निर्णयों को पंगु बना देती है और कार्यपालिका के अधिकार को प्रतिस्थापित करने का प्रयास करती है।
उदाहरण	कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा हेतु विशाखा दिशानिर्देश जारी करना; बंधुआ मजदूरों की मुक्ति।	सिनेमाघरों में राष्ट्रगान बजाने की अनिवार्यता का न्यायिक आदेश; राष्ट्रीय राजमार्गों पर शराब की दुकानों को बंद करने का आदेश।

wincompete

संवैधानिक एवं न्यायिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **अधिकार-बाह्य (Ultra Vires):** लैटिन पदावली जिसका अर्थ है 'शक्तियों से परे'। जब कोई विधायी निकाय अथवा कार्यपालिका प्राधिकारी अपनी संवैधानिक या कानूनी अधिकार सीमा से बाहर जाकर कोई कानून बनाता है या आदेश जारी करता है, तो न्यायपालिका उसे अधिकार-बाह्य घोषित कर रद्द कर देती है।

ब. **प्रारंभतः शून्य (Void Ab Initio):** वह विधि या आदेश जो अपने निर्माण के प्रथम क्षण से ही पूर्णतः प्रभावहीन, अवैध और अस्तित्वहीन माना जाता है, मानो वह कभी बना ही न हो।

स. **विधि की सम्यक प्रक्रिया (Due Process of Law):** अमेरिकी संविधान की 5वीं एवं 14वीं संशोधन से विकसित संकल्पना, जिसके अनुसार न्यायालय न केवल यह देखता है कि कानून सक्षम विधायिका द्वारा विहित प्रक्रिया से बनाया गया है, बल्कि यह भी परीक्षण करता है कि वह कानून स्वयं में न्यायसंगत, निष्पक्ष और तार्किक (Just, Fair and Reasonable) है अथवा नहीं। मेनका गांधी वाद (1978) के पश्चात भारत में भी इसे व्यावहारिक रूप से अंगीकार कर लिया गया है।

द. **लोकस स्टैंडाई (Locus Standi):** न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने अथवा वाद संस्थित करने का विधिक अधिकार; जनहित याचिका के अंतर्गत इस कठोर नियम को समाप्त कर दिया गया है।

य. **सुओ मोटो (Suo Motu):** न्यायालय द्वारा किसी पीड़ित पक्षकार की औपचारिक याचिका के बिना ही, समाचार पत्रों, मीडिया रिपोर्टों अथवा सार्वजनिक सूचनाओं के आधार पर किसी गंभीर जनहित के मामले का **स्वतः संज्ञान** लेकर न्यायिक कार्यवाही प्रारंभ करना।

र. **छद्म विधान का सिद्धांत (Doctrine of Colourable Legislation):** इस विधिक उक्ति पर आधारित कि *"जो कार्य प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता, उसे अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं किया जा सकता।"* यदि विधायिका अपनी शक्ति-सीमा से बाहर के किसी विषय पर अप्रत्यक्ष रूप से कानून बनाती है, तो न्यायालय उसे छद्म विधान मानकर निरस्त कर देता है।

अध्याय 16: भारत निर्वाचन आयोग (ECI): संवैधानिक प्रावधान, बहु-सदस्यीय संरचना, सेवा शर्तें, स्वतंत्रता एवं चुनाव सुधार

निर्वाचन आयोग का संवैधानिक अधिष्ठान एवं भाग 15 का विन्यास

भारतीय संविधान के भाग 15 के अंतर्गत अनुच्छेद 324 से 329 तक देश की निर्वाचन प्रणाली, नियामक तंत्र तथा भारत निर्वाचन आयोग (Election Commission of India - ECI) के गठन एवं शक्तियों का विस्तृत विन्यास प्रस्तुत किया गया है। लोकतंत्रीय शासन प्रणाली की आधारशिला स्वतंत्र, निष्पक्ष, पारदर्शी एवं आवधिक निर्वाचन हैं। संविधान निर्माताओं ने निर्वाचनों की शुचिता को राजनीतिक कार्यपालिका के हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त रखने हेतु निर्वाचन आयोग को एक अखिल भारतीय, संप्रभु, स्थायी एवं स्वायत्त संवैधानिक निकाय का स्वरूप प्रदान किया।

यह आयोग अखिल भारतीय स्तर का निकाय है क्योंकि यह केंद्र तथा राज्यों दोनों के निर्वाचनों का समान रूप से संचालन करता है। राज्यों के भीतर होने वाले स्थानीय निकायों (पंचायतों एवं नगरपालिकाओं) के चुनावों से भारत निर्वाचन आयोग का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है; उनके लिए संविधान के 73वें और 74वें संशोधन के तहत क्रमशः अनुच्छेद 243K और 243ZA के अधीन पृथक 'राज्य निर्वाचन आयोग' (State Election Commission) की स्थापना की गई है।

संविधान का भाग 15: निर्वाचन तंत्र

↓

अनुच्छेद 324	अनुच्छेद 325	अनुच्छेद 326	अनुच्छेद 327-328	अनुच्छेद 329
अधीक्षण, निदेशन व नियंत्रण की शक्ति	धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर भेद न करना	वयस्क मताधिकार (18 वर्ष न्यूनतम)	संसद व विधानमंडलों की विधि निर्माण शक्ति	न्यायालयों के हस्तक्षेप पर संवैधानिक रोक

भाग 15 के सभी अनुच्छेदों का सूक्ष्म संवैधानिक विन्यास

अ. **अनुच्छेद 324 (निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना):** यह आयोग के गठन, संरचना, मुख्य चुनाव आयुक्त की पदावधि की सुरक्षा तथा कर्मचारियों की मांग संबंधी समस्त आधारभूत नियमों को समाहित करता है।

ब. **अनुच्छेद 325 (धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर किसी व्यक्ति का निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किए जाने के लिए अपात्र न होना और उसके द्वारा किसी विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किए जाने का दावा न किया जाना):** यह प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक ही सामान्य निर्वाचक नामावली (Single General Electoral Roll) का उपबंध करता है। इसने ब्रिटिश काल की पृथक निर्वाचक मंडल (Separate Electorate) प्रणाली को समूल समाप्त कर लोकतांत्रिक समानता स्थापित की।

स. **अनुच्छेद 326 (लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के लिए निर्वाचनों का वयस्क मताधिकार के आधार पर होना):** प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का नागरिक है और जिसकी आयु विधि द्वारा निर्धारित तिथि को न्यूनतम 18 वर्ष है, बिना किसी निर्योग्यता (अनिवास, चित्तविकृति, अपराध या भ्रष्ट आचरण) के मतदान का पूर्ण हकदार होगा।

द. **अनुच्छेद 327 (विधानमंडलों के लिए निर्वाचनों के संबंध में उपबंध करने की संसद की शक्ति):** संसद समय-समय पर विधि बनाकर निर्वाचक नामावली तैयार करने, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा सदनों के गठन से जुड़े सभी मामलों का विनियमन कर सकती है। इसी शक्ति के अंतर्गत लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (1950 एवं 1951) तथा परिसीमन आयोग अधिनियम पारित किए गए हैं।

य. **अनुच्छेद 328 (किसी राज्य के विधानमंडल के लिए निर्वाचनों के संबंध में उपबंध करने की उस विधानमंडल की शक्ति):** यदि संसद ने किसी विषय पर विधि नहीं बनाई है, तो राज्य विधानमंडल अपने राज्य के चुनावों के संचालन हेतु अनुपूरक विधि बना सकता है।

र. **अनुच्छेद 329 (निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन):** परिसीमन आयोग द्वारा निर्धारित निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन अथवा स्थानों के आवंटन संबंधी किसी विधि की मान्यता को किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता (खंड क)। किसी चुनाव को केवल संसद द्वारा विहित रीति से प्रस्तुत 'निर्वाचन याचिका' (Election Petition) के माध्यम से ही चुनौती दी जा सकती है, किसी सामान्य वाद द्वारा नहीं (खंड ख)।

अनुच्छेद 324: अधीक्षण, निदेशन एवं नियंत्रण की अंतर्निहित संप्रभु शक्तियां

wincompete

अनुच्छेद 324(1) के अंतर्गत प्रयुक्त तीन प्रमुख शब्द—**अधीक्षण (Superintendence), निदेशन (Direction), एवं नियंत्रण (Control)**—निर्वाचन आयोग की शक्तियों के सबसे व्यापक संवैधानिक स्रोत हैं।

आयोग के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले छह प्रमुख संवैधानिक निर्वाचन

संविधान के तहत निर्वाचन आयोग को केवल और केवल निम्नलिखित छह स्तरों के निर्वाचनों के संचालन का अनन्य दायित्व सौंपा गया है:

- संसद के दोनों सदनों (लोकसभा एवं राज्यसभा) के निर्वाचन।

- प्रत्येक राज्य की विधानसभा (Legislative Assembly) के निर्वाचन।
- द्विसदनीय विधानमंडल वाले राज्यों की विधान परिषद (Legislative Council) के निर्वाचन।
- भारत के राष्ट्रपति पद का निर्वाचन।
- भारत के उपराष्ट्रपति पद का निर्वाचन।

'अवशिष्ट चुनावी शक्तियां' एवं मोहिंदर सिंह गिल वाद (1978)

संविधान सभा ने यह अनुभव किया था कि विधि निर्माण की अपनी सीमाएं होती हैं और चुनाव के दौरान ऐसी अप्रत्याशित परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिनका पूर्वानुमान संसद पहले से न लगा सके। अतः अनुच्छेद 324 में कार्यपालिका तथा विधायी शून्यता को भरने हेतु आयोग को असाधारण अंतर्निहित शक्तियां प्रदान की गईं।

मोहिंदर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त (1978) वाद में सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने अनुच्छेद 324 के विस्तार पर ऐतिहासिक सिद्धांत प्रतिपादित किए:

अ. **नियम-रहित क्षेत्रों में पूर्ण शक्ति:** जब संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित कोई कानून चुनाव के दौरान उत्पन्न किसी अप्रत्याशित संकट (जैसे व्यापक हिंसा, बूथ कैप्चरिंग, या धांधली) पर मौन हो, तो अनुच्छेद 324 निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र, निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने हेतु कोई भी आवश्यक प्रशासनिक या नियामक आदेश जारी करने की संप्रभु शक्ति देता है।

ब. **प्राकृतिक न्याय के अधीन:** आयोग की यह शक्ति विधि के शासन (Rule of Law) तथा प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) के सिद्धांतों के अधीन है। आयोग कोई ऐसा मनमाना आदेश नहीं दे सकता जो संसद द्वारा बनाई गई स्पष्ट विधि के प्रत्यक्षतः विपरीत हो।

स. **सर्वोच्चता:** यदि संसद के कानून और अनुच्छेद 324 के उद्देश्यों के मध्य कोई गतिरोध उत्पन्न होता है, तो निष्पक्ष चुनाव कराने के संवैधानिक अधिदेश को पूरा करने हेतु आयोग के निर्देश प्रभावी होंगे।

एकल सदस्यीय बनाम बहु-सदस्यीय संरचना का ऐतिहासिक विकासक्रम

संविधान के अनुच्छेद 324(2) में यह उपबंधित है कि निर्वाचन आयोग मुख्य चुनाव आयुक्त (Chief Election Commissioner - CEC) और उतने अन्य चुनाव आयुक्तों (Election Commissioners - ECs) से मिलकर बनेगा, जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे। संविधान ने आयोग के सदस्यों की कोई निश्चित संख्या तय नहीं की, बल्कि इसे कार्यपालिका के विवेक पर छोड़ दिया।

1950 - 15 अक्टूबर 1989: एक-सदस्यीय आयोग
(केवल मुख्य चुनाव आयुक्त - सुकुमार सेन प्रथम CEC बने)

↓

16 अक्टूबर 1989: प्रथम बार बहु-सदस्यीय निकाय
(राष्ट्रपति द्वारा अधिसूचना: CEC + 2 अन्य चुनाव आयुक्त; मताधिकार की आयु 21 से 18 वर्ष होने पर कार्यभार हेतु)

↓

1990 - 1993: पुनः एकल-सदस्यीय व्यवस्था
(जनता दल सरकार द्वारा अधिसूचना रद्द; वी.एस. रमादेवी एकमात्र महिला CEC बनीं)

↓

1 अक्टूबर 1993 से वर्तमान: स्थायी बहु-सदस्यीय निकाय
(अध्यादेश एवं 1993 के अधिनियम द्वारा त्रि-सदस्यीय संरचना: 1 CEC + 2 ECs; टी.एन. शेषन काल में संस्थागत सुदृढ़ीकरण)

कालानुक्रमिक विकास एवं वैधानिक चरण

अ. **एकल सदस्यीय युग (1950 से 15 अक्टूबर 1989):** स्थापना (25 जनवरी 1950) से लेकर लगभग चार दशकों तक निर्वाचन आयोग एक एकल-सदस्यीय निकाय के रूप में कार्य करता रहा, जिसमें केवल मुख्य चुनाव आयुक्त ही सर्वोच्च पदधारक होते थे। श्री **सुकुमार सेन** भारत के प्रथम मुख्य चुनाव आयुक्त बने।

ब. **प्रथम बहु-सदस्यीय प्रयोग (16 अक्टूबर 1989):** 61वें संविधान संशोधन अधिनियम 1988 द्वारा मतदान की न्यूनतम आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। इसके फलस्वरूप मतदाताओं की संख्या में हुए भारी विस्तार के प्रशासनिक प्रबंधन हेतु 16 अक्टूबर 1989 को राष्ट्रपति ने दो अतिरिक्त चुनाव आयुक्तों (एस. एस. धनोवा और वी. एस. सहगल) की नियुक्ति कर आयोग को पहली बार बहु-सदस्यीय बनाया।

स. **पुनः एकल सदस्यीय स्थिति (जनवरी 1990):** राष्ट्रीय मोर्चा की नई सरकार ने जनवरी 1990 में अधिसूचना को रद्द कर दिया, जिससे आयोग पुनः एकल सदस्यीय निकाय बन गया। (नोट: नवंबर-दिसंबर 1990 में श्रीमती **वी. एस. रमादेवी** भारत की पहली और अब तक की एकमात्र महिला मुख्य चुनाव आयुक्त बनीं, जिनका कार्यकाल कार्यवाहक रूप में 16 दिनों का रहा)।

द. **स्थायी त्रि-सदस्यीय संरचना (1 अक्टूबर 1993 से अब तक):** तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. शेषन के एकछत्र प्रशासनिक नियंत्रण को संतुलित करने तथा आयोग के निर्णयों में सामूहिक विमर्श लाने के उद्देश्य से 1 अक्टूबर 1993 को राष्ट्रपति द्वारा एक अध्यादेश प्रख्यापित किया गया, जिसे बाद में संसद द्वारा **'मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त (सेवा की शर्तें) संशोधन अधिनियम, 1993'** के रूप में पारित किया गया। इसके तहत आयोग में दो अतिरिक्त चुनाव आयुक्तों (एम. एस. गिल और जी. वी. जी. कृष्णमूर्ति) की स्थायी नियुक्ति की गई। तब से लेकर आज तक निर्वाचन आयोग निरंतर एक **त्रि-सदस्यीय निकाय (1 CEC + 2 ECs)** के रूप में कार्य कर रहा है।

मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य चुनाव आयुक्तों की शक्तियां, वेतन एवं पद-समानता

आयोग के बहु-सदस्यीय बनने के उपरांत मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य आयुक्तों की शक्तियों में पदानुक्रम को लेकर गंभीर मतभेद उत्पन्न हुए। इसे सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्णय के माध्यम से सुलझाया।

एस. एस. धनोवा वाद (1991) एवं टी. एन. शेषन वाद (1995)

अ. **एस. एस. धनोवा बनाम भारत संघ (1991):** सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य आयुक्तों की शक्तियां पूरी तरह समान नहीं हैं; मुख्य चुनाव आयुक्त का पद संस्थागत रूप से उच्चतर है। किंतु न्यायालय ने यह भी संकेत दिया कि लोकतंत्र में एक व्यक्ति के हाथ में असीमित शक्ति के स्थान पर बहु-सदस्यीय निकाय अधिक उपयुक्त है।

wincompete

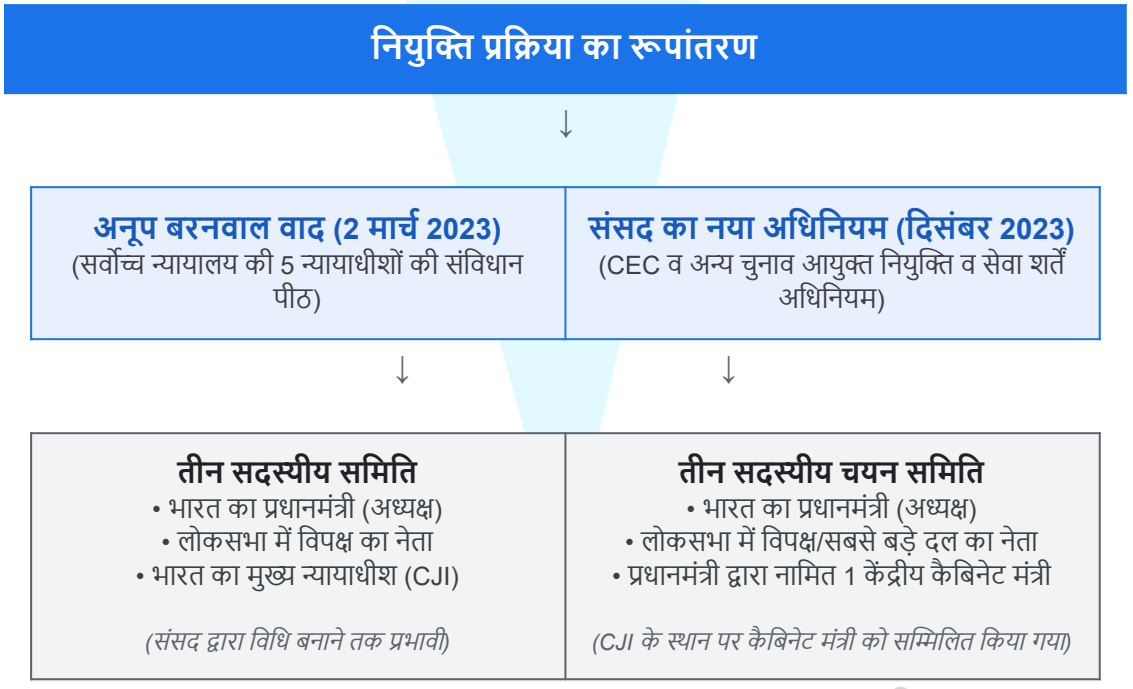
ब. **टी. एन. शेषन बनाम भारत संघ (1995):** टी. एन. शेषन ने 1993 के अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दी कि यह मुख्य चुनाव आयुक्त के संवैधानिक वर्चस्व को कम करता है। सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से इस याचिका को खारिज करते हुए ऐतिहासिक विधि सिद्धांत प्रतिपादित किए:

- **शक्तियों एवं परिलब्धियों में पूर्ण समानता:** मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य दो चुनाव आयुक्तों की शक्तियां, अधिकार, कार्य, वेतन और भत्ते **पूर्णतः एक समान** हैं।

- **वेतन एवं भत्ते:** तीनों को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य वेतन, भत्ते और सुविधाएं प्राप्त होती हैं।
- **निर्णयन की पद्धति (आम सहमति बनाम बहुमत):** आयोग के सभी निर्णय सर्वसम्मति (Unanimity) से लिए जाने का प्रयास किया जाता है। यदि मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों के मध्य किसी नीति, विवाद या प्रशासनिक विषय पर कोई मतभेद उत्पन्न होता है, तो उस मामले का निपटारा **बहुमत की राय (Opinion of Majority)** के आधार पर किया जाएगा। इसका विधिक अर्थ यह है कि दोनों चुनाव आयुक्त मिलकर मुख्य चुनाव आयुक्त के मत को खारिज (Outvote) कर सकते हैं।
- **सीईसी केवल 'समकक्षों में प्रथम' (Primus Inter Pares):** मुख्य चुनाव आयुक्त आयोग का प्रशासनिक प्रमुख और बैठकों का अध्यक्ष होता है, किंतु विधिक एवं न्यायिक निर्णयन के संदर्भ में वह अन्य दो आयुक्तों से श्रेष्ठ नहीं है।

नियुक्ति प्रक्रिया का विकासात्मक परिप्रेक्ष्य एवं 2023 का केंद्रीय अधिनियम

मूल संविधान के अनुच्छेद 324(2) में उपबंधित था कि मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा संसद द्वारा इस निमित्त बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए की जाएगी। किंतु सात दशकों से अधिक समय तक संसद ने इस विषय पर कोई विशिष्ट कानून नहीं बनाया, जिसके कारण नियुक्तियां विशुद्ध रूप से केंद्रीय मंत्रिपरिषद (कार्यपालिका) की एकतरफा सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती रहीं।



अनूप बरनवाल बनाम भारत संघ वाद (2 मार्च 2023)

न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ की अध्यक्षता वाली पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने न्यायिक स्वतंत्रता एवं चुनावी शुचिता के संरक्षण हेतु युगांतकारी निर्णय सुनाया:

- न्यायालय ने कहा कि कार्यपालिका की दया पर निर्भर रहने वाला निर्वाचन आयोग निष्पक्ष चुनाव नहीं करा सकता।
- न्यायालय ने निर्देश दिया कि जब तक संसद अनुच्छेद 324(2) के तहत कोई कानून नहीं बना लेती, तब तक मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा तीन सदस्यीय उच्चाधिकार प्राप्त समिति की सलाह पर की जाएगी:

wincompete

अ. भारत के प्रधानमंत्री (अध्यक्ष);
ब. लोकसभा में विपक्ष के नेता (अथवा सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता);
स. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (Chief Justice of India - CJI)।

मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त (नियुक्ति, सेवा की शर्तें और पदावधि) अधिनियम, 2023

संसद ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के उपरांत दिसंबर 2023 में नया कानून अधिनियमित किया, जिसने 1991 के पूर्ववर्ती अधिनियम को प्रतिस्थापित किया। इस अधिनियम के प्रमुख विधिक प्रावधान निम्नलिखित हैं:

अ. **खोज समिति (Search Committee):** केंद्रीय विधि एवं न्याय मंत्री की अध्यक्षता में एक तीन सदस्यीय खोज समिति बनेगी (जिसमें भारत सरकार के सचिव स्तर के दो अन्य वरिष्ठ अधिकारी होंगे), जो चयन समिति के विचारार्थ 5 उपयुक्त नामों का एक पैनल तैयार करेगी।

ब. **चयन समिति (Selection Committee):** नियुक्तियों की संस्तुति करने वाली अंतिम चयन समिति की संरचना निम्न प्रकार निर्धारित की गई:

- भारत का प्रधानमंत्री (अध्यक्ष);
- लोकसभा में विपक्ष का नेता अथवा सबसे बड़े विपक्षी दल का नेता (सदस्य);
- **प्रधानमंत्री द्वारा नामित एक केंद्रीय कैबिनेट मंत्री (सदस्य)**।
- *(इस अधिनियम द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में शामिल भारत के मुख्य न्यायाधीश को चयन समिति से बाहर कर दिया गया और उनके स्थान पर केंद्रीय कैबिनेट मंत्री को शामिल किया गया, जिससे चयन समिति में कार्यपालिका को 2:1 का स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो गया)।*

स. **पात्रता के वैधानिक मापदंड:** उम्मीदवार का भारत सरकार के **सचिव या समकक्ष पद** पर कार्यरत अथवा पूर्व में उस पद पर आसीन रहा होना अनिवार्य है, तथा उसके पास निर्वाचनों के प्रबंधन और संचालन का विशिष्ट ज्ञान और अनुभव होना चाहिए।

पदावधि, त्यागपत्र, निष्कासन एवं संवैधानिक विसंगति

चुनाव आयोग के सदस्यों की स्वतंत्रता को कार्यपालिका के दबाव से सुरक्षित रखने हेतु संविधान ने कठोर प्रक्रियाएं निर्धारित की हैं, किंतु मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों के निष्कासन नियमों में एक महत्वपूर्ण विसंगति भी विद्यमान है।

कार्यकाल एवं त्यागपत्र की वैधानिक स्थिति

अ. **पदावधि की सीमा:** 2023 के अधिनियम (तथा पूर्ववर्ती 1991 के अधिनियम) के अनुसार, मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त पदभार ग्रहण करने की तारीख से **6 वर्ष की अवधि अथवा 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक** (जो भी पहले हो) पद धारण करते हैं।

ब. **पुनर्नियुक्ति पर रोक:** वे 6 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण होने के उपरांत उसी पद पर पुनर्नियुक्ति के पात्र नहीं होते।

wincompete

स. **त्यागपत्र:** कोई भी आयुक्त किसी भी समय **राष्ट्रपति को संबोधित** अपने हस्ताक्षर सहित लिखित पत्र द्वारा अपना पद त्याग सकता है।

मुख्य चुनाव आयुक्त (CEC) के निष्कासन की संवैधानिक गारंटी (अनुच्छेद 324(5))

संविधान का अनुच्छेद 324(5) का प्रथम परंतुक मुख्य चुनाव आयुक्त को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान सुरक्षा कवच प्रदान करता है:

- मुख्य चुनाव आयुक्त को उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिस रीति से और जिन आधारों पर **उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाया जाता है**।
- **दो आधार:** केवल **सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour)** अथवा **असमर्थता (Incapacity)** के आधार पर।
- **संसदीय प्रक्रिया:** संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत (सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत तथा उपस्थित व मतदान करने वालों का कम से कम दो-तिहाई बहुमत) द्वारा उसी सत्र में पारित समावेदन पर केवल **राष्ट्रपति के आदेश** से ही हटाया जा सकता है।
- **सेवा शर्तों का संरक्षण:** मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति के पश्चात उसकी सेवा की शर्तों में उसके लिए कोई **अलाभकारी परिवर्तन (Disadvantageous Change)** नहीं किया जा सकता।

संवैधानिक विसंगति: अन्य चुनाव आयुक्तों की असुरक्षित स्थिति

अनुच्छेद 324(5) के द्वितीय परंतुक में एक गंभीर संरचनात्मक विभेद सन्निहित है:

- अन्य चुनाव आयुक्तों या प्रादेशिक आयुक्तों को पद से हटाने के लिए संसद के किसी महाभियोग प्रस्ताव की आवश्यकता नहीं होती।
- उन्हें राष्ट्रपति द्वारा **केवल मुख्य चुनाव आयुक्त की सिफारिश (Recommendation of CEC) पर** ही पद से हटाया जा सकता है।

सीईसी की संस्तुति की विधिक प्रकृति एवं टी. एन. शेषन वाद

अ. **सिफारिश मनमानी नहीं हो सकती:** टी. एन. शेषन वाद (1995) में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यद्यपि राष्ट्रपति अन्य चुनाव आयुक्तों को हटाने के लिए सीईसी की सिफारिश पर निर्भर है, किंतु सीईसी की यह सिफारिश मनमानी, दुर्भावनापूर्ण अथवा व्यक्तिगत द्वेष पर आधारित नहीं हो सकती। इसके पीछे ठोस, वस्तुनिष्ठ एवं विधिक साक्ष्य होने चाहिए।

ब. **सुधार की मांग:** विधि आयोग (255वीं रिपोर्ट) तथा कई संसदीय समितियों ने निरंतर यह सिफारिश की है कि निष्पक्षता सुनिश्चित करने हेतु अन्य दोनों चुनाव आयुक्तों को भी मुख्य चुनाव आयुक्त की भांति **समान संवैधानिक निष्कासन सुरक्षा** (संसद के विशेष बहुमत द्वारा हटाया जाना) प्रदान की जानी चाहिए।

सीईसी एवं अन्य चुनाव आयुक्तों की तुलनात्मक स्थिति

तुलनात्मक आयाम	मुख्य चुनाव आयुक्त (CEC)	अन्य चुनाव आयुक्त (ECs)
कार्यकाल एवं अधिकतम आयु	6 वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु (जो भी पहले हो)।	6 वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु (जो भी पहले हो)।
वेतन, भत्ते एवं दर्जा	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य।	उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य।
निर्णय में मतदान का भार	एक मत; अन्य आयुक्तों के बिल्कुल बराबर।	एक मत; सीईसी के बिल्कुल बराबर।

wincompete

पद से हटाने की प्रक्रिया	संसद के दोनों सदनों के **विशेष बहुमत** द्वारा (अनुच्छेद 124(4) की प्रक्रिया)।	केवल **सीईसी की औपचारिक सिफारिश** पर राष्ट्रपति द्वारा।
नियुक्ति पश्चात सेवा शर्तों में कटौती	अलाभकारी परिवर्तन पर **पूर्ण संवैधानिक रोक**।	संविधान के मूल पाठ में स्पष्ट संरक्षण का अभाव; वैधानिक रूप से समान।

निर्वाचन आयोग के बहुआयामी कार्य एवं अधिकारिता: प्रशासनिक, परामर्शदात्री व अर्धन्यायिक

निर्वाचन आयोग की शक्तियों को तीन प्रमुख कार्यात्मक श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

निर्वाचन आयोग की त्रि-आयामी शक्तियां

↓

प्रशासनिक शक्तियां	परामर्शदात्री शक्तियां	अर्धन्यायिक शक्तियां
• निर्वाचक नामावली का नवीनीकरण • चुनाव कार्यक्रम एवं तिथियां घोषित • आदर्श आचार संहिता लागू करना • मतदान केंद्र स्थापित करना व रद्द करना	• सांसदों की अयोग्यता पर राष्ट्रपति को बाध्यकारी राय (अनुच्छेद 103) • विधायकों की अयोग्यता पर राज्यपाल को बाध्यकारी राय (अनुच्छेद 192)	• राजनीतिक दलों को मान्यता देना • चुनाव चिह्नों का आबंटन • चुनाव चिह्नों के विवादों पर अंतिम निर्णय (प्रतीक आदेश, 1968)

1. प्रशासनिक शक्तियां एवं कार्य

अ. **निर्वाचक नामावली (Voter List) तैयार करना:** पूरे देश में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन करना, घर-घर जाकर मतदाताओं का पंजीकरण करना, तथा प्रत्येक चुनाव से पूर्व नामावलियों का सघन पुनरीक्षण (Revision) कर त्रुटिरहित मतदाता सूची प्रकाशित करना।

ब. **चुनाव कार्यक्रम की घोषणा:** चुनावों की अधिसूचना जारी करने की सिफारिश करना, नामांकन पत्रों को दाखिल करने, संवीक्षा (Scrutiny), नाम वापसी तथा मतदान व मतगणना की तिथियों का संपूर्ण निर्धारण करना।

स. **आदर्श आचार संहिता (MCC) का प्रवर्तन:** राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के आचरण को विनियमित करने हेतु आचार संहिता लागू करना तथा उसका उल्लंघन करने वाले प्रत्याशियों के प्रचार पर अस्थायी रोक लगाना या प्राथमिकी दर्ज कराना।

द. **प्रशासनिक मशीनरी पर संप्रभु नियंत्रण:** चुनाव की घोषणा से लेकर चुनाव प्रक्रिया संपन्न होने तक चुनाव ड्यूटी में लगे समस्त केंद्रीय व राज्य स्तरीय सिविल सेवा, पुलिस तथा अन्य प्रशासनिक अधिकारी निर्वाचन आयोग में **प्रतिनियुक्ति (Deputation)** पर माने जाते हैं। आयोग को उनके स्थानांतरण, निलंबन तथा अनुशासनात्मक कार्रवाई का पूर्ण अधिकार होता है।

wincompete

य. **चुनाव रद्द करना एवं पुनर्मतदान:** बूथ कैप्चरिंग, हिंसा, प्राकृतिक आपदा अथवा धांधली की स्थिति में किसी विशिष्ट मतदान केंद्र अथवा संपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र का चुनाव रद्द करने या पुनर्मतदान (Repoll) कराने की संप्रभु शक्ति।

2. परामर्शदात्री शक्तियां (अनुच्छेद 103 एवं अनुच्छेद 192)

अ. **सांसदों की अयोग्यता (अनुच्छेद 103):** यदि संसद के किसी सदस्य (लोकसभा अथवा राज्यसभा) पर संविधान के अनुच्छेद 102(1) में उल्लिखित आधारों (जैसे लाभ का पद धारण करना, दिवालियापन, विदेशी नागरिकता ग्रहण करना आदि) पर निरर्हता का प्रश्न उठता है, तो राष्ट्रपति यह मामला अनिवार्य रूप से निर्वाचन आयोग को भेजेगा। आयोग इस पर जांच कर राष्ट्रपति को अपनी राय देगा और **राष्ट्रपति ऐसी राय के अनुसार कार्य करने के लिए विवश (बाध्य) होगा**।

ब. **विधायकों की अयोग्यता (अनुच्छेद 192):** राज्य विधानमंडल के किसी सदस्य के अनुच्छेद 191(1) के तहत अयोग्य होने के प्रश्न पर संबंधित राज्य का राज्यपाल निर्वाचन आयोग की राय लेगा और **आयोग की सलाह राज्यपाल पर पूरी तरह बाध्यकारी होगी**।

(नोट: दसवीं अनुसूची के तहत दलबदल के आधार पर अयोग्यता का निर्णय सदन के पीठासीन अधिकारी करते हैं, निर्वाचन आयोग नहीं)।

स. **राष्ट्रपति शासन वाले राज्यों में चुनाव की संस्तुति (अनुच्छेद 356(5)):** यदि किसी राज्य में एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए राष्ट्रपति शासन का विस्तार करना हो, तो निर्वाचन आयोग को यह प्रमाणित करना होता है कि राज्य में स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव कराना वर्तमान में कठिन है।

3. अर्धन्यायिक शक्तियां (Quasi-Judicial Powers)

अ. **राजनीतिक दलों का पंजीकरण (धारा 29A):** लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 29A के तहत राजनीतिक दलों का औपचारिक पंजीकरण करना तथा संविधान के प्रति उनकी निष्ठा सुनिश्चित करना।

ब. **चुनाव चिह्नों का आबंटन एवं विवाद समाधान:** निर्वाचन प्रतीक (आरक्षण एवं आबंटन) आदेश, 1968 (Election Symbols Order, 1968) के तहत आयोग एक सिविल न्यायालय की भांति कार्य करता है। जब किसी राजनीतिक दल में विभाजन (Split) होता है और दोनों गुट दल के मूल नाम तथा चुनाव चिह्न पर दावा करते हैं, तो आयोग अर्धन्यायिक क्षमता में दोनों पक्षों के विधायी बहुमत (सांसद/विधायक) तथा संगठनात्मक बहुमत की जांच कर अंतिम निर्णय देता है।

राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय राजनीतिक दलों की मान्यता के अद्यतन मापदंड

निर्वाचन प्रतीक (आरक्षण एवं आबंटन) आदेश, 1968 के अंतर्गत आयोग राजनीतिक दलों के चुनावी प्रदर्शन के आधार पर उन्हें 'गैर-मान्यता प्राप्त पंजीकृत दल', 'राज्य स्तरीय मान्यता प्राप्त दल', अथवा 'राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त दल' का दर्जा प्रदान करता है।

wincompete

राष्ट्रीय दल (National Party) की मान्यता की तीन वैकल्पिक शर्तें

किसी पंजीकृत राजनीतिक दल को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने हेतु निम्नलिखित तीन शर्तों में से **कम से कम किसी एक शर्त** को पूरा करना अनिवार्य है:

अ. **शर्त एक (चार राज्यों में 6% मत + 4 लोकसभा सीटें):** वह दल कम से कम चार या अधिक राज्यों में संपन्न हुए लोकसभा अथवा विधानसभा चुनावों में डाले गए कुल **वैध मतों का न्यूनतम 6 प्रतिशत मत** प्राप्त

करे, तथा इसके साथ ही वह किसी एक राज्य अथवा विभिन्न राज्यों से **लोकसभा की कम से कम 4 सीटें** अवश्य जीते।

ब. **शर्त दो (तीन राज्यों से 2% लोकसभा सीटें):** वह दल लोकसभा के पिछले आम चुनाव में **लोकसभा की कुल सीटों की कम से कम 2 प्रतिशत सीटें (वर्तमान में 543 का 2% अर्थात 11 सीटें)** जीते, और ये 11 सदस्य **कम से कम तीन अलग-अलग राज्यों** से चुनकर आए हों।

स. **शर्त तीन (चार राज्यों में राज्य स्तरीय दल की मान्यता):** उस दल को **कम से कम चार राज्यों में 'राज्य स्तरीय दल' (State Party)** के रूप में आधिकारिक मान्यता प्राप्त हो।

राज्य स्तरीय दल (State Party) की मान्यता के पांच वैकल्पिक मापदंड

किसी दल को किसी राज्य में 'राज्य स्तरीय दल' घोषित होने के लिए निम्नलिखित पांच शर्तों में से **किसी एक** को पूरा करना होता है:

क्रमांक	संबंधित चुनाव	न्यूनतम मत प्रतिशत (Vote Share)	न्यूनतम सीटें (Seats Won)
प्रथम	राज्य विधानसभा आम चुनाव	राज्य में डाले गए वैध मतों का **न्यूनतम 6% मत**	संबंधित राज्य में विधानसभा की **न्यूनतम 2 सीटें**
द्वितीय	लोकसभा का आम चुनाव	राज्य में डाले गए वैध मतों का **न्यूनतम 6% मत**	उस राज्य से लोकसभा की **न्यूनतम 1 सीट**
तृतीय	राज्य विधानसभा आम चुनाव	कोई विशिष्ट मत प्रतिशत अनिवार्य नहीं	विधानसभा की कुल सीटों का **कम से कम 3% या 3 सीटें** (जो भी अधिक हो)
चतुर्थ	लोकसभा का आम चुनाव	कोई विशिष्ट मत प्रतिशत अनिवार्य नहीं	उस राज्य को आवंटित प्रत्येक **25 लोकसभा सीटों पर कम से कम 1 सीट** (या उसका अंश)
पंचम (2011 में जोड़ा गया)	राज्य में लोकसभा अथवा विधानसभा आम चुनाव	राज्य में डाले गए कुल वैध मतों का **न्यूनतम 8% मत**	**शून्य सीटें** (यदि दल कोई भी सीट न जीत पाए, तब भी 8% मत होने पर मान्यता मान्य)

wincompete

मान्यता प्राप्त दलों को मिलने वाले विशिष्ट विशेषाधिकार

अ. **अनन्य चुनाव चिह्न:** राष्ट्रीय दलों का चुनाव चिह्न पूरे देश में केवल उन्हीं के प्रत्याशियों हेतु आरक्षित रहता है। राज्य दलों का चिह्न संबंधित राज्य में आरक्षित रहता है।

ब. **नामांकन में प्रस्तावक की छूट:** मान्यता प्राप्त दलों के प्रत्याशियों को नामांकन पत्र दाखिल करते समय निर्वाचक मंडल से केवल **1 प्रस्तावक** (Proposer) की आवश्यकता होती है, जबकि गैर-मान्यता प्राप्त व निर्दलीय उम्मीदवारों को **10 प्रस्तावकों** की आवश्यकता होती है।

स. **स्टार प्रचारक (Star Campaigners) की सुविधा:** आम चुनावों के दौरान राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय मान्यता प्राप्त दलों को अधिकतम **40 स्टार प्रचारक** रखने की अनुमति होती है (गैर-मान्यता प्राप्त पंजीकृत दलों को केवल 20)। स्टार प्रचारकों की यात्रा का हवाई व परिवहन व्यय प्रत्याशी के व्यक्तिगत चुनावी खर्च में नहीं जोड़ा जाता, बल्कि दल के खाते में जाता है।

द. **दूरदर्शन एवं आकाशवाणी पर निःशुल्क समय:** चुनाव प्रचार हेतु राज्य के स्वामित्व वाले प्रसार भारती नेटवर्क पर निःशुल्क प्रसारण समय स्लॉट का आबंटन।

य. **मतदाता सूचियों की निःशुल्क प्रतियां:** आयोग द्वारा निर्वाचन क्षेत्रों की मतदाता सूचियों की दो प्रमाणित प्रतियां निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती हैं।

आदर्श आचार संहिता (MCC): विधिक स्थिति एवं न्यायिक पुनरावलोकन

आदर्श आचार संहिता (Model Code of Conduct - MCC) राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों के मार्गदर्शन हेतु दिशा-निर्देशों का एक ऐसा समुच्चय है जो चुनाव अभियान, बैठकों, रैलियों, मतदान दिवस के आचरण तथा सत्ताधारी दल के व्यवहार को विनियमित करता है।

उत्पत्ति एवं ऐतिहासिक विकास

अ. **केरल में प्रथम प्रयोग (1960):** आदर्श आचार संहिता की संकल्पना सर्वप्रथम 1960 के केरल विधानसभा चुनावों में एक अनौपचारिक प्रयोग के रूप में प्रारंभ हुई, जहां राज्य सरकार ने राजनीतिक दलों के सहयोग से एक आचार संहिता तैयार की।

ब. **निर्वाचन आयोग द्वारा अंगीकरण (1962):** 1962 के तीसरे लोकसभा आम चुनाव में निर्वाचन आयोग ने इसे राष्ट्रीय स्तर पर सभी मान्यता प्राप्त दलों के मध्य परिचालित किया।

स. **1979 में सत्ताधारी दल पर नियंत्रण:** वर्ष 1979 में आयोग ने इसमें एक सर्वथा नवीन खंड जोड़ा, जिसमें केंद्र एवं राज्यों के 'सत्ताधारी दलों के आचरण' पर कड़े निर्बंधन लगाए गए, ताकि सरकारी मशीनरी, वाहनों और सार्वजनिक धन का दुरुपयोग चुनावी लाभ हेतु न किया जा सके।

आदर्श आचार संहिता की विधिक प्रकृति: गैर-सांविधिक स्वरूप

अ. **संसद की संविधि का अभाव:** आदर्श आचार संहिता संसद द्वारा पारित किसी अधिनियम पर आधारित नहीं है; अतः यह **एक सांविधिक (Statutory) दस्तावेज नहीं है**। यह मूलतः राजनीतिक दलों के मध्य बनी एक स्वैच्छिक नैतिक सहमति और अभीसमय पर टिकी हुई है।

ब. **लागू होने की समय-सीमा:** सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशानुसार, आदर्श आचार संहिता **निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव कार्यक्रम की आधिकारिक घोषणा की प्रेस विज्ञप्ति जारी होने के क्षण से ही स्वतः लागू हो जाती है**, और यह संपूर्ण चुनाव प्रक्रिया के संपन्न होने (परिणाम घोषित होने) तक प्रभावी रहती है।

स. **विधिक शून्यता की पूर्ति हेतु आईपीसी व आरपीए का सहारा:** यद्यपि एमसीसी स्वयं दंडनीय कानून नहीं है, किंतु इसके कई उपबंध प्रत्यक्ष रूप से **भारतीय दंड संहिता, 1860 (वर्तमान में भारतीय न्याय संहिता)** तथा **लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951** की विभिन्न धाराओं (जैसे रिश्वतखोरी, मतदाताओं को डराना, घृणास्पद भाषण, धार्मिक उन्माद फैलाना, 48 घंटे पूर्व प्रचार बंद न करना आदि) से समर्थित हैं, जिनके तहत आयोग सीधे आपराधिक अभियोजन दर्ज कराता है।

द. **सांविधिक दर्जा देने के विरुद्ध आयोग का तर्क:** विधि आयोग और कतिपय संसदीय समितियों ने इसे कानूनी अधिनियम का रूप देने का सुझाव दिया है। किंतु निर्वाचन आयोग ने इसका निरंतर विरोध किया है; आयोग का तर्क है कि यदि एमसीसी को कानून बना दिया गया, तो प्रत्येक उल्लंघन का मामला अदालतों में चला जाएगा और न्यायिक प्रक्रियाओं में समय लगने के कारण चुनाव अवधि के भीतर त्वरित दंडात्मक कार्रवाई करना असंभव हो जाएगा।

प्रमुख चुनाव सुधार समितियां एवं युगांतकारी विधायी व न्यायिक परिवर्तन

स्वतंत्र भारत में चुनावी प्रणाली की विसंगतियों (धनबल, बाहुबल, जातिवाद, फर्जी मतदान और राजनीति के अपराधीकरण) को दूर करने हेतु समय-समय पर विभिन्न उच्च स्तरीय समितियों का गठन किया गया।

प्रमुख सुधार समितियां एवं आयोग

समिति / आयोग का नाम	वर्ष	प्रमुख ऐतिहासिक संस्तुतियां
तारकुंडे समिति (जेपी समिति)	1974-75	मतदान की न्यूनतम आयु 21 से घटाकर 18 वर्ष करना; निर्वाचन आयोग को तीन सदस्यीय बनाना; चुनाव व्यय की सरकारी लेखापरीक्षा।
दिनेश गोस्वामी समिति	1990	इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) का शीघ्र प्रयोग; दलबदल कानून में संशोधन; फर्जी मतदान रोकने हेतु मतदाताओं को फोटो पहचान पत्र (EPIC) जारी करना; अवैध हथियारों पर जब्ती।
वोहरा समिति (एन. एन. वोहरा)	1993	राजनीति के अपराधीकरण तथा राजनेताओं, नौकरशाहों और माफिया गिरोहों के मध्य आपराधिक गठजोड़ (Nexus) की जांच हेतु ऐतिहासिक प्रतिवेदन।
इंद्रजीत गुप्त समिति	1998	**राज्य द्वारा चुनावी वित्तपोषण (State Funding of Elections)** की संस्तुति; कमजोर दलों को वित्तीय निष्पक्षता देने हेतु केवल आवश्यक वस्तुओं (ईंधन, कागज, लाउडस्पीकर) के रूप में सरकारी सहायता।

wincompete

विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट	1999	चुनावों में पारदर्शिता; चुनाव-पूर्व गठबंधनों को एकल दल मानना; राजनीतिक दलों के आंतरिक लोकतंत्र और नियमित आंतरिक चुनावों की अनिवार्यता।
संविधान समीक्षा राष्ट्रीय आयोग (NCRWC)	2002	जघन्य अपराधों के आरोपित व्यक्तियों को चुनाव लड़ने से अयोग्य ठहराना; मुख्य चुनाव आयुक्त व सदस्यों की नियुक्ति हेतु व्यापक चयन समिति।
विधि आयोग की 255वीं रिपोर्ट	2015	सशुल्क समाचार (Paid News) को भ्रष्ट आचरण घोषित करना; चुनावी ट्रस्टों का नियमन; चुनाव याचिकाओं के त्वरित निस्तारण हेतु विशेष चुनावी पीठें।

सर्वोच्च न्यायालय के युगांतकारी निर्णय एवं चुनावी सुधार

अ. **एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR) बनाम भारत संघ (2002):** सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के तहत नागरिकों को 'सूचना का अधिकार' प्राप्त है। अतः प्रत्येक प्रत्याशी को नामांकन पत्र दाखिल करते समय अपने आपराधिक रिकॉर्ड, संपत्ति, देनदारियों तथा शैक्षणिक योग्यता का **शपथ पत्र (Affidavit - फॉर्म 26)** देना अनिवार्य है।

ब. **पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (PUCL) बनाम भारत संघ (2013 - नोटा का प्रादुर्भाव):** न्यायालय ने इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों में **नोटा (None of the Above - NOTA)** का विकल्प शामिल करने का आदेश दिया, ताकि मतदाताओं को सभी प्रत्याशियों को अस्वीकार करने का गुप्त नकारात्मक मतदान का अधिकार मिल सके।

स. **लिली थॉमस बनाम भारत संघ (2013):** न्यायालय ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8(4) को असंवैधानिक घोषित कर दिया। पूर्व में दोषी ठहराए गए सांसदों/विधायकों को 3 माह के भीतर अपील दायर करने पर पद पर बने रहने की छूट थी। न्यायालय ने निर्णय दिया कि किसी भी सांसद या विधायक को सक्षम न्यायालय द्वारा न्यूनतम **दो वर्ष या अधिक के कारावास** का दंड मिलते ही उसकी सदन की सदस्यता **उसी क्षण स्वतः समाप्त** हो जाएगी।

द. **सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत निर्वाचन आयोग (2013 - VVPAT की अनिवार्यता):** न्यायालय ने पारदर्शी एवं संवीक्षा योग्य मतदान हेतु ईवीएम के साथ **वीवीपीएटी (Voter Verifiable Paper Audit Trail)** प्रणाली को चरणबद्ध तरीके से पूर्णतः लागू करने का निर्देश दिया।

य. **लोक प्रहरी बनाम भारत संघ (2018):** न्यायालय ने प्रत्याशियों को उनकी आय के स्रोतों के साथ-साथ उनके पति/पत्नी तथा आश्रितों की आय के स्रोतों का अनिवार्य खुलासा करने का आदेश दिया।

र. **एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स बनाम भारत संघ (15 फरवरी 2024 - चुनावी बॉन्ड वाद):** सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से केंद्र सरकार की 'चुनावी बॉन्ड योजना' (Electoral Bonds Scheme) को असंवैधानिक घोषित करते हुए निरस्त कर दिया। न्यायालय ने माना कि राजनीतिक दलों को मिलने वाले गोपनीय चंदे की जानकारी न देना अनुच्छेद 19(1)(क) के तहत मतदाताओं के जानने के मौलिक अधिकार का सीधा उल्लंघन है।

wincompete

निर्वाचन मशीनरी एवं प्रशासनिक तंत्र: राष्ट्रीय से बूथ स्तर तक

निर्वाचनों के संचालन हेतु निर्वाचन आयोग स्वयं किसी विशाल स्थायी अमले को नियुक्त नहीं करता, बल्कि वह संविधान के **अनुच्छेद 324(6)** के तहत राष्ट्रपति अथवा संबंधित राज्य के राज्यपाल से आवश्यक प्रशासनिक कर्मचारियों की मांग करता है। चुनाव के दौरान संपूर्ण प्रशासनिक तंत्र आयोग के नियंत्रण में आ जाता है।



मतदान अधिकारी (Polling Officers - PO 1, 2, 3)

↓

बूथ लेवल अधिकारी (Booth Level Officer - BLO)
(मतदाता सूची का स्थानीय संरक्षक)

प्रमुख अधिकारियों के विधिक दायित्व

अ. **मुख्य निर्वाचन अधिकारी (CEO):** लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950 की धारा 13A के तहत राज्य स्तर पर आयोग के अधीक्षण में चुनावों के पर्यवेक्षण हेतु राज्य सरकार के परामर्श से नियुक्त वरिष्ठ आईएएस अधिकारी।

ब. **जिला निर्वाचन अधिकारी (DEO):** अधिनियम की धारा 13AA के तहत जिले में चुनाव संबंधी समस्त कार्यों के समन्वय और संचालन का प्रमुख (सामान्यतः जिले का जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर)।

स. **रिटर्निंग अधिकारी (RO):** लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 21 के तहत किसी संसदीय अथवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव के वास्तविक संचालन का सर्वोच्च प्राधिकारी। नामांकन पत्रों को स्वीकार करना, उनकी विधिक संवीक्षा करना, चुनाव चिह्न आबंटित करना, मतदान संपन्न कराना, मतों की गणना कराना तथा **अंतिम चुनाव परिणाम की आधिकारिक घोषणा** करना रिटर्निंग अधिकारी का अनन्य दायित्व है।

द. **पीठासीन अधिकारी (Presiding Officer):** अधिनियम की धारा 26 के तहत एक विशिष्ट मतदान केंद्र (Polling Station) पर मतदान की शुचिता, व्यवस्था तथा सुरक्षा का संपूर्ण इन-चार्ज।

य. **बूथ लेवल अधिकारी (BLO):** स्थानीय स्तर पर कार्य करने वाला प्राथमिक सरकारी कर्मचारी (सामान्यतः शिक्षक, लेखपाल, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता) जो संबंधित मतदान केंद्र के क्षेत्र की मतदाता सूची को अद्यतन रखने हेतु सीधे उत्तरदायी होता है।

संवैधानिक एवं चुनावी पारिभाषिक शब्दावली

अ. **अधीक्षण, निदेशन एवं नियंत्रण (Superintendence, Direction and Control):** अनुच्छेद 324(1) के तहत प्रयुक्त वह संप्रभु त्रिपदीय शब्दावली जो निर्वाचन आयोग को चुनाव प्रक्रिया के दौरान किसी भी विधायी शून्यता में प्रशासनिक, अर्धन्यायिक एवं नियामक आदेश जारी करने की पूर्ण शक्ति देती है।

ब. **समकक्षों में प्रथम (Primus Inter Pares):** मुख्य चुनाव आयुक्त की वह विधिक स्थिति जिसके अनुसार वेतन, भत्तों और मतदान के अधिकार में वह अन्य दो चुनाव आयुक्तों के बिल्कुल बराबर है, यद्यपि बैठकों की अध्यक्षता के नाते वह औपचारिक प्रमुख होता है।

स. **वयस्क मताधिकार (Universal Adult Suffrage):** अनुच्छेद 326 के अंतर्गत 18 वर्ष या उससे अधिक आयु के प्रत्येक भारतीय नागरिक को बिना किसी धर्म, जाति, लिंग अथवा संपत्ति के भेदभाव के मत देने का प्राप्त संवैधानिक अधिकार।

vincompete

द. **एकल निर्वाचक नामावली (Single Electoral Roll):** अनुच्छेद 325 के तहत प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र हेतु बनाई जाने वाली एकमात्र साझी मतदाता सूची, जिसने धर्म या संप्रदाय पर आधारित पृथक सूचियों का पूर्ण अंत किया।

य. **आदर्श आचार संहिता (Model Code of Conduct):** चुनाव तिथियों की घोषणा से लेकर परिणामों तक राजनीतिक दलों और सत्ताधारी तंत्र के आचरण को विनियमित करने वाली सर्वसम्मत नैतिक नियमावली।

र. **निर्वाचन याचिका (Election Petition):** संविधान के अनुच्छेद 329(ख) के तहत किसी संपन्न चुनाव के परिणामों को भ्रष्टाचार, अवैधता अथवा प्रक्रियात्मक उल्लंघन के आधार पर सीधे **संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय** में चुनौती देने का एकमात्र विधिक माध्यम।

ल. **वीवीपीएटी (Voter Verifiable Paper Audit Trail):** इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के साथ जुड़ी वह स्वतंत्र मुद्रक प्रणाली जो मतदाता को 7 सेकंड तक एक पारदर्शी खिड़की में यह पर्ची दिखाती है कि उसका मत उसी प्रत्याशी और चुनाव चिह्न को गया है जिसे उसने चुना था, जिसके पश्चात पर्ची स्वतः कटकर सीलबंद पेटी में गिर जाती है।

अध्याय 17: नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (CAG): संवैधानिक स्थिति, स्वतंत्रता, कर्तव्य एवं शक्तियां, लेखापरीक्षा रिपोर्ट एवं लोक वित्त का प्रहरी

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का संवैधानिक दर्शन एवं संस्थागत पृष्ठभूमि

भारतीय संविधान के भाग पांच के अध्याय पांच के अंतर्गत अनुच्छेद 148 से 151 तक भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General of India - CAG) के पद, सेवा शर्तों, कर्तव्यों, शक्तियों तथा लेखापरीक्षा प्रतिवेदनों का विस्तृत विन्यास प्रस्तुत किया गया है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में यह अनिवार्य सिद्धांत है कि कार्यपालिका द्वारा जनता के धन का एक भी अंश विधायिका के प्राधिकार के बिना न तो वसूला जाए और न ही व्यय किया जाए।

संविधान सभा में डॉ. भीमराव आंबेडकर ने इस पद के असाधारण महत्व को रेखांकित करते हुए स्पष्ट घोषणा की थी कि:

> *"नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक भारत के संविधान के अधीन संभवतः सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी होगा। वह उन चार प्रमुख स्तंभों (Four Bulwarks) में से एक है जिन पर भारत सरकार की लोकतांत्रिक व्यवस्था टिकी हुई है—अन्य तीन स्तंभ उच्चतम न्यायालय, संघ लोक सेवा आयोग तथा भारत निर्वाचन आयोग हैं।"*

लोकतांत्रिक व्यवस्था के चार प्रमुख संवैधानिक स्तंभ (Four Bulwarks)

संवैधानिक संस्था	मुख्य भूमिका / दायित्व	संवैधानिक संस्था	मुख्य भूमिका / दायित्व
उच्चतम न्यायालय	न्याय एवं संविधान का संरक्षक	**भारत निर्वाचन आयोग**	स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव का प्रहरी
संघ लोक सेवा आयोग	दक्ष एवं निष्पक्ष सिविल सेवा का आधार	**नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक**	लोक वित्त का सर्वोच्च संरक्षक

संस्थागत विकास की ऐतिहासिक यात्रा

अ. **औपनिवेशिक उद्भव (वर्ष 1858):** ईस्ट इंडिया कंपनी से शासन ब्रिटिश क्राउन को हस्तांतरित होने के तुरंत बाद वर्ष 1858 में प्रथम बार एक पृथक महालेखाकार (Accountant General) का पद सृजित किया गया। वर्ष 1860 में सर एडवर्ड ड्रमंड को भारत का प्रथम महालेखापरीक्षक (Auditor General) नियुक्त किया गया।

ब. **वैधानिक मान्यता (भारत सरकार अधिनियम, 1919 एवं 1935):** मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के उपरांत भारत सरकार अधिनियम, 1919 के तहत महालेखापरीक्षक को औपनिवेशिक कार्यपालिका से मुक्त कर वैधानिक दर्जा दिया गया। कालांतर में भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने इसके संघीय क्षेत्राधिकार, सेवा शर्तों एवं कर्तव्यों को विस्तृत रूप से संहिताबद्ध किया।

स. **स्वतंत्र भारत में संवैधानिक रूपांतरण (1950):** संविधान के लागू होने के साथ ही अनुच्छेद 148 के तहत इसे पूर्ण संवैधानिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। स्वतंत्र भारत के प्रथम नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक श्री **वी. नरहरि राव (1948-1954)** बने।

अनुच्छेद 148: संवैधानिक अवस्थिति, नियुक्ति एवं शपथ

संविधान का अनुच्छेद 148 भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के पद की स्थापना, उसकी नियुक्ति की रीति तथा पद के विधिक स्वरूप को निर्धारित करता है।

नियुक्ति का संवैधानिक प्रारूप (अनुच्छेद 148(1))

अ. **हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र:** भारत का एक नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक होगा जिसे भारत का राष्ट्रपति अपने **हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant under his hand and seal)** द्वारा नियुक्त करेगा। यह विशिष्ट प्रक्रिया दर्शाती है कि यह पद कार्यपालिका के सामान्य प्रशासनिक आदेश से कहीं उच्चतर एवं स्वायत्त है।

ब. **कार्यपालिका परामर्श:** संविधान में सीएजी की नियुक्ति हेतु किसी विशिष्ट बहु-सदस्यीय चयन समिति का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है। परंपरा अनुसार प्रधानमंत्री की संस्तुति पर राष्ट्रपति द्वारा यह नियुक्ति की जाती है। सामान्यतः भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) अथवा भारतीय लेखापरीक्षा एवं लेखा सेवा (IA&AS) के वरिष्ठतम सिविल सेवकों को इस पद पर नियुक्त किया जाता है।

शपथ या प्रतिज्ञान (अनुच्छेद 148(2))

सीएजी अपना पद ग्रहण करने से पूर्व **राष्ट्रपति** अथवा उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान की **तीसरी अनुसूची** में विहित प्रारूप के अनुसार शपथ लेता है या प्रतिज्ञान करता है।

शपथ की अंतर्वस्तु: सीएजी की शपथ उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की शपथ के समरूप होती है, जिसके अंतर्गत वह प्रतिज्ञा करता है कि वह:

- विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखेगा।
- भारत की संप्रभुता और अखंडता को अक्षुण्ण रखेगा।
- अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करेगा।
- **संविधान और विधियों की मर्यादा बनाए रखेगा (Uphold the Constitution and the Laws)।**

सीएजी की स्वतंत्रता के संवैधानिक सुरक्षा उपाय एवं सेवा शर्तें

सीएजी कार्यपालिका के वित्तीय लेन-देन का अंकेक्षक होता है; अतः उसे निष्पक्ष कार्य संपादन हेतु कार्यपालिका के किसी भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दबाव से पूर्णतः मुक्त रखा गया है।

सीएजी की स्वतंत्रता के सात संवैधानिक कवच

↓

कठोर पदच्युति प्रक्रिया	पुनर्नियुक्ति पर रोक	सेवा शर्तों की सुरक्षा	संचित निधि पर भारित व्यय
उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य (अनुच्छेद 148(1))	केंद्र या राज्य के अधीन अन्य पद पर रोक (अनुच्छेद 148(4))	अलाभकारी परिवर्तन पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 148(3))	संसद में गैर-मतदेय (अनुच्छेद 148(6))

संवैधानिक सुरक्षा के सात विशिष्ट आयाम

अ. **पदावधि की निश्चितता एवं निष्कासन की कठोर प्रक्रिया (अनुच्छेद 148(1)):** सीएजी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत (Pleasure of the President) पद धारण नहीं करता। उसे उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिस रीति से और जिन आधारों पर **उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाया जाता है**।

- **दो आधार:** केवल **सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour)** अथवा **असमर्थता (Incapacity)** के आधार पर।
- **संसदीय प्रक्रिया:** संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत (सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत तथा उपस्थित व मतदान करने वालों का कम से कम दो-तिहाई बहुमत) द्वारा उसी सत्र में पारित समावेदन पर ही राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है।

ब. **पुनर्नियुक्ति पर आत्यंतिक प्रतिबंध (अनुच्छेद 148(4)):** सीएजी अपने पद पर न रह जाने के पश्चात, **भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी अन्य पद का पात्र नहीं होगा**। यह प्रतिबंध इसलिए लगाया गया है ताकि पद पर रहते हुए सीएजी सेवानिवृत्ति के बाद किसी उच्च सरकारी पद के प्रलोभन में आकर कार्यपालिका का पक्ष न ले।

स. **अलाभकारी परिवर्तन का निषेध (अनुच्छेद 148(3)):** सीएजी के वेतन तथा अनुपस्थिति छुट्टी, पेंशन या निवृत्ति की आयु के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी **नियुक्ति के पश्चात उसके लिए कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा** (केवल अनुच्छेद 360 के वित्तीय आपातकाल को छोड़कर)।

द. **वेतन एवं भत्तों की समानता:** संसद द्वारा निर्मित 'सीएजी (कर्तव्य, शक्तियां एवं सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971' के अनुसार, सीएजी को **उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य वेतन** (वर्तमान में 2,50,000 रुपये प्रतिमाह) तथा समस्त अनुषंगी सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

य. **संचित निधि पर भारित प्रशासनिक व्यय (अनुच्छेद 148(6)):** सीएजी के कार्यालय के सभी प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत उस कार्यालय में सेवा करने वाले व्यक्तियों को या उनके संबंध में संदेय सभी वेतन, भत्ते और पेंशन सम्मिलित हैं, **भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) पर भारित होंगे**। संसद में इस पर चर्चा हो सकती है, किंतु **मतदान नहीं कराया जा सकता**।

र. **कर्मचारियों की सेवा शर्तों का विनियमन (अनुच्छेद 148(5)):** भारतीय लेखापरीक्षा और लेखा विभाग में सेवा करने वाले व्यक्तियों की सेवा की शर्तें और सीएजी की प्रशासनिक शक्तियां, राष्ट्रपति द्वारा **सीएजी से परामर्श करने के पश्चात** बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाएंगी।

ल. **कार्यपालिका के आदेशों से उन्मुक्ति:** सीएजी किसी भी मंत्रालय अथवा प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रशासनिक नियंत्रण में नहीं आता; वह सीधे संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।

पदावधि एवं त्यागपत्र (1971 का अधिनियम)

संविधान के अनुच्छेद 148(3) के अधीन संसद को सीएजी की सेवा शर्तों और पदावधि को विधि द्वारा विनियमित करने की शक्ति दी गई है। इसके अनुपालन में संसद ने **'नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां एवं सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971' (CAG Act, 1971)** पारित किया।

कार्यकाल के विधिक नियम

अ. **पदावधि की अवधि:** सीएजी अपना पदभार ग्रहण करने की तारीख से **6 वर्ष की अवधि अथवा 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक** (जो भी पहले हो) पद धारण करता है।

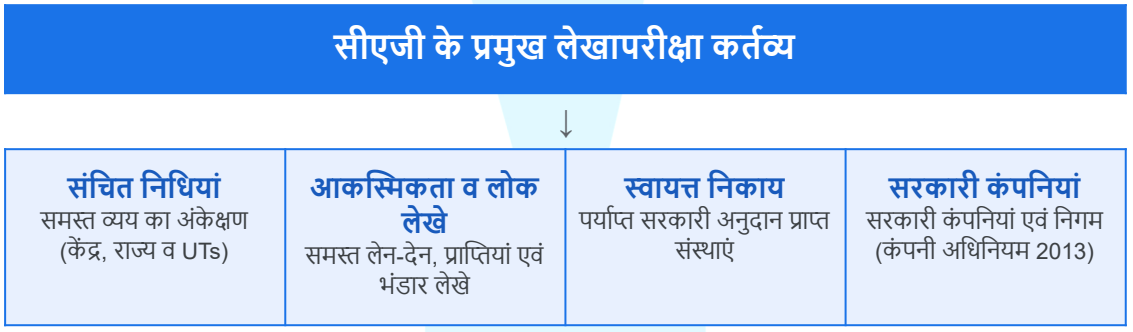
ब. **त्यागपत्र:** वह किसी भी समय **राष्ट्रपति को संबोधित** अपने हस्ताक्षर सहित लिखित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकता है।

स. **पेंशन की सुरक्षा:** सेवानिवृत्ति के पश्चात सीएजी को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान निर्धारित पेंशन प्राप्त होती है।

कर्तव्य एवं शक्तियां (अनुच्छेद 149 एवं 1971 का अधिनियम)

संविधान का अनुच्छेद 149 सीएजी के कर्तव्यों और शक्तियों को स्वयं पूर्णतः संहिताबद्ध नहीं करता, बल्कि यह संसद को यह अधिकार देता है कि वह विधि द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं के संबंध में सीएजी के कर्तव्यों और शक्तियों को विहित करे।

संसद द्वारा पारित **CAG अधिनियम, 1971** (1976 में यथा संशोधित) के अंतर्गत सीएजी के व्यापक कर्तव्यों को निर्धारित किया गया है:



लेखापरीक्षा क्षेत्राधिकार के प्रमुख आयाम

अ. **संचित निधि से व्यय की लेखापरीक्षा:** वह भारत की संचित निधि, प्रत्येक राज्य की संचित निधि, तथा विधानसभा वाले प्रत्येक संघ राज्य क्षेत्र (जैसे दिल्ली, पुडुचेरी, जम्मू-कश्मीर) की संचित निधि से किए गए **सभी व्यय संबंधी लेखाओं की परीक्षा** करता है।

wincompete

ब. **आकस्मिकता निधि एवं लोक लेखा:** वह भारत और राज्यों की **आकस्मिकता निधि (Contingency Fund)** तथा **लोक लेखे (Public Account)** से हुए सभी लेन-देन, अग्रिमों एवं जमा राशियों का अंकेक्षण करता है।

स. **व्यापारिक एवं निर्माण संबंधी लेखे:** केंद्र अथवा राज्यों के किसी भी विभाग द्वारा रखे जाने वाले सभी विनिर्माण (Manufacturing), व्यापारिक (Trading), लाभ-हानि लेखों, तुलन-पत्रों (Balance Sheets) तथा अन्य सहायक लेखों की परीक्षा करता है।

द. **प्राप्तियों (Receipts) एवं राजस्व का अंकेक्षण:** सीएजी केवल व्यय की ही जांच नहीं करता, बल्कि वह संघ और राज्यों के राजस्व में आने वाली सभी प्राप्तियों (प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर, गैर-कर राजस्व) की भी जांच करता है, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि करों के निर्धारण, संग्रहण और आबंटन में कोई विधिक चूक नहीं हुई है।

य. **सरकारी सहायता प्राप्त निकायों का अंकेक्षण:** उन सभी निकायों, प्राधिकरणों, गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) तथा संस्थाओं के आय-व्यय की लेखापरीक्षा करना जो केंद्र या राज्य के राजस्व से **पर्याप्त रूप से अनुदानित (Substantially Financed)** हैं।

र. **सरकारी कंपनियों एवं निगमों की लेखापरीक्षा:** कंपनी अधिनियम, 2013 के तहत स्थापित सभी सरकारी कंपनियों (जिनमें सरकार की 51% या अधिक हिस्सेदारी हो) तथा संसद द्वारा विशेष कानून से गठित वैधानिक निगमों (Statutory Corporations) के खातों की लेखापरीक्षा या पूरक लेखापरीक्षा (Supplementary Audit) करना।

ल. **राष्ट्रपति या राज्यपाल के अनुरोध पर लेखापरीक्षा:** किसी अन्य प्राधिकारी (जैसे स्थानीय निकायों—पंचायतों व नगरपालिकाओं) के लेखाओं की परीक्षा करना, जब राष्ट्रपति अथवा किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा ऐसा अनुरोध किया जाए।

1976 का ऐतिहासिक सुधार: लेखांकन (Accounting) और लेखापरीक्षा (Auditing) का पृथक्करण

मूल संविधान और 1971 के अधिनियम के तहत सीएजी को केंद्र तथा राज्यों दोनों के लिए दोहरे दायित्व सौंपे गए थे:

- **लेखांकन (Accounting):** खाते तैयार करना, बहीखाता रखना तथा वित्तीय प्रविष्टियां दर्ज करना।
- **लेखापरीक्षा (Auditing):** उन तैयार खातों की विधिक शुद्धता एवं सत्यता की निष्पक्ष जांच करना।

प्रशासनिक विसंगति एवं सुधार की आवश्यकता

प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC) ने यह तर्क दिया कि जिस संस्था का कार्य खातों की स्वतंत्र जांच करना है, यदि वही संस्था खाते भी बनाएगी, तो इससे हितों का प्रत्यक्ष टकराव (Conflict of Interest) उत्पन्न होगा। जो व्यक्ति स्वयं हिसाब लिखता है, वह अपने ही लिखे हिसाब की निष्पक्ष जांच नहीं कर सकता।

1976 का संशोधन एवं वर्तमान स्थिति

वर्ष 1976 में सीएजी अधिनियम, 1971 में संशोधन किया गया और ऐतिहासिक सुधार लागू किए गए:

अ. **संघ (केंद्र सरकार) के स्तर पर पृथक्करण:** केंद्र सरकार के स्तर पर सीएजी को लेखांकन (Accounts तैयार करने) के कार्य से पूर्णतः मुक्त कर दिया गया।

- केंद्र सरकार में लेखांकन का कार्य विभागीय स्तर पर सिविल लेखा अधिकारियों को सौंप दिया गया।
- इसके समन्वय हेतु वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग के अधीन **'लेखा महानियंत्रक' (Controller General of Accounts - CGA)** का पद सृजित किया गया।
- **अतः वर्तमान में केंद्र के स्तर पर सीएजी केवल और केवल लेखापरीक्षा (Auditing) का कार्य करता है।**

ब. **राज्यों के स्तर पर यथास्थिति:** राज्यों के स्तर पर वित्तीय संसाधनों और प्रशासनिक तंत्र की कमी के कारण लेखांकन और लेखापरीक्षा का पृथक्करण नहीं किया गया।

wincompete

- **वर्तमान में भी राज्यों के स्तर पर सीएजी लेखांकन (Accounts तैयार करने) तथा लेखापरीक्षा (Audit) दोनों का दोहरा दायित्व निभाता है।**
-

सीएजी (CAG) बनाम सीजीए (CGA) का तुलनात्मक अध्ययन

तुलना का आधार	नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (CAG)	लेखा महानियंत्रक (CGA)
संवैधानिक स्थिति	**संवैधानिक निकाय** (अनुच्छेद 148 के तहत स्थापित)।	**गैर-संवैधानिक एवं सांविधिक-विहीन पद** (कार्यपालिका आदेश द्वारा स्थापित)।
प्रशासनिक स्थिति	कार्यपालिका से पूर्णतः स्वतंत्र; सीधे संसद के प्रति उत्तरदायी।	केंद्रीय वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग के अधीन एक **विभागीय प्रशासनिक अधिकारी**।
मूल कार्य	केंद्र एवं राज्यों के व्यय की **लेखापरीक्षा (Auditing)** करना।	केंद्र सरकार के **आंतरिक लेखांकन (Accounting)** प्रबंधन का शीर्ष अधिकारी।
रिपोर्टिंग	अपनी रिपोर्ट **राष्ट्रपति/राज्यपाल** को देता है (अनुच्छेद 151)।	सीधे **केंद्रीय वित्त मंत्री** को रिपोर्ट करता है।

लेखापरीक्षा के प्रकार: विधिक, औचित्य एवं निष्पादन लेखापरीक्षा

सीएजी द्वारा की जाने वाली लेखापरीक्षा केवल पारंपरिक बहीखाता जांच तक सीमित नहीं है। समय के साथ इसके कार्यक्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तन हुआ है।

सीएजी की त्रि-स्तरीय लेखापरीक्षा प्रणाली

↓

विधिक एवं नियामक लेखापरीक्षा (Compliance / Regularity Audit)	औचित्य लेखापरीक्षा (Propriety Audit)	निष्पादित लेखापरीक्षा (Performance Audit - 3Es)
• व्यय विधि के प्राधिकार से हुआ? • सक्षम स्वीकृति मौजूद थी?	• धन का विवेकपूर्ण प्रयोग? • अपव्यय व बर्बादी की जांच • वित्तीय औचित्य के नियम	• मितव्ययिता (Economy) • कार्यकुशलता (Efficiency) • प्रभावशीलता (Effectiveness)

विधिक एवं नियामक लेखापरीक्षा (Compliance / Regularity Audit)	औचित्य लेखापरीक्षा (Propriety Audit)	निष्पादित लेखापरीक्षा (Performance Audit - 3Es)
• नियमों का अक्षरशः पालन हुआ?		

1. विधिक एवं नियामक लेखापरीक्षा (Compliance / Regularity Audit)
यह सीएजी की अनिवार्य एवं पारंपरिक लेखापरीक्षा है। इसमें यह परखा जाता है कि:

- संचित निधि से निकाला गया धन संसद या विधानमंडल द्वारा पारित **विनियोग अधिनियम** के प्रावधानों के अनुरूप है अथवा नहीं।
- व्यय करने वाला अधिकारी उस व्यय को स्वीकृत करने हेतु विधि द्वारा कानूनी रूप से सक्षम था अथवा नहीं।
- व्यय संबंधित वित्तीय नियमों और विनियमों के अनुसार किया गया है या नहीं।

2. औचित्य लेखापरीक्षा (Propriety Audit)
यह लेखापरीक्षा सीएजी का विशेषाधिकार है (यह अनिवार्य नहीं, बल्कि विवेकाधीन है)। इसमें सीएजी केवल कागजी नियमों की पूर्ति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह कार्यपालिका के निर्णयों के **औचित्य, बुद्धिमत्ता, मितव्ययिता तथा विवेकशीलता** की जांच करता है:

- क्या सार्वजनिक धन को व्यय करते समय संबंधित अधिकारियों ने उसी सतर्कता और सावधानी का परिचय दिया जैसी एक सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति अपने निजी धन के व्यय में करता?
- क्या किसी विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग को अनुचित वित्तीय लाभ पहुंचाने हेतु सरकारी धन का अपव्यय किया गया?
- क्या प्राप्त लाभ किए गए व्यय के अनुपात में न्यायोचित हैं?

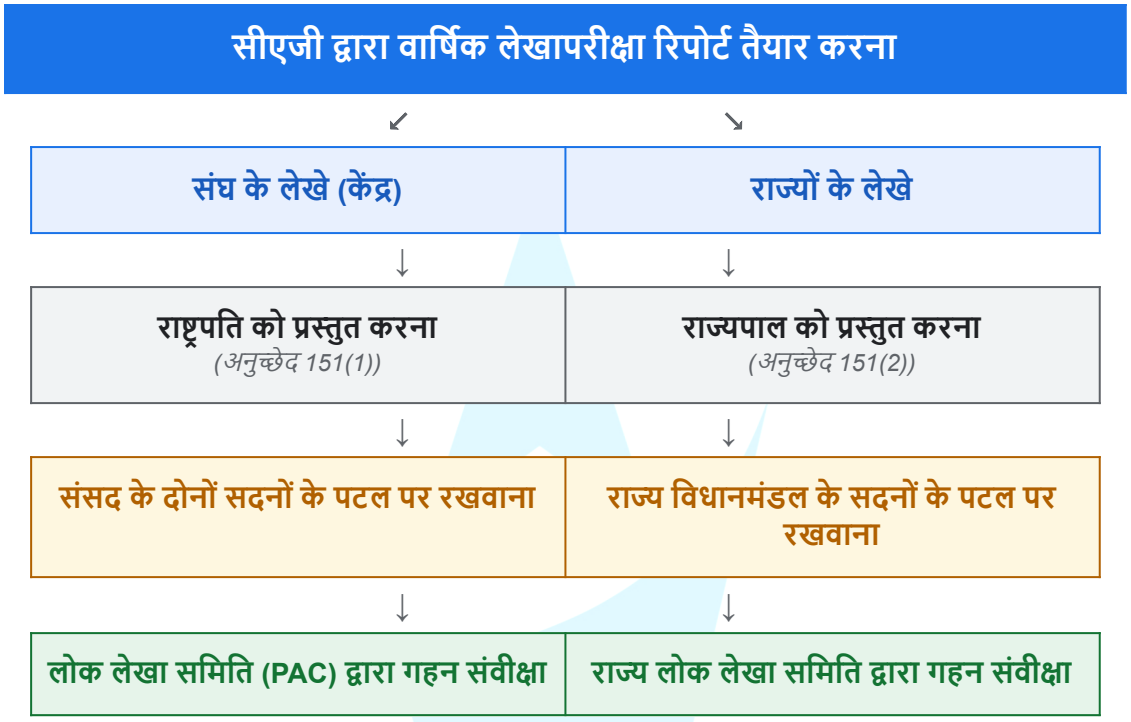
3. निष्पादन लेखापरीक्षा (Performance Audit / 3Es Audit)
आधुनिक समय में यह सीएजी का सबसे प्रभावी उपकरण है। यह किसी सरकारी योजना, नीति या वृहत परियोजना (जैसे राष्ट्रीय राजमार्ग, रक्षा सौदे, डिजिटल इंडिया आदि) का तीन आधारों पर व्यापक मूल्यांकन करता है:

- **मितव्ययिता (Economy):** क्या संसाधनों को न्यूनतम संभव लागत पर प्राप्त किया गया?
- **कार्यकुशलता (Efficiency):** क्या उपलब्ध संसाधनों (आगत) से अधिकतम संभव परिणाम (निर्गत) प्राप्त किए गए?
- **प्रभावशीलता (Effectiveness):** क्या योजना अपने अभीष्ट सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही?

लेखापरीक्षा प्रतिवेदन एवं संसदीय प्रक्रिया (अनुच्छेद 151)
संविधान का अनुच्छेद 151 सीएजी के लेखापरीक्षा प्रतिवेदनों को संसद तथा राज्य विधानमंडलों के पटल पर प्रस्तुत किए जाने की संपूर्ण प्रक्रिया को निर्धारित करता है।

wincompete

प्रतिवेदन प्रस्तुति का संवैधानिक सोपान



अ. **संघ के संबंध में प्रतिवेदन (अनुच्छेद 151(1)):** सीएजी भारत के संघ के लेखाओं संबंधी अपने प्रतिवेदनों को **राष्ट्रपति** को सौंपता है, जो उन्हें संसद के प्रत्येक सदन (लोकसभा एवं राज्यसभा) के समक्ष रखवाता है।

ब. **राज्यों के संबंध में प्रतिवेदन (अनुच्छेद 151(2)):** सीएजी किसी राज्य के लेखाओं संबंधी अपने प्रतिवेदनों को संबंधित राज्य के **राज्यपाल** को सौंपता है, जो उन्हें उस राज्य के विधानमंडल के समक्ष रखवाता है।

संसद में प्रस्तुत होने वाली सीएजी की तीन प्रमुख वार्षिक रिपोर्टें

राष्ट्रपति के माध्यम से संसद में सीएजी के तीन विशिष्ट प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाते हैं:

- **विनियोग लेखाओं पर लेखापरीक्षा प्रतिवेदन:** बजट में आवंटित धन के सापेक्ष वास्तविक व्यय का लेखा-जोखा।
- **वित्त लेखाओं पर लेखापरीक्षा प्रतिवेदन:** संघ सरकार की वार्षिक आय, प्राप्तियों और संपूर्ण वित्तीय देनदारियों का विवरण।
- **सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (वाणिज्यिक) पर लेखापरीक्षा प्रतिवेदन:** केंद्रीय सार्वजनिक उद्यमों के लाभ-हानि और वित्तीय प्रबंधन का अंकेक्षण।

सीएजी एवं लोक लेखा समिति: सहजीवी संबंध (मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक)

संसद में सीएजी की रिपोर्ट रखे जाने के पश्चात उसकी वास्तविक संवीक्षा का कार्य संसद की सबसे पुरानी वित्तीय समिति—**लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee - PAC)** द्वारा किया जाता है।

सहजीवी संबंध का संस्थागत स्वरूप

अ. **संसदीय आंख और कान:** सीएजी संसद का एक स्वतंत्र अभिकर्ता (Agent) होता है और वह केवल संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। चूंकि संसद के पास समय और तकनीकी विशेषज्ञता का अभाव होता है, अतः सीएजी कार्यपालिका के वित्तीय आचरण की जांच कर संसद की सहायता करता है।

Vincompete

ब. **मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक (Friend, Philosopher and Guide):** लोक लेखा समिति स्वयं संपूर्ण जांच शून्य से प्रारंभ नहीं करती, बल्कि वह सीएजी की रिपोर्ट को ही अपनी जांच का मुख्य आधार बनाती है।

- जब लोक लेखा समिति विभिन्न मंत्रालयों के सचिवों और अधिकारियों से साक्ष्य लेती है, तो **सीएजी (अथवा उप-सीएजी) समिति की प्रत्येक बैठक में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित रहता है**।
- सीएजी समिति के सदस्यों को तकनीकी वित्तीय पेचीदगियों को समझाने, गवाहों से तीखे प्रश्न पूछने तथा सरकार के भ्रामक दावों का खंडन करने में सीधी सहायता प्रदान करता है।
- पीएसी के अंतिम निष्कर्ष और सिफारिशें काफी हद तक सीएजी द्वारा उजागर की गई अनियमितताओं पर ही आधारित होती हैं।

भारतीय सीएजी बनाम ब्रिटिश सीएजी: नामकरण एवं शक्तियों का आधारभूत अंतर

भारतीय संविधान निर्माताओं ने यद्यपि यह पद ब्रिटिश मॉडल (Exchequer and Audit Departments Act, 1866) से ग्रहण किया, किंतु दोनों देशों के महालेखापरीक्षकों की वास्तविक शक्तियों में एक अत्यंत मौलिक और निर्णायक अंतर विद्यमान है।

'नियंत्रक' (Comptroller) शब्द की विसंगति

ब्रिटेन में इस अधिकारी को वस्तुतः 'कम्पट्रोलर' (Comptroller) और 'ऑडिटर जनरल' दोनों शक्तियां प्राप्त हैं:

- **ब्रिटेन में नियंत्रक की शक्ति:** ब्रिटिश सीएजी की पूर्व-अनुमति के बिना राजकोष (Exchequer) से **एक भी पाउंड नहीं निकाला जा सकता**। बैंक ऑफ इंग्लैंड कार्यपालिका को तब तक कोई धन जारी नहीं करता जब तक कि ब्रिटिश सीएजी यह प्रमाणित न कर दे कि यह निकासी संसद द्वारा पारित कानून के अनुसार है। अतः वह धन की निकासी पर **'पूर्व-नियंत्रक' (Ex-ante Control)** होता है।
- **भारत में विधिक स्थिति:** भारत में सीएजी के पदनाम में 'नियंत्रक' शब्द केवल एक औपनिवेशिक अवशेष के रूप में जुड़ा हुआ है। भारत के सीएजी के पास **राजकोष से धन की निकासी पर कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं है**।
    - भारत सरकार के मंत्रालय और विभाग सीएजी की बिना किसी पूर्व अनुमति के सीधे रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया से चेक जारी कर संचित निधि से धन निकाल लेते हैं।
    - भारत का सीएजी केवल धन के खर्च हो जाने के उपरांत (Post-Facto) ही उसकी जांच करता है।
    - **अतः भारत का सीएजी केवल एक 'महालेखापरीक्षक' (Auditor General) है, वास्तविक अर्थों में 'नियंत्रक' (Comptroller) नहीं।**

तुलनात्मक विश्लेषण तालिका

तुलनात्मक आयाम	भारत का सीएजी (CAG of India)	यूनाइटेड किंगडम का सीएजी (UK CAG)
संवैधानिक स्थिति	पूर्ण संवैधानिक पद (अनुच्छेद 148)।	संसदीय संविधि द्वारा स्थापित वैधानिक पद।

wincompete

धन की निकासी पर नियंत्रण	**शून्य नियंत्रण**; धन निकासी के बाद ही इसकी भूमिका प्रारंभ होती है।	**पूर्ण विधिक नियंत्रण**; उसकी पूर्वानुमति के बिना राजकोष से धन नहीं निकाला जा सकता।
लेखांकन की भूमिका	1976 से केंद्र के लिए बंद; केवल राज्यों के लिए खाते तैयार करता है।	खातों का संकलन नहीं करता; केवल निष्पक्ष लेखापरीक्षा करता है।
संसद की सदस्यता	संसद का अंग नहीं; केवल बाहर से रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।	हाउस ऑफ कॉमन्स का एक स्थायी अधिकारी माना जाता है।

निगमों, पीपीपी परियोजनाओं एवं स्थानीय निकायों के संदर्भ में सीएजी की भूमिका

सार्वजनिक वित्त के बदलते स्वरूप (निजीकरण, सार्वजनिक-निजी भागीदारी और स्वायत्त संस्थाओं) के कारण सीएजी के अधिकार क्षेत्र का विस्तार विभिन्न श्रेणियों में हुआ है:

विभिन्न संस्थाओं के अंकेक्षण में सीएजी की स्थिति

अ. **सीधे सीएजी द्वारा पूर्णतः अंकेक्षित संस्थाएं:**

- समस्त केंद्रीय एवं प्रांतीय सरकारी विभाग।
- दामोदर घाटी निगम (DVC), एयर इंडिया (पूर्व में), तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम (ONGC) आदि कतिपय बड़े निगम।

ब. **निजी चार्टर्ड अकाउंटेंट्स द्वारा अंकेक्षित, किंतु सीएजी के पूरक अंकेक्षण के अधीन:**

- सभी सरकारी कंपनियां (जैसे भेल, सेल, कोल इंडिया आदि)।
- इन कंपनियों के लेखापरीक्षक की नियुक्ति सरकार द्वारा **सीएजी की सलाह पर** की जाती है, और सीएजी को इन कंपनियों की **पूरक लेखापरीक्षा (Supplementary Audit)** करने तथा अपनी टिप्पणी देने का अधिकार होता है।

स. **सीएजी के क्षेत्राधिकार से पूर्णतः बाहर की संस्थाएं (विशुद्ध निजी अंकेक्षण):**

- भारतीय स्टेट बैंक (SBI), भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC), भारतीय रिजर्व बैंक (RBI), तथा भारतीय खाद्य निगम (FCI)।
- इनकी लेखापरीक्षा पूर्णतः निजी चार्टर्ड अकाउंटेंट फर्मों द्वारा की जाती है और इनकी रिपोर्ट सीधे संसद में रखी जाती है; इनमें सीएजी की कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं होती।

पीपीपी परियोजनाएं एवं सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय (2014)

एसोसिएशन ऑफ यूनिफाइड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स ऑफ इंडिया बनाम भारत संघ (2014) वाद में दूरसंचार कंपनियों ने यह तर्क दिया कि वे निजी कंपनियां हैं, अतः सीएजी उनके खातों की जांच नहीं कर सकता। सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने ऐतिहासिक निर्णय दिया कि:

Uncompete

- जहां भी सार्वजनिक संसाधनों (जैसे स्पेक्ट्रम, प्राकृतिक गैस, खनिज या सार्वजनिक-निजी भागीदारी - PPP) का उपयोग होता है, और सरकार को राजस्व-साझाकरण (Revenue Sharing) के आधार पर रॉयल्टी प्राप्त होती है, वहां **सीएजी को निजी कंपनियों के खातों की भी लेखापरीक्षा करने का पूर्ण संवैधानिक अधिकार है**।
- सीएजी यह जांचने के लिए अधिकृत है कि क्या निजी कंपनियों ने सरकार को मिलने वाले वैधानिक राजस्व को कम करके तो नहीं दिखाया।

सीएजी से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण अनुच्छेद एवं विधिक प्रक्रियाएं

अ. **अनुच्छेद 150 (संघ के और राज्यों के लेखाओं का प्ररूप):** संघ के और राज्यों के लेखाओं को ऐसे प्ररूप में रखा जाएगा जो **राष्ट्रपति, भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की सलाह पर विहित करे**। यह उपबंध सुनिश्चित करता है कि पूरे देश में वित्तीय आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण एक समान और पारदर्शी हो।

ब. **अनुच्छेद 279(1) (शुद्ध आगमों की गणना):** संविधान के वित्तीय उपबंधों के तहत जब केंद्र द्वारा लगाए गए करों के **शुद्ध आगम (Net Proceeds)** का राज्यों के मध्य विभाजन किया जाता है, तो उस शुद्ध आगम की अंतिम गणना और प्रमाणन सीएजी द्वारा ही किया जाता है। **इस संबंध में सीएजी का प्रमाण-पत्र अंतिम और निश्चायक (Final and Conclusive) होता है।**

संवैधानिक एवं वित्तीय पारिभाषिक शब्दावली

अ. **शुद्ध आगम (Net Proceeds):** किसी कर या शुल्क का वह वास्तविक सकल राजस्व जिसमें से उसके संग्रहण और वसूली के प्रशासनिक खर्चों को घटा दिया गया हो; इसका अंतिम निर्धारण सीएजी के प्रमाण-पत्र द्वारा होता है (अनुच्छेद 279)।

ब. **विनियोग लेखा (Appropriation Accounts):** संसद द्वारा विभिन्न मंत्रालयों को बजट के माध्यम से अधिकृत की गई राशि के मुकाबले वर्ष के अंत में हुए वास्तविक खर्च की आधिकारिक तुलनात्मक तालिका।

स. **वित्त लेखा (Finance Accounts):** सरकार की समस्त आय (कर एवं गैर-कर राजस्व), ऋणों, बाजार उधारी, संचित निधि के लेन-देन तथा वित्तीय देनदारियों का वार्षिक समेकित विवरण।

द. **पूरक लेखापरीक्षा (Supplementary Audit):** कंपनी अधिनियम की धारा 143 के तहत किसी सरकारी कंपनी की प्राथमिक लेखापरीक्षा निजी लेखापरीक्षक द्वारा किए जाने के पश्चात, सीएजी द्वारा 60 दिनों के भीतर अपनी स्वयं की टीम से कराई जाने वाली अतिरिक्त समीक्षा।

य. **हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant under Hand and Seal):** राष्ट्रपति द्वारा अपने स्वयं के हस्ताक्षर और राजकीय मुहर से जारी किया जाने वाला सर्वोच्च औपचारिक नियुक्ति पत्र, जो सीएजी पद की असाधारण संवैधानिक गरिमा और स्वायत्तता को प्रमाणित करता है।

र. **व्ययोपरांत संवीक्षा (Post-Mortem Audit):** वित्तीय क्रियान्वयन पूर्ण हो जाने और धन के राजकोष से बाहर निकल जाने के पश्चात की जाने वाली वह ऐतिहासिक जांच जो भविष्य में वित्तीय अनुशासन बनाए रखने और अनियमितताओं को उजागर करने हेतु की जाती है।

ल. **आंतरिक लेखांकन (Internal Accounting):** किसी विभाग द्वारा दैनिक आधार पर अपने वित्तीय लेन-देन का बहीखाता तैयार करना; 1976 के पश्चात केंद्र में यह कार्य सीएजी से हटाकर लेखा महानियंत्रक (CGA) को सौंप दिया गया है।

wincompete

अध्याय 18: नीति आयोग (NITI Aayog): गठन, संरचना, शासी परिषद, कार्यप्रणाली एवं योजना आयोग से तुलनात्मक अंतर

नीति आयोग की स्थापना: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, अधिदेश एवं वैधानिक स्थिति

भारतीय गणराज्य में योजना निर्माण एवं राष्ट्रीय विकास की प्राथमिकताओं को दिशा देने के लिए स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में योजना आयोग की स्थापना की गई थी। 15 मार्च 1950 को स्थापित योजना आयोग ने छह दशकों से अधिक समय तक भारत की आर्थिक नीतियों एवं पंचवर्षीय योजनाओं का संचालन किया। किंतु 1991 के आर्थिक उदारीकरण, निजी क्षेत्र के विस्तार, वैश्वीकरण तथा राज्यों की बढ़ती वित्तीय एवं राजनीतिक आकांक्षाओं के फलस्वरूप पारंपरिक केंद्रीयकृत योजना मॉडल की प्रासंगिकता पर गंभीर प्रश्न उठने लगे।

15 अगस्त 2014 को भारत के प्रधानमंत्री द्वारा लाल किले की प्राचीर से योजना आयोग के स्थान पर एक नवीन संस्था के गठन की औपचारिक घोषणा की गई। इसके अनुपालन में केंद्रीय मंत्रिमंडल के एक कार्यपालिका संकल्प (Executive Resolution) के माध्यम से **1 जनवरी 2015** को 'राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्थान' (National Institution for Transforming India - NITI Aayog) का गठन किया गया।

नीति आयोग की विधिक एवं संस्थागत स्थिति	
गैर-संवैधानिक निकाय (Non-Constitutional)	**गैर-सांविधिक निकाय (Non-Statutory)**
• संविधान के किसी अनुच्छेद में उल्लेख नहीं • संविधान सभा द्वारा निर्मित नहीं	• संसद के किसी अधिनियम द्वारा निर्मित नहीं • केंद्रीय मंत्रिमंडल के संकल्प द्वारा गठित
सरकार का सर्वोच्च बौद्धिक संस्थान (Think Tank)	

विधिक एवं संस्थागत प्रकृति

अ. **संविधान-इतर एवं गैर-सांविधिक निकाय:** नीति आयोग न तो एक संवैधानिक निकाय है (क्योंकि इसका उल्लेख संविधान के किसी भी भाग या अनुच्छेद में नहीं है) और न ही यह एक सांविधिक (Statutory) निकाय है (क्योंकि इसकी स्थापना संसद द्वारा पारित किसी अधिनियम से नहीं हुई है)। यह विशुद्ध रूप से केंद्रीय कार्यपालिका के संकल्प द्वारा गठित एक संविधान-इतर एवं परामर्शदात्री संस्था है।

ब. **नीतिगत थिंक टैंक (Policy Think Tank):** पूर्ववर्ती योजना आयोग के विपरीत नीति आयोग का प्राथमिक अधिदेश केंद्र और राज्य सरकारों को रणनीतिक, तकनीकी और नीतिगत परामर्श प्रदान करना है। यह नीति निर्माण की प्रक्रिया में एक बौद्धिक संवाहक (Intellectual Catalyst) के रूप में कार्य करता है।

स. **विकास प्रक्रिया का दार्शनिक परिवर्तन:** योजना आयोग का दृष्टिकोण 'ऊपर से नीचे' (Top-Down Approach) तथा 'एक ही आकार सभी के लिए उपयुक्त' (One-Size-Fits-All) के सिद्धांत पर आधारित था। इसके विपरीत नीति आयोग ने विकास की दिशा को उलटते हुए 'नीचे से ऊपर' (Bottom-Up Approach) की योजना प्रणाली को अंगीकार किया है, जहां ग्राम स्तर पर व्यावहारिक योजनाएं बनाकर उन्हें उच्चतर स्तरों पर समेकित किया जाता है।

नीति आयोग के सात मार्गदर्शक स्तंभ एवं आधारभूत दर्शन

नीति आयोग के नीति निर्माण एवं प्रशासनिक दर्शन को सात आधारभूत स्तंभों पर प्रतिष्ठित किया गया है, जो सुशासन (Good Governance) के मूल तत्वों को समाहित करते हैं:

नीति आयोग के सात मार्गदर्शक स्तंभ						
प्रो-पीपल	**प्रो-एक्टिव**	**भागीदारी**	**सशक्तिकरण**	**समावेशन**	**समान अवसर**	**पारदर्शिता**
जन-समर्थक एजेंडा	आवश्यकताओं का पूर्व-अनुमान	जन-सहभागिता व ओपन गवर्नेंस	महिलाओं व वंचितों का संबलन	सभी वर्गों व क्षेत्रों का विकास	समान विकास का मंच	प्रौद्योगिकी व जवाबदेह शासन

मार्गदर्शक सिद्धांतों का विशद विश्लेषण

अ. **प्रो-पीपल (जन-समर्थक दृष्टिकोण):** शासन का एजेंडा केवल राज्य के विस्तार तक सीमित न होकर समाज और व्यक्ति दोनों की आकांक्षाओं को पूरा करने वाला होना चाहिए।

ब. **प्रो-एक्टिव (सक्रिय तत्परता):** नागरिक आवश्यकताओं की केवल प्रतिक्रिया न देकर उनका पूर्व-अनुमान लगाना तथा समस्याओं के उत्पन्न होने से पूर्व ही नीतिगत समाधान प्रस्तुत करना।

स. **सहभागिता (Participation):** विकास की नीतियों में नागरिकों, गैर-सरकारी संगठनों, निजी क्षेत्र एवं विषय विशेषज्ञों की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करना।

द. **सशक्तिकरण (Empowering):** समाज के सभी वर्गों, विशेषकर महिलाओं और हाशियाई समूहों को सामाजिक-आर्थिक रूप से सबल बनाना।

य. **सभी का समावेशन (Inclusion of All):** अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों, दिव्यांगों तथा आर्थिक रूप से दुर्बल वर्गों को राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा से जोड़ना।

र. **समानता एवं समान अवसर (Equality of Opportunity):** देश के युवाओं को अपनी प्रतिभा और क्षमता के पूर्ण दोहन के समान अवसर सुलभ कराना।

ल. **पारदर्शिता (Transparency):** ई-गवर्नेंस, डेटा-आधारित निगरानी और डिजिटल तकनीकों के माध्यम से सरकार को अधिक जवाबदेह, पारदर्शी और भ्रष्टाचार-मुक्त बनाना।

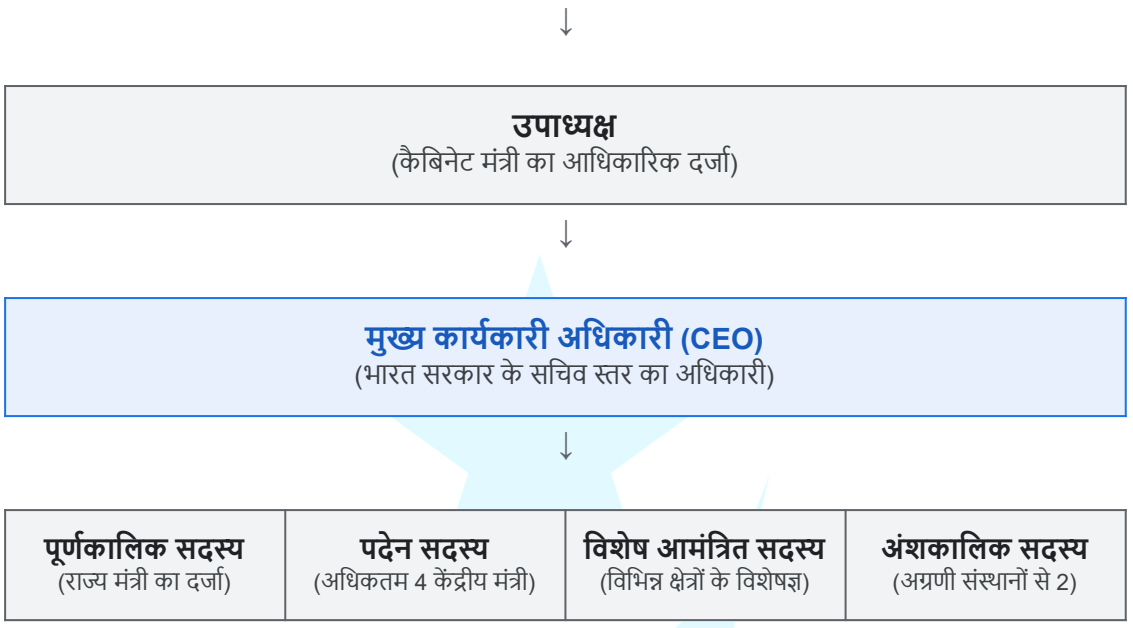
नीति आयोग की संगठनात्मक संरचना एवं पदक्रम

केंद्रीय मंत्रिमंडल के संकल्प के अनुसार नीति आयोग की प्रशासनिक एवं नीतिगत संरचना को निम्नलिखित विन्यास के आधार पर सुव्यवस्थित किया गया है:

नीति आयोग का प्रशासनिक ढांचा

↓

पदेन अध्यक्ष
(भारत का प्रधानमंत्री)



पदाधिकारियों की विधिक एवं प्रशासनिक स्थिति

अ. **पदेन अध्यक्ष (Ex-Officio Chairperson):** भारत का प्रधानमंत्री नीति आयोग का पदेन अध्यक्ष होता है। वह आयोग की समस्त उच्च स्तरीय बैठकों तथा शासी परिषद के अधिवेशनों की अध्यक्षता करता है।

ब. **उपाध्यक्ष (Vice-Chairperson):**

- उपाध्यक्ष की नियुक्ति सीधे **प्रधानमंत्री** द्वारा की जाती है।
- उपाध्यक्ष का कोई निश्चित कार्यकाल संविधान या नियमों में तय नहीं है; वह प्रधानमंत्री के विश्वासपर्यन्त पद धारण करता है।
- भारत के आधिकारिक वरीयता अनुक्रम (Table of Precedence) में नीति आयोग के उपाध्यक्ष को **केंद्रीय कैबिनेट मंत्री का दर्जा** प्राप्त होता है।
- *ऐतिहासिक पदधारक:* नीति आयोग के प्रथम उपाध्यक्ष प्रख्यात अर्थशास्त्री **अरविंद पनगढ़िया** थे। उनके पश्चात डॉ. राजीव कुमार ने यह पद संभाला।

स. **मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO):**

- सीईओ की नियुक्ति प्रधानमंत्री द्वारा एक निश्चित कार्यकाल के लिए की जाती है।
- वह भारत सरकार के **सचिव (Secretary to Government of India)** स्तर का वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी होता है।
- वह आयोग के समस्त सचिवालयी प्रशासन, अंतर-मंत्रालयी समन्वय तथा नीतिगत प्रस्तावों के क्रियान्वयन का मुख्य संचालक होता है।
- *ऐतिहासिक पदधारक:* नीति आयोग की प्रथम मुख्य कार्यकारी अधिकारी **सिंधुश्री खुल्लर** थीं। उनके पश्चात अमिताभ कांत तथा परमेश्वरन अय्यर जैसे वरिष्ठ सिविल सेवकों ने इस पद का दायित्व संभाला।

द. **पूर्णकालिक सदस्य (Full-Time Members):**

- इनकी संख्या समय-समय पर परिवर्तित हो सकती है (सामान्यतः 3 से 5 सदस्य)।
- ये विभिन्न क्षेत्रों (जैसे कृषि, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य आदि) के जाने-माने विशेषज्ञ होते हैं।
- इन्हें भारत सरकार के **राज्य मंत्री (Minister of State)** का आधिकारिक दर्जा प्राप्त होता है।

य. **पदेन सदस्य (Ex-Officio Members):**

- प्रधानमंत्री द्वारा केंद्रीय मंत्रिपरिषद में से अधिकतम **चार मंत्रियों** को पदेन सदस्य के रूप में नामित किया जाता है।
- सामान्यतः गृह मंत्री, वित्त मंत्री, रक्षा मंत्री तथा कृषि या सड़क परिवहन मंत्री को इसमें स्थान दिया जाता है।

र. **विशेष आमंत्रित सदस्य (Special Invitees):** प्रधानमंत्री द्वारा विभिन्न प्रासंगिक मंत्रालयों के केंद्रीय मंत्रियों अथवा विशिष्ट क्षेत्रों के लब्धप्रतिष्ठ विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और विषय-विशेषज्ञों को विशेष आमंत्रित सदस्यों के रूप में नामित किया जाता है।

ल. **अंशकालिक सदस्य (Part-Time Members):** अग्रणी विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों तथा प्रासंगिक वैज्ञानिक निकायों से अधिकतम **दो सदस्य** बारी-बारी से (Rotation basis) अंशकालिक सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाते हैं।

शासी परिषद (Governing Council): संघीय समन्वय का सर्वोच्च मंच

पूर्ववर्ती योजना आयोग के अंतर्गत राज्यों के मुख्यमंत्रियों को अपनी बात रखने के लिए 'राष्ट्रीय विकास परिषद' (National Development Council - NDC) की वार्षिक बैठकों पर निर्भर रहना पड़ता था, जहां योजना आयोग द्वारा पहले से तैयार प्रारूप पर केवल मुहर लगाई जाती थी। नीति आयोग ने इस असंतुलन को समाप्त करते हुए **शासी परिषद (Governing Council)** को आयोग की मूल संरचना का स्थायी और सर्वोच्च नीति निर्धारक अंग बना दिया।

शासी परिषद की संस्थागत संरचना

अ. **अध्यक्ष:** भारत का प्रधानमंत्री।

ब. **पूर्ण सदस्य:**

- भारत के सभी 28 राज्यों के मुख्यमंत्री।
- विधानसभा वाले संघ राज्य क्षेत्रों (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, पुडुचेरी तथा जम्मू एवं कश्मीर) के मुख्यमंत्री।
- अन्य संघ राज्य क्षेत्रों (अंडमान-निकोबार, लद्दाख, चंडीगढ़, दादरा एवं नगर हवेली तथा दमन एवं दीव, लक्षद्वीप) के उपराज्यपाल (Lieutenant Governors) अथवा प्रशासक।

स. **विशेष सदस्य:** नीति आयोग के उपाध्यक्ष, पूर्णकालिक सदस्य, पदेन सदस्य तथा केंद्र सरकार के विशेष आमंत्रित मंत्री।

शासी परिषद के मुख्य कार्य एवं अधिकार

अ. **राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं का निर्धारण:** देश के विकास के दीर्घकालिक रणनीतिक विजन (Strategic Vision) को अंतिम रूप देना।

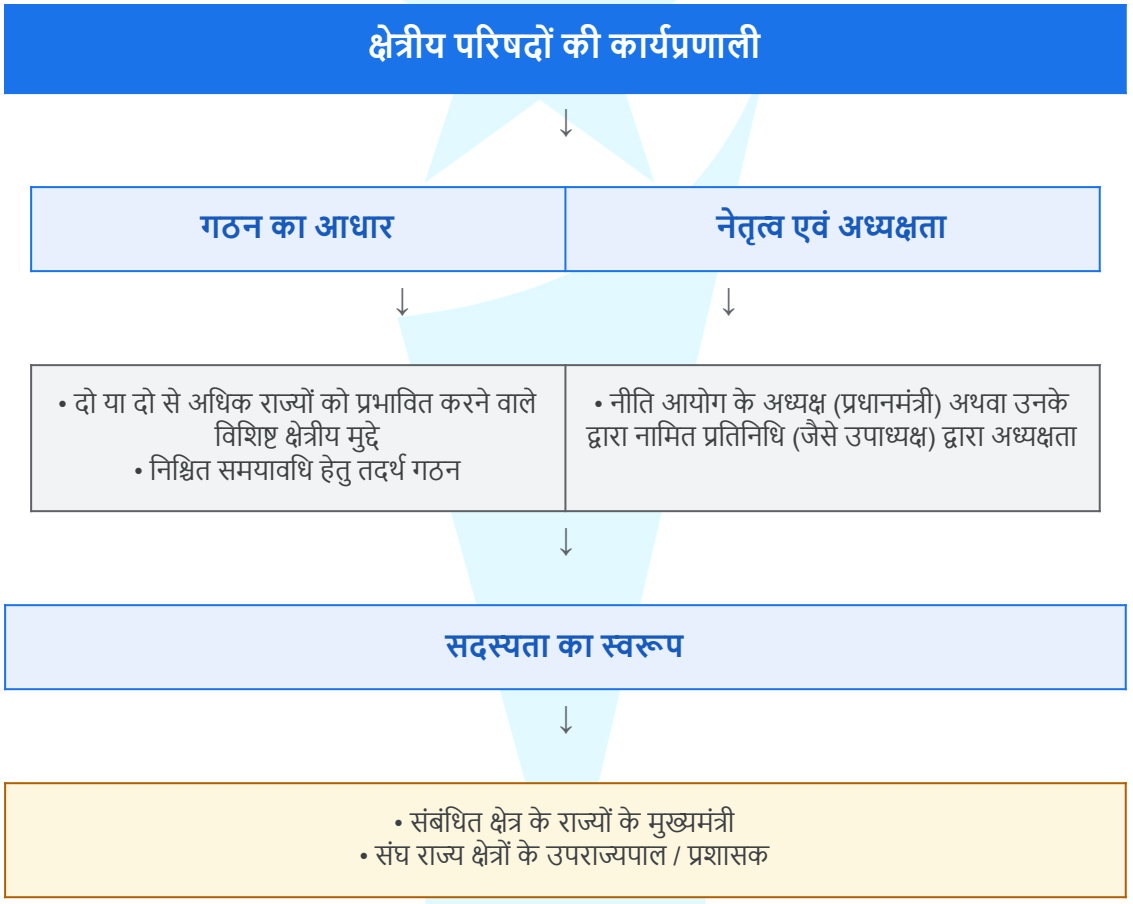
ब. **सहकारी संघवाद को व्यावहारिक स्वरूप देना:** केंद्र और राज्यों के मध्य नीतिगत गतिरोधों को दूर करना तथा ऐसी नीतियों का निर्माण करना जिसमें राज्यों की भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक विशिष्टताओं का यथोचित सम्मान हो।

vinicompete

स. **उप-समितियों का गठन:** शासी परिषद अपने भीतर विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों के कार्य समूहों (Chief Ministers' Sub-Groups) का गठन करती है; जैसे स्वच्छ भारत मिशन, कौशल विकास, केंद्र प्रायोजित योजनाओं (CSS) के पुनर्गठन तथा डिजिटल भुगतान को बढ़ावा देने हेतु मुख्यमंत्रियों के समूह गठित किए गए।

क्षेत्रीय परिषदें (Regional Councils): अंतर-राज्यीय समस्याओं का विशिष्ट समाधान

संविधान के संघीय सिद्धांतों को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से नीति आयोग की संरचना में **क्षेत्रीय परिषदों (Regional Councils)** के गठन का अभिनव प्रावधान किया गया है।



क्षेत्रीय परिषदों के विशिष्ट आयाम

अ. **गठन की पूर्व-शर्त:** जब कोई विशिष्ट आर्थिक, सामाजिक अथवा अवसंरचनात्मक समस्या दो या दो से अधिक समीपवर्ती राज्यों को प्रभावित करती है, तो प्रधानमंत्री के निर्देश पर एक विशिष्ट क्षेत्रीय परिषद का गठन किया जाता है।

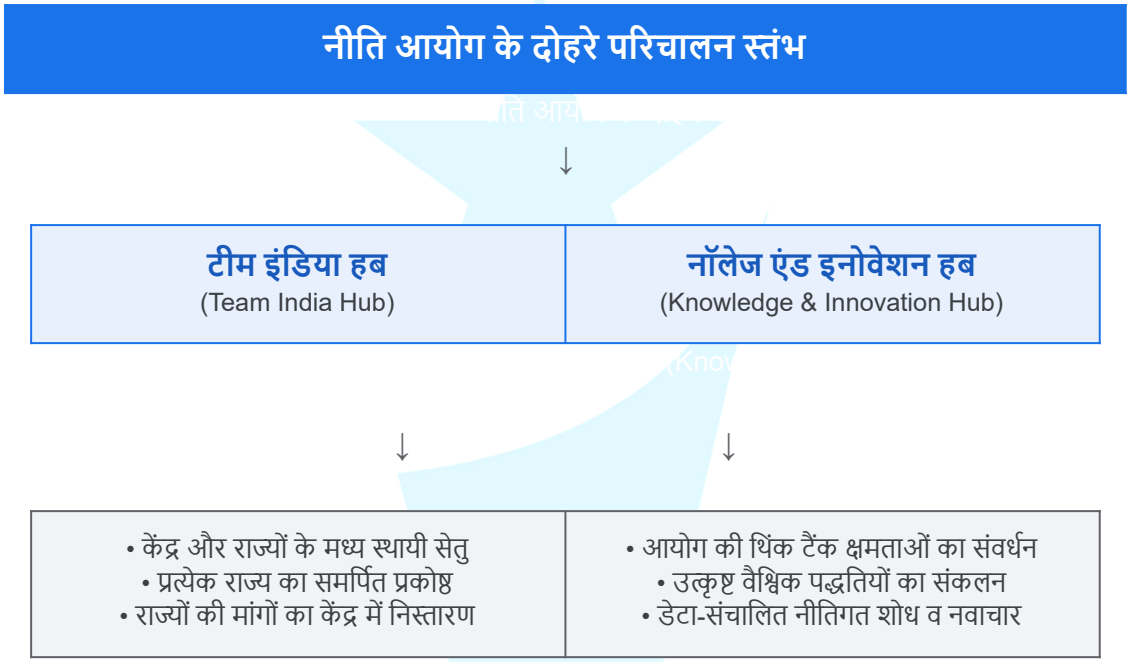
wincompete

ब. **अध्यक्षता:** इन बैठकों की अध्यक्षता स्वयं प्रधानमंत्री करते हैं अथवा उनके द्वारा प्राधिकृत व्यक्ति (नीति आयोग का उपाध्यक्ष) करता है।

स. **लचीलापन एवं समयबद्धता:** ये परिषदें स्थायी नहीं होतीं; ये विशिष्ट समस्याओं के समाधान हेतु एक निश्चित समय-सीमा के लिए गठित की जाती हैं और लक्ष्य प्राप्त होते ही इनका कार्य समाप्त हो जाता है। यह मंच अंतर-राज्यीय नदी जल विवादों, सीमा विवादों अथवा साझा आर्थिक गलियारों के विकास में राज्यों के मध्य समन्वय का कार्य करता है।

नीति आयोग के दो प्रमुख परिचालन हब: 'टीम इंडिया हब' एवं 'नॉलेज एंड इनोवेशन हब'

नीति आयोग के संपूर्ण आंतरिक कार्यों को अधिक गतिशील, परिणामोन्मुखी और विशिष्ट बनाने के उद्देश्य से इसे दो मुख्य परिचालन स्तंभों (Functional Hubs) में विभाजित किया गया है:



1. टीम इंडिया हब (Team India Hub)

अ. **मूल कार्य:** यह हब केंद्र सरकार के प्रत्येक मंत्रालय और देश के प्रत्येक राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के मध्य चौबीसों घंटे कार्य करने वाले एक स्थायी संपर्क सेतु (Interface) के रूप में कार्य करता है।

ब. **राज्यों का प्रतिनिधित्व:** इस हब में प्रत्येक राज्य के लिए एक समर्पित डेस्क या प्रतिनिधि अधिकारी होता है। राज्य सरकारें अपनी विकासात्मक कठिनाइयों, केंद्रीय स्वीकृतियों में होने वाले विलंब तथा विशिष्ट नीतिगत आवश्यकताओं को सीधे इस हब के समक्ष रखती हैं।

स. **संघीय सामंजस्य:** यह सुनिश्चित करता है कि राज्यों को केंद्र द्वारा केवल निर्देश न दिए जाएं, बल्कि राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के निर्माण में राज्यों को समान साझेदार बनाया जाए।

2. नॉलेज एंड इनोवेशन हब (Knowledge and Innovation Hub)

अ. **मूल कार्य:** यह नीति आयोग के 'थिंक टैंक' के रूप में उसकी बौद्धिक, अनुसंधानात्मक एवं तकनीकी क्षमताओं का निर्माण और संवर्धन करता है।

ब. **वैश्विक एवं राष्ट्रीय ज्ञान का संकलन:** यह हब देश-विदेश के अग्रणी विश्वविद्यालयों, थिंक टैंकों, अनुसंधान प्रयोगशालाओं तथा उद्योग जगत के साथ रणनीतिक साझेदारी स्थापित करता है। इसका दायित्व विकास के श्रेष्ठ वैश्विक तौर-तरीकों (Global Best Practices) का अध्ययन कर उन्हें भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल ढालना है।

wincompete

स. **सुधारों का अग्रद्वत:** विभिन्न क्षेत्रों (जैसे स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, कृषि उत्पादकता, हरित ऊर्जा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आदि) में नवाचार को प्रोत्साहित करना और साक्ष्य-आधारित नीति निर्माण (Evidence-Based Policy Making) को संस्थागत रूप देना।

नीति आयोग बनाम योजना आयोग: विस्तृत तुलनात्मक विश्लेषण

योजना आयोग से नीति आयोग में हुआ रूपांतरण केवल नाम का बदलाव नहीं था, बल्कि यह भारत के आर्थिक दर्शन, वित्तीय संघवाद और प्रशासनिक कार्यप्रणाली में आया एक बुनियादी प्रतिमान विस्थापन (Paradigm Shift) था।

विस्तृत तुलनात्मक सारणी

तुलना का आधार	पूर्ववर्ती योजना आयोग (Planning Commission)	वर्तमान नीति आयोग (NITI Aayog)
स्थापना का समय एवं आधार	15 मार्च 1950 (मंत्रिमंडल के संकल्प द्वारा)।	**1 जनवरी 2015** (मंत्रिमंडल के संकल्प द्वारा)।
मूल दृष्टिकोण (Approach)	**केंद्रीकृत एवं ऊपर से नीचे (Top-Down):** केंद्र नीतियां बनाता था और राज्यों पर लागू करता था।	**विकेंद्रीकृत एवं नीचे से ऊपर (Bottom-Up):** ग्राम और जिला स्तर से योजनाएं ऊपर की ओर विकसित होती हैं।
राज्यों की संवैधानिक स्थिति	राज्यों की भूमिका अत्यंत सीमित थी; वे केवल राष्ट्रीय विकास परिषद (NDC) में मूक दर्शक बने रहते थे।	**शासी परिषद में राज्यों की प्रत्यक्ष एवं समान भागीदारी;** मुख्यमंत्री वास्तविक नीति निर्माता हैं।
वित्तीय आबंटन की शक्ति	**मंत्रालयों और राज्य सरकारों को धन/अनुदान आबंटित करने की संप्रभु शक्ति प्राप्त थी।**	**धन आबंटन की कोई शक्ति नहीं है;** वित्तीय आवंटन का कार्य पूर्णतः केंद्रीय वित्त मंत्रालय को सौंपा गया है।
योजनाओं का स्वरूप	**पंचवर्षीय योजनाएं (Five-Year Plans):** 5 वर्ष के निश्चित आर्थिक लक्ष्यों का कठोर निर्धारण।	पंचवर्षीय व्यवस्था समाप्त; **15 वर्षीय विजन, 7 वर्षीय रणनीति एवं 3 वर्षीय एक्शन एजेंडा**।

winoncmpete

नीतिगत ढांचा	**'एक ही आकार सभी पर लागू' (One-Size-Fits-All):** सभी राज्यों के लिए समान योजनाएं।	**विभेदित योजना निर्माण:** राज्यों की भौगोलिक व विकासात्मक विषमताओं के आधार पर योजनाएं।
सदस्यता का स्वरूप	सचिव स्तर के अधिकारियों का पारंपरिक प्रशासनिक निकाय।	उद्योगपतियों, शोधकर्ताओं, वैज्ञानिकों और वैश्विक विशेषज्ञों का खुला बहु-विषयक मंच।
सलाह की प्रकृति	राज्यों पर अपनी योजनाएं और शर्तें थोपने का प्राधिकार रखता था।	**विशुद्ध रूप से सलाहकार एवं बौद्धिक निकाय;** कोई विधिक या वित्तीय बाध्यता नहीं थोपता।

सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism) एवं प्रतिस्पर्धी संघवाद (Competitive Federalism)

नीति आयोग का संपूर्ण विधिक और व्यावहारिक ढांचा दो परस्पर पूरक सिद्धांतों पर आधारित है: सहकारी संघवाद और प्रतिस्पर्धी संघवाद।

सहकारी संघवाद को प्रोत्साहन

अ. **समान साझेदारी:** यह सिद्धांत मानता है कि "मजबूत राज्यों से ही एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण होता है।" केंद्र और राज्य सरकारें एक-दूसरे की विरोधी या पदानुक्रमित अधीनस्थ नहीं हैं, बल्कि 'टीम इंडिया' के रूप में राष्ट्रीय विकास की साझीदार हैं।

ब. **संयुक्त नीति निर्माण:** केंद्रीय नीतियों का प्रारूप तैयार करते समय राज्यों के मुख्यमंत्रियों और मुख्य सचिवों से पूर्व-परामर्श अनिवार्य किया गया है।

प्रतिस्पर्धी संघवाद का संस्थागत ढांचा एवं प्रमुख सूचकांक

नीति आयोग ने राज्यों के मध्य विकास, सुशासन, निवेश आकर्षण और सार्वजनिक सेवाओं के वितरण में एक स्वस्थ और पारदर्शी प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में वस्तुनिष्ठ, डेटा-संचालित सूचकांकों (Indices) की प्रणाली विकसित की है।

नीति आयोग के प्रमुख राष्ट्रीय सूचकांक

wincompete

एसडीजी इंडिया इंडेक्स (SDG India Index)	**राज्य स्वास्थ्य इंडेक्स** (State Health Index)	**भारत नवाचार इंडेक्स** (India Innovation Index)	**समग्र जल प्रबंधन इंडेक्स** (Water Management Index)	**आकांक्षी जिला कार्यक्रम** (Aspirational Dist. Programme)

प्रमुख सूचकांकों का विन्यास

अ. **एसडीजी इंडिया इंडेक्स (SDG India Index):** संयुक्त राष्ट्र के 17 सतत विकास लक्ष्यों (Sustainable Development Goals - SDGs) की प्राप्ति में राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की प्रगति का मापन। यह राज्यों को चार श्रेणियों—अचीवर (100), फ्रंट रनर (65-99), परफॉर्मर (50-64), तथा एस्पिरेंट (0-49)—में वर्गीकृत करता है।

ब. **राज्य स्वास्थ्य सूचकांक (State Health Index):** विश्व बैंक और स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के सहयोग से राज्यों के स्वास्थ्य परिणामों (नवजात मृत्यु दर, संस्थागत प्रसव, टीकाकरण आदि) का वार्षिक मूल्यांकन।

स. **भारत नवाचार सूचकांक (India Innovation Index):** राज्यों में अनुसंधान, पेटेंट, उच्च शिक्षा और नवाचार के अनुकूल पारिस्थितिकी तंत्र का परीक्षण।

द. **निर्यात तत्परता सूचकांक (Export Preparedness Index):** तटीय, लैंडलॉक्ड और हिमालयी राज्यों में निर्यात क्षमता, बुनियादी ढांचे और व्यापार अनुकूल वातावरण की रैंकिंग।

य. **समग्र जल प्रबंधन सूचकांक (Composite Water Management Index):** देश में भूजल पुनर्भरण, जल संरक्षण और सिंचाई दक्षता की स्थिति का मापन।

दीर्घकालिक योजना ढांचा: विजन, रणनीति एवं एक्शन एजेंडा

नीति आयोग के गठन के पश्चात 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) की समाप्ति (31 मार्च 2017) के साथ ही 1951 से चली आ रही सोवियत शैली की पंचवर्षीय योजनाओं की व्यवस्था को औपचारिक रूप से समाप्त कर दिया गया। इसके स्थान पर नीति आयोग ने अधिक गतिशील, यथार्थवादी और वैश्विक प्रवृत्तियों के अनुकूल एक त्रि-स्तरीय योजना ढांचा लागू किया:

नीति आयोग का त्रि-स्तरीय योजना मॉडल

↓

15-वर्षीय विजन (15-Year Vision Document)	7-वर्षीय रणनीति (7-Year Strategy Framework)	3-वर्षीय एक्शन एजेंडा (3-Year Action Agenda)
• राष्ट्रीय विकास का व्यापक दर्शन • 2017 से 2032 तक की दीर्घकालिक आकांक्षाएं व रूपांतरणकारी लक्ष्य	• मध्यम अवधि की विकास रणनीतियां • सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने का व्यावहारिक खाका	• त्वरित व अल्पकालिक कार्ययोजना • 2017-18 से 2019-20 हेतु प्रथम एक्शन एजेंडा लागू किया गया

wincompete

त्रि-स्तरीय ढांचे का कार्यात्मक विभाजन

अ. **15-वर्षीय विजन दस्तावेज (15-Year Vision):** यह दीर्घकालिक सामाजिक-आर्थिक प्राथमिकताओं, गरीबी उन्मूलन, पर्यावरण संतुलन, उच्च आर्थिक संवृद्धि तथा भारत को वैश्विक महाशक्ति बनाने का एक व्यापक दर्शन प्रस्तुत करता है।

ब. **7-वर्षीय राष्ट्रीय विकास रणनीति (7-Year Strategy):** यह 15 वर्षीय विजन को क्रियान्वित करने के लिए मध्यम अवधि की रणनीतियां तय करता है। 'स्ट्रैटेजी फॉर न्यू इंडिया @ 75' इसी ढांचे के तहत तैयार की गई थी, जिसमें 41 प्रमुख क्षेत्रों के लिए निश्चित लक्ष्य निर्धारित किए गए थे।

स. **3-वर्षीय एक्शन एजेंडा (3-Year Action Agenda):** यह सबसे निचला एवं व्यावहारिक स्तर है, जो तत्कालीन बजटीय संसाधनों और वित्तीय सीमाओं के आधार पर तुरंत किए जाने वाले कार्यों का खाका खींचता है। यह समय-समय पर योजनाओं के पुनर्मूल्यांकन की सुविधा देता है।

नीति आयोग की प्रमुख प्रमुख पहलें एवं कार्यक्रम

नीति आयोग ने केवल नीतिगत परामर्श तक सीमित न रहकर देश के सबसे पिछड़े क्षेत्रों के विकास और तकनीकी नवाचार को गति देने के लिए कतिपय युगांतकारी कार्यक्रम प्रारंभ किए हैं:

1. आकांक्षी जिला कार्यक्रम (Aspirational Districts Programme - ADP)

अ. **प्रारंभ:** जनवरी 2018 में देश के सर्वाधिक सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े **112 जिलों** का तीव्र कायाकल्प करने के उद्देश्य से यह कार्यक्रम प्रारंभ किया गया।

ब. **मुख्य दृष्टिकोण:** यह कार्यक्रम तीन 'C' के सिद्धांत पर आधारित है:

- **कन्वर्जेंस (Convergence):** केंद्र और राज्यों की योजनाओं का धरातल पर अभिसरण।
- **कोलैबोरेशन (Collaboration):** केंद्र, राज्य के नोडल अधिकारियों, जिला कलेक्टरों और नागरिकों के मध्य सघन सहयोग।
- **कम्पटीशन (Competition):** जिलों के मध्य मासिक प्रगति के आधार पर स्वस्थ प्रतिस्पर्धा।

स. **निगरानी के मुख्य क्षेत्र:** स्वास्थ्य एवं पोषण (30% भार), शिक्षा (30%), कृषि एवं जल संसाधन (20%), वित्तीय समावेशन एवं कौशल विकास (10%), तथा आधारभूत अवसंरचना (10%)। इन 49 प्रमुख प्रदर्शन संकेतकों (KPIs) के आधार पर 'डेल्टा रैंकिंग' (Delta Ranking) जारी की जाती है।

द. **आकांक्षी ब्लॉक कार्यक्रम (Aspirational Blocks Programme - ABP):** जनवरी 2023 में आकांक्षी जिला मॉडल की सफलता के आधार पर देश के 329 जिलों के **500 अत्यंत पिछड़े ब्लॉकों** के विकास हेतु यह नवीन कार्यक्रम प्रारंभ किया गया।

2. अटल इनोवेशन मिशन (Atal Innovation Mission - AIM)

अ. **उद्देश्य:** देश के विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों और सूक्ष्म-लघु उद्योगों में नवाचार और उद्यमिता की संस्कृति को बढ़ावा देना।

ब. **प्रमुख घटक:**

- **अटल टिंकरिंग लैब्स (ATL):** कक्षा 6 से 12 तक के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, रोबोटिक्स, 3D प्रिंटिंग और डिजाइन थिंकिंग को विकसित करने हेतु विद्यालयों में प्रयोगशालाओं की स्थापना।
- **अटल इनक्यूबेशन सेंटर्स (AIC):** स्टार्टअप्स और नए उद्यमियों को बुनियादी ढांचा, वित्तीय सहयोग और मेंटरशिप प्रदान करने हेतु इनक्यूबेटरों की स्थापना।

Wincompete

संस्थागत सीमाएं, चुनौतियां एवं भविष्य की दिशा

यद्यपि नीति आयोग ने सहकारी संघवाद और साक्ष्य-आधारित नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, तथापि विभिन्न अर्थशास्त्रियों और प्रशासनिक विशेषज्ञों द्वारा इसकी कार्यप्रणाली के संदर्भ में कतिपय संस्थागत सीमाएं रेखांकित की गई हैं:

अ. **वित्तीय संप्रभुता का अभाव:** योजना आयोग के पास राज्यों को योजनागत अनुदान (Plan Grants) आवंटित करने का अधिकार था, जिसके कारण राज्य उसकी सिफारिशों को गंभीरता से लेते थे। नीति आयोग

के पास कोई वित्तीय आवंटन शक्ति न होने से यह केवल एक 'सलाहकार मंच' बनकर रह गया है, जिसके पास अपनी नीतियों को राज्यों से अनिवार्यतः लागू कराने का कोई वित्तीय साधन नहीं है।

ब. **निजी क्षेत्र एवं बाज़ार-समर्थक झुकाव के आरोप:** कतिपय आलोचकों का मत है कि नीति आयोग का मुख्य झुकाव सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के विनिवेश, परिसंपत्ति मुद्रीकरण (Asset Monetisation) तथा कल्याणकारी योजनाओं में निजी भागीदारी को बढ़ावा देने की ओर अधिक रहा है, जिससे सामाजिक न्याय के लक्ष्य प्रभावित हो सकते हैं।

स. **संवैधानिक प्राधिकार की कमी:** अंतर-राज्यीय परिषद (अनुच्छेद 263) जैसे संवैधानिक मंचों की तुलना में नीति आयोग एक कार्यपालिका निकाय है। अतः संघवाद के वास्तविक विधिक विवादों के समाधान में इसकी भूमिका औपचारिक रूप से सीमित रहती है।

संवैधानिक, प्रशासनिक एवं नीतिगत पारिभाषिक शब्दावली

अ. **थिंक टैंक (Think Tank):** वह विशेषज्ञ संस्था जो सामाजिक-आर्थिक नीतियों, रणनीतिक योजनाओं, विधि और प्रौद्योगिकी के जटिल प्रश्नों पर स्वतंत्र, गहन और साक्ष्य-आधारित शोध कर सरकारों को परामर्श देती है।

ब. **सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism):** केंद्र और राज्य सरकारों के मध्य परस्पर सहयोग, संवाद और साझीदारी पर आधारित संघीय व्यवस्था, जहां दोनों इकाइयां राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु समान स्तर पर मिलकर कार्य करती हैं।

स. **प्रतिस्पर्धी संघवाद (Competitive Federalism):** राज्यों के मध्य सार्वजनिक सेवाओं के वितरण, सुशासन, पूंजी निवेश को आकर्षित करने तथा विकास मानकों में आगे निकलने हेतु स्वस्थ, पारदर्शी और डेटा-संचालित प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने का सिद्धांत।

द. **नीचे से ऊपर का दृष्टिकोण (Bottom-Up Approach):** विकास योजना निर्माण की वह लोकतांत्रिक पद्धति जिसके अंतर्गत नीतियां सीधे केंद्रीय मुख्यालयों में न बनाकर स्थानीय, ग्राम तथा जिला स्तर की वास्तविक आवश्यकताओं और जन-आकांक्षाओं के आधार पर तैयार की जाती हैं।

य. **डेल्टा रैंकिंग (Delta Ranking):** आकांक्षी जिला कार्यक्रम के अंतर्गत जिलों द्वारा किसी निश्चित समय-अंतराल में की गई वास्तविक वृद्धिशील प्रगति (Incremental Progress) को मापने वाली गतिशील रैंकिंग प्रणाली।

र. **कार्यपालिका संकल्प (Executive Resolution):** संसद के औपचारिक कानून के बिना, केंद्रीय मंत्रिमंडल के सामूहिक प्रशासनिक निर्णय द्वारा जारी किया गया वह आधिकारिक सरकारी आदेश जिसके द्वारा किसी आयोग या नीति की स्थापना की जाती है।

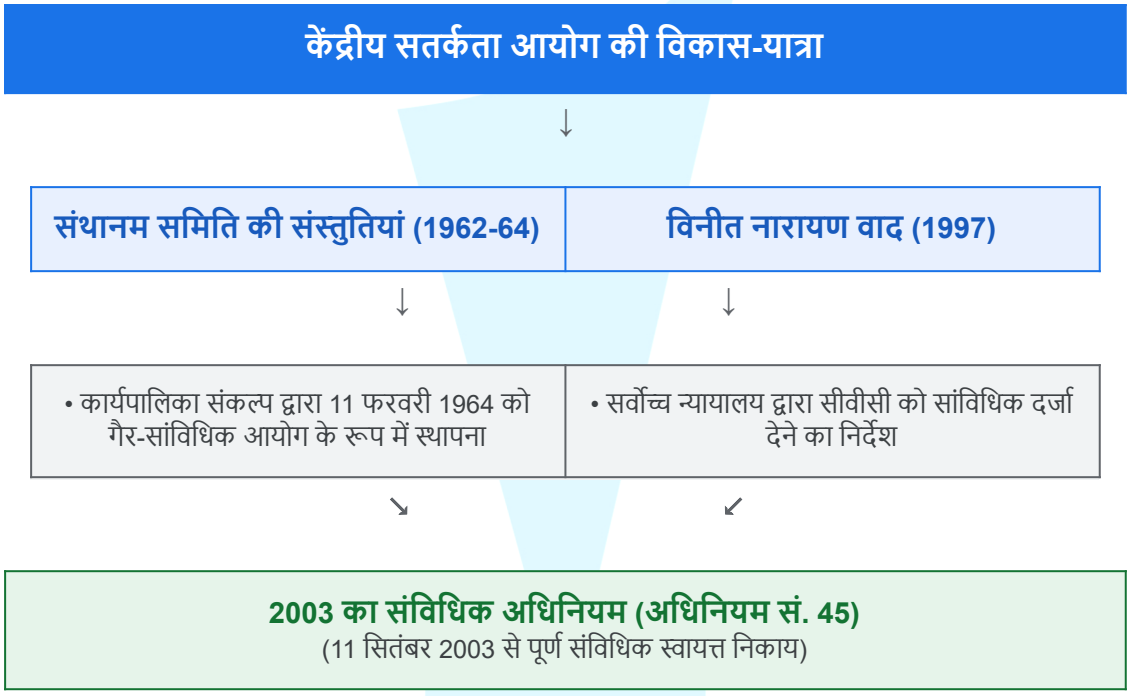
ल. **परिसंपत्ति मुद्रीकरण (Asset Monetisation):** सरकार अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की अप्रयुक्त या कम उपयोग में आने वाली अवसंरचनात्मक संपत्तियों (जैसे सड़कें, रेलवे लाइनें, वेयरहाउस) को एक निश्चित अवधि के लिए निजी क्षेत्र को पट्टे पर देकर राजस्व जुटाने की वित्तीय रणनीति।

wincompete

अध्याय 19: केंद्रीय सतर्कता आयोग (CVC): संथानम समिति की सिफारिशें, 2003 का संविधिक अधिनियम, संरचना, नियुक्ति समिति एवं भ्रष्टाचार निवारण में भूमिका

केंद्रीय सतर्कता आयोग का संस्थागत विकास एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवकों की सत्यनिष्ठा, वित्तीय शुचिता और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने हेतु केंद्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Commission - CVC) शीर्षस्थ स्वायत्त संस्था है। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत औपनिवेशिक काल से ही लोक प्रशासन में भ्रष्टाचार के बढ़ते मामलों ने एक स्वतंत्र और निष्पक्ष निगरानी तंत्र की आवश्यकता को रेखांकित किया था।



के. संथानम समिति (1962–1964) का गठन एवं संस्तुतियां

अ. **समिति का गठन:** वर्ष 1962 में तत्कालीन केंद्रीय गृह मंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने संसद सदस्य **कस्तूरीरंगा संथानम (के. संथानम)** की अध्यक्षता में 'भ्रष्टाचार निवारण समिति' (Committee on Prevention of Corruption) का गठन किया।

wincompete

ब. **समिति का अधिदेश:** समिति का मुख्य दायित्व केंद्र सरकार के विभिन्न विभागों में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारणों की पड़ताल करना, निवारक उपाय सुझाना तथा एक निष्पक्ष सतर्कता संगठन की रूपरेखा तैयार करना था।

स. **प्रमुख सिफारिशें:**

- संथानम समिति ने वर्ष 1964 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें कार्यपालिका के प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियंत्रण से मुक्त एक स्वतंत्र केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की सिफारिश की गई।
- समिति ने सिफारिश की कि इस आयोग को किसी मंत्रालय के अधीन न रखकर स्वतंत्र प्राधिकार सौंपा जाए तथा इसे भ्रष्टाचार के मामलों में अभियोजन स्वीकृति, अनुशासनात्मक कार्यवाही और अन्वेषण के पर्यवेक्षण का अधिकार हो।
- लोक सेवकों के आचरण नियमों का पुनरीक्षण करने तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम को अधिक कठोर बनाने की संस्तुति की गई।

द. **कार्यपालिका संकल्प द्वारा स्थापना (1964):** संथानम समिति की संस्तुतियों के आधार पर केंद्रीय गृह मंत्रालय के एक **कार्यपालिका संकल्प (Executive Resolution)** द्वारा **11 फरवरी 1964** को केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की गई। इस समय यह न तो संवैधानिक निकाय था और न ही सांविधिक निकाय; यह मात्र एक कार्यकारी संकल्प से निर्मित निकाय था। इसके प्रथम मुख्य सतर्कता आयुक्त **एन. श्रीनिवास राव** बने।

विनीत नारायण वाद (1997) एवं सांविधिक दर्जे की प्राप्ति

केंद्रीय सतर्कता आयोग के इतिहास में सबसे युगांतकारी मोड़ वर्ष 1997 में आया, जिसने इस संस्था को कार्यकारी शून्यता से निकालकर विधायी संप्रभुता प्रदान की।

विनीत नारायण बनाम भारत संघ वाद (1997) के प्रमुख निर्देश

हवाला कांड से जुड़े इस ऐतिहासिक वाद में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की विशेष पीठ ने केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) तथा केंद्रीय सतर्कता आयोग की कार्यप्रणाली की गंभीर संवीक्षा की। मुख्य न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा की अध्यक्षता वाली पीठ ने निम्नलिखित बाध्यकारी निर्देश जारी किए:

अ. **सीवीसी को सांविधिक दर्जा देने का आदेश:** न्यायालय ने निर्देश दिया कि केंद्रीय सतर्कता आयोग को एक स्वतंत्र **सांविधिक निकाय (Statutory Body)** का दर्जा दिया जाए ताकि यह कार्यपालिका के किसी भी प्रकार के राजनीतिक दबाव से मुक्त होकर कार्य कर सके।

ब. **सीबीआई पर अधीक्षण की शक्ति:** दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (DPE/CBI) को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन किए जाने वाले अपराधों के अन्वेषण के संबंध में **केंद्रीय सतर्कता आयोग के अधीक्षण (Superintendence) के अधीन** रखा जाए।

स. **स्वतंत्र चयन समिति की रचना:** मुख्य सतर्कता आयुक्त तथा अन्य सतर्कता आयुक्तों की नियुक्ति हेतु प्रधानमंत्री, गृह मंत्री तथा लोकसभा में विपक्ष के नेता की सदस्यता वाली एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित की जाए।

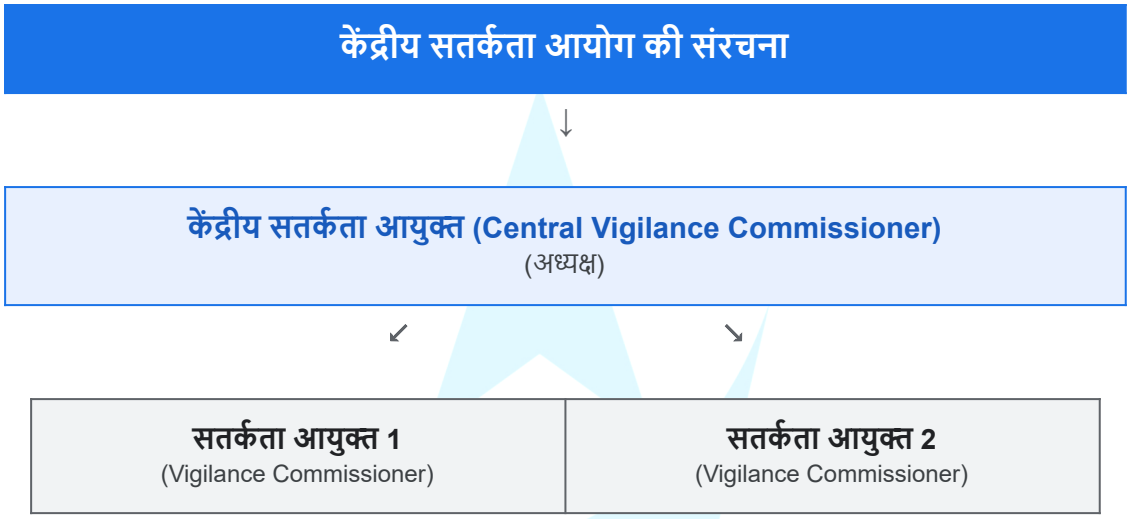
द. **सीबीआई निदेशक का निश्चित कार्यकाल:** सीबीआई के निदेशक का कार्यकाल न्यूनतम दो वर्ष निश्चित किया जाए और उनकी नियुक्ति सीवीसी की अध्यक्षता वाली समिति की अनुशंसा पर हो।

केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का अधिनियम सं. 45)

सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर अध्यादेश जारी किए गए। अंततः संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात **11 सितंबर 2003** को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और **केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003** लागू हुआ। इस अधिनियम के प्रभावी होते ही सीवीसी एक पूर्ण संविधिक एवं बहु-सदस्यीय निकाय बन गया।

केंद्रीय सतर्कता आयोग की संरचना एवं संगठनात्मक ढांचा

केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 की धारा 3 के अंतर्गत आयोग की संरचना का स्पष्ट विन्यास प्रस्तुत किया गया है। यह एक बहु-सदस्यीय संस्था है।



आयोग के सदस्यों की विधिक सीमाएं (धारा 3(2))

अ. **अध्यक्ष:** एक केंद्रीय सतर्कता आयुक्त (Central Vigilance Commissioner - CVC), जो आयोग का पदेन अध्यक्ष होता है।

ब. **सदस्य: दो से अनधिक** सतर्कता आयुक्त (Not more than two Vigilance Commissioners - VCs)।

स. **अधिकतम सदस्य संख्या:** आयोग में अध्यक्ष सहित कुल सदस्यों की अधिकतम संख्या **तीन (1 + 2)** हो सकती है। यह पूर्णतः अनिवार्य नहीं है कि दो आयुक्त सदैव पदस्थ रहें; कानून के अनुसार संख्या दो से अधिक नहीं हो सकती।

सदस्यों की अनिवार्य अर्हताएं (धारा 3(3))

केंद्रीय सतर्कता आयुक्त तथा सतर्कता आयुक्तों की नियुक्ति निम्नलिखित पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों में से की जाती है:

- जो अखिल भारतीय सेवाओं (IAS, IPS, IFoS) के सदस्य रहे हों या हैं, अथवा संघ के किसी सिविल पद पर आसीन रहे हों, और जिनके पास सतर्कता, लोक प्रशासन, नीति निर्माण और विधि से संबंधित मामलों का विस्तृत ज्ञान एवं दीर्घकालिक प्रशासनिक अनुभव हो; अथवा
- जो बीमा, बैंकिंग, विधि, वित्त, वाणिज्य, अर्थशास्त्र अथवा उद्योग के क्षेत्र में विशेष ज्ञान और न्यूनतम वर्षों का विशिष्ट व्यावहारिक अनुभव रखते हों।

wincompete

नियुक्ति समिति एवं चयन प्रक्रिया (धारा 4)

केंद्रीय सतर्कता आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की निष्पक्षता सुनिश्चित करने हेतु चयन प्रक्रिया को कार्यपालिका के एकाधिकार से बाहर रखा गया है।

नियुक्ति हेतु तीन सदस्यीय चयन समिति

↓

भारत के प्रधानमंत्री (समिति के पदेन अध्यक्ष)	केंद्रीय गृह मंत्री (पदेन सदस्य)	लोकसभा में विपक्ष का नेता (या सबसे बड़े विपक्षी दल का नेता - पदेन सदस्य)	राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति (हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा)

चयन समिति की संरचना (धारा 4(1))

केंद्रीय सतर्कता आयुक्त तथा सतर्कता आयुक्तों की नियुक्ति भारत के **राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant under his hand and seal)** द्वारा की जाती है। यह नियुक्ति एक तीन सदस्यीय उच्चाधिकार प्राप्त चयन समिति की लिखित सिफारिश पर आधारित होती है:

अ. **प्रधानमंत्री:** चयन समिति के अध्यक्ष।

ब. **केंद्रीय गृह मंत्री:** चयन समिति के सदस्य।

स. **लोकसभा में विपक्ष के नेता:** चयन समिति के सदस्य। (अधिनियम की धारा 4 के स्पष्टीकरण के अनुसार, यदि लोकसभा में किसी मान्यता प्राप्त दल के रूप में विपक्ष का नेता नहीं है, तो लोकसभा में सरकार के विरोधी सबसे बड़े एकल दल के नेता को विपक्ष का नेता माना जाएगा)।

चयन प्रक्रिया पर विधिक निर्वचन: पी. जे. थॉमस वाद (2011)

सेंटर फॉर पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन (CPIL) बनाम भारत संघ (2011) वाद में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने सीवीसी की नियुक्ति प्रक्रिया पर युगांतकारी निर्णय दिया:

- वर्ष 2010 में तत्कालीन चयन समिति ने 2:1 के बहुमत से (विपक्ष की नेता सुषमा स्वराज की असहमति के बावजूद) पी. जे. थॉमस को केंद्रीय सतर्कता आयुक्त नियुक्त किया था, जिन पर केरल के पामोलिन आयात घोटाले में आपराधिक आरोप पत्र (Charge Sheet) लंबित था।
- सर्वोच्च न्यायालय ने पी. जे. थॉमस की नियुक्ति को **शून्य और अधिकार-बाह्य (Void ab initio)** घोषित कर दिया।
- न्यायालय ने स्थापित किया कि चयन समिति केवल व्यक्ति के प्रशासनिक सेवा रिकॉर्ड को न देखे, बल्कि उसकी **संस्थागत सत्यनिष्ठा (Institutional Integrity)** का भी परीक्षण करे। जिस व्यक्ति की व्यक्तिगत निष्पक्षता पर संदेह हो, उसे देश की सर्वोच्च भ्रष्टाचार-रोधी संस्था का प्रमुख नियुक्त नहीं किया जा सकता।

पदावधि, सेवा शर्तें एवं पदच्युति की कठोर प्रक्रिया (धारा 5 एवं 6)

सीवीसी अधिनियम, 2003 के अंतर्गत अध्यक्ष और सदस्यों को अपने कर्तव्यों का निर्भयतापूर्वक निष्पादन करने हेतु व्यापक विधिक सुरक्षा प्रदान की गई है।

wincompete

कार्यकाल की विशिष्ट सीमाएं (धारा 5(1))

अ. **चार वर्ष का निश्चित कार्यकाल:** केंद्रीय सतर्कता आयुक्त तथा सतर्कता आयुक्त अपने पदभार ग्रहण करने की तारीख से **चार वर्ष (4 Years)** की अवधि तक पद धारण करते हैं। (ध्यान रहे, अधिकांश अन्य संवैधानिक या सांविधिक आयोगों में कार्यकाल 3 वर्ष, 5 वर्ष या 6 वर्ष का होता है; सीवीसी का 4 वर्ष का कार्यकाल भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में अनूठा है)।

ब. **आयु सीमा:** कार्यकाल के साथ ही अधिकतम आयु सीमा **65 वर्ष** निर्धारित है। जो भी पहले पूरा हो जाए (4 वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु), पदधारक सेवानिवृत्त हो जाता है।

स. **पुनर्नियुक्ति पर पूर्ण प्रतिबंध:** केंद्रीय सतर्कता आयुक्त अपना कार्यकाल समाप्त होने के पश्चात उसी पद पर अथवा किसी अन्य सतर्कता आयुक्त के पद पर पुनर्नियुक्ति का पात्र नहीं होगा।

द. **सतर्कता आयुक्त की पदोन्नति का अपवाद:** कोई सतर्कता आयुक्त केंद्रीय सतर्कता आयुक्त के पद पर नियुक्त किया जा सकता है, किंतु सतर्कता आयुक्त और केंद्रीय सतर्कता आयुक्त के रूप में उसका **संयुक्त कुल कार्यकाल किसी भी स्थिति में चार वर्ष से अधिक नहीं हो सकता**।

य. **भविष्य के रोजगार पर निर्बंधन (धारा 5(6)):** पदमुक्ति के उपरांत केंद्रीय सतर्कता आयुक्त तथा सतर्कता आयुक्त भारत सरकार के या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य नियोजन (Employment) के पात्र नहीं होंगे। वे किसी राजनीतिक या प्रशासनिक लाभ के पद को स्वीकार नहीं कर सकते।

वेतन एवं भत्ते (धारा 5(4))

अ. **केंद्रीय सतर्कता आयुक्त:** संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) के अध्यक्ष के समतुल्य वेतन, भत्ते और पेंशन।

ब. **सतर्कता आयुक्त:** संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) के सदस्यों के समतुल्य वेतन और भत्ते।

स. **अलाभकारी परिवर्तन का निषेध:** नियुक्ति के पश्चात उनकी पदावधि के दौरान उनके वेतन, भत्तों और अवकाश संबंधी अधिकारों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

पदच्युति की प्रक्रिया (धारा 6)

केंद्रीय सतर्कता आयुक्त अथवा किसी सतर्कता आयुक्त को पद से हटाने हेतु दो पृथक संवैधानिक/विधिक आधार स्थापित किए गए हैं:

पदच्युति की दोहरी विधिक व्यवस्था	
बिना जांच के सीधे राष्ट्रपति द्वारा पदच्युति (धारा 6(2) - पांच परिस्थितियां)	**उच्चतम न्यायालय की जांच के अधीन पदच्युति** (धारा 6(1) - केवल दो आधार)
• दिवालिया घोषित होने पर • नैतिक अधमता के अपराध में दोषसिद्ध होने पर • सवेतन नियोजन में संलग्न होने पर • शारीरिक/मानसिक दुर्बलता के कारण • किसी वित्तीय या अन्य हित से ग्रस्त होने पर	• सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour) • असमर्थता (Incapacity) *राष्ट्रपति द्वारा संदर्भ ➔ SC की जांच ➔ सत्य पाए जाने पर राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन*

Wincompete

अ. **कदाचार या असमर्थता के आधार पर निष्कासन (धारा 6(1)):**

- केंद्रीय सतर्कता आयुक्त या किसी आयुक्त को केवल **सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour)** अथवा **असमर्थता (Incapacity)** के आधार पर ही हटाया जा सकता है।
- इसके लिए राष्ट्रपति द्वारा मामले को अनिवार्य रूप से **उच्चतम न्यायालय को जांच हेतु संदर्भित** किया जाता है।
- उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार जांच की जाती है। यदि उच्चतम न्यायालय अपनी रिपोर्ट में यह पुष्टि करता है कि पदधारक को हटा दिया जाना चाहिए, तब **राष्ट्रपति द्वारा उसे पद से हटाया जा सकता है**। (जांच के दौरान राष्ट्रपति संबंधित आयुक्त को निलंबित कर सकता है)।

ब. **सीधे राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन (धारा 6(2)):**
राष्ट्रपति आदेश द्वारा आयुक्त को पद से हटा सकता है यदि वह:

- दिवालिया न्यायनिर्णीत (Insolvent) किया गया हो; अथवा
- ऐसे किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया हो जिसमें राष्ट्रपति की राय में **नैतिक अधमता (Moral Turpitude)** अंतर्वलित हो; अथवा
- अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों से परे किसी सवेतन नियोजन (Paid Employment) में लगा हो; अथवा
- राष्ट्रपति की राय में शारीरिक या मानसिक दुर्बलता के कारण अपने पद पर बने रहने के अयोग्य हो; अथवा
- उसने ऐसा कोई वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिया हो जिससे उसके पदीय कर्तव्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो।

केंद्रीय सतर्कता आयोग के क्षेत्राधिकार का दायरा (Jurisdiction)

सीवीसी अधिनियम, 2003 की धारा 8(2) के अंतर्गत आयोग के सतर्कता क्षेत्राधिकार की सीमाएं तय की गई हैं। आयोग का कार्यक्षेत्र केंद्र सरकार के उच्च पदों और उसके स्वायत्त उपक्रमों के शीर्ष अधिकारियों तक विस्तृत है।

सीवीसी के अधिकार क्षेत्र में आने वाले लोक सेवक

संस्थान / संवर्ग	अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित पद एवं अधिकारी
अखिल भारतीय सेवाएं	संघ के मामलों के संबंध में सेवारत भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS), भारतीय पुलिस सेवा (IPS) तथा भारतीय वन सेवा (IFoS) के सदस्य।
केंद्रीय सिविल सेवाएं	केंद्र सरकार के समस्त **ग्रुप 'A' (वर्ग-क)** के अधिकारी।

wincompete

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (PSBs)	राष्ट्रीयकृत बैंकों के **स्केल-V (Scale-V)** और उससे ऊपर के वरिष्ठ अधिकारी (एजीएम, डीजीएम, जीएम, सीएमडी आदि)।
भारतीय रिजर्व बैंक (RBI)	भारतीय रिजर्व बैंक, नाबार्ड तथा सिडबी के **ग्रेड 'D' (Grade-D)** और उससे ऊपर के अधिकारी।
सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम (PSUs)	केंद्रीय सार्वजनिक उद्यमों के बोर्ड के कार्यकारी निदेशक, सीएमडी तथा अनुसूची 'क' और 'ख' के **ई-8 (E-8)** और उससे ऊपर के अधिकारी।
सांविधिक निगम एवं स्वायत्त निकाय	केंद्र सरकार के अधीन संविधि द्वारा स्थापित निगमों, सोसायटियों और स्थानीय प्राधिकरणों के ऐसे अधिकारी जिनका वेतन केंद्र के ग्रुप 'A' के समतुल्य है।

सीवीसी के प्रमुख कार्य एवं भ्रष्टाचार निवारण में अधिकारिता (धारा 8)

केंद्रीय सतर्कता आयोग केंद्र सरकार के प्रशासनिक तंत्र में सत्यनिष्ठा और पारदर्शिता का मुख्य नियामक है।

विधिक कार्यों का वर्गीकरण

अ. **भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत जांच का निर्देश:** केंद्र सरकार या उसके किसी प्राधिकारी द्वारा संदर्भित किए जाने पर अथवा अपनी स्वयं की पहल पर, आयोग किसी ऐसे लोक सेवक के विरुद्ध जांच (Inquiry) या अन्वेषण (Investigation) करा सकता है जिस पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत अपराध करने का आरोप हो।

ब. **सीबीआई के कार्यों का अधीक्षण (Superintendence over CBI):**

- दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (CBI) द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराधों के अन्वेषण से संबंधित कार्यों का **अधीक्षण सीवीसी में निहित है**।
- आयोग सीबीआई को भ्रष्टाचार के मामलों में अन्वेषण की प्रगति की नियमित समीक्षा करने तथा दिशा-निर्देश जारी करने का अधिकार रखता है। किंतु आयोग सीबीआई को किसी विशिष्ट मामले में किसी विशेष तरीके से निर्णय लेने या आरोप पत्र दाखिल करने का आदेश नहीं दे सकता।

wincompete

स. **मंत्रालयों के सतर्कता प्रशासन की निगरानी:** केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों, विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों और बैंकों के सतर्कता कार्यों का सामान्य अधीक्षण और समन्वय करना।

द. **अभियोजन स्वीकृति (Sanction for Prosecution) की प्रगति की समीक्षा:** भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन लोक सेवकों के विरुद्ध अभियोजन चलाने हेतु विभिन्न मंत्रालयों में लंबित आवेदनों की प्रगति की नियमित समीक्षा करना ताकि भ्रष्ट अधिकारियों को बचाने हेतु स्वीकृतियों में अनुचित विलंब न किया जा सके।

य. **केंद्र सरकार को नीतिगत सलाह:** केंद्र सरकार के नियमों, विनियमों और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की समीक्षा करना और उनमें विद्यमान उन कमियों (Loopholes) को दूर करने हेतु परामर्श देना जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती हैं।

सीवीसी की कार्यप्रणाली एवं सिविल न्यायालय की शक्तियां (धारा 11)

अधिनियम के तहत अपनी जांच और जांच प्रक्रियाओं का संपादन करने हेतु केंद्रीय सतर्कता आयोग को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (CPC) के अधीन निम्नलिखित मामलों में **सिविल न्यायालय (Civil Court)** की समस्त शक्तियां प्राप्त हैं:

अ. भारत के किसी भी भाग से किसी भी व्यक्ति को समन करना, हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना।

ब. किसी भी सरकारी या निजी दस्तावेज का प्रकटीकरण (Discovery) और उसे पेश करने की अपेक्षा करना।

स. शपथ पत्रों (Affidavits) पर साक्ष्य ग्रहण करना।

द. किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख (Public Record) या उसकी प्रति मंगाना।

य. साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना।

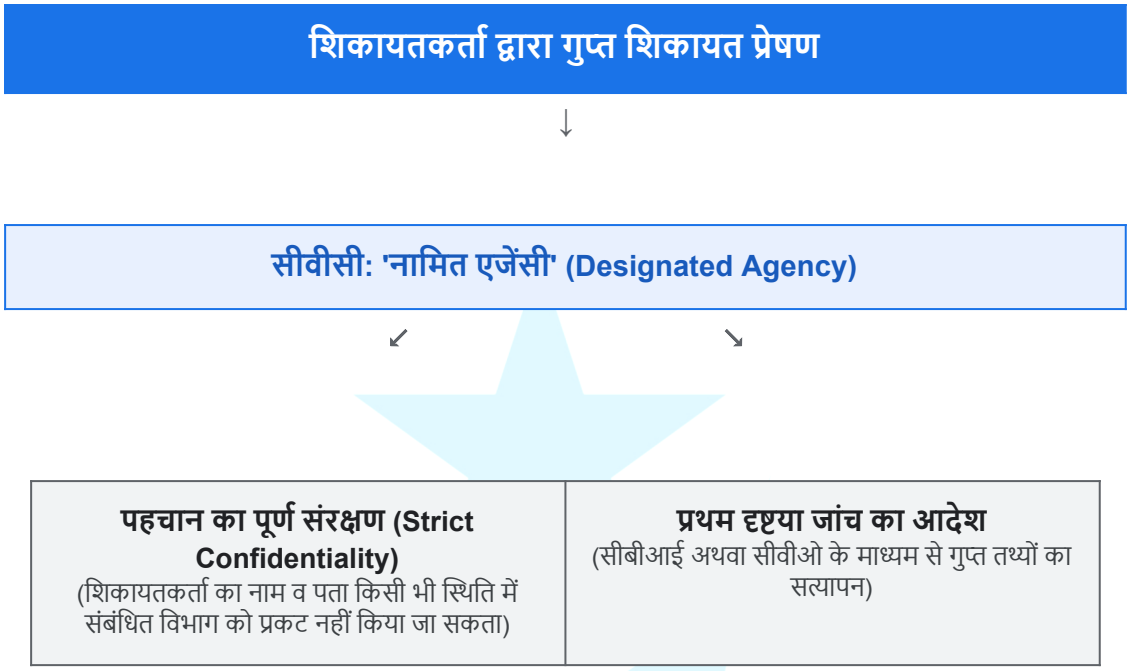
जांच रिपोर्ट पर कार्रवाई की प्रक्रिया

- सीवीसी स्वयं सीधे पुलिस की भांति छापे मारने या अंतिम अभियोजन चलाने वाली एजेंसी नहीं है। यह प्राथमिक जांच सीबीआई अथवा संबंधित मंत्रालय के 'मुख्य सतर्कता अधिकारी' (CVO) के माध्यम से करवाती है।
- जांच रिपोर्ट प्राप्त होने के उपरांत आयोग संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय को दो प्रकार की सलाह देता है:
    - **प्रथम चरण की सलाह (First Stage Advice):** क्या संबंधित अधिकारी के विरुद्ध लघु दंड (Minor Penalty), दीर्घ दंड (Major Penalty) की विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही चलाई जाए अथवा सीबीआई द्वारा सक्षम न्यायालय में आपराधिक मुकदमा चलाया जाए।
    - **द्वितीय चरण की सलाह (Second Stage Advice):** विभागीय जांच पूरी होने के पश्चात अंतिम दंड अधिरोपित करने से पूर्व आयोग से पुनः परामर्श किया जाता है।
- यद्यपि आयोग की सलाह सामान्यतः परामर्शदात्री (Advisory) होती है, किंतु यदि कोई मंत्रालय सीवीसी की सलाह से असहमत होकर किसी आरोपी अधिकारी को बरी करता है, तो मंत्रालय को इसका लिखित कारण आयोग को देना होता है, और आयोग ऐसे सभी मामलों को अपनी **वार्षिक रिपोर्ट** में दर्ज कर संसद के समक्ष सार्वजनिक करता है।

व्हिसलब्लोअर्स संरक्षण एवं सीवीसी: पीआईडीपीआर (PIDPI) प्रस्ताव

भ्रष्टाचार के मामलों में गुप्त सूचना देने वाले शिकायतकर्ताओं (Whistleblowers) की पहचान गुप्त रखने और उन्हें उत्पीड़न से बचाने के लिए सीवीसी को एक महत्वपूर्ण विधिक दायित्व सौंपा गया है।

wincompete



पीआईडीपीआर संकल्प (PIDPI Resolution, 2004)

अ. **पृष्ठभूमि एवं सत्येंद्र दुबे हत्याकांड (2003):** राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (NHAI) की स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना में भ्रष्टाचार का खुलासा करने वाले युवा इंजीनियर सत्येंद्र दुबे की निर्मम हत्या के उपरांत सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को व्हिसलब्लोअर्स की सुरक्षा हेतु तंत्र स्थापित करने का निर्देश दिया।

ब. **नामित एजेंसी के रूप में सीवीसी:** भारत सरकार ने 21 अप्रैल 2004 को एक आधिकारिक संकल्प जारी किया जिसे **'जनहित प्रकटीकरण एवं मुखबिर का संरक्षण' (Public Interest Disclosure and Protection of Informers - PIDPI) संकल्प** कहा जाता है। इसके तहत केंद्रीय सतर्कता आयोग को **'नामित प्राधिकारी' (Designated Agency)** घोषित किया गया।

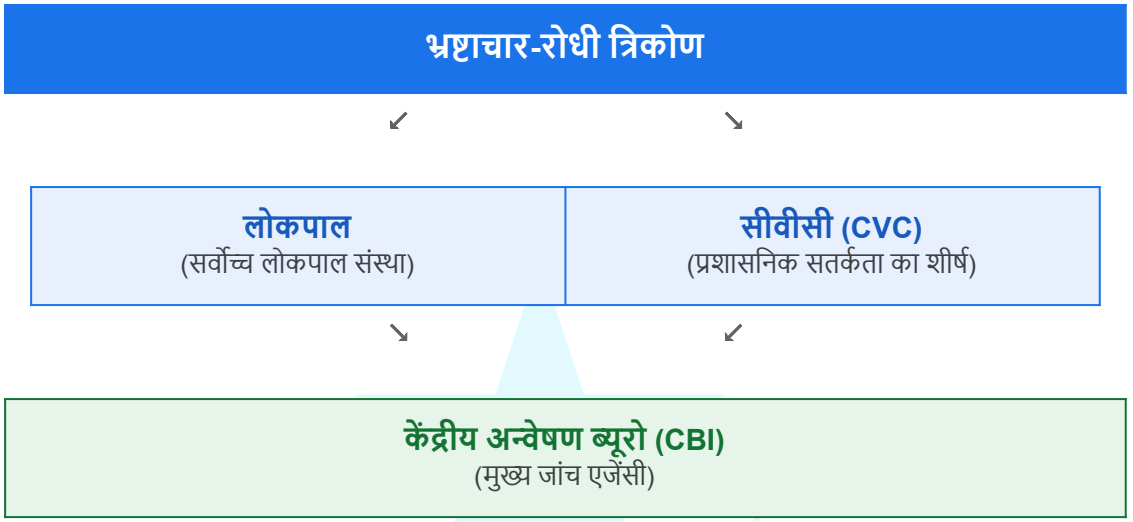
स. **आयोग के विशेषाधिकार:**

- आयोग को अधिकार है कि वह किसी भी केंद्रीय लोक सेवक के विरुद्ध भ्रष्टाचार अथवा पद के दुरुपयोग की गुप्त शिकायतें सीधे स्वीकार करे।
- यदि शिकायतकर्ता लिफाफे पर 'PIDPI' अंकित करता है, तो आयोग उसकी पहचान को पूर्णतः गुप्त रखता है।
- यदि किसी शिकायतकर्ता को यह आशंका है कि सूचना देने के कारण उसे सेवा में प्रताड़ित किया जा रहा है, स्थानांतरित किया जा रहा है या उसकी जान को खतरा है, तो सीवीसी संबंधित प्राधिकारियों को शिकायतकर्ता को तत्काल प्रशासनिक एवं पुलिस सुरक्षा प्रदान करने के बाध्यकारी निर्देश जारी कर सकता है।

सीवीसी, लोकपाल एवं सीबीआई का त्रिकोणीय विधिक अंतर्संबंध

वर्ष 2013 में 'लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013' के पारित होने के उपरांत देश के भ्रष्टाचार-रोधी तंत्र में सीवीसी, लोकपाल और सीबीआई के मध्य एक नया संस्थागत संतुलन स्थापित हुआ।

wincompete



लोकपाल अधिनियम, 2013 द्वारा सीवीसी अधिनियम में किए गए संशोधन

अ. **लोकपाल द्वारा सीवीसी को जांच संदर्भ:** लोकपाल को केंद्र सरकार के ग्रुप 'A', 'B', 'C' और 'D' के अधिकारियों के विरुद्ध प्राप्त भ्रष्टाचार की शिकायतों के संबंध में प्रारंभिक जांच (Preliminary Inquiry) करने हेतु मामले को **केंद्रीय सतर्कता आयोग को संदर्भित** करने का अधिकार दिया गया है।

ब. **ग्रुप 'C' और 'D' के संदर्भ में सीवीसी की शक्तियां:** लोकपाल अधिनियम के तहत ग्रुप 'C' और 'D' के कर्मचारियों के विरुद्ध लोकपाल द्वारा भेजी गई शिकायतों की जांच सीवीसी स्वयं करता है और उन पर स्वयं कानून के अनुसार अंतिम कार्रवाई करता है (उन्हें वापस लोकपाल को भेजने की आवश्यकता नहीं होती, केवल वार्षिक सांख्यिकी प्रस्तुत की जाती है)।

स. **ग्रुप 'A' और 'B' के संदर्भ में रिपोर्टिंग:** ग्रुप 'A' और 'B' के अधिकारियों की प्रारंभिक जांच सीवीसी पूर्ण कर अपनी विस्तृत रिपोर्ट **लोकपाल को सौंपता है**, जिसके आधार पर लोकपाल आगे विभागीय कार्यवाही अथवा न्यायालय में अभियोजन का आदेश देता है।

द. **सीबीआई निदेशक की नियुक्ति समिति (संशोधित प्रक्रिया):** दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम की धारा 4A के तहत सीबीआई निदेशक की नियुक्ति हेतु गठित समिति में सीवीसी की भूमिका को पुनर्परिभाषित किया गया। वर्तमान में सीबीआई निदेशक का चयन तीन सदस्यीय समिति (प्रधानमंत्री, सीजेआई और लोकसभा में विपक्ष के नेता) करती है, किंतु सीबीआई में संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के वरिष्ठ अधिकारियों (SP, DIG, Joint Director) की नियुक्ति हेतु **केंद्रीय सतर्कता आयुक्त की अध्यक्षता वाली समिति** की संस्तुति अनिवार्य होती है।

मुख्य सतर्कता अधिकारी (CVO): सतर्कता प्रशासन की आधारभूत कड़ी

केंद्रीय सतर्कता आयोग नई दिल्ली में स्थित एक छोटा और विशिष्ट संगठन है। यह देश के विशालकाय प्रशासनिक तंत्र पर जमीनी स्तर पर निगरानी रखने हेतु प्रत्येक मंत्रालय और सार्वजनिक उपक्रम में पदस्थ **मुख्य सतर्कता अधिकारियों (Chief Vigilance Officers - CVOs)** के माध्यम से कार्य करता है।

सीवीओ की नियुक्ति एवं भूमिका

अ. **नियुक्ति में सीवीसी की पूर्व-सहमति:** केंद्र सरकार के किसी भी मंत्रालय, विभाग, राष्ट्रीयकृत बैंक या सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम में मुख्य सतर्कता अधिकारी (CVO) की नियुक्ति **केंद्रीय सतर्कता आयोग के पूर्व परामर्श और सहमति के बिना नहीं की जा सकती**।

ब. **सीवीसी के आंतरिक प्रतिनिधि:** सीवीओ संबंधित विभाग में सतर्कता प्रभाग का प्रमुख होता है और वह सीधे सीवीसी और संबंधित मंत्रालय के प्रशासनिक सचिव के मध्य समन्वय का कार्य करता है।

स. **कार्य:** अपने विभाग में भ्रष्टाचार के संवेदनशील बिंदुओं (Sensitive Points) की पहचान करना, अधिकारियों की संपत्तियों के रिटर्न की संवीक्षा करना, निविदाओं (Tenders) और खरीद प्रक्रियाओं की निगरानी करना तथा सीवीसी द्वारा भेजी गई शिकायतों की आंतरिक जांच करना।

द. **वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट (ACR):** किसी मंत्रालय के मुख्य सतर्कता अधिकारी के कार्यों और सत्यनिष्ठा पर उसके वार्षिक मूल्यांकन (ACR/APAR) में **केंद्रीय सतर्कता आयुक्त द्वारा अपनी टिप्पणी (Assessment) दर्ज की जाती है**, जिससे सीवीओ अपने विभाग के भ्रष्ट उच्च अधिकारियों के विरुद्ध निर्भीक होकर निष्पक्ष जांच कर सके।

आयोग की वार्षिक रिपोर्ट एवं संसद के प्रति जवाबदेही (धारा 14)

केंद्रीय सतर्कता आयोग एक स्वतंत्र निकाय है, किंतु लोकतांत्रिक परंपराओं के अनुरूप यह संसद के प्रति पूर्णतः जवाबदेह है।

रिपोर्ट प्रस्तुत करने का संवैधानिक/वैधानिक मार्ग

अ. **राष्ट्रपति को प्रस्तुति:** अधिनियम की धारा 14(1) के अनुसार, आयोग प्रतिवर्ष अपने द्वारा किए गए समस्त कार्यों, दी गई सलाहों, तथा विभिन्न मंत्रालयों के सतर्कता प्रदर्शन का एक विस्तृत **वार्षिक प्रतिवेदन (Annual Report) भारत के राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है**।

ब. **संसद के पटल पर रखवाना:** राष्ट्रपति इस रिपोर्ट को, आयोग द्वारा दी गई उन सलाहों के संबंध में (जिन्हें केंद्र सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था) सरकार के **अस्वीकृति के कारणों के स्पष्टीकारक ज्ञापन (Memorandum explaining reasons for non-acceptance)** के साथ, संसद के दोनों सदनों (लोकसभा एवं राज्यसभा) के समक्ष रखवाता है।

स. **सार्वजनिक निगरानी:** यह वार्षिक रिपोर्ट एक सार्वजनिक दस्तावेज होती है। इसके माध्यम से उन सभी भ्रष्ट लोक सेवकों तथा उन मंत्रालयों के नामों का सार्वजनिक खुलासा होता है जिन्होंने आयोग की सिफारिशों के बावजूद भ्रष्ट अधिकारियों को संरक्षण देने का प्रयास किया।

प्रशासनिक एवं विधिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **अधीक्षण (Superintendence):** किसी जांच एजेंसी (जैसे सीबीआई) के प्रशासनिक और प्रक्रियात्मक कार्यों पर कानूनी और नीतिगत निगरानी रखने की सर्वोच्च शक्ति, जिससे जांच निष्पक्ष और समयबद्ध बनी रहे।

ब. **संस्थागत सत्यनिष्ठा (Institutional Integrity):** पी. जे. थॉमस वाद में प्रतिपादित सिद्धांत, जिसका तात्पर्य यह है कि किसी संस्था का प्रमुख केवल व्यक्तिगत रूप से योग्य ही न हो, बल्कि उसका संपूर्ण पूर्व रिकॉर्ड ऐसा निष्कलंक होना चाहिए जिससे उस पद की सामूहिक विश्वसनीयता और गरिमा पर कोई आंच न आए।

wincompete

स. **व्हिसलब्लोअर (Whistleblower):** वह व्यक्ति (प्रायः किसी संस्था का कर्मचारी या जागरूक नागरिक) जो किसी सरकारी विभाग या उपक्रम में चल रहे भ्रष्टाचार, वित्तीय धोखाधड़ी, अवैध गतिविधियों अथवा पद के दुरुपयोग की गुप्त सूचना सक्षम प्राधिकारी को देता है।

द. **प्रथम चरण की सलाह (First Stage Advice):** प्रारंभिक जांच पूरी होने के तुरंत बाद सीवीसी द्वारा संबंधित मंत्रालय को दी जाने वाली वह औपचारिक सलाह जिसमें यह तय किया जाता है कि आरोपी अधिकारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई प्रारंभ की जाए अथवा न्यायालय में आपराधिक मुकदमा चलाया जाए।

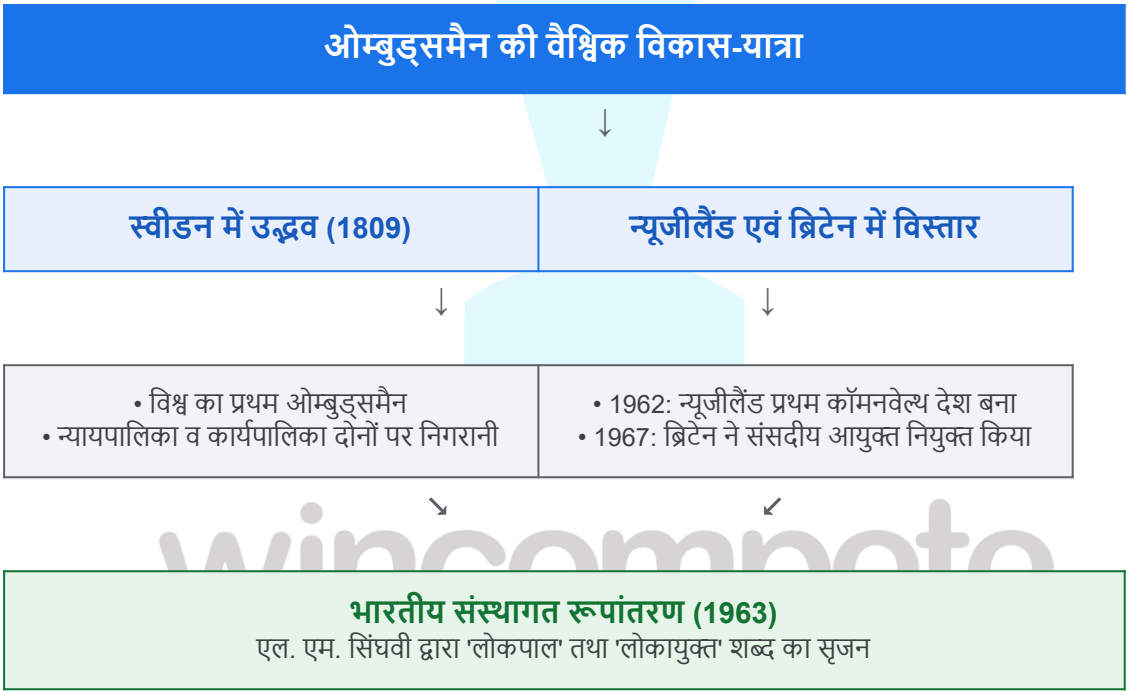
य. **प्राथमिक जांच (Preliminary Inquiry - PE):** नियमित आपराधिक प्राथमिकी (FIR/RC) दर्ज करने से पूर्व तथ्यों की सत्यता परखने हेतु की जाने वाली गोपनीय आरंभिक प्रशासनिक पड़ताल।

र. **नैतिक अधमता (Moral Turpitude):** समाज के स्थापित नैतिक मूल्यों, न्याय और ईमानदारी के बुनियादी सिद्धांतों के सर्वथा प्रतिकूल किया गया कोई आपराधिक या घृणित आचरण, जिसके आधार पर किसी लोक सेवक को बिना लंबी जांच के सीधे पद से बर्खास्त किया जा सकता है।

अध्याय 20: लोकपाल एवं लोकायुक्त: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम 2013, संरचना, चयन समिति एवं अधिकार क्षेत्र

ओम्बुड्समैन की वैश्विक संकल्पना एवं भारतीय संस्थागत उद्भव

प्रशासनिक शक्तियों के अपव्यय, नागरिकों के अभाव-अभियोगों के निवारण तथा सार्वजनिक जीवन में उच्च स्तरीय पदों पर व्याप्त भ्रष्टाचार की जांच हेतु 'ओम्बुड्समैन' (Ombudsman) की संस्था का प्रादुर्भाव वैश्विक स्तर पर हुआ। ओम्बुड्समैन एक स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं स्वायत्त बाह्य संस्था होती है, जो कार्यपालिका के नियंत्रण से पूर्णतः मुक्त होकर नागरिकों की शिकायतों तथा प्रशासनिक कदाचार की निष्पक्ष जांच करती है।



वैश्विक पृष्ठभूमि

अ. **स्वीडिश मॉडल (1809):** विश्व में सर्वप्रथम 1809 में स्वीडन के संविधान द्वारा ओम्बुड्समैन की संस्था स्थापित की गई। स्वीडिश ओम्बुड्समैन को कार्यपालिका के साथ-साथ न्यायपालिका के आचरण की जांच करने का भी असाधारण अधिकार प्राप्त था।

ब. **स्कैंडिनेवियाई एवं कॉमनवेल्थ विस्तार:** 1919 में फिनलैंड, 1953 में डेनमार्क तथा 1961 में नॉर्वे ने इस व्यवस्था को अंगीकार किया। न्यूजीलैंड वर्ष 1962 में ओम्बुड्समैन प्रणाली को अपनाने वाला प्रथम कॉमनवेल्थ (राष्ट्रमंडल) देश बना। तत्पश्चात वर्ष 1967 में यूनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन) ने 'संसदीय प्रशासन आयुक्त' (Parliamentary Commissioner for Administration) की नियुक्ति की।

भारतीय संदर्भ में नामकरण एवं प्रारंभिक प्रयास

अ. **नामकरण का श्रेय (1963):** भारत में ओम्बुड्समैन के समतुल्य संस्था हेतु 'लोकपाल' (केंद्र के लिए) तथा 'लोकायुक्त' (राज्यों के लिए) शब्द का प्रथम प्रयोग प्रख्यात विधिवेत्ता एवं सांसद **डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी (एल. एम. सिंघवी)** द्वारा वर्ष 1963 में एक संसदीय बहस के दौरान किया गया था। 'लोकपाल' का शाब्दिक अर्थ 'जनता का रक्षक या संरक्षक' है।

ब. **अशोक सेन समिति (1963-64):** तत्कालीन केंद्रीय विधि मंत्री अशोक कुमार सेन की अध्यक्षता में गठित समिति ने नागरिकों की प्रशासनिक शिकायतों के निवारण हेतु ओम्बुड्समैन जैसी संस्था की स्थापना का सर्वप्रथम आधिकारिक अध्ययन किया।

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC-I) एवं प्रारंभिक विधायी विफलताएं

स्वतंत्र भारत में भ्रष्टाचार निवारण हेतु एक संस्थागत द्वैध-संरचना (लोकपाल एवं लोकायुक्त) की स्पष्ट और विस्तृत संस्तुति प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा की गई।

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (1966) की सिफारिशें

अ. **आयोग का गठन एवं नेतृत्व:** वर्ष 1966 में मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC-I) का गठन हुआ (कालांतर में मोरारजी देसाई के उप-प्रधानमंत्री बनने पर के. हनुमंतैया इसके अध्यक्ष बने)।

ब. **अंतरिम प्रतिवेदन (1966):** आयोग ने 'नागरिकों की शिकायतों के निवारण की समस्याएं' शीर्षक से अपना विशेष अंतरिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

स. **द्वि-स्तरीय संस्थागत मॉडल:** आयोग ने स्पष्ट सिफारिश की कि भ्रष्टाचार तथा प्रशासनिक दुर्भावना की जांच हेतु दो विशिष्ट स्तरों पर स्वतंत्र संस्थाएं स्थापित की जाएं:

- **केंद्र स्तर पर लोकपाल:** जो केंद्रीय मंत्रियों तथा संसद सदस्यों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच करे।
- **राज्य स्तर पर लोकायुक्त:** जो राज्यों के मंत्रियों, विधायकों तथा वरिष्ठ सिविल सेवकों के विरुद्ध शिकायतों का निस्तारण करे।

द. **आयोग द्वारा सुझाए गए मूलभूत सिद्धांत:** आयोग ने रेखांकित किया कि लोकपाल एवं लोकायुक्त को:

- कार्यपालिका तथा राजनीतिक प्रभाव से पूर्णतः स्वतंत्र एवं अनासक्त होना चाहिए।
- उनकी नियुक्ति गैर-दलीय आधार पर होनी चाहिए।
- उनकी स्थिति देश के सर्वोच्च न्यायिक पदों के समतुल्य होनी चाहिए।
- उनकी जांच प्रक्रिया पूर्णतः गोपनीय एवं निष्पक्ष होनी चाहिए।

wincompete

संसद में प्रारंभिक विधायी प्रयास (1968 से 2011 तक)

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों के आधार पर केंद्र में लोकपाल की स्थापना हेतु संसद में कुल **दस बार** विधेयक प्रस्तुत किए गए, किंतु प्रत्येक बार विभिन्न राजनीतिक व प्रक्रियात्मक कारणों (विशेषकर लोकसभा के विघटन) से विधेयक व्यपगत (Lapse) होते रहे:

क्रम	वर्ष	तत्कालीन सरकार	लोकसभा में प्रस्तुति एवं परिणाम
1.	1968	इंदिरा गांधी सरकार	चतुर्थ लोकसभा में पेश; लोकसभा द्वारा 1969 में पारित; राज्यसभा में लंबित रहने के दौरान **लोकसभा विघटन से व्यपगत**।
2.	1971	इंदिरा गांधी सरकार	पांचवीं लोकसभा में पेश; लोकसभा विघटन के कारण पुनः व्यपगत।
3.	1977	मोरारजी देसाई सरकार	छठी लोकसभा में पेश; संयुक्त प्रवर समिति को भेजा गया; 1979 में सरकार गिरने से व्यपगत।
4.	1985	राजीव गांधी सरकार	आठवीं लोकसभा में पेश; संयुक्त समिति को भेजा गया; बाद में सरकार द्वारा वापस लिया गया।
5.	1989	वी. पी. सिंह सरकार	नौवीं लोकसभा में पेश; प्रधानमंत्री को इसके दायरे में लाया गया; लोकसभा विघटन से व्यपगत।
6.	1996	एच. डी. देवगौड़ा सरकार	ग्यारहवीं लोकसभा में पेश; स्थायी समिति को भेजा गया; लोकसभा विघटन से व्यपगत।
7.	1998	अटल बिहारी वाजपेयी सरकार	बारहवीं लोकसभा में पेश; सरकार अल्पमत में आने से लोकसभा भंग, विधेयक व्यपगत।
8.	2001	अटल बिहारी वाजपेयी सरकार	तेरहवीं लोकसभा में पेश; स्थायी समिति ने जांच की; 2004 में लोकसभा विघटन से व्यपगत।

wincompete

9.	2008	मनमोहन सिंह सरकार	प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC-II) की सिफारिशों पर विचार; संसद में औपचारिक रूप से आगे नहीं बढ़ा।
10.	2011	मनमोहन सिंह सरकार	'इंडिया अगेंस्ट करप्शन' आंदोलन के दबाव में नया लोकपाल विधेयक पेश; संसदीय गतिरोध।

2011 का जनांदोलन एवं लोकपाल तथा लोकायुक्त अधिनियम 2013 का अधिनियमन

वर्ष 2011 में देश में बड़े पैमाने पर उजागर हुए वित्तीय घोटालों के विरोध में सामाजिक कार्यकर्ता **अन्ना हजारे** के नेतृत्व में 'इंडिया अगेंस्ट करप्शन' (IAC) के तत्वावधान में एक अभूतपूर्व राष्ट्रव्यापी जनांदोलन प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन ने एक सशक्त और स्वायत्त 'जन लोकपाल' की स्थापना की मांग की।

2011 का अन्ना हजारे जनांदोलन (जन लोकपाल मांग)

↓

संयुक्त प्रारूपण समिति (सरकार + नागरिक समाज)

↓

संसद की कार्मिक एवं विधि संबंधी स्थायी समिति

↓

राज्यसभा की प्रवर समिति (Select Committee)

↓

लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 का पारण
(17 दिसंबर 2013: राज्यसभा पारित; 18 दिसंबर 2013: लोकसभा पारित)

↓

wincompete

राष्ट्रपति की स्वीकृति: 1 जनवरी 2014

↓

प्रवर्तन की तिथि: 16 जनवरी 2014

अधिनियमन के वैधानिक सोपान

अ. **संसदीय प्रक्रिया:** व्यापक जन-दबाव के उपरांत सरकार ने 2011 में लोकपाल एवं लोकायुक्त विधेयक प्रस्तुत किया। इसे राज्यसभा की एक प्रवर समिति (Select Committee) को भेजा गया, जिसने व्यापक संशोधनों की सिफारिश की।

ब. **संसद द्वारा पारण:** संशोधित विधेयक को **17 दिसंबर 2013 को राज्यसभा** द्वारा तथा **18 दिसंबर 2013 को लोकसभा** द्वारा पारित किया गया।

स. **राष्ट्रपति का अनुमोदन एवं प्रवर्तन: 1 जनवरी 2014** को भारत के राष्ट्रपति की औपचारिक स्वीकृति प्राप्त हुई। इसे **'लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013' (2014 का अधिनियम संख्या 1)** के रूप में अधिसूचित किया गया तथा यह **16 जनवरी 2014** से संपूर्ण भारत में प्रभावी हुआ।

लोकपाल की संरचना एवं सदस्यों की अर्हताएं

लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 की धारा 3 के अंतर्गत लोकपाल की संरचना को एक उच्च स्तरीय बहु-सदस्यीय निकाय के रूप में स्थापित किया गया है।

लोकपाल की संगठनात्मक संरचना

↓

एक अध्यक्ष
(पूर्व CJI / पूर्व SC न्यायाधीश / प्रख्यात व्यक्ति)

↙ ↘

न्यायिक सदस्य (50%) (अधिकतम 4 सदस्य)	**गैर-न्यायिक सदस्य (50%)** (अधिकतम 4 सदस्य)
• SC के पूर्व न्यायाधीश / HC के पूर्व CJI	• प्रशासन, सतर्कता व भ्रष्टाचार-रोधी विशेषज्ञ (न्यूनतम 25 वर्ष का अनुभव)

wincompete

संख्यात्मक ढांचा (धारा 3(2))

अ. **अध्यक्ष:** एक व्यक्ति जो लोकपाल का अध्यक्ष (Chairperson) होगा।

ब. **सदस्य:** अधिकतम **आठ सदस्य** (Eight Members), जिनमें से **पचास प्रतिशत (50%) अनिवार्य रूप से न्यायिक सदस्य (Judicial Members)** होंगे।

स. **सामाजिक प्रतिनिधित्व का अधिदेश:** अधिनियम की धारा 3(2) के परंतुक के अनुसार, लोकपाल के कुल सदस्यों (अध्यक्ष को छोड़कर) में से कम से कम **पचास प्रतिशत (50%) सदस्य अनिवार्य रूप से अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST), अन्य पिछड़े वर्गों (OBC), अल्पसंख्यकों तथा महिलाओं** के वर्ग में से होंगे।

अध्यक्ष एवं सदस्यों की अर्हताएं (धारा 3(3))

अ. **अध्यक्ष पद हेतु अर्हता:**

- वह व्यक्ति जो भारत का पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति (Former CJI) रहा हो; अथवा
- जो उच्चतम न्यायालय का पूर्व न्यायाधीश रहा हो; अथवा
- कोई ऐसा प्रख्यात व्यक्ति (Eminent Person) जो भ्रष्टाचार-रोधी नीति, लोक प्रशासन, सतर्कता, वित्त, विधि या प्रबंधन के मामलों में कम से कम 25 वर्षों का विशिष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट व्यावहारिक अनुभव रखता हो और जिसकी सत्यनिष्ठा निष्कलंक हो।

ब. **न्यायिक सदस्यों हेतु अर्हता:**

- वह व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का पूर्व न्यायाधीश रहा हो; अथवा
- किसी उच्च न्यायालय का पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति (Former Chief Justice of High Court) रहा हो।

स. **गैर-न्यायिक सदस्यों हेतु अर्हता:**

- कोई ऐसा निष्कलंक सत्यनिष्ठा वाला प्रख्यात व्यक्ति, जिसके पास भ्रष्टाचार-रोधी नीति, लोक प्रशासन, सतर्कता, वित्त (बैंकिंग व बीमा सहित), विधि या प्रबंधन के क्षेत्र में न्यूनतम **25 वर्षों का विशिष्ट अनुभव** हो।

पद धारण करने पर निर्योग्यताएं (धारा 3(4))

कोई व्यक्ति लोकपाल का अध्यक्ष या सदस्य नियुक्त होने का पात्र नहीं होगा यदि वह:

- संसद के किसी सदन या किसी राज्य विधानमंडल का सदस्य है;
- किसी राजनीतिक दल से संबद्ध है या किसी राजनीतिक दल का सदस्य है;
- किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया हो जिसमें नैतिक अधमता अंतर्वलित हो;
- 45 वर्ष से कम आयु का हो (पद हेतु **न्यूनतम आयु 45 वर्ष** है);
- किसी पंचायत या नगर पालिका का सदस्य हो;
- केंद्र या राज्य सरकार के अधीन लाभ का कोई पद धारण करता हो;
- कोई व्यापार या वाणिज्य चलाता हो अथवा कोई पेशा (जैसे वकालत) करता हो (उसे पद ग्रहण करने से पूर्व व्यवसाय छोड़ना होगा)।

लोकपाल की चयन समिति एवं खोज समिति (धारा 4)

लोकपाल की नियुक्ति को राजनीतिक पक्षपात से पूर्णतः सुरक्षित रखने हेतु अधिनियम की धारा 4 में एक विस्तृत, लोकतांत्रिक एवं संतुलित चयन तंत्र का विन्यास किया गया है।

लोकपाल चयन समिति (धारा 4(1))

↓

wingcompete

भारत के प्रधानमंत्री (समिति के पदेन अध्यक्ष)	लोकसभा का अध्यक्ष (पदेन सदस्य)	लोकसभा में विपक्ष का नेता (पदेन सदस्य)	भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI अथवा उनके द्वारा नामित SC के न्यायाधीश)

↓

एक प्रख्यात विधिवेत्ता (Eminent Jurist)
(उपरोक्त चार सदस्यों की सर्वसम्मत संस्तुति पर राष्ट्रपति द्वारा नामित)

चयन समिति (Selection Committee) की संरचना

लोकपाल के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति भारत के **राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant under his hand and seal)** द्वारा की जाती है। यह नियुक्ति निम्नलिखित पांच सदस्यीय चयन समिति की सिफारिश पर आधारित होती है:

अ. **भारत का प्रधानमंत्री:** चयन समिति का पदेन अध्यक्ष।

ब. **लोकसभा अध्यक्ष:** पदेन सदस्य।

स. **लोकसभा में विपक्ष का नेता:** पदेन सदस्य।

द. **भारत का मुख्य न्यायमूर्ति (CJI):** अथवा उनके द्वारा नामित उच्चतम न्यायालय का कोई आसीन न्यायाधीश (पदेन सदस्य)।

य. **एक प्रख्यात विधिवेत्ता (Eminent Jurist):** जिसे चयन समिति के प्रथम चार सदस्यों की आम सहमति या सिफारिश के आधार पर भारत के राष्ट्रपति द्वारा नामित किया जाएगा।

खोज समिति (Search Committee - धारा 4(3))

अ. **संरचना:** चयन समिति की सहायता हेतु कम से कम **आठ व्यक्तियों की एक खोज समिति** गठित की जाती है। ये व्यक्ति भ्रष्टाचार-रोधी, विधि, लोक प्रशासन आदि के क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं।

ब. **आरक्षण का नियम:** खोज समिति के कुल सदस्यों में से भी न्यूनतम **पचास प्रतिशत (50%) सदस्य SC, ST, OBC, अल्पसंख्यक और महिला** संवर्ग से होने अनिवार्य हैं।

स. **कार्य:** खोज समिति उपयुक्त अभ्यर्थियों का एक पैनल तैयार कर चयन समिति को सौंपती है। चयन समिति खोज समिति द्वारा अनुशंसित नामों के अतिरिक्त भी किसी अन्य योग्य व्यक्ति के नाम पर विचार करने हेतु स्वतंत्र होती है।

विपक्ष के नेता का विवाद एवं 2016 का संशोधन

वर्ष 2014 के 16वें लोकसभा चुनाव के पश्चात किसी भी विपक्षी दल को कुल सीटों का आवश्यक 10 प्रतिशत (55 सीटें) प्राप्त न होने के कारण सदन में कोई आधिकारिक 'मान्यता प्राप्त विपक्ष का नेता' (Leader of Opposition) नहीं था।

- इसके कारण चयन समिति की बैठकें वर्षों तक बाधित रहीं और लोकपाल की नियुक्ति नहीं हो सकी।
- **सर्वोच्च न्यायालय का हस्तक्षेप (2017):** कॉमन कॉज बनाम भारत संघ वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि लोकपाल अधिनियम एक पूर्ण विधि है और केवल विपक्ष के नेता के औपचारिक अभाव के आधार पर इसके क्रियान्वयन को अनिश्चितकाल तक नहीं रोका जा सकता।

- **2016 का संशोधन विधेयक:** संसद ने अधिनियम में संशोधन कर यह उपबंधित किया कि यदि मान्यता प्राप्त विपक्ष का नेता न हो, तो **लोकसभा में सबसे बड़े विपक्षी दल के नेता (Leader of Single Largest Opposition Party)** को चयन समिति में सम्मिलित किया जाएगा।

- **प्रथम लोकपाल की ऐतिहासिक नियुक्ति:** अंततः मार्च 2019 में भारत के प्रथम लोकपाल के रूप में उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश **न्यायमूर्ति पिनाकी चंद्र घोष (P. C. Ghose)** ने अध्यक्ष पद की शपथ ग्रहण की।
-

पदावधि, सेवा शर्तें, त्यागपत्र एवं पदच्युति (धारा 5 एवं 6)

लोकपाल के अध्यक्ष और सदस्यों की स्वतंत्रता को कार्यपालिका के किसी भी दबाव से सुरक्षित रखने हेतु कठोर वैधानिक शर्तें निर्धारित की गई हैं।

कार्यकाल एवं आयु सीमा (धारा 5(1))

अ. **पांच वर्ष का कार्यकाल:** अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य अपने पदभार ग्रहण की तारीख से **पांच वर्ष (5 Years)** की अवधि तक पद धारण करेंगे।

ब. **अधिकतम आयु सीमा:** पद पर बने रहने की अधिकतम आयु सीमा **70 वर्ष** निर्धारित है। जो भी पहले पूरा हो जाए (5 वर्ष अथवा 70 वर्ष की आयु), पदधारक सेवानिवृत्त हो जाता है।

स. **पुनर्नियुक्ति पर पूर्ण प्रतिबंध:** अध्यक्ष अथवा कोई भी सदस्य अपना कार्यकाल पूर्ण करने के उपरांत उसी पद पर पुनर्नियुक्ति का पात्र नहीं होगा।

द. **सदस्य का अध्यक्ष बनना:** लोकपाल का कोई सदस्य अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया जा सकता है, किंतु सदस्य और अध्यक्ष के रूप में उसका कुल संयुक्त कार्यकाल किसी भी परिस्थिति में **पांच वर्ष से अधिक नहीं होगा**।

भविष्य के नियोजन पर कड़े वैधानिक प्रतिबंध (धारा 8)

पदमुक्ति के उपरांत निष्पक्षता की शुचिता बनाए रखने हेतु अध्यक्ष और सदस्यों पर निम्नलिखित प्रतिबंध लगाए गए हैं:

- वे किसी भी राज्य के राज्यपाल अथवा उपराज्यपाल नियुक्त नहीं किए जा सकते;
- वे संसद या किसी राज्य विधानमंडल का चुनाव लड़ने हेतु पदमुक्ति के बाद **पांच वर्ष की अवधि** तक अपात्र होंगे;
- वे भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी लाभ के पद या नियोजन के पात्र नहीं होंगे।

वेतन एवं भत्ते

अ. **लोकपाल अध्यक्ष:** भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (CJI) के समतुल्य वेतन, भत्ते और पेंशन।

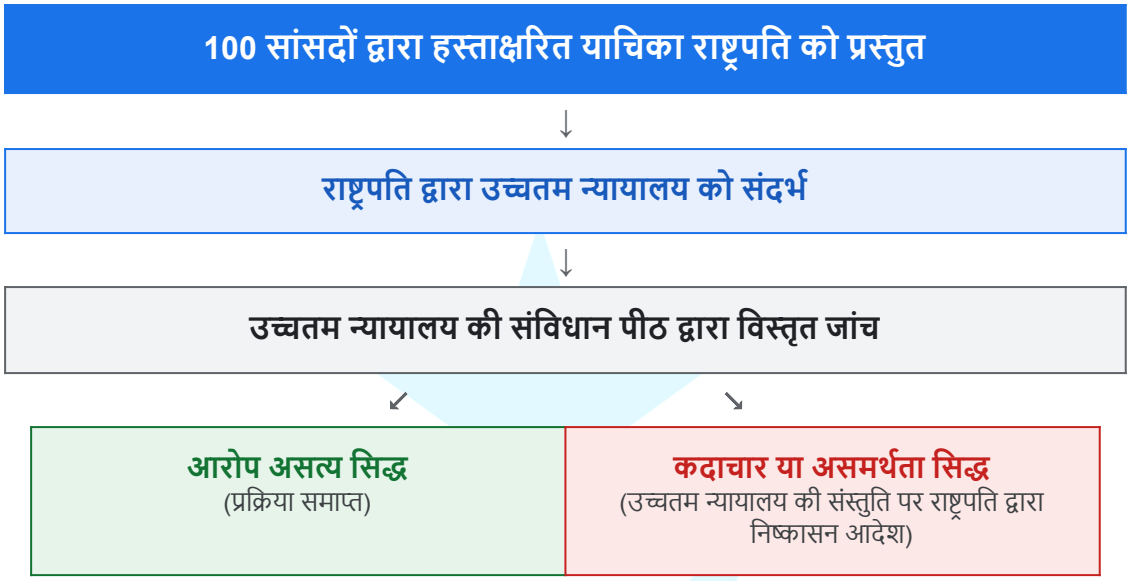
ब. **लोकपाल सदस्य:** उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य वेतन और भत्ते।

wincompete

स. **अलाभकारी परिवर्तन का निषेध:** नियुक्ति के पश्चात उनकी पदावधि के दौरान उनके वेतन और सेवा शर्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

पदच्युति की प्रक्रिया (धारा 37)

लोकपाल के अध्यक्ष अथवा किसी सदस्य को उनके पद से हटाना अत्यंत जटिल बनाया गया है ताकि सरकार दुर्भावना से उन्हें न हटा सके।



अ. **संसदीय पहल की अनिवार्यता:** अध्यक्ष या किसी सदस्य को हटाने की प्रक्रिया केवल तभी प्रारंभ हो सकती है जब संसद के **कम से कम 100 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित** एक याचिका राष्ट्रपति को प्रस्तुत की जाए।

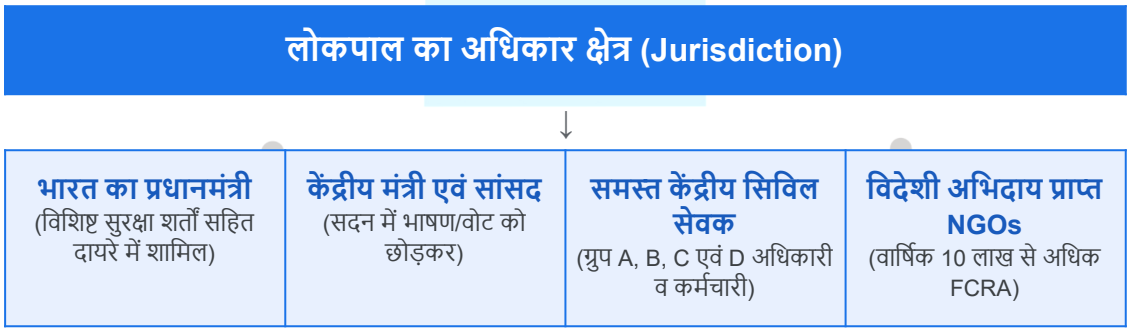
ब. **पदच्युति के केवल दो आधार:** केवल **सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour)** अथवा **असमर्थता (Incapacity)** के आधार पर।

स. **उच्चतम न्यायालय की अनिवार्य जांच:** याचिका प्राप्त होने पर राष्ट्रपति मामले को जांच हेतु अनिवार्य रूप से **उच्चतम न्यायालय को संदर्भित** करेगा।

द. **बाध्यकारी संस्तुति:** यदि उच्चतम न्यायालय जांच के उपरांत यह पुष्टि करता है कि पदधारक को हटाया जाना चाहिए, केवल तभी राष्ट्रपति उसे पदमुक्त करने का आदेश जारी कर सकता है। (जांच के दौरान राष्ट्रपति संबंधित पदधारक को निलंबित कर सकता है)।

लोकपाल का अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction - धारा 14)

लोकपाल का अधिकार क्षेत्र भारत के संपूर्ण प्रशासनिक एवं राजनीतिक पदानुक्रम को अपने दायरे में समाहित करता है। यह देश का सर्वोच्च भ्रष्टाचार-रोधी अधिकरण है।



1. भारत के प्रधानमंत्री पर क्षेत्राधिकार एवं विशिष्ट सुरक्षा उपाय

लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम की धारा 14(1)(क) के तहत भारत के प्रधानमंत्री को भी लोकपाल के अधिकार क्षेत्र में लाया गया है, किंतु देश के शीर्ष कार्यकारी पद की गरिमा और राष्ट्रीय सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए कतिपय असाधारण सुरक्षा शर्तें (Safeguards) स्थापित की गई हैं:

अ. **छूट प्राप्त विषय:** प्रधानमंत्री के विरुद्ध भ्रष्टाचार के किसी ऐसे आरोप की जांच लोकपाल नहीं कर सकता जो निम्नलिखित विषयों से संबंधित हो:

- अंतरराष्ट्रीय संबंध (International Relations);
- बाह्य एवं आंतरिक सुरक्षा (External and Internal Security);
- लोक व्यवस्था (Public Order);
- परमाणु ऊर्जा (Atomic Energy); तथा
- अंतरिक्ष (Space)।

ब. **पूर्ण पीठ का अनुमोदन:** प्रधानमंत्री के विरुद्ध प्राप्त किसी शिकायत पर प्रारंभिक जांच (Preliminary Inquiry) का आदेश तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि लोकपाल की **पूर्ण पीठ (Full Bench)** उस पर विचार न करे और पीठ के कम से कम **दो-तिहाई (2/3) सदस्य** जांच प्रारंभ करने की अपनी औपचारिक स्वीकृति न दे दें।

स. **बंद कमरे में सुनवाई (In-Camera Proceedings):** प्रधानमंत्री के विरुद्ध प्रारंभिक जांच अनिवार्य रूप से बंद कमरे में (गोपनीय रूप से) आयोजित की जाएगी।

द. **शिकायत का अभिलेखन एवं निस्तारण:** यदि लोकपाल इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि शिकायत आधारहीन थी और उसे खारिज कर दिया जाता है, तो जांच के अभिलेखों को प्रकाशित नहीं किया जाएगा और न ही किसी को उपलब्ध कराया जाएगा।

2. अन्य प्राधिकारी एवं लोक सेवक

अ. **केंद्रीय मंत्रीगण:** केंद्र सरकार के समस्त वर्तमान एवं पूर्व मंत्री (कैबिनेट, राज्य व उपमंत्री)।

ब. **संसद सदस्य (सांसद):** लोकसभा एवं राज्यसभा के सभी वर्तमान तथा पूर्व सदस्य।

- **संवैधानिक अपवाद:** संविधान के **अनुच्छेद 105(2)** का संरक्षण अक्षुण्ण रखा गया है। संसद सदस्य द्वारा संसद में कही गई किसी बात या संसद में दिए गए किसी मत (वोट) के संबंध में लोकपाल को जांच करने का कोई अधिकार नहीं है।

स. **केंद्रीय सिविल सेवक:** केंद्र सरकार के **ग्रुप 'A', 'B', 'C' एवं 'D'** के समस्त वर्तमान और पूर्व अधिकारी व कर्मचारी।

द. **सार्वजनिक उपक्रम एवं स्वायत्त निकाय:** संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित सभी निगमों, सरकारी कंपनियों (PSUs), प्राधिकरणों, सोसायटियों तथा केंद्र सरकार द्वारा पूर्णतः या अंशतः वित्तपोषित ट्रस्टों के अध्यक्ष, निदेशक, अधिकारी और कर्मचारी।

य. **गैर-सरकारी संगठन (NGOs):**

- कोई भी ऐसा संगठन या निकाय जो केंद्र सरकार से वार्षिक रूप से एक निश्चित सीमा (समय-समय पर विहित) से अधिक वित्तीय सहायता या अनुदान प्राप्त करता है।

- ऐसा कोई भी गैर-सरकारी संगठन, ट्रस्ट अथवा संस्था जो विदेशी अभिदाय (विनियमन) अधिनियम, 2010 (FCRA) के अंतर्गत एक वर्ष में **दस लाख रुपये (10 Lakhs)** से अधिक का विदेशी अंशदान प्राप्त करती है, उसके निदेशक, न्यासी और वरिष्ठ अधिकारी लोकपाल के अधिकार क्षेत्र के अधीन हैं।

wincompete

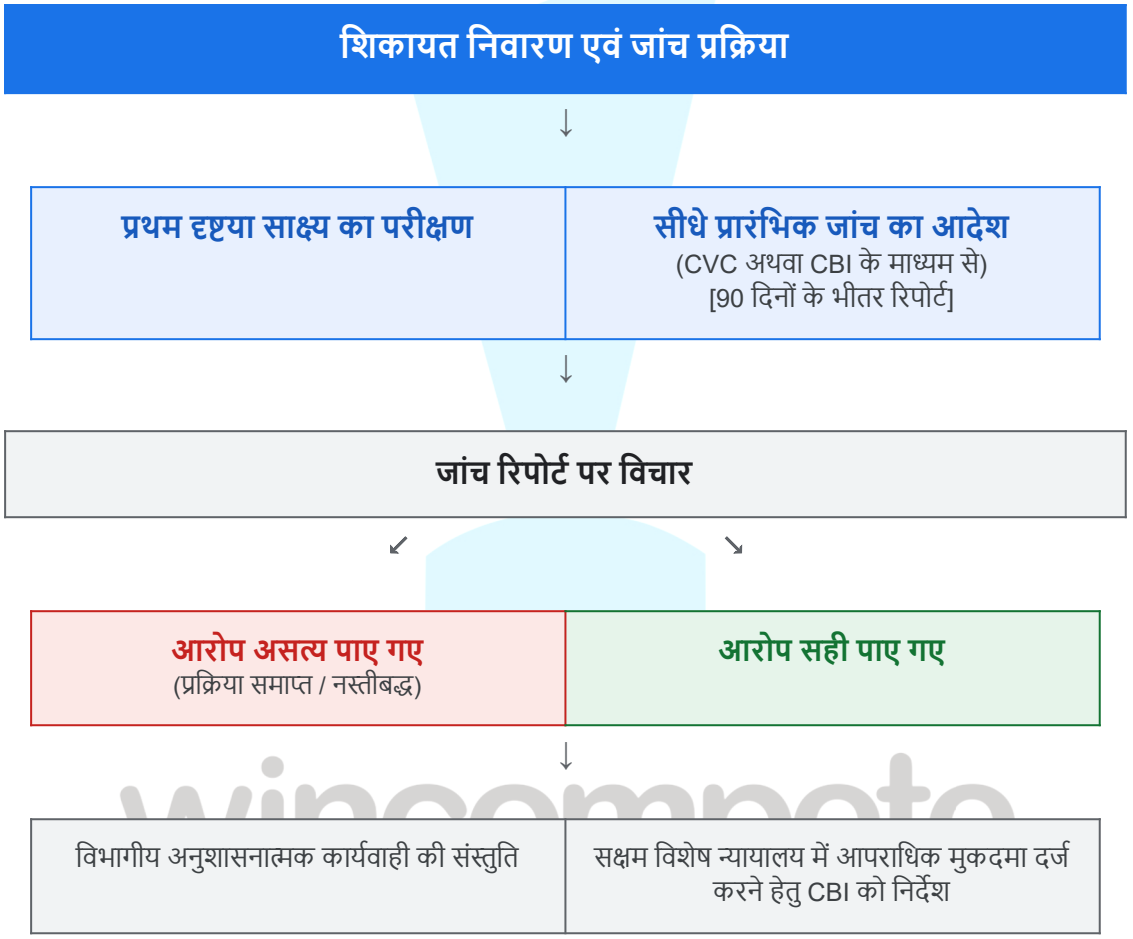
जांच एवं अभियोजन तंत्र: लोकपाल, सीवीसी एवं सीबीआई का अंतर्संबंध

अधिनियम के अंतर्गत लोकपाल को अपनी जांच और अभियोजन प्रक्रियाओं के संचालन हेतु एक स्वतंत्र विधिक अवसंरचना प्रदान की गई है।

लोकपाल के दो आंतरिक विंग

अ. **जांच शाखा (Inquiry Wing - धारा 11):** लोक सेवकों के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों की प्रारंभिक जांच (Preliminary Inquiry) करने हेतु। इसका प्रमुख 'जांच निदेशक' (Director of Inquiry) होता है।

ब. **अभियोजन शाखा (Prosecution Wing - धारा 12):** सक्षम न्यायालय में भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध आपराधिक मुकदमा चलाने हेतु। इसका प्रमुख 'अभियोजन निदेशक' (Director of Prosecution) होता है।



जांच की चरणबद्ध प्रक्रिया एवं समय-सीमाएं

अ. **प्रारंभिक जांच (Preliminary Inquiry):**

- शिकायत प्राप्त होने पर लोकपाल अपनी स्वयं की जांच शाखा को अथवा किसी केंद्रीय जांच एजेंसी (जैसे सीवीसी या सीबीआई) को प्रारंभिक जांच का निर्देश दे सकता है।
- प्रारंभिक जांच को **90 दिनों** के भीतर पूर्ण करना अनिवार्य होता है। विशेष परिस्थितियों में लिखित कारणों के आधार पर लोकपाल इसे अधिकतम 90 अतिरिक्त दिनों के लिए बढ़ा सकता है।

ब. **पूर्ण अन्वेषण (Full Investigation):**

- यदि प्रारंभिक जांच में प्रथम दृष्टया अपराध सिद्ध होता है, तो लोकपाल सीबीआई अथवा किसी अन्य एजेंसी को पूर्ण आपराधिक अन्वेषण का आदेश देता है।
- अन्वेषण को **छह माह (6 Months)** के भीतर पूर्ण करना होता है। लोकपाल के अनुमोदन से इसे छह-छह माह करके बढ़ाया जा सकता है।

सीबीआई पर लोकपाल का संप्रभु अधीक्षण

अ. **कार्यपालिका से पूर्व-अनुमति की बाध्यता समाप्त:** भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 17A तथा 19 के तहत पूर्व में सीबीआई को किसी लोक सेवक के विरुद्ध जांच या अभियोजन चलाने हेतु संबंधित सरकार/मंत्रालय से अनुमति लेनी पड़ती थी। लोकपाल अधिनियम ने यह स्थापित किया कि यदि कोई मामला लोकपाल द्वारा सीबीआई को सौंपा गया है, तो **सीबीआई को सरकार से किसी पूर्व-स्वीकृति (Sanction) की आवश्यकता नहीं होगी**; लोकपाल की अनुमति ही अंतिम होगी।

ब. **जांच अधिकारी का स्थानांतरण निषेध:** लोकपाल द्वारा सौंपे गए मामले की जांच कर रहे किसी भी सीबीआई अधिकारी का स्थानांतरण (Transfer) **लोकपाल की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता**।

लोकपाल की विशेष शक्तियां एवं सिविल न्यायालय का प्राधिकार

अधिनियम के तहत लोकपाल को पारंपरिक प्रशासनिक संस्थाओं की तुलना में अत्यधिक कठोर और प्रभावी विधिक शक्तियां सौंपी गई हैं:

अ. **सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियां (धारा 27):** लोकपाल की जांच शाखा को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (CPC) के अधीन निम्नलिखित मामलों में वही शक्तियां प्राप्त हैं जो किसी सिविल कोर्ट को होती हैं:

- किसी भी व्यक्ति को समन जारी करना, उपस्थित कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;
- किसी भी सरकारी अथवा निजी दस्तावेज को प्रस्तुत करने की अपेक्षा करना;
- शपथ पत्रों (Affidavits) पर साक्ष्य ग्रहण करना;
- किसी भी न्यायालय या कार्यालय से सार्वजनिक अभिलेख मंगाना;
- साक्षियों या दस्तावेजों के परीक्षण हेतु कमीशन जारी करना।

ब. **संपत्ति की अनंतिम कुर्की (Attachment of Assets - धारा 29):** यदि लोकपाल को यह विश्वास करने का कारण है कि किसी लोक सेवक ने भ्रष्ट तरीकों से संपत्ति अर्जित की है और उसके बेचे जाने या छिपाए जाने की संभावना है, तो लोकपाल जांच लंबित रहने के दौरान भी उस **संपत्ति को 90 दिनों के लिए जब्त (Attach)** करने का आदेश दे सकता है (विशेष न्यायालय के पुष्टिकरण के अधीन)।

स. **भ्रष्ट लोक सेवकों के स्थानांतरण या निलंबन की संस्तुति (धारा 31 एवं 32):** लोकपाल केंद्र सरकार को निर्देश दे सकता है कि वह जांच को प्रभावित करने की क्षमता रखने वाले किसी अधिकारी को उस पद से स्थानांतरित करे अथवा उसे निलंबित करे।

द. **तलाशी एवं जब्ती की शक्ति (Search and Seizure):** लोकपाल किसी भी एजेंसी को किसी परिसर की तलाशी लेने तथा भ्रष्टाचार से जुड़े गुप्त दस्तावेजों व नकदी को जब्त करने का अधिकार दे सकता है।

राज्यों में लोकायुक्त संस्था: विधिक संरचना एवं तुलनात्मक स्थिति

लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 की धारा 63 यह अधिदेश देती है कि इस अधिनियम के लागू होने के **एक वर्ष के भीतर** प्रत्येक राज्य विधानमंडल विधि बनाकर 'लोकायुक्त' की संस्था की स्थापना करेगा (यदि राज्य में पूर्व से यह संस्था विद्यमान नहीं है)।

लोकायुक्त का राज्यों में विकास

↓

महाराष्ट्र: प्रथम प्रवर्तक (1971)	राजस्थान लोकायुक्त (1973)	कर्नाटक: सर्वाधिक शक्तिशाली
• लोकायुक्त अधिनियम पारित करने वाला देश का पहला राज्य बना	• राजस्थान लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त अधिनियम 1973 • ID दुआ प्रथम लोकायुक्त	• भ्रष्टाचार-रोधी पुलिस ब्यूरो सीधे लोकायुक्त के नियंत्रण में

राज्यों में लोकायुक्त का ऐतिहासिक विकास

अ. **महाराष्ट्र (1971):** लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त संस्था की स्थापना करने वाला **भारत का प्रथम राज्य महाराष्ट्र** बना, जिसने वर्ष 1971 में 'महाराष्ट्र लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त अधिनियम' पारित किया। (यद्यपि ओडिशा ने 1970 में ही अधिनियम पारित कर दिया था, किंतु उसने इसे 1983 में लागू किया)।

ब. **राजस्थान लोकायुक्त एवं उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973:** राजस्थान में 3 फरवरी 1973 को अध्यादेश जारी हुआ, जो कालांतर में अधिनियम बना। **न्यायमूर्ति आई. डी. दुआ** राजस्थान के प्रथम लोकायुक्त बने (अगस्त 1973)। राजस्थान में लोकायुक्त का कार्यकाल 5 वर्ष है। इसके अधिकार क्षेत्र में मंत्री, राज्य उपक्रमों के अध्यक्ष तथा समस्त प्रशासनिक अधिकारी आते हैं, किंतु **मुख्यमंत्री, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, सरपंच/पंच, तथा राजस्थान लोक सेवा आयोग (RPSC) के अध्यक्ष व सदस्य इसके अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे गए हैं**।

स. **कर्नाटक लोकायुक्त का सशक्त मॉडल:** न्यायमूर्ति एन. संतोष हेगड़े के कार्यकाल में कर्नाटक लोकायुक्त देश का सबसे शक्तिशाली लोकायुक्त सिद्ध हुआ। कर्नाटक लोकायुक्त को अपनी स्वयं की स्वतंत्र भ्रष्टाचार-रोधी पुलिस विंग प्राप्त है, जिसे सीधे छापे मारने, अभियोजन चलाने तथा मुख्यमंत्रियों तक को पद छोड़ने हेतु विवश करने की शक्ति प्राप्त रही है।

विभिन्न राज्यों के लोकायुक्तों का संरचनात्मक एवं विधिक विभेद

तुलना का आधार	महाराष्ट्र	राजस्थान	कर्नाटक	ओडिशा

wincompete

स्थापना वर्ष	**1971** (देश में सर्वप्रथम)	**1973**	1984	1970 (अधिनियम); **1983** (प्रवर्तन)
मुख्यमंत्री दायरे में?	2022 के नए कानून द्वारा शामिल	**पूर्णतः बाहर**	**दायरे में सम्मिलित**	**दायरे में सम्मिलित**
स्वतंत्र पुलिस बल	नहीं (राज्य पुलिस पर निर्भर)	नहीं (राज्य जांच ब्यूरो पर निर्भर)	**हाँ** (समर्पित लोकायुक्त पुलिस)	नहीं
कार्यकाल	5 वर्ष	**5 वर्ष** (पूर्व में 8 वर्ष किया गया था, पुनः 5 वर्ष)	5 वर्ष	5 वर्ष
जांच का दायरा	भ्रष्टाचार एवं कुप्रशासन दोनों	**केवल भ्रष्टाचार** (कदाचार)	भ्रष्टाचार एवं कुप्रशासन दोनों	केवल भ्रष्टाचार

संस्थागत चुनौतियां, विधिक कमियां एवं सुधार की दिशा

यद्यपि लोकपाल एवं लोकायुक्त संस्थाओं का गठन भारतीय लोकतंत्र में भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक युगांतकारी विधायी उपलब्धि है, तथापि इसके व्यावहारिक संचालन में अनेक संस्थागत सीमाएं परिलक्षित हुई हैं:

अ. **व्हिसलब्लोअर संरक्षण तंत्र का अभाव:** यद्यपि संसद ने 'व्हिसलब्लोअर्स प्रोटेक्शन एक्ट, 2014' पारित किया, किंतु उसके नियमों को प्रभावी रूप से अधिसूचित न किए जाने के कारण लोकपाल को गुप्त सूचनाएं देने वाले नागरिकों व अधिकारियों को पर्याप्त भौतिक व विधिक सुरक्षा उपलब्ध नहीं हो पाती।

ब. **शिकायतों के निस्तारण में जटिलताएं:** अधिनियम में यह प्रावधान है कि यदि कोई शिकायत 'झूठी या परेशान करने वाली' (Frivolous or Vexatious) पाई जाती है, तो शिकायतकर्ता को **एक वर्ष तक का कारावास अथवा एक लाख रुपये तक का अर्थदंड** दिया जा सकता है (धारा 46)। इस कठोर दंडात्मक उपबंध के कारण सामान्य नागरिक वास्तविक शिकायतों को भी दर्ज कराने से भयभीत रहते हैं।

स. **काल-सीमा का बंधन (धारा 53):** लोकपाल किसी ऐसे भ्रष्टाचार के मामले की जांच नहीं कर सकता जो अपराध किए जाने की तिथि से **सात वर्ष (7 Years)** की समाप्ति के पश्चात दर्ज कराया गया हो। कई बड़े वित्तीय घोटालों का खुलासा सात वर्ष के पश्चात होता है, जो इस सीमा के कारण जांच से बच जाते हैं।

द. **मानव संसाधन एवं अवसंरचनात्मक अभाव:** लोकपाल की अपनी स्वयं की स्वतंत्र एवं विशाल जांच मशीनरी का पूर्ण विकास अभी तक नहीं हो सका है; यह आज भी प्रारंभिक जांच और अन्वेषण हेतु काफी हद तक सीबीआई और सीवीसी जैसी केंद्रीय एजेंसियों पर ही निर्भर रहता है।

संवैधानिक, प्रशासनिक एवं विधिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **ओम्बुड्समैन (Ombudsman):** स्कैंडिनेवियाई मूल का शब्द, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'किसी अन्य व्यक्ति की ओर से बोलने वाला आधिकारिक प्रतिनिधि या जन-अभिकर्ता'। आधुनिक विधि में यह नागरिकों के प्रशासनिक कष्टों व भ्रष्टाचार की स्वतंत्र जांच करने वाले सांविधिक प्राधिकारी को संदर्भित करता है।

ब. **प्रारंभतः शून्य (Void Ab Initio):** वह आदेश, चयन या नियुक्ति जो अपने आरंभ के क्षण से ही विधिक दृष्टि से पूर्णतः अवैध, प्रभावहीन और अस्तित्वहीन मानी जाती है (जैसे पी. जे. थॉमस वाद में प्रतिपादित)।

स. **इन-कैमरा कार्यवाही (In-Camera Proceedings):** न्यायालय अथवा अधिकरण की वह बंद कमरे में होने वाली गोपनीय सुनवाई जिसमें सामान्य जनता, दर्शक तथा मीडिया का प्रवेश पूर्णतः प्रतिबंधित होता है।

द. **अनंतिम कुर्की (Provisional Attachment):** किसी आरोपी लोक सेवक द्वारा भ्रष्ट साधनों से अर्जित की गई चल अथवा अचल संपत्ति को मुकदमे के अंतिम निर्णय से पूर्व ही एक निश्चित समयावधि हेतु सरकारी नियंत्रण में लेने का अंतरिम कानूनी आदेश।

य. **संस्थागत सत्यनिष्ठा (Institutional Integrity):** किसी उच्च संवैधानिक अथवा भ्रष्टाचार-रोधी पद पर आसीन होने वाले व्यक्ति की ऐसी निष्कलंक छवि और निर्विवाद आचरण, जिससे उस संस्था की सार्वजनिक साख, स्वतंत्रता और मर्यादा पर समाज का अटूट विश्वास बना रहे।

र. **कुप्रशासन (Maladministration):** लोक सेवकों द्वारा अपने प्रशासनिक कर्तव्यों के निष्पादन में किया गया ऐसा कार्य जो अनुचित, मनमाना, पक्षपातपूर्ण, विलंबकारी अथवा नियमों की घोर उपेक्षा पर आधारित हो, चाहे उसमें प्रत्यक्ष वित्तीय भ्रष्टाचार शामिल हो या न हो।

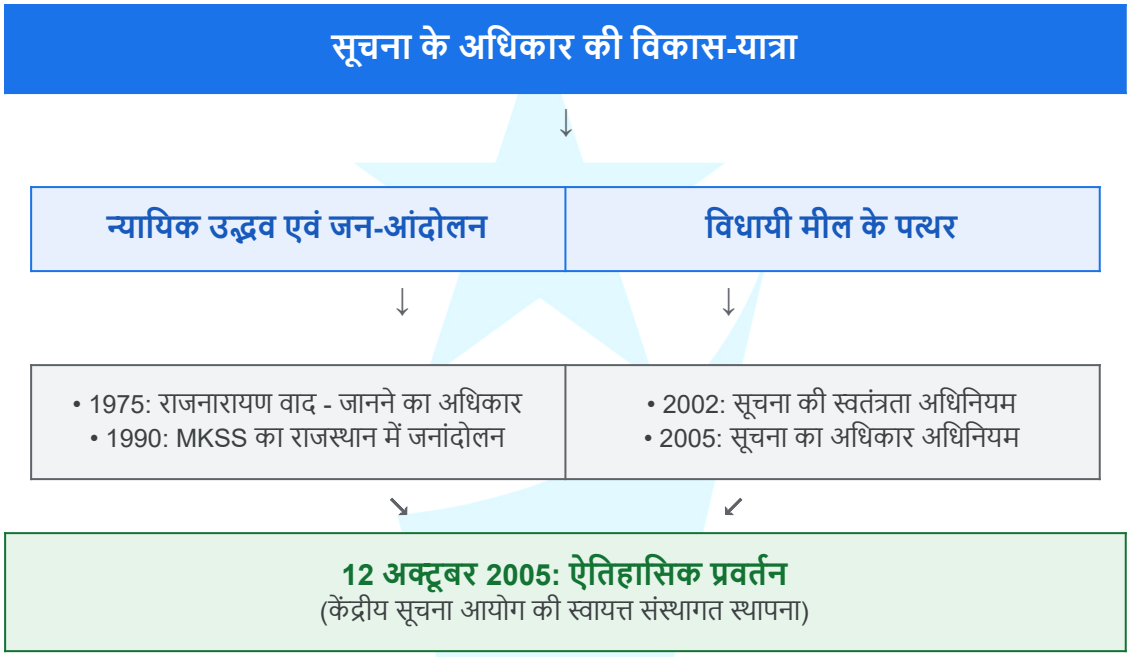
ल. **अधिपत्र (Warrant under Hand and Seal):** राष्ट्रपति द्वारा अपने निजी हस्ताक्षर एवं भारत के राजकीय प्रतीक (सील) के अंतर्गत जारी किया गया सर्वोच्च औपचारिक विधिक आदेश, जो पद की असाधारण स्वायत्तता को प्रमाणित करता है।

अध्याय 21: केंद्रीय सूचना आयोग (CIC): सूचना का अधिकार अधिनियम 2005, आयोग की संरचना, मुख्य सूचना आयुक्त की शक्तियां, 2019 के संशोधन एवं चुनौतियां

सूचना के अधिकार का संवैधानिक दर्शन एवं संस्थागत विकासक्रम

लोकतांत्रिक अभिशासन की प्राणवायु पारदर्शिता, खुलापन एवं लोक प्राधिकारियों की जन-जवाबदेही है। एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य में नागरिक ही वास्तविक संप्रभु होते हैं; अतः उन्हें यह जानने का नैसर्गिक एवं विधिक अधिकार है कि उनके द्वारा चुने गए प्रतिनिधि तथा उनके करों से पोषित प्रशासनिक तंत्र किस प्रकार कार्य कर रहा है। औपनिवेशिक काल का **शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 (Official Secrets Act, 1923)** प्रशासनिक कार्यप्रणाली पर गोपनीयता का आवरण डालता था, जिसने नौकरशाही में अनुत्तरदायित्व और भ्रष्टाचार को पोषित किया।

भारतीय संविधान में यद्यपि 'सूचना का अधिकार' (Right to Information) शब्दावली का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं था, किंतु भारत के उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से इसे संविधान के **अनुच्छेद 19(1)(क) [वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य]** तथा **अनुच्छेद 21 [प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण]** के अंतर्गत एक अनिवार्य अंतर्निहित मौलिक अधिकार घोषित किया।



सूचना के अधिकार का ऐतिहासिक न्यायिक विकास

अ. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राज नारायण (1975):** उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ के न्यायमूर्ति के. के. मैथ्यू ने ऐतिहासिक सिद्धांत प्रतिपादित किया कि एक ऐसे समाज में जहां सभी शक्ति के स्रोत नागरिक हैं, लोक सेवकों द्वारा किए गए प्रत्येक सार्वजनिक कृत्य को जानने का नागरिकों को अधिकार है। संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) में निहित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में 'जानने का अधिकार' (Right to Know) स्वतः समाहित है।

ब. **एसपी गुप्ता बनाम भारत संघ (1981):** न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती ने अभीर्धारित किया कि खुली सरकार की अवधारणा प्रत्यक्ष रूप से लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व से जुड़ी है। जहां गोपनीयता का अनावश्यक आवरण होगा, वहां प्रशासनिक दुर्भावना और भ्रष्टाचार पनपेगा। सूचना तक पहुंच लोक सहभागिता की अनिवार्य पूर्व-शर्त है।

स. **मजदूर किसान शक्ति संगठन (MKSS) एवं अरुणा रॉय की भूमिका:** 1990 के दशक में राजस्थान के देवडूंगरी (राजसमंद) में अरुणा रॉय, निखिल डे तथा शंकर सिंह के नेतृत्व में मजदूर किसान शक्ति संगठन ने अकाल राहत कार्यों में मस्टर रोल और बिल-वाउचरों की सार्वजनिक जांच हेतु ऐतिहासिक जनांदोलन प्रारंभ किया। "हमारा पैसा, हमारा हिसाब" तथा "जानने का हक, जीने का हक" के नारों ने इस प्रशासनिक सुधार को जन-आंदोलन में रूपांतरित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप राजस्थान वर्ष 2000 में सूचना का अधिकार कानून बनाने वाले देश के अग्रणी राज्यों में सम्मिलित हुआ (सर्वप्रथम तमिलनाडु ने 1997 में ऐसा कानून बनाया था)।

द. **सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम, 2002 (Freedom of Information Act, 2002):** केंद्र स्तर पर अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने वर्ष 2002 में सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम पारित किया। किंतु इसमें अनेक प्रक्रियात्मक त्रुटियां, अपीलीय अधिकरणों का अभाव तथा कमजोर प्रवर्तन तंत्र होने के कारण इसे कभी पूर्ण रूप से अधिसूचित नहीं किया जा सका।

य. **सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 का अधिनियमन:** राष्ट्रीय सलाहकार परिषद (NAC) की संस्तुतियों तथा नागरिक समाज के सघन विमर्श के उपरांत संसद द्वारा एक व्यापक और कठोर 'सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005' (2005 का अधिनियम संख्या 22) पारित किया गया। इसे 15 जून 2005 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और यह **12 अक्टूबर 2005** से जम्मू-कश्मीर (तत्कालीन स्थिति) को छोड़कर संपूर्ण देश में पूर्णतः लागू हुआ।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005: मुख्य कानूनी प्रावधान एवं प्रशासनिक ढांचा

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 कार्यपालिका की मनमानी पर अंकुश लगाने तथा नागरिकों को व्यावहारिक रूप से सूचना प्राप्त करने का विधिक अधिकार प्रदान करने वाला एक क्रांतिकारी विधान है।

प्रमुख वैधानिक परिभाषाएं

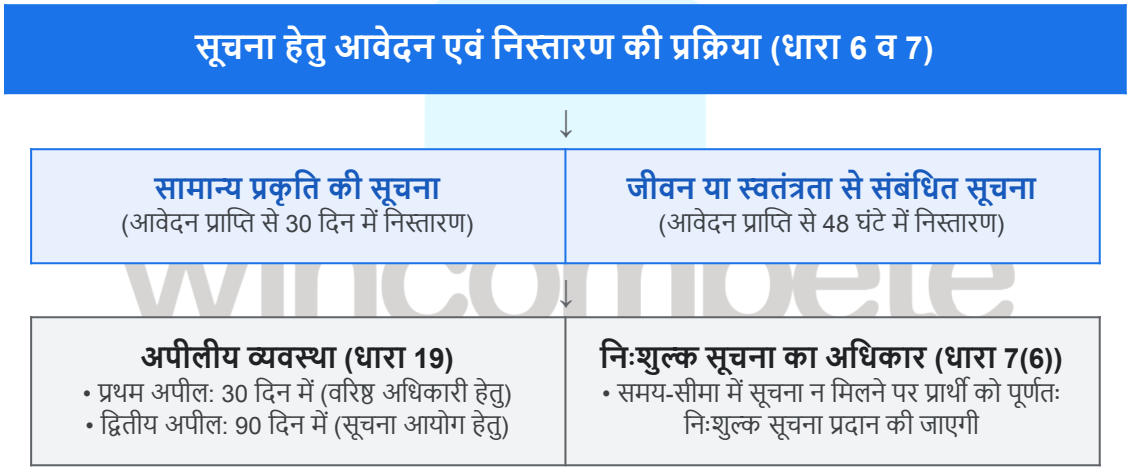
अ. **'सूचना' की परिभाषा (धारा 2(च)):** इसके अंतर्गत किसी भी रूप में कोई भी सामग्री सम्मिलित है, जिसमें अभिलेख (Records), दस्तावेज, ज्ञापन (Memos), ई-मेल, मत, सलाह, प्रेस विज्ञप्तियां, परिपत्र, आदेश, लॉगबुक, संविदा, रिपोर्ट, कागज-पत्र, नमूने, मॉडल, तथा किसी इलेक्ट्रॉनिक रूप में धारित डेटा सामग्री शामिल है। इसके अतिरिक्त किसी निजी निकाय से संबंधित ऐसी कोई सूचना भी इसमें शामिल है जिस तक किसी लोक प्राधिकारी द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन पहुंच बनाई जा सकती है।

ब. **'लोक प्राधिकारी' (Public Authority - धारा 2(ज)):** कोई भी ऐसा प्राधिकरण, निकाय या संस्थान जो:

- संविधान द्वारा या उसके अधीन स्थापित किया गया हो;
- संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा स्थापित किया गया हो;
- राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा स्थापित किया गया हो;
- समुचित सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना या बनाए गए आदेश द्वारा स्थापित या गठित किया गया हो, जिसके अंतर्गत सरकार द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा **पर्याप्त रूप से वित्तपोषित (Substantially Financed)** कोई गैर-सरकारी संगठन (NGO) भी सम्मिलित है।

लोक सूचना अधिकारी (PIO) एवं समय-सीमा का वैधानिक चक्र

अधिनियम नागरिकों को सूचना प्रदाय करने हेतु एक त्रि-स्तरीय समयबद्ध प्रशासनिक तंत्र स्थापित करता है:



अ. **सामान्य सूचना:** लोक सूचना अधिकारी (PIO) आवेदन प्राप्ति के **30 दिनों के भीतर** या तो सूचना उपलब्ध कराएगा अथवा धारा 8 और 9 के अधीन कारणों का उल्लेख करते हुए आवेदन अस्वीकृत करेगा (धारा 7(1))।

ब. **सहायक लोक सूचना अधिकारी (APIO) के माध्यम से:** यदि आवेदन सहायक पीआईओ को सौंपा जाता है, तो निर्धारित 30 दिन की अवधि में **5 दिन अतिरिक्त** जोड़े जाएंगे (कुल 35 दिन)।

स. **जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सूचना:** यदि मांगी गई सूचना किसी व्यक्ति के **जीवन या स्वतंत्रता (Life or Liberty)** से संबंधित है, तो लोक सूचना अधिकारी को आवेदन प्राप्त होने के **48 घंटे के भीतर** सूचना उपलब्ध कराना विधिक रूप से अनिवार्य है।

द. **तृतीय पक्ष की सूचना (Third Party Information - धारा 11):** यदि सूचना किसी तीसरे पक्ष से संबंधित है, तो पीआईओ 5 दिन के भीतर तीसरे पक्ष को नोटिस देगा और तीसरे पक्ष को अपना पक्ष रखने हेतु 10 दिन का समय मिलेगा; ऐसे मामलों में सूचना निस्तारण की कुल अवधि **40 दिन** होगी।

य. **निःशुल्क सूचना का विधिक अधिकार (धारा 7(6)):** यदि कोई लोक प्राधिकारी अधिनियम में निर्धारित विधिक समय-सीमा (30 दिन अथवा 48 घंटे) के भीतर सूचना उपलब्ध कराने में विफल रहता है, तो प्रार्थी को वह संपूर्ण सूचना **पूर्णतः निःशुल्क (Free of Cost)** उपलब्ध कराई जाएगी, चाहे पृष्ठों की संख्या कितनी भी हो।

सूचना प्रकटीकरण से छूट एवं गोपनीयता के अपवाद (धारा 8 एवं धारा 24)

सूचना का अधिकार निरपेक्ष नहीं है। राष्ट्रीय सुरक्षा, संप्रभुता, रणनीतिक हितों तथा नागरिकों की व्यक्तिगत निजता के संरक्षण हेतु अधिनियम की धारा 8(1) के अंतर्गत ग्यारह विशिष्ट श्रेणियों (उपखंड क से ट) को सूचना देने से विधिक छूट प्रदान की गई है।

धारा 8(1) के अंतर्गत प्रकटीकरण से छूट की श्रेणियां

अ. **राष्ट्र की संप्रभुता एवं सुरक्षा (उपखंड क):** वह सूचना जिसके प्रकटीकरण से भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, रणनीतिक, वैज्ञानिक या आर्थिक हित, अथवा किसी विदेशी राज्य के साथ संबंध प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हों।

ब. **न्यायालय द्वारा निषिद्ध (उपखंड ख):** वह सूचना जिसे किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा प्रकाशित करने से स्पष्ट रूप से मना किया गया हो या जिसके प्रकटीकरण से न्यायालय की अवमानना होती हो।

स. **संसदीय विशेषाधिकार (उपखंड ग):** वह सूचना जिसके प्रकटीकरण से संसद या राज्य विधानमंडल के विशेषाधिकार का हनन होता हो।

द. **व्यापारिक गोपनीयता एवं बौद्धिक संपदा (उपखंड घ):** वाणिज्यिक विश्वास (Commercial Confidence), व्यापारिक गोपनीयता या बौद्धिक संपदा, जिसके प्रकटीकरण से किसी तीसरे पक्ष की प्रतिस्पर्धी स्थिति को क्षति पहुंचती हो (जब तक कि व्यापक लोकहित ऐसा प्रकटीकरण आवश्यक न बना दे)।

य. **वैश्वासिक संबंध (Fiduciary Relationship - उपखंड ङ):** किसी व्यक्ति को उसके वैश्वासिक संबंध (जैसे वकील-मुवक्किल, डॉक्टर-रोगी, ट्रस्टी आदि) में उपलब्ध सूचना।

र. **विदेशी सरकार से प्राप्त गोपनीय सूचना (उपखंड च):** किसी विदेशी सरकार से विश्वास में प्राप्त हुई सूचना।

wincompete

ल. **शारीरिक सुरक्षा एवं जांच स्रोत (उपखंड छ):** वह सूचना जिसके प्रकटीकरण से किसी व्यक्ति का जीवन या शारीरिक सुरक्षा खतरे में पड़ती हो, अथवा विधि प्रवर्तन या सुरक्षा प्रयोजनों हेतु विश्वास में दिए गए स्रोत की पहचान उजागर होती हो।

व. **अपराधियों के अन्वेषण में बाधा (उपखंड ज):** वह सूचना जिससे अपराधियों के अन्वेषण (Investigation), गिरफ्तारी या अभियोजन की प्रक्रिया में अड़चन आती हो।

श. **मंत्रिमंडल के कागजात (Cabinet Papers - उपखंड झ):** मंत्रिमंडल, सचिवों और अन्य अधिकारियों के विचार-विमर्श के अभिलेख। (परंतु जब मंत्रिमंडल का निर्णय हो चुका हो और मामला पूर्ण हो चुका हो, तब वे निर्णय और उनके आधारभूत कागजात सार्वजनिक किए जाएंगे)।

ष. **व्यक्तिगत सूचना एवं निजता का अधिकार (उपखंड ञ):** वह सूचना जो व्यक्तिगत सूचना से संबंधित है जिसका किसी लोक क्रियाकलाप या लोकहित से कोई सरोकार नहीं है, अथवा जिससे व्यक्ति की निजता पर अनावश्यक अतिक्रमण होता हो।

लोकहित की सर्वोच्चता (Public Interest Override - धारा 8(2))

संविधान के लोकतांत्रिक दर्शन को सुरक्षित रखने हेतु धारा 8(2) एक अत्यंत शक्तिशाली उपबंध करती है: शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 तथा धारा 8(1) के छूटों के होते हुए भी, किसी लोक प्राधिकारी को सूचना तक पहुंच की अनुमति दी जा सकेगी यदि **सूचना को प्रकट करने में लोकहित, संरक्षित किए जाने वाले हितों के नुकसान की तुलना में अधिक भारी हो**।

सुरक्षा एवं आसूचना संगठनों को छूट (धारा 24 एवं द्वितीय अनुसूची)

अ. **छूट प्राप्त संगठन:** अधिनियम की धारा 24 के अनुसार, केंद्र सरकार द्वारा स्थापित सुरक्षा और आसूचना संगठन जो द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं (जैसे इंटेलिजेंस ब्यूरो - IB, रिसर्च एंड एनालिसिस विंग - RAW, प्रवर्तन निदेशालय - ED, राष्ट्रीय तकनीकी अनुसंधान संगठन - NTRO आदि), इस अधिनियम के दायरे से बाहर हैं।

ब. **छूट के अपवाद (भ्रष्टाचार एवं मानवाधिकार उल्लंघन):** यह छूट पूर्ण नहीं है। धारा 24 के परंतुक के अनुसार, यदि मांगी गई सूचना **भ्रष्टाचार के आरोपों** अथवा **मानवाधिकारों के उल्लंघन** से संबंधित है, तो इन संगठनों को भी छूट प्राप्त नहीं होगी। मानवाधिकार उल्लंघन के मामलों में सूचना केवल केंद्रीय सूचना आयोग के पूर्वानुमोदन से ही 45 दिनों के भीतर दी जाएगी।

केंद्रीय सूचना आयोग: गठन, सांविधिक स्थिति एवं प्रशासनिक विन्यास

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अध्याय तीन के अंतर्गत **धारा 12** केंद्रीय सूचना आयोग (Central Information Commission - CIC) के गठन का आदेश देती है।

केंद्रीय सूचना आयोग की विधिक स्थिति

गैर-संवैधानिक निकाय (Non-Constitutional)	सांविधिक निकाय (Statutory Body)
• संविधान के किसी अनुच्छेद में उल्लेख नहीं • संविधान सभा द्वारा नहीं बनाया गया	• RTI अधिनियम 2005 की धारा 12 द्वारा स्थापित • संसद के विधि द्वारा प्रदत्त स्वायत्तता

↘ ↙

देश का सर्वोच्च अपीलीय एवं निगरानी अधिकरण
(केंद्र सरकार एवं UTs के लोक प्राधिकारियों हेतु)

आयोग की संस्थागत विशेषताएं

अ. **सांविधिक स्वायत्त निकाय:** सीआईसी न तो संवैधानिक निकाय है और न ही केवल कार्यपालिका संकल्प से बना निकाय; यह संसद के अधिनियम (RTI Act 2005) द्वारा स्थापित एक उच्च शक्ति प्राप्त **सांविधिक निकाय (Statutory Body)** है।

ब. **मुख्यालय एवं क्षेत्राधिकार:** आयोग का मुख्यालय दिल्ली में स्थित है। यह केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों, विभागों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (PSUs), राष्ट्रीयकृत बैंकों, केंद्र शासित प्रदेशों (UTs) के प्रशासन तथा केंद्र से वित्तपोषित समस्त निकायों के सूचना अपीलों का सर्वोच्च मंच है।

स. **प्रथम मुख्य सूचना आयुक्त:** केंद्रीय सूचना आयोग के प्रथम मुख्य सूचना आयुक्त पूर्व वरिष्ठ सिविल सेवक **वजाहत हबीबुल्लाह** थे। प्रथम महिला मुख्य सूचना आयुक्त बनने का गौरव श्रीमती **दीपक संधू (2013)** को प्राप्त हुआ।

केंद्रीय सूचना आयोग की संरचना एवं चयन समिति (धारा 12)

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 12(2) के अनुसार, केंद्रीय सूचना आयोग एक बहु-सदस्यीय निकाय है।

संख्यात्मक ढांचा (धारा 12(2))

आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनता है:

- एक **मुख्य सूचना आयुक्त (Chief Information Commissioner - CIC)**, जो आयोग का प्रशासनिक प्रमुख होता है।
- उतनी संख्या में केंद्रीय **सूचना आयुक्त (Information Commissioners - ICs)**, जितनी आवश्यक समझी जाए, किंतु जो **दस (10) से अधिक नहीं होंगे**।
- अतः आयोग की अधिकतम स्वीकृत सदस्य संख्या **ग्यारह (1 मुख्य सूचना आयुक्त + अधिकतम 10 सूचना आयुक्त)** हो सकती है।

आयुक्तों की अनिवार्य अर्हताएं (धारा 12(5))

मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्त विधि, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, समाज सेवा, प्रबंधन, पत्रकारिता, जनसंचार माध्यम या प्रशासन तथा शासन का व्यापक ज्ञान और अनुभव रखने वाले समाज के प्रख्यात व्यक्ति होंगे।

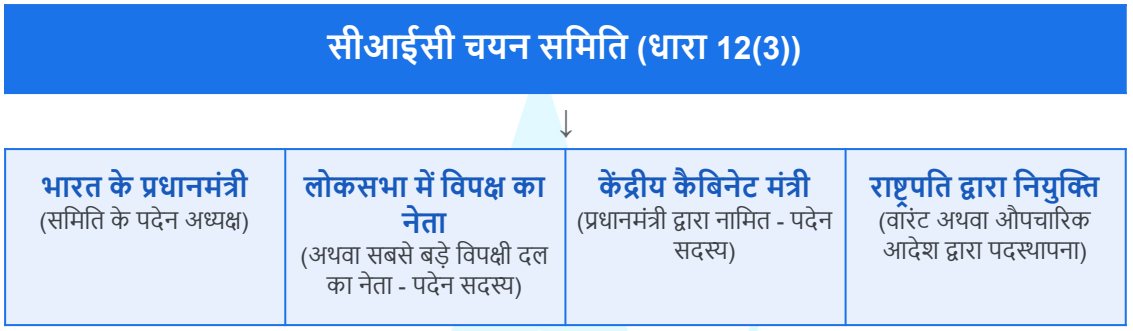
wincompete

पद धारण करने पर विधिक प्रतिबंध (धारा 12(6))

मुख्य सूचना आयुक्त या कोई सूचना आयुक्त:

- संसद का सदस्य या किसी राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के विधानमंडल का सदस्य नहीं होगा;
- किसी राजनीतिक दल से संबद्ध कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करेगा;
- कोई व्यापार या वाणिज्य नहीं चलाएगा अथवा कोई लाभ का पेशा नहीं करेगा।

चयन समिति की संरचना (धारा 12(3))
मुख्य सूचना आयुक्त तथा सूचना आयुक्तों की नियुक्ति भारत के **राष्ट्रपति** द्वारा एक तीन सदस्यीय उच्च स्तरीय चयन समिति की सिफारिश पर की जाती है:



अ. **प्रधानमंत्री:** चयन समिति के अध्यक्ष।

ब. **लोकसभा में विपक्ष का नेता:** समिति के सदस्य। (स्पष्टीकरण: यदि लोकसभा में विपक्ष के नेता को मान्यता प्राप्त नहीं है, तो लोकसभा में सरकार के विरोधी सबसे बड़े एकल समूह के नेता को विपक्ष का नेता समझा जाएगा)।

स. **केंद्रीय कैबिनेट मंत्री:** प्रधानमंत्री द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाने वाला एक केंद्रीय मंत्रिमंडल का सदस्य।

पदावधि, सेवा शर्तें एवं पदच्युति की विधिक प्रक्रिया (धारा 13 एवं 14)
केंद्रीय सूचना आयोग के पदाधिकारियों की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए अधिनियम में निश्चित कार्यकाल तथा उच्चतम न्यायालय की जांच के अधीन पदच्युति का कड़ा ढांचा प्रदान किया गया था।

शपथ या प्रतिज्ञान (धारा 13(3))
मुख्य सूचना आयुक्त या कोई सूचना आयुक्त अपना पद ग्रहण करने से पूर्व, **राष्ट्रपति** अथवा उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष अधिनियम की **प्रथम अनुसूची** में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा।

पुनर्नियुक्ति पर पूर्ण रोक (धारा 13(2))
मुख्य सूचना आयुक्त अथवा कोई सूचना आयुक्त अपना कार्यकाल समाप्त होने के पश्चात **उसी पद पर पुनर्नियुक्ति का पात्र नहीं होगा**।

- **अपवाद:** कोई सूचना आयुक्त मुख्य सूचना आयुक्त के पद पर नियुक्त किया जा सकता है, किंतु सूचना आयुक्त और मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में उसकी **कुल पदावधि संयुक्त रूप से पांच वर्ष (अथवा 2019 के पश्चात विहित अवधि) से अधिक नहीं हो सकती**।
-

पदच्युति की कठोर प्रक्रिया (धारा 14)
केंद्रीय सूचना आयोग के मुख्य सूचना आयुक्त या किसी आयुक्त को उसके पद से हटाने के लिए अधिनियम की धारा 14 में दोहरी प्रक्रिया का विन्यास किया गया है:

Wisecrete

पदच्युति की दोहरी विधिक व्यवस्था	
उच्चतम न्यायालय की जांच के अधीन निष्कासन (धारा 14(1) - कदाचार अथवा असमर्थता)	**सीधे राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन** (धारा 14(3) - पांच विशिष्ट आधार)
• सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour) • असमर्थता (Incapacity) *राष्ट्रपति द्वारा संदर्भ ➔ SC की जांच ➔ दोषी पाए जाने पर राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन*	• दिवालिया घोषित होने पर • नैतिक अधमता के अपराध में दोषसिद्ध होने पर • सवेतन नियोजन में संलग्न होने पर • शारीरिक/मानसिक रूप से अक्षम होने पर • किसी ऐसे वित्तीय हित से ग्रस्त होने पर जो निष्पक्षता को प्रभावित करे

अ. **उच्चतम न्यायालय द्वारा जांच (धारा 14(1)):**

- मुख्य सूचना आयुक्त या किसी सूचना आयुक्त को केवल **सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour)** या **असमर्थता (Incapacity)** के आधार पर ही राष्ट्रपति के आदेश द्वारा हटाया जा सकता है।
- इसके लिए राष्ट्रपति द्वारा मामले को अनिवार्य रूप से **उच्चतम न्यायालय को जांच हेतु संदर्भित** किया जाएगा।
- उच्चतम न्यायालय द्वारा जांच किए जाने के पश्चात यदि न्यायालय यह प्रतिवेदन देता है कि आयुक्त को हटा दिया जाना चाहिए, तो राष्ट्रपति उसे पद से हटा देगा। जांच लंबित रहने के दौरान राष्ट्रपति संबंधित आयुक्त को निलंबित कर सकता है।

ब. **सीधे राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन (धारा 14(3)):**
राष्ट्रपति आदेश द्वारा मुख्य सूचना आयुक्त या किसी आयुक्त को बिना उच्चतम न्यायालय की जांच के पद से हटा सकेगा यदि वह:

- दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है; अथवा
- ऐसे किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है जिसमें राष्ट्रपति की राय में **नैतिक अधमता (Moral Turpitude)** अंतर्वलित है; अथवा
- अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों से परे किसी सवेतन नियोजन (Paid Employment) में लगा है; अथवा
- राष्ट्रपति की राय में शारीरिक या मानसिक दुर्बलता के कारण पद पर बने रहने के अयोग्य है; अथवा
- उसने ऐसा कोई वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिया है जिससे आयुक्त के रूप में उसके निष्पक्ष कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है।

सूचना का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019: संरचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तन

वर्ष 2019 में केंद्र सरकार द्वारा पारित 'सूचना का अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2019' (RTI Amendment Act, 2019) ने केंद्रीय एवं राज्य सूचना आयोगों की स्वायत्तता, सेवा शर्तों और कार्यकाल के मूल ढांचे में अत्यंत दूरगामी और विवादास्पद परिवर्तन किए।

Vincompete

संशोधन पूर्व (2005) बनाम संशोधन पश्चात (2019) का तुलनात्मक विन्यास

विषय / प्रावधान	मूल आरटीआई अधिनियम, 2005 की स्थिति	आरटीआई (संशोधन) अधिनियम, 2019 के पश्चात स्थिति
पदावधि / कार्यकाल (Tenure)	अधिनियम में स्पष्ट रूप से **5 वर्ष का निश्चित कार्यकाल** अथवा 65 वर्ष की आयु (जो भी पहले हो) निर्धारित था।	संसद ने निश्चित 5 वर्ष की अवधि को समाप्त कर दिया। अब पदावधि **"ऐसी अवधि के लिए होगी जो केंद्र सरकार द्वारा विहित की जाए"** (अधिसूचित नियमों द्वारा इसे घटाकर **3 वर्ष** कर दिया गया है)।
मुख्य सूचना आयुक्त का वेतन	मुख्य सूचना आयुक्त का वेतन **भारत के मुख्य निर्वाचन आयुक्त (CEC)** के समतुल्य (सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर) सांविधिक रूप से तय था।	सांविधिक समानता समाप्त; वेतन **"वह होगा जो केंद्र सरकार द्वारा विहित (निर्धारित) किया जाए"**। (वर्तमान नियमों में 2,50,000 रुपये प्रतिमाह नियत)।
सूचना आयुक्तों का वेतन	सूचना आयुक्तों का वेतन **चुनाव आयुक्तों (Election Commissioners)** अथवा संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों के समतुल्य निर्धारित था।	सांविधिक समानता समाप्त; वेतन **"केंद्र सरकार के नियमों द्वारा निर्धारित"** होगा। (वर्तमान नियमों में 2,25,000 रुपये प्रतिमाह नियत)।
राज्य सूचना आयोगों (SICs) की स्थिति	राज्य के मुख्य सूचना आयुक्त का वेतन चुनाव आयुक्त के तथा राज्य सूचना आयुक्तों का वेतन मुख्य सचिव के बराबर सांविधिक रूप से बंधा हुआ था।	राज्य सूचना आयोगों के आयुक्तों का कार्यकाल और वेतन भी **सीधे केंद्र सरकार द्वारा ही विहित** किए जाने का नियम बनाया गया।
पेंशन कटौती का नियम	पूर्व सरकारी सेवा की पेंशन की राशि को सूचना आयुक्त के वेतन में से घटाने का कड़ा नियम मूल कानून में था।	2019 के संशोधन द्वारा पूर्व पेंशन संबंधी कटौती के इस विशिष्ट उपबंध को विलोपित (Delete) कर दिया गया।

wincompete

संशोधन के विरुद्ध आलोचनात्मक विधिक तर्क

अ. **संस्थागत स्वायत्तता का क्षरण:** मूल 2005 के अधिनियम का उद्देश्य सूचना आयोगों को भारत निर्वाचन आयोग तथा उच्चतम न्यायालय के समकक्ष सांविधिक सुरक्षा और स्वायत्तता प्रदान करना था। 2019 के संशोधन ने कार्यकाल और वेतन निर्धारण की शक्ति कार्यपालिका (केंद्र सरकार) के हाथों में सौंप दी, जिससे आयोग की स्वतंत्रता कार्यपालिका के विवेक पर निर्भर हो गई।

ब. **संघीय ढांचे पर आघात:** राज्य सूचना आयोगों के आयुक्तों के कार्यकाल और वेतनों का निर्धारण भी राज्य सरकारों से छीनकर केंद्र सरकार को सौंप दिया गया, जिसे संविधान के संघीय सिद्धांतों के प्रतिकूल माना गया।

केंद्रीय सूचना आयोग की शक्तियां एवं कार्यप्रणाली (धारा 18, 19 एवं 20)

केंद्रीय सूचना आयोग केवल एक निष्क्रिय अपीलीय निकाय नहीं है; अधिनियम इसे प्रशासनिक जांच और दंड अधिरोपित करने की व्यापक शक्तियां प्रदान करता है।

1. शिकायतों की जांच करने की शक्ति (धारा 18)

आयोग का यह कर्तव्य है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति से शिकायत प्राप्त करे और उसकी जांच करे:

- जो लोक सूचना अधिकारी (PIO) की नियुक्ति न होने के कारण अपना आवेदन प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा हो;
- जिसे लोक सूचना अधिकारी ने सूचना हेतु उसका आवेदन स्वीकार करने से इनकार कर दिया हो;
- जिसे इस अधिनियम के तहत विनिर्दिष्ट समय-सीमा के भीतर सूचना नहीं दी गई हो;
- जिससे सूचना के बदले ऐसी फीस की मांग की गई हो जिसे वह अनुचित या अत्यधिक समझता हो;
- जिसे अपूर्ण, भ्रामक या मिथ्या सूचना दी गई हो।
- **स्वतः संज्ञान (Suo Motu Inquiry):** यदि आयोग का यह समाधान हो जाता है कि मामले की जांच करने के लिए उचित आधार विद्यमान हैं, तो वह किसी भी मामले में **अपनी स्वयं की पहल पर जांच प्रारंभ कर सकता है**।

2. सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियां (धारा 18(3))

अधिनियम के तहत किसी मामले की जांच करते समय केंद्रीय सूचना आयोग को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (CPC) के अधीन वही शक्तियां प्राप्त हैं जो किसी **सिविल न्यायालय** को वाद का विचारण करते समय प्राप्त होती हैं:

सिविल न्यायालय के रूप में सीआईसी की शक्तियां

↓

समन जारी करना एवं उपस्थिति	दस्तावेजों को मंगाना व निरीक्षण	साक्ष्य ग्रहण करना	लोक अभिलेख मंगाना
(व्यक्ति को हाजिर कराना व शपथ पर उसकी परीक्षा करना)	(गोपनीय अभिलेखों सहित निरीक्षण करना)	(शपथ-पत्रों / Affidavits पर साक्ष्य प्राप्त करना)	(किसी न्यायालय या कार्यालय से प्रतियों की मांग)

अ. व्यक्तियों को समन करना, हाजिर कराना तथा शपथ पर मौखिक या लिखित साक्ष्य देने के लिए विवश करना;

ब. दस्तावेजों के प्रकटीकरण और निरीक्षण की अपेक्षा करना;

स. शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

द. किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतियों की मांग करना;

wincompete

य. साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन (समिति) जारी करना।

र. **विशेषाधिकार प्राप्त दस्तावेजों के निरीक्षण की संप्रभु शक्ति (धारा 18(4)):** संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, आयोग जांच के दौरान **किसी भी लोक प्राधिकारी के किसी भी अभिलेख की स्वयं जांच कर सकता है**, और किसी भी आधार पर किसी भी अभिलेख को आयोग के अवलोकन से छिपाया नहीं जा सकता।

अपीलीय प्रक्रिया एवं विधिक समय-सारणी (धारा 19)

अधिनियम के अंतर्गत किसी नागरिक को सूचना प्राप्त न होने अथवा लोक सूचना अधिकारी के आदेश से व्यथित होने पर द्वि-स्तरीय अपीलीय उपचार प्रदान किया गया है:



विधिक सोपानों का विश्लेषण

अ. **प्रथम अपील (धारा 19(1)):**

- कोई व्यक्ति जिसे निर्धारित समय में सूचना नहीं मिलती या जो पीआईओ के निर्णय से व्यथित है, वह 30 दिन की अवधि समाप्त होने या निर्णय प्राप्त होने की तिथि से **30 दिनों के भीतर** लोक प्राधिकारी के उस अधिकारी को अपील कर सकता है जो पीआईओ से पद-श्रेणी में वरिष्ठ है (प्रथम अपीलीय अधिकारी - FAA)।
- प्रथम अपील का निस्तारण सामान्यतः **30 दिनों के भीतर** किया जाएगा; विशेष परिस्थितियों में लिखित कारणों से अधिकतम **45 दिनों** तक का समय दिया जा सकता है (धारा 19(6))।

ब. **द्वितीय अपील (धारा 19(3)):**

Wincompete

- प्रथम अपीलीय अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध द्वितीय अपील सीधे **केंद्रीय सूचना आयोग (CIC)** के समक्ष होती है।
- यह अपील प्रथम अपीलीय निर्णय प्राप्त होने की तिथि से **90 दिनों के भीतर** दायर की जानी आवश्यक है।
- **निर्णय की बाध्यकारिता (धारा 19(7)):** केंद्रीय सूचना आयोग का निर्णय संबंधित लोक प्राधिकारी और पक्षों पर **अंतिम और आबद्धकारी (Final and Binding)** होता है।

दंडात्मक उपबंध एवं क्षतिपूर्ति की शक्तियां (धारा 19(8) एवं धारा 20)

केंद्रीय सूचना आयोग केवल सूचना दिलाने तक सीमित नहीं है, अपितु सूचना दबाने वाले लापरवाह लोक सेवकों पर कठोर आर्थिक दंड लगाने तथा अनुशासनात्मक कार्रवाई की सिफारिश करने की दंडात्मक शक्ति भी रखता है।

आर्थिक शास्तियां (Penalties - धारा 20(1))

यदि द्वितीय अपील या शिकायत का निर्णय करते समय केंद्रीय सूचना आयोग की यह राय है कि लोक सूचना अधिकारी (PIO) ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के:

- सूचना हेतु आवेदन लेने से इनकार किया है; अथवा
- विनिर्दिष्ट समय-सीमा (30 दिन) के भीतर सूचना नहीं दी है; अथवा
- दुर्भावनापूर्वक (Mala fide) सूचना देने से मना किया है; अथवा
- जानबूझकर गलत, अपूर्ण या भ्रामक सूचना दी है; अथवा
- उस सूचना को नष्ट कर दिया है जो प्रार्थना-पत्र का विषय थी; अथवा
- सूचना देने में किसी भी प्रकार से बाधा डाली है;

तो आयोग ऐसे लोक सूचना अधिकारी पर **250 रुपये प्रतिदिन की दर से शास्ति (जुर्माना)** अधिरोपित करेगा।

- **अधिकतम सीमा:** यह कुल जुर्माना किसी भी स्थिति में **25,000 रुपये (पच्चीस हजार रुपये)** से अधिक नहीं हो सकता।
- **सुनवाई का अवसर:** दंड अधिरोपित करने से पूर्व संबंधित पीआईओ को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर अवश्य दिया जाएगा। यह साबित करने का भार कि उसने दुर्भावना से कार्य नहीं किया, पूरी तरह उस पीआईओ पर होगा।

अनुशासनात्मक कार्रवाई की संस्तुति (धारा 20(2))

यदि आयोग यह पाता है कि लोक सूचना अधिकारी ने बिना किसी उचित कारण के निरंतर और जानबूझकर सूचना नहीं दी है, तो आयोग उस अधिकारी की सेवा शर्तों को शासित करने वाले सेवा नियमों के अधीन उसके विरुद्ध **विभागीय अनुशासनात्मक कार्रवाई (Disciplinary Action)** की सिफारिश सीधे संबंधित सरकार या प्राधिकारी को करेगा।

wincompete

क्षतिपूर्ति का आदेश (धारा 19(8)(ख))

आयोग को यह अधिकार है कि वह लोक प्राधिकारी को निर्देश दे कि वह सूचना न मिलने या विलंब के कारण आवेदक को उठानी पड़ी किसी भी हानि या अन्य नुकसान के लिए प्रार्थी को **उचित क्षतिपूर्ति (Compensation)** का भुगतान करे।

केंद्रीय सूचना आयोग एवं न्यायपालिका: न्यायिक पुनरावलोकन के ऐतिहासिक वाद

सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 23 स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि कोई भी निचला न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी आदेश के संबंध में कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेगा। तथापि, संविधान के **अनुच्छेद 32 (उच्चतम न्यायालय)** तथा **अनुच्छेद 226 (उच्च न्यायालय)** के अंतर्गत उच्चतर न्यायपालिका की न्यायिक पुनरावलोकन की संप्रभु शक्ति इस कानून से अप्रभावित रहती है।

न्यायिक पुनरावलोकन के प्रमुख वाद

↓

नमित शर्मा वाद (2012 व 2013)	सीजेआई कार्यालय वाद (2019)	अंजलि भारद्वाज वाद (2019)
• सीआईसी अर्धन्यायिक अधिकरण • न्यायिक सदस्यों की अनिवार्यता का प्रश्न सुलझाया गया	• CJI कार्यालय 'लोक प्राधिकारी' • पारदर्शिता बनाम निजता का संवैधानिक संतुलन	• रिक्तियों की समयबद्ध पूर्ति • वेबसाइट पर पारदर्शिता का बाध्यकारी न्यायिक निर्देश

प्रमुख न्यायिक निर्णयों का विश्लेषण

अ. **नमित शर्मा बनाम भारत संघ (2012 एवं 2013):**

- 2012 के निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने निर्देश दिया था कि चूंकि सूचना आयोग न्यायिक कार्यों का संपादन करते हैं, अतः सीआईसी की प्रत्येक पीठ में एक 'न्यायिक सदस्य' (पूर्व न्यायाधीश) अनिवार्य रूप से होना चाहिए।
- **2013 का समीक्षा निर्णय (Review Judgment):** केंद्र सरकार की पुनर्विचार याचिका पर उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व आदेश को संशोधित करते हुए माना कि अधिनियम की धारा 12(5) में न्यायिक पृष्ठभूमि अनिवार्य नहीं की गई है; अतः आयोग में केवल प्रशासनिक या अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञों की नियुक्ति भी पूर्णतः संवैधानिक है। तथापि, चयन प्रक्रिया पारदर्शी होनी चाहिए।

ब. **केंद्रीय लोक सूचना अधिकारी, उच्चतम न्यायालय बनाम सुभाष चंद्र अग्रवाल (13 नवंबर 2019):**

- पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने ऐतिहासिक निर्णय दिया कि **'भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (CJI) का कार्यालय भी आरटीआई अधिनियम की धारा 2(ज) के तहत एक लोक प्राधिकारी (Public Authority) है'**।
- न्यायालय ने स्पष्ट किया कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ अपारदर्शिता नहीं है। तथापि, न्यायाधीशों की व्यक्तिगत संपत्तियों और परामर्शों की सूचना देते समय धारा 8(1)(ञ) के तहत निजता के अधिकार और व्यापक लोकहित के मध्य संतुलन स्थापित किया जाना चाहिए।

स. **अंजलि भारद्वाज एवं अन्य बनाम भारत संघ (2019):**

- केंद्रीय तथा राज्य सूचना आयोगों में वर्षों से रिक्त पड़े आयुक्तों के पदों और लाखों की संख्या में लंबित अपीलों के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्देश जारी किए।

wincompete

- न्यायालय ने आदेश दिया कि सूचना आयुक्तों के रिक्त पदों को भरने की प्रक्रिया पद रिक्त होने से कम से कम **तीन माह पूर्व** प्रारंभ की जानी चाहिए।
- चयन प्रक्रिया में पूर्ण पारदर्शिता होनी चाहिए, जिसमें खोज समिति के मापदंडों, प्राप्त आवेदनों तथा शॉर्टलिस्ट किए गए नामों को सार्वजनिक डोमेन (वेबसाइट) पर प्रकाशित करना अनिवार्य होगा।

केंद्रीय सूचना आयोग के समक्ष विद्यमान वर्तमान संरचनात्मक चुनौतियां एवं आलोचनाएं

सत्रह वर्षों से अधिक की कार्यप्रणाली के उपरांत भारत में सूचना के अधिकार के क्रियान्वयन तंत्र के समक्ष अनेक गंभीर प्रशासनिक और संस्थागत बाधाएं उपस्थित हुई हैं:

अ. **पदों की दीर्घकालिक रिक्तियां एवं अपीलों का विशाल अंबार:** केंद्र और राज्यों में सरकारों द्वारा सूचना आयुक्तों की समय पर नियुक्ति न किए जाने के कारण आयोगों में दशकों तक लाखों अपीलें लंबित रहती हैं। कई मामलों में द्वितीय अपील की सुनवाई में दो से तीन वर्ष का समय लग जाता है, जिससे सूचना की तात्कालिक प्रासंगिकता ही समाप्त हो जाती है।

ब. **दंड प्रावधानों के क्रियान्वयन में शिथिलता:** आरटीआई कार्यकर्ताओं के अध्ययनों से यह उजागर हुआ है कि आयोग के आयुक्त लोक सूचना अधिकारियों पर धारा 20 के तहत निर्धारित आर्थिक शास्तियां (250 रुपये/दिन) लगाने में अत्यधिक संकोच बरतते हैं। अधिकांश मामलों में चेतावनी देकर अधिकारियों को छोड़ दिया जाता है, जिससे दंडात्मक भय समाप्त हो गया है।

स. **नौकरशाही का वर्चस्व (Bureaucratic Dominance):** अधिनियम की धारा 12(5) में पत्रकारिता, विज्ञान, समाज सेवा और विधि के विशेषज्ञों को स्थान देने की परिकल्पना की गई थी। व्यवहार में अधिकांश नियुक्तियां सेवानिवृत्त आईएएस (IAS) अथवा अन्य वरिष्ठ सिविल सेवकों की ही की जाती हैं, जिससे आयोग में पारंपरिक प्रशासनिक मानसिकता का प्रभाव बना रहता है।

द. **डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन एक्ट, 2023 (DPDP Act) से उत्पन्न संघर्ष:** वर्ष 2023 में पारित डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम ने आरटीआई अधिनियम की **धारा 8(1)(ञ)** में संशोधन कर दिया। पूर्व में व्यक्तिगत सूचना को इस शर्त पर रोका जा सकता था यदि उसका कोई लोकहित न हो; किंतु नवीन संशोधन के पश्चात **सभी प्रकार की व्यक्तिगत सूचनाओं के प्रकटीकरण पर पूर्ण प्रतिबंध** लगा दिया गया है, जिससे लोक सेवकों के आचरण और भ्रष्टाचार की जांच में बाधा उत्पन्न होने की आशंका व्यक्त की गई है।

य. **आरटीआई कार्यकर्ताओं की असुरक्षा:** देश के विभिन्न भागों में भ्रष्टाचार का खुलासा करने वाले जागरूक नागरिकों और आरटीआई कार्यकर्ताओं पर होने वाले प्राणघातक हमलों और हत्याओं के मामलों में वृद्धि हुई है। व्हिसलब्लोअर्स प्रोटेक्शन एक्ट के प्रभावी क्रियान्वयन के अभाव में सूचना मांगने वालों का जीवन असुरक्षित रहता है।

संवैधानिक, प्रशासनिक एवं विधिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **लोक प्राधिकारी (Public Authority):** धारा 2(ज) के तहत संविधान, संसदीय संविधि, राज्य विधानमंडल या सरकारी आदेश द्वारा स्थापित वह समस्त निकाय, जो सरकार के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वित्तीय नियंत्रण अथवा सहायता से संचालित होता है।

ब. **सक्रिय प्रकटीकरण (Suo Motu / Proactive Disclosure):** धारा 4(1)(ख) के तहत प्रत्येक सरकारी विभाग का वह अनिवार्य विधिक कर्तव्य, जिसके अंतर्गत उसे किसी नागरिक द्वारा मांगे बिना ही अपने संगठन, कार्यों, बजट, नीतियों और अधिकारियों की शक्तियों का संपूर्ण विवरण इंटरनेट और नोटिस बोर्ड पर स्वतः प्रकाशित करना होता है।

स. **तृतीय पक्ष (Third Party):** धारा 2(त) के अनुसार सूचना की मांग करने वाले नागरिक तथा सूचना रखने वाले लोक प्राधिकारी के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति, निजी कंपनी या संस्था जिससे संबंधित गोपनीय सूचना सरकारी रिकॉर्ड में दर्ज हो।

द. **शासकीय गुप्त बात अधिनियम (Official Secrets Act):** वर्ष 1923 का वह औपनिवेशिक कानून जिसका प्रयोग प्रशासनिक तंत्र द्वारा सूचनाओं को गोपनीय बनाए रखने और नागरिकों से छिपाने के लिए किया जाता रहा है; आरटीआई की धारा 22 इस कानून के प्रावधानों को निष्प्रभावी करती है।

य. **अध्यारोही प्रभाव (Overriding Effect - धारा 22):** आरटीआई अधिनियम का वह विशिष्ट उपबंध जो यह स्थापित करता है कि यदि इस कानून और संसद या राज्य के किसी अन्य कानून के मध्य कोई विरोधाभास होता है, तो सूचना का अधिकार अधिनियम ही प्रभावी और मान्य होगा।

र. **वैश्वासिक संबंध (Fiduciary Relationship):** दो पक्षों के मध्य परस्पर पूर्ण विश्वास, गोपनीयता और निष्ठा पर आधारित विधिक संबंध (जैसे ट्रस्टी और लाभार्थी का संबंध), जिसकी सूचनाएं सामान्यतः सार्वजनिक नहीं की जातीं।

ल. **आनुपातिकता का सिद्धांत (Doctrine of Proportionality):** लोकहित में किसी सूचना को प्रकट करते समय इस बात का सूक्ष्म न्यायिक संतुलन कि प्रकटीकरण से होने वाला सार्वजनिक लाभ, किसी व्यक्ति की निजता को होने वाले संभावित नुकसान से अधिक होना चाहिए।

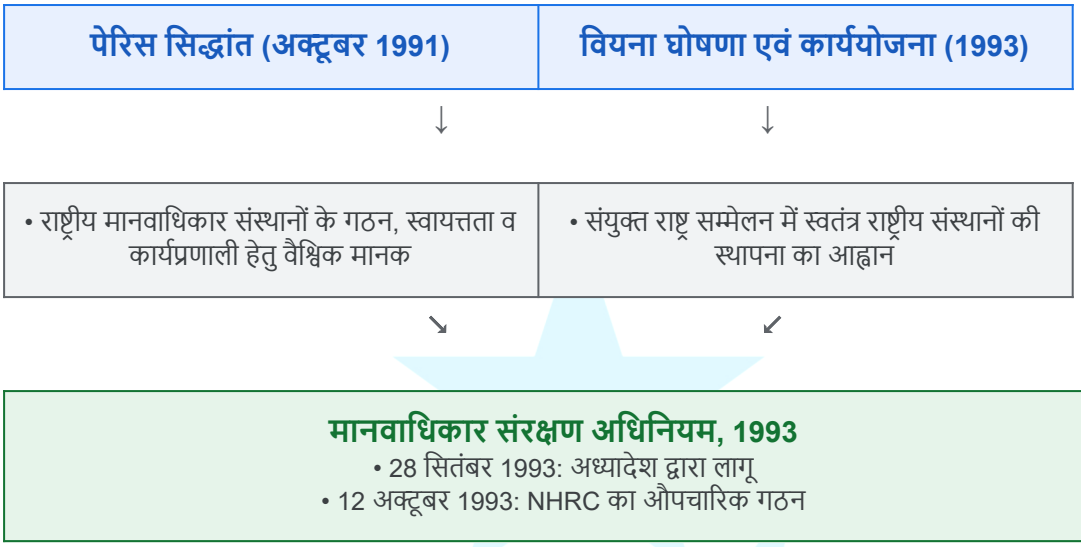
अध्याय 22: राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC): मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993, आयोग की संरचना, उच्च-स्तरीय चयन समिति, शक्तियां एवं 2019 संशोधन के मुख्य बिंदु

मानवाधिकारों का दार्शनिक आधार, वैश्विक पृष्ठभूमि एवं विधिक अवस्थिति

मानवाधिकार वे मूलभूत, नैसर्गिक एवं अहस्तांतरणीय अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल मानव होने के नाते जन्मजात प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों का उद्देश्य व्यक्ति की गरिमा, समानता, स्वतंत्रता और समग्र बौद्धिक व भौतिक विकास को सुनिश्चित करना है। आधुनिक विश्व में मानवाधिकारों की संहिताबद्ध यात्रा का ऐतिहासिक आधार 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अंगीकृत 'मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights - UDHR) है। इसके अतिरिक्त वर्ष 1966 के दो अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं—'नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा' (ICCPR) तथा 'आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा' (ICESCR)—ने मानवाधिकारों को विधिक रूप से बाध्यकारी संधियों में रूपांतरित किया। भारत इन दोनों प्रसंविदाओं का एक प्रमुख हस्ताक्षरकर्ता देश है।

मानवाधिकारों की संस्थागत विकास-यात्रा

↓



पेरिस सिद्धांत एवं संस्थागत आधार

अ. **पेरिस सिद्धांत (अक्टूबर 1991):** संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रायोजित एक अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला में राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थानों (NHRIs) की स्थापना, संरचना, कार्यप्रणाली तथा स्वायत्तता के संबंध में कुछ मार्गदर्शक सिद्धांत तय किए गए, जिन्हें 'पेरिस सिद्धांत' (Paris Principles) कहा जाता है। 20 दिसंबर 1993 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपने संकल्प 48/134 द्वारा इन सिद्धांतों को आधिकारिक मान्यता प्रदान की।

ब. **वियना घोषणा एवं कार्ययोजना (जून 1993):** विश्व मानवाधिकार सम्मेलन में प्रत्येक संप्रभु राष्ट्र से यह आग्रह किया गया कि वह अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों के अनुरूप अपने देश में एक स्वतंत्र, बहुलवादी और स्वायत्त मानवाधिकार आयोग की स्थापना करे।

स. **भारतीय विधायी परिप्रेक्ष्य:** अंतरराष्ट्रीय दबाव, जम्मू-कश्मीर व पूर्वोत्तर राज्यों में उग्रवाद-रोधी अभियानों के दौरान सुरक्षा बलों पर मानवाधिकार हनन के लग रहे आक्षेपों का पारदर्शी समाधान करने तथा देश के आंतरिक प्रशासनिक तंत्र को जवाबदेह बनाने के उद्देश्य से भारत के राष्ट्रपति द्वारा 28 सितंबर 1993 को 'मानवाधिकार संरक्षण अध्यादेश, 1993' प्रख्यापित किया गया।

द. **संसदीय अधिनियमन:** संसद के दोनों सदनों द्वारा उक्त अध्यादेश को प्रतिस्थापित करते हुए **'मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993' (1994 का अधिनियम संख्या 10)** पारित किया गया, जिसे 8 जनवरी 1994 को राष्ट्रपति की औपचारिक स्वीकृति प्राप्त हुई। यह अधिनियम 28 सितंबर 1993 से भूतलक्षी प्रभाव से लागू माना गया। इसी अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत **12 अक्टूबर 1993** को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (National Human Rights Commission - NHRC) की औपचारिक स्थापना की गई। इसके प्रथम अध्यक्ष भारत के पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति **रंगनाथ मिश्र** बने।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की मुख्य वैधानिक रूपरेखा

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 देश में मानवाधिकारों के बेहतर संरक्षण तथा उससे जुड़े अनुषंगी मामलों के समाधान हेतु एक त्रि-स्तरीय संस्थागत तंत्र की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

प्रमुख वैधानिक परिभाषाएं (धारा 2)

अ. **'मानवाधिकार' की परिभाषा (धारा 2(1)(घ)):** "मानवाधिकारों से संविधान द्वारा प्रत्याभूत या अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं (Covenants) में समाविष्ट तथा भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय, व्यक्ति के **जीवन (Life),**

wincompete

स्वतंत्रता (Liberty), समानता (Equality) और गरिमा (Dignity) से संबंधित अधिकार अभिप्रेत हैं।" यह परिभाषा अत्यंत व्यापक है क्योंकि यह संविधान के भाग तीन में प्रदत्त मूल अधिकारों को अंतरराष्ट्रीय संधियों के मानवीय मानकों से जोड़ती है।

ब. **'अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाएं' (धारा 2(1)(च)):** संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 16 दिसंबर 1966 को अंगीकृत नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, और ऐसी कोई अन्य प्रसंविदा या अभिसमय जिसे केंद्र सरकार राजपत्र में अधिसूचित करे।

स. **त्रि-स्तरीय संस्थागत विन्यास:**

- **केंद्रीय स्तर पर:** राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (धारा 3)।
- **राज्य स्तर पर:** राज्य मानवाधिकार आयोग (धारा 21)।
- **जिला स्तर पर:** प्रत्येक जिले में मानवाधिकार न्यायालय (धारा 30)।

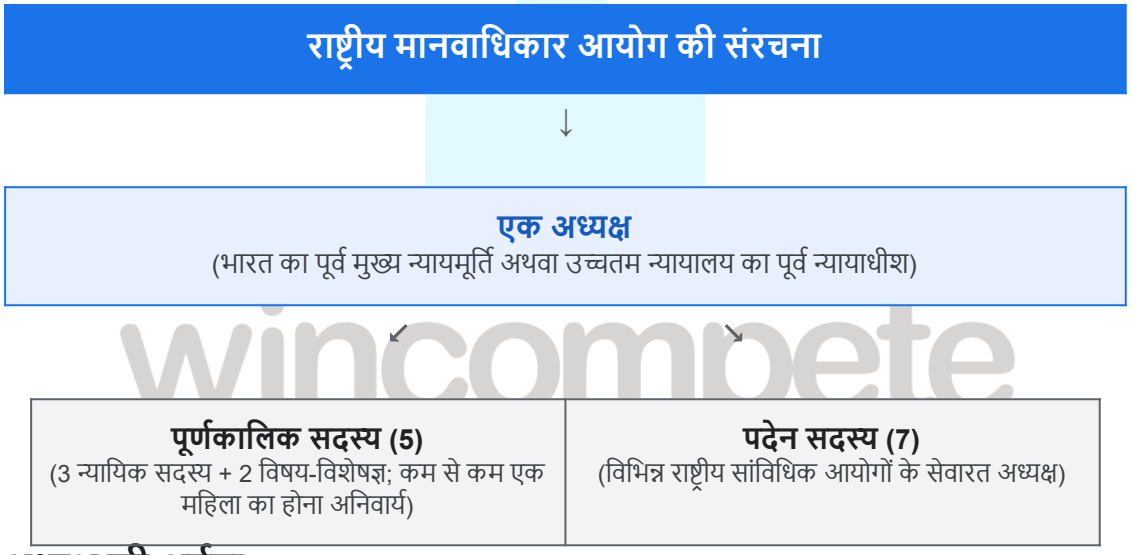
संस्थागत प्रकृति एवं स्वायत्तता

अ. **सांविधिक निकाय (Statutory Body):** राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग न तो संवैधानिक निकाय है (क्योंकि संविधान में इसका प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है) और न ही यह केवल कार्यपालिका संकल्प से बना निकाय है। यह संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित एक स्वतंत्र एवं स्वायत्त **सांविधिक निकाय** है।

ब. **मुख्यालय (धारा 3(5)):** आयोग का प्रधान कार्यालय दिल्ली में स्थित है। आयोग केंद्र सरकार के पूर्वानुमोदन से भारत में अन्य स्थानों पर भी अपने कार्यालय स्थापित कर सकता है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की संरचना एवं सदस्यों का वर्गीकरण (धारा 3)

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 3 के अंतर्गत आयोग की संरचना का स्पष्ट विन्यास किया गया है। यह एक उच्च स्तरीय बहु-सदस्यीय संस्था है। वर्ष 2019 के संशोधन के पश्चात आयोग की संरचना को अधिक समावेशी एवं व्यापक बनाया गया है।



1. अध्यक्ष की अर्हता

कोई व्यक्ति जो **भारत का मुख्य न्यायमूर्ति (Chief Justice of India)** रहा हो अथवा जो **उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश (Judge of the Supreme Court)** रहा हो, आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है।

2. पूर्णकालिक सदस्य (कुल 5 सदस्य)

अ. **प्रथम न्यायिक सदस्य:** एक सदस्य जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा हो।

ब. **द्वितीय न्यायिक सदस्य:** एक सदस्य जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति (Chief Justice of a High Court) है या रहा हो।

स. **मानवाधिकार विशेषज्ञ सदस्य: तीन सदस्य** (जिनमें से **कम से कम एक महिला होना अनिवार्य है**) ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाएंगे जिन्हें मानवाधिकारों से संबंधित मामलों का विशिष्ट ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो।

3. पदेन सदस्य (Ex-Officio Members - कुल 7 सदस्य)

अधिनियम के तहत देश के सात प्रमुख राष्ट्रीय सांविधिक आयोगों के अध्यक्षों को उनके पदीय दायित्व के आधार पर एनएचआरसी का पदेन सदस्य माना जाता है। इन्हें आयोग की बैठकों तथा विमर्शों में पूर्णकालिक सदस्यों के समान ही भाग लेने का अधिकार होता है:

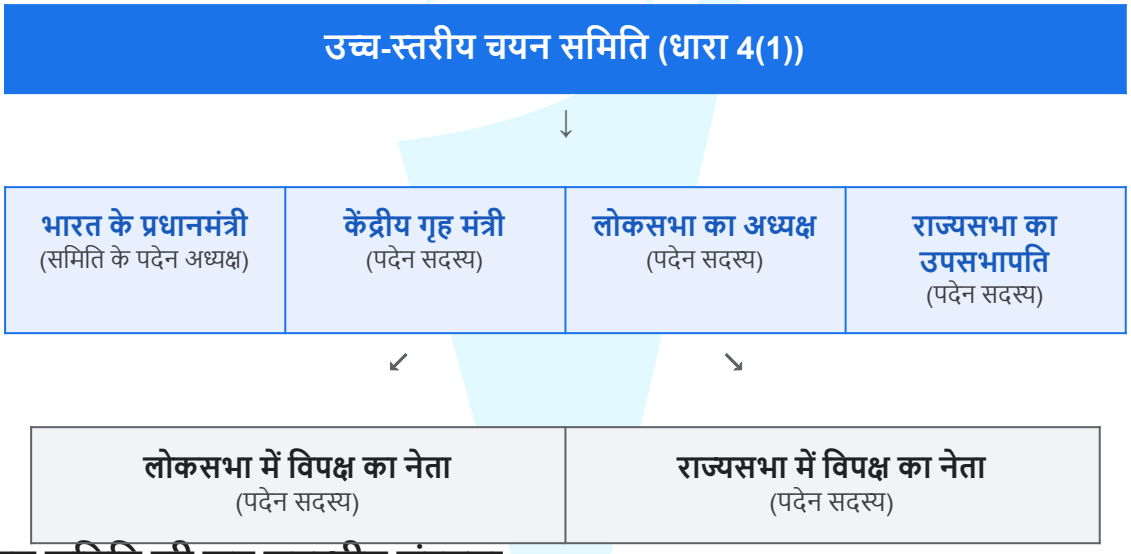
क्रमांक	राष्ट्रीय आयोग का नाम	विधिक / संवैधानिक स्वरूप	पदेन सदस्य की स्थिति
1.	**राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (NCM)**	राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992	आयोग का अध्यक्ष
2.	**राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (NCSC)**	संविधान का अनुच्छेद 338 (संवैधानिक निकाय)	आयोग का अध्यक्ष
3.	**राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग (NCST)**	संविधान का अनुच्छेद 338क (संवैधानिक निकाय)	आयोग का अध्यक्ष
4.	**राष्ट्रीय महिला आयोग (NCW)**	राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990	आयोग की अध्यक्ष
5.	**राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (NCBC)**	संविधान का अनुच्छेद 338ख (102वें संशोधन द्वारा)	आयोग का अध्यक्ष

wincompete

6.	**राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (NCPCR)**	बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005	आयोग का अध्यक्ष
7.	**दिव्यांग व्यक्तियों के लिए मुख्य आयुक्त**	दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016	मुख्य आयुक्त (Chief Commissioner)

उच्च-स्तरीय चयन समिति एवं नियुक्ति प्रक्रिया (धारा 4)

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की स्वतंत्रता तथा निष्पक्षता को कार्यपालिका के एकाधिकार से सुरक्षित रखने के लिए अधिनियम की धारा 4 में एक विस्तृत, बहुदलीय एवं लोकतांत्रिक चयन तंत्र संहिताबद्ध किया गया है।



चयन समिति की छह सदस्यीय संरचना

अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति भारत के **राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant under his hand and seal)** द्वारा की जाती है। यह नियुक्ति निम्नलिखित छह सदस्यीय उच्चाधिकार प्राप्त चयन समिति की लिखित सिफारिश पर आधारित होती है:

अ. **प्रधानमंत्री:** चयन समिति के पदेन अध्यक्ष।

ब. **केंद्रीय गृह मंत्री:** समिति के पदेन सदस्य।

स. **लोकसभा अध्यक्ष:** समिति के पदेन सदस्य।

wincompete

द. **राज्यसभा का उपसभापति:** समिति के पदेन सदस्य। (ध्यान रहे, राज्यसभा का सभापति/उपराष्ट्रपति इस समिति का सदस्य नहीं होता; केवल उपसभापति सदस्य होता है)।

य. **लोकसभा में विपक्ष का नेता:** समिति के पदेन सदस्य।

र. **राज्यसभा में विपक्ष का नेता:** समिति के पदेन सदस्य।

न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति पर अनिवार्य परामर्श (धारा 4(1) का परंतुक)

यदि उच्चतम न्यायालय के किसी **आसीन न्यायाधीश (Sitting Judge)** अथवा किसी उच्च न्यायालय के **आसीन मुख्य न्यायमूर्ति** को आयोग का सदस्य नियुक्त किया जाना हो, तो चयन समिति की सिफारिश के अतिरिक्त **भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (CJI) से अनिवार्य विधिक परामर्श** प्राप्त किया जाना अनिवार्य है। बिना सीजेआई की सहमति के किसी सेवारत न्यायाधीश को आयोग में नियुक्त नहीं किया जा सकता।

चयन समिति में रिक्ति का प्रभाव (धारा 4(2))

अधिनियम स्पष्ट रूप से यह उपबंध करता है कि अध्यक्ष या किसी सदस्य की नियुक्ति केवल इस आधार पर अविधिमान्य (Invalid) नहीं होगी कि चयन समिति में किसी सदस्य का पद रिक्त था (उदाहरणार्थ, यदि किसी सदन में विपक्ष का नेता न हो अथवा कोई पद रिक्त हो, तो भी शेष सदस्यों द्वारा की गई सिफारिश वैध मानी जाएगी)।

पदावधि, सेवा शर्तें, त्यागपत्र एवं पदच्युति (धारा 6 एवं धारा 5)

आयोग के सदस्यों को निर्भीकता और स्वतंत्रता से कार्य करने का वातावरण उपलब्ध कराने हेतु पदावधि की सुरक्षा प्रदान की गई है।

कार्यकाल एवं आयु सीमा (धारा 6(1))

अ. **तीन वर्ष का कार्यकाल (2019 के संशोधन पश्चात):** अध्यक्ष और प्रत्येक पूर्णकालिक सदस्य अपने पदभार ग्रहण करने की तारीख से **तीन वर्ष (3 Years)** की अवधि तक पद धारण करेंगे। (मूल 1993 के अधिनियम में यह अवधि 5 वर्ष थी, जिसे 2019 में घटाकर 3 वर्ष किया गया)।

ब. **अधिकतम आयु सीमा:** पद पर बने रहने की अधिकतम आयु सीमा **70 वर्ष** निर्धारित है। जो भी पहले पूरा हो जाए (3 वर्ष अथवा 70 वर्ष की आयु), पदधारक सेवानिवृत्त हो जाता है।

स. **पुनर्नियुक्ति की पात्रता:** 2019 के संशोधन के पश्चात अध्यक्ष एवं सदस्य **तीन वर्ष की अतिरिक्त अवधि के लिए पुनर्नियुक्ति (Eligible for Re-appointment) के पात्र** बनाए गए हैं, किंतु अधिकतम आयु सीमा (70 वर्ष) का प्रतिबंध यथावत लागू रहेगा।

द. **भविष्य के नियोजन पर प्रतिबंध (धारा 6(3)):** पदमुक्ति के उपरांत आयोग का अध्यक्ष अथवा कोई भी सदस्य भारत सरकार के अधीन अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य नियोजन (Employment) का पात्र नहीं होगा।

पदच्युति की प्रक्रिया (धारा 5)

अध्यक्ष या किसी सदस्य को हटाने की प्रक्रिया दोहरी वैधानिक व्यवस्था पर आधारित है:

पदच्युति की दोहरी विधिक व्यवस्था

↓

↙ ↘

कदाचार अथवा असमर्थता के आधार पर निष्कासन (धारा 5(2) - उच्चतम न्यायालय की जांच अनिवार्य)	**सीधे राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन** (धारा 5(1) - पांच विशिष्ट आधार)
• सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour)	• दिवालिया घोषित होने पर

wincompete

• असमर्थता (Incapacity) *राष्ट्रपति द्वारा संदर्भ ➔ SC की जांच ➔ सत्य पाए जाने पर राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन*	• नैतिक अधमता के अपराध में दोषसिद्ध होने पर • सवेतन नियोजन में संलग्न होने पर • शारीरिक/मानसिक रूप से अक्षम होने पर • किसी ऐसे वित्तीय हित से ग्रस्त होने पर जो कर्तव्यों को प्रभावित करे

अ. **उच्चतम न्यायालय द्वारा जांच (धारा 5(2)):**

- अध्यक्ष या किसी सदस्य को केवल **सिद्ध कदाचार (Proved Misbehaviour)** अथवा **असमर्थता (Incapacity)** के आधार पर ही राष्ट्रपति के आदेश द्वारा हटाया जा सकता है।
- इसके लिए राष्ट्रपति द्वारा मामले को अनिवार्य रूप से **उच्चतम न्यायालय को जांच हेतु संदर्भित** किया जाएगा।
- उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145 के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार जांच की जाएगी। यदि न्यायालय अपनी रिपोर्ट में पदच्युति की सिफारिश करता है, तब **राष्ट्रपति द्वारा उसे पद से हटाया जा सकता है**। (जांच के दौरान राष्ट्रपति संबंधित सदस्य को निलंबित कर सकता है)।

ब. **सीधे राष्ट्रपति द्वारा निष्कासन (धारा 5(1)):**
राष्ट्रपति आदेश द्वारा अध्यक्ष या किसी सदस्य को बिना उच्चतम न्यायालय के संदर्भ के सीधे पद से हटा सकता है यदि वह:

- दिवालिया न्यायनिर्णीत (Insolvent) किया गया हो; अथवा
- अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों से परे किसी सवेतन नियोजन (Paid Employment) में लगा हो; अथवा
- शारीरिक या मानसिक दुर्बलता के कारण अपने पद पर बने रहने के अयोग्य हो; अथवा
- विकृतचित्त (Unsound mind) हो और सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित किया गया हो; अथवा
- किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया हो जिसमें राष्ट्रपति की राय में **नैतिक अधमता (Moral Turpitude)** अंतर्वलित हो।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के कार्य एवं अधिकारिता (धारा 12)

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 12 आयोग के बहुआयामी कार्यों को संहिताबद्ध करती है। आयोग मानवाधिकारों के संरक्षण, संवर्धन और अनुवीक्षण का राष्ट्रीय प्रहरी है।

विधिक कार्यों का विस्तृत विन्यास

अ. **उल्लंघनों की जांच (स्वतः संज्ञान सहित):** आयोग किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत याचिका पर, उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत पर, अथवा **स्वतः संज्ञान (Suo Motu)** लेते हुए निम्नलिखित मामलों की जांच कर सकता है:

- किसी लोक सेवक द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन की; अथवा
- किसी लोक सेवक द्वारा ऐसे उल्लंघन की रोकथाम में की गई घोर उपेक्षा (Negligence) की।

wincompete

ब. **न्यायालयी कार्यवाहियों में हस्तक्षेप:** किसी न्यायालय के समक्ष लंबित ऐसी किसी कार्यवाही में, जिसमें मानवाधिकारों के उल्लंघन का कोई आरोप अंतर्वलित है, उस न्यायालय के अनुमोदन से हस्तक्षेप (Intervene) करना।

स. **जेलों एवं बंदीगृहों का निरीक्षण:** राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन किसी भी जेल, सुधारगृह, नारी निकेतन अथवा बंदीगृह का, जहां व्यक्तियों को उपचार, सुधार या संरक्षण हेतु निरुद्ध किया गया है, वहां के कैदियों के जीवन की परिस्थितियों का अध्ययन करने हेतु निरीक्षण करना और सरकार को सुधारात्मक सिफारिशें प्रस्तुत करना।

द. **संवैधानिक एवं विधिक सुरक्षा उपायों की समीक्षा:** संविधान अथवा किसी तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु बनाए गए सुरक्षा उपायों का पुनरीक्षण करना तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु उपायों की संस्तुति करना।

य. **आतंकवाद एवं हिंसा के कारकों की समीक्षा:** उन सभी कारकों की समीक्षा करना, जिनके अंतर्गत आतंकवाद और उग्रवाद के वे कृत्य भी सम्मिलित हैं जो मानवाधिकारों के उपभोग में बाधा उत्पन्न करते हैं, तथा उनके समुचित निवारक उपायों की सिफारिश करना।

र. **अंतरराष्ट्रीय संधियों का अध्ययन:** मानवाधिकारों से संबंधित अंतरराष्ट्रीय संधियों, अभिसमयों और अन्य दस्तावेजों का निरंतर अध्ययन करना तथा उनके प्रभावी घरेलू क्रियान्वयन हेतु केंद्र सरकार को परामर्श देना।

ल. **अनुसंधान एवं शिक्षा का प्रसार:** मानवाधिकारों के क्षेत्र में वैज्ञानिक शोध करना, उसे प्रोत्साहित करना तथा समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य प्रकाशनों, संगोष्ठियों, मीडिया और कार्यशालाओं के माध्यम से मानवाधिकार साक्षरता का प्रसार करना।

व. **गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) को प्रोत्साहन:** मानवाधिकारों के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों और नागरिक समाज के प्रयासों की सराहना करना तथा उनके साथ सक्रिय समन्वय स्थापित करना।

आयोग की जांच संबंधी शक्तियां एवं सिविल न्यायालय की प्रास्थिति (धारा 13 एवं धारा 14)

अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत शिकायतों की जांच करते समय राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (CPC) के अधीन निम्नलिखित मामलों में **सिविल न्यायालय (Civil Court)** की समस्त शक्तियां प्राप्त होती हैं:

सिविल न्यायालय के रूप में आयोग की शक्तियां

↓

व्यक्तियों को समन करना व उपस्थिति बाध्यकारी बनाना (शपथ पर मौखिक परीक्षा करना)	**दस्तावेजों को मंगाना व उनका निरीक्षण करना** (सरकारी अभिलेखों सहित)	**शपथ-पत्रों (Affidavits) पर साक्ष्य ग्रहण करना**	**किसी भी न्यायालय या कार्यालय से सार्वजनिक अभिलेख मंगाना**

अ. किसी भी व्यक्ति को समन जारी करना, हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

ब. किसी भी दस्तावेज का प्रकटीकरण (Discovery) और उसे पेश करने की अपेक्षा करना;

स. शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

द. किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की मांग करना;

य. साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना;

wincompete

र. कोई अन्य विषय जो केंद्र सरकार द्वारा नियमों द्वारा विहित किया जाए।

आयोग की स्वयं की अन्वेषण शाखा (Investigation Wing - धारा 14)

अ. **महानिदेशक के अधीन तंत्र:** आयोग के पास अन्वेषण हेतु अपना स्वयं का एक समर्पित जांच दल होता है, जिसका नेतृत्व **पुलिस महानिदेशक (DGP)** स्तर का एक वरिष्ठ आईपीएस अधिकारी करता है। इसके अधीन पुलिस महानिरीक्षक (IGP), उप-महानिरीक्षक (DIG), पुलिस अधीक्षक (SP) तथा अन्वेषक अधिकारी कार्यरत होते हैं।

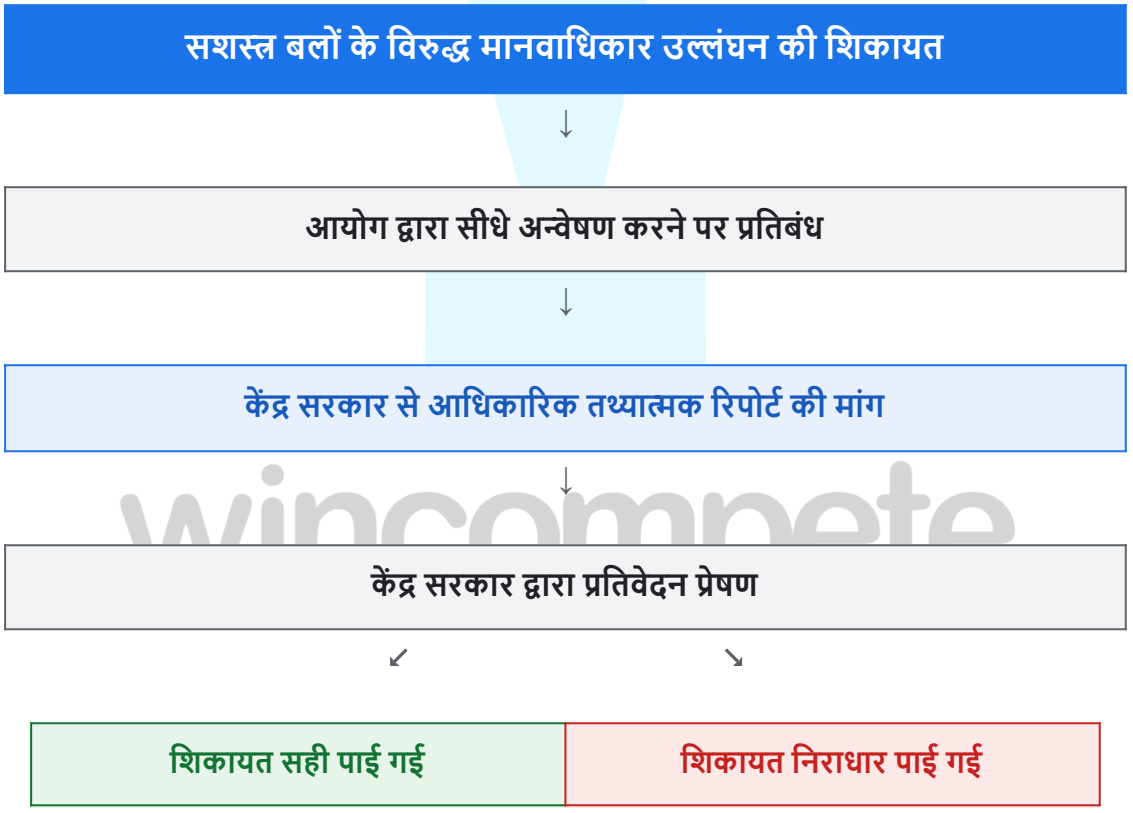
ब. **अन्य सरकारी एजेंसियों की सेवाएं लेना:** अधिनियम की धारा 14 के तहत आयोग केंद्र सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के किसी अधिकारी या जांच एजेंसी (जैसे CBI, राज्य CID आदि) की सेवाओं का उसकी सहमति से उपयोग कर सकता है। जब कोई अधिकारी आयोग के अधीन कार्य करता है, तो वह केवल आयोग के निर्देशों के अधीन होता है।

अभिलेखों का न्यायिक स्वरूप (धारा 15)

आयोग के समक्ष की जाने वाली सभी कार्यवाहियां भारतीय दंड संहिता की धारा 193 और 228 के अर्थ में **न्यायिक कार्यवाहियां (Judicial Proceedings)** समझी जाती हैं, तथा आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता (CrPC) की धारा 195 और अध्याय XXVI के प्रयोजनों हेतु एक सिविल न्यायालय माना जाता है।

सशस्त्र बलों के संदर्भ में विशेष प्रक्रिया (धारा 19)

राष्ट्रीय संप्रभुता, सैन्य अनुशासन और परिचालन दक्षता को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत सेना, नौसेना, वायु सेना तथा संघ के अन्य सशस्त्र बलों (जैसे CRPF, BSF, ITBP, असम राइफल्स आदि) द्वारा किए गए मानवाधिकार उल्लंघनों के संदर्भ में आयोग की शक्तियों को सीमित और विशिष्ट बनाया गया है।



wincompete

केंद्र सरकार को संस्तुति प्रेषित (दोषियों पर सैन्य अदालत में कार्रवाई / मुआवजा)	कार्यवाही समाप्त

↓

केंद्र सरकार द्वारा 3 माह के भीतर कार्रवाई से अवगत कराना

↓

आयोग द्वारा अपनी रिपोर्ट एवं सरकार के उत्तर को सार्वजनिक करना

विशिष्ट प्रक्रियात्मक चरण

अ. **स्वतः जांच का अभाव:** सशस्त्र बलों के सदस्यों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन की शिकायत प्राप्त होने पर आयोग स्वयं अपने अन्वेषण दल से सीधे जांच नहीं कराता।

ब. **केंद्र सरकार से रिपोर्ट तलब करना:** आयोग स्वप्रेरणा से अथवा शिकायत पर **केंद्र सरकार से एक विस्तृत रिपोर्ट मांगता है**।

स. **संस्तुतियां प्रेषित करना:** केंद्र सरकार की रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात यदि आयोग संतुष्ट नहीं होता, तो वह मामले को आगे न बढ़ाकर सीधे केंद्र सरकार को अपनी **सिफारिशें (Recommendations)** प्रेषित करता है (जैसे सैन्य न्यायालय में कोर्ट मार्शल चलाना, पीड़ित को अंतरिम मुआवजा देना आदि)।

द. **तीन माह की अनिवार्य समय-सीमा:** केंद्र सरकार आयोग की सिफारिशें प्राप्त होने के **तीन माह (3 Months)** के भीतर आयोग को यह संसूचित करेगी कि उसने उन सिफारिशों पर क्या कार्रवाई की है।

य. **संसदीय एवं सार्वजनिक प्रकटीकरण:** आयोग अपनी सिफारिशों और उस पर केंद्र सरकार द्वारा की गई कार्रवाई की रिपोर्ट को अपनी वार्षिक रिपोर्ट में प्रकाशित करता है तथा उसे सार्वजनिक करता है।

जांच के पश्चात आयोग के कदम एवं विधिक उपचार (धारा 18)

जब आयोग किसी जांच के संपन्न होने पर यह पाता है कि किसी लोक सेवक द्वारा मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ है अथवा उसने ऐसे उल्लंघन को रोकने में घोर लापरवाही बरती है, तो वह निम्नलिखित कदम उठा सकता है:

अ. **अंतरिम वित्तीय राहत की संस्तुति:** पीड़ित व्यक्ति या उसके परिवार के सदस्यों को तत्काल **अंतरिम वित्तीय अनुतोष (Interim Financial Relief)** या मुआवजा प्रदान करने के लिए संबंधित सरकार या प्राधिकारी को सिफारिश करना।

wincompete

ब. **दोषी लोक सेवकों के विरुद्ध अभियोजन:** संबंधित सरकार या प्राधिकारी को दोषी लोक सेवक के विरुद्ध **आपराधिक अभियोजन (Prosecution)** अथवा विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने की संस्तुति करना।

स. **उच्चतम या उच्च न्यायालय में याचिका दायर करना:** आयोग स्वयं संविधान के **अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में अथवा अनुच्छेद 226 के अधीन संबंधित उच्च न्यायालय में** पीड़ित को न्याय दिलाने, रिट जारी कराने अथवा मुआवजा दिलाने हेतु याचिका संस्थित कर सकता है।

द. **सिफारिशों की सलाहकारी प्रकृति:**

- आयोग के निर्णय, आदेश अथवा संस्तुतियां संबंधित सरकार पर **सीधे बाध्यकारी (Binding) नहीं होतीं; वे प्रकृति में सलाहकारी (Advisory)** होती हैं।
- तथापि, संबंधित सरकार या प्राधिकारी को आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति की तारीख से **एक माह (1 Month)** के भीतर आयोग को यह सूचित करना अनिवार्य होता है कि उसने आयोग की संस्तुतियों पर क्या कार्रवाई की है अथवा किन कारणों से सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया गया है।

मानवाधिकार संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2019: संरचनात्मक एवं प्रक्रियात्मक सुधार

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 में वर्ष 2006 में प्रथम बार संशोधन किया गया था। तत्पश्चात संस्थागत अनुभव, रिक्तियों की समस्या के समाधान तथा पेरिस सिद्धांतों के अनुरूप आयोग को अधिक समावेशी बनाने हेतु संसद द्वारा **मानवाधिकार संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2019** पारित किया गया, जो 2 अगस्त 2019 से प्रभावी हुआ।

2019 के संशोधनों का तुलनात्मक विन्यास

विषय / प्रावधान	मूल अधिनियम (1993, यथासंशोधित 2006)	2019 के संशोधन के पश्चात की स्थिति
एनएचआरसी अध्यक्ष की पात्रता	केवल **भारत का पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति (Former CJI)** ही अध्यक्ष बन सकता था।	भारत के पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति के अतिरिक्त **उच्चतम न्यायालय का कोई पूर्व न्यायाधीश (Former Judge of Supreme Court)** भी अध्यक्ष बनने हेतु पात्र है।
विशेषज्ञ सदस्यों की संख्या	मानवाधिकार विशेषज्ञ के रूप में **2 सदस्य** नियुक्त होते थे।	विशेषज्ञ सदस्यों की संख्या बढ़ाकर **3 सदस्य** की गई, तथा यह अनिवार्य किया गया कि इनमें **कम से कम 1 महिला सदस्य** अवश्य होगी।
पदेन सदस्यों (Ex-Officio) का विस्तार	केवल 4 पदेन सदस्य थे (SC, ST, अल्पसंख्यक व महिला आयोग के अध्यक्ष)।	**3 नए पदेन सदस्य जोड़े गए:** पिछड़ा वर्ग आयोग (NCBC), बाल अधिकार आयोग (NCPCR) के अध्यक्ष तथा दिव्यांगजन मुख्य आयुक्त। कुल पदेन सदस्य = **7**।
पदावधि / कार्यकाल	अध्यक्ष एवं सदस्यों का कार्यकाल **5 वर्ष अथवा**	कार्यकाल घटाकर **3 वर्ष अथवा 70 वर्ष की आयु** (जो भी पहले हो) कर दिया गया।

wincompete

	70 वर्ष की आयु (जो भी पहले हो) था।	
पुनर्नियुक्ति (Re-appointment)	सदस्य पुनर्नियुक्ति के पात्र थे, किंतु अध्यक्ष पुनर्नियुक्ति का पात्र नहीं था।	अध्यक्ष एवं सदस्य दोनों **तीन वर्ष की अतिरिक्त अवधि हेतु पुनर्नियुक्ति के पात्र** बनाए गए (70 वर्ष की सीमा के अधीन)।
राज्य आयोग (SHRC) अध्यक्ष की पात्रता	केवल उच्च न्यायालय का **पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति (Former CJ)** ही अध्यक्ष बन सकता था।	उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति के अतिरिक्त **उच्च न्यायालय का कोई पूर्व न्यायाधीश** भी अध्यक्ष बनने हेतु पात्र है।
केंद्र शासित प्रदेशों के मानवाधिकार कार्य	दिल्ली सहित सभी संघ राज्य क्षेत्रों के मामले राष्ट्रीय आयोग देखता था।	दिल्ली को छोड़कर अन्य संघ राज्य क्षेत्रों के मानवाधिकार कार्यों को संबंधित समीपवर्ती राज्यों के **राज्य मानवाधिकार आयोगों (SHRC)** को सौंपने की शक्ति दी गई; दिल्ली के मामले NHRC स्वयं देखेगा।

संशोधन के पीछे विधायी उद्देश्य

अ. **शीर्ष पदों पर रिक्तियों का निवारण:** पूर्व में केवल पूर्व सीजेआई ही अध्यक्ष बन सकते थे। चूंकि सेवानिवृत्त मुख्य न्यायमूर्तियों की संख्या अत्यंत सीमित होती है और वे अन्य अधिकरणों में भी नियुक्त होते हैं, अतः अध्यक्ष का पद प्रायः दीर्घकाल तक रिक्त रहता था। उच्चतम न्यायालय के अन्य सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को पात्र बनाकर चयन का दायरा विस्तृत किया गया।

ब. **जेंडर संवेदनशीलता:** पूर्णकालिक सदस्यों में न्यूनतम एक महिला सदस्य की अनिवार्यता ने लैंगिक न्याय और संवेदनशीलता को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया।

wincompete

एक वर्ष की काल-बाधा सीमा (धारा 36(2)) एवं जांच के क्षेत्राधिकार पर प्रतिबंध

अधिनियम की धारा 36 आयोग के जांच क्षेत्राधिकार पर कतिपय स्पष्ट विधिक निर्बंधन अधिरोपित करती है, जो इसकी कार्यप्रणाली को सीमित करते हैं:

आयोग के क्षेत्राधिकार पर दोहरे प्रतिबंध (धारा 36)

↓

राज्य आयोगों के क्षेत्राधिकार का सम्मान (धारा 36(1))	एक वर्ष की काल-बाधा सीमा (धारा 36(2))
यदि किसी मामले की जांच पहले से राज्य आयोग या किसी अन्य सांविधिक आयोग द्वारा की जा रही है, तो NHRC उस मामले की जांच नहीं करेगा।	घटना घटित होने की तिथि से 1 वर्ष के पश्चात की गई शिकायतों की जांच करने की शक्ति आयोग के पास नहीं होगी।

1. एक वर्ष की काल-बाधा सीमा (Statute of Limitation - धारा 36(2))

अधिनियम की धारा 36(2) स्पष्ट रूप से उपबंधित करती है कि:

> *"आयोग या राज्य आयोग किसी ऐसे विषय की जांच नहीं करेगा जो उस तारीख से, जिसको मानवाधिकारों का उल्लंघन करने वाले उस कृत्य का किया जाना अभिकथित है,* ***एक वर्ष (One Year) की समाप्ति के पश्चात*** *किया गया है।"*

इसका विधिक प्रभाव यह है कि यदि किसी मानवाधिकार उल्लंघन की घटना के घटित होने की तारीख से एक वर्ष से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है, तो आयोग उस शिकायत को स्वीकार करने अथवा उसकी जांच करने हेतु **विधिक रूप से अक्षम (Time-Barred)** हो जाता है, चाहे मामला कितना भी गंभीर क्यों न हो।

2. अन्य आयोगों के क्षेत्राधिकार का सम्मान (धारा 36(1))

आयोग किसी ऐसे मामले की जांच नहीं करेगा जिसकी जांच किसी राज्य मानवाधिकार आयोग अथवा संसद या राज्य विधानमंडल की किसी विधि के अधीन गठित किसी अन्य सांविधिक आयोग (जैसे राष्ट्रीय महिला आयोग अथवा राष्ट्रीय बाल अधिकार आयोग) द्वारा पहले से ही की जा रही है।

संस्थागत चुनौतियां, आलोचनाएं एवं सुधारात्मक दृष्टिकोण

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने अपने तीन दशकों से अधिक के कार्यकाल में पुलिस हिरासत में यातना, फर्जी मुठभेड़ों, बाल श्रम, बंधुआ मजदूरी तथा कैदियों के अधिकारों के संरक्षण में अत्यंत सराहनीय योगदान दिया है। तथापि, विधिक एवं प्रशासनिक विशेषज्ञों द्वारा आयोग की कतिपय संरचनात्मक सीमाओं की निरंतर आलोचना की जाती रही है:

wincompete

अ. **'दंतविहीन बाघ' (Toothless Tiger) की संज्ञा:** आयोग के पूर्व अध्यक्ष **न्यायमूर्ति एच. एल. दत्तू** ने स्वयं एनएचआरसी को एक 'दंतविहीन बाघ' कहा था। इसका कारण यह है कि आयोग के पास अपने निर्णयों या सिफारिशों को सरकारों पर सीधे बाध्यकारी बनाने की कोई कार्यकारी शक्ति नहीं है। यह केवल मुआवजे अथवा अभियोजन की सिफारिश कर सकता है; सिफारिशों को लागू करना पूर्णतः संबंधित सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है।

ब. **सशस्त्र बलों पर सीमित नियंत्रण:** धारा 19 के अंतर्गत सशस्त्र बलों के विरुद्ध शिकायतों की स्वतंत्र जांच करने की शक्ति न होना और केवल केंद्र सरकार की रिपोर्ट पर निर्भर रहना आयोग की स्वतंत्रता को सीमित करता है।

स. **अन्वेषण हेतु पुलिस मशीनरी पर निर्भरता:** आयोग की स्वयं की अन्वेषण शाखा में पुलिस अधिकारी ही प्रतिनियुक्ति पर आते हैं। जब पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध ही मानवाधिकार उल्लंघन (जैसे हिरासत में मौत) के आरोप होते हैं, तो पुलिस अधिकारियों द्वारा ही निष्पक्ष जांच किए जाने पर हितों के टकराव (Conflict of Interest) का संशय उत्पन्न होता है।

द. **संसाधनों एवं बजट का अभाव:** देश की विशाल जनसंख्या और मानवाधिकार शिकायतों की भारी संख्या (प्रतिवर्ष 80,000 से 1,00,000 शिकायतें) के सापेक्ष आयोग के पास कर्मचारियों, बजट और अवसंरचना का अत्यधिक अभाव है।

य. **मानवाधिकार न्यायालयों की असफलता (धारा 30):** यद्यपि अधिनियम के अध्याय छह में प्रत्येक जिले में सत्र न्यायालय को मानवाधिकार न्यायालय के रूप में स्थापित करने का प्रावधान था, किंतु अधिकांश राज्यों ने इस दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया है और न ही इसके लिए कोई पृथक प्रक्रियात्मक नियम बनाए हैं।

संवैधानिक, प्रशासनिक एवं विधिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **नैसर्गिक अधिकार (Natural Rights):** वे मूल अधिकार जो किसी संप्रभु राज्य या संविधान द्वारा प्रदत्त नहीं किए जाते, बल्कि जो मानव प्रकृति का अभिन्न अंग हैं और जन्म के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में निहित हो जाते हैं (जैसे जीवन एवं स्वतंत्रता का अधिकार)।

ब. **पेरिस सिद्धांत (Paris Principles):** संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1991 में निर्धारित वे अंतरराष्ट्रीय मानक जो राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थानों की संरचनात्मक स्वतंत्रता, बहुलवादी प्रतिनिधित्व तथा जांच की स्वायत्तता का वैश्विक पैमाना तय करते हैं।

स. **स्वतः संज्ञान (Suo Motu Cognizance):** किसी पीड़ित पक्षकार द्वारा औपचारिक याचिका दायर किए बिना ही, समाचार पत्रों, मीडिया रिपोर्टों अथवा सार्वजनिक संज्ञान के आधार पर आयोग द्वारा स्वयं अपनी पहल पर मानवाधिकार हनन की जांच प्रारंभ करने की असाधारण शक्ति।

द. **अहस्तांतरणीय अधिकार (Inalienable Rights):** वे अधिकार जिन्हें किसी भी व्यक्ति से न तो छीना जा सकता है और न ही कोई व्यक्ति स्वेच्छा से उनका त्याग कर सकता है; ये मानवाधिकारों की मूल आत्मा हैं।

य. **काल-बाधा सीमा (Statute of Limitation):** कानून द्वारा निर्धारित वह अधिकतम समय-सीमा (एनएचआरसी के संदर्भ में 1 वर्ष), जिसके बीत जाने के उपरांत कोई विधिक उपचार अथवा जांच की मांग करने का विधिक अधिकार समाप्त हो जाता है।

र. **हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र (Warrant under Hand and Seal):** राष्ट्रपति द्वारा अपने स्वयं के हस्ताक्षर एवं भारत के राजकीय प्रतीक (सील) के अंतर्गत जारी किया गया सर्वोच्च औपचारिक नियुक्ति पत्र, जो पदधारक की उच्च संवैधानिक व सांविधिक गरिमा को सिद्ध करता है।

ल. **अंतरिम अनुतोष (Interim Relief):** किसी मामले की अंतिम जांच पूर्ण होने से पूर्व ही, पीड़ित की तात्कालिक मानवीय आवश्यकताओं, चिकित्सा या भरण-पोषण हेतु आयोग द्वारा सरकार को दिलाया जाने वाला अंतरिम वित्तीय मुआवजा।

visionpete

अध्याय 23: भारतीय संघवाद का ढांचा: 'राज्यों का संघ', एकात्मक झुकाव वाले संघीय लक्षण, केंद्र-राज्य विधायी, प्रशासनिक एवं वित्तीय संबंध

'राज्यों का संघ' (अनुच्छेद 1): दार्शनिक आधार एवं संवैधानिक संकल्पना

भारतीय संविधान के भाग एक के अंतर्गत अनुच्छेद 1(1) में यह स्पष्ट घोषणा की गई है कि **"भारत, अर्थात् इंडिया, राज्यों का संघ (Union of States) होगा।"** प्रारूप समिति द्वारा जानबूझकर 'परिसंघ' (Federation) शब्द के स्थान पर 'संघ' (Union) शब्दावली का चयन किया गया। संविधान सभा में इस शब्दावली का बचाव करते हुए डॉ. भीमराव आंबेडकर ने इसके दो अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अकाट्य विधिक आधार प्रस्तुत किए थे:

अ. **समझौते का परिणाम नहीं:** भारतीय संघ राज्यों के मध्य किसी पारस्परिक समझौते या संविदा (Agreement or Treaty) का परिणाम नहीं है, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका के परिसंघीय ढांचे में देखा जाता है। भारत एक अविभाज्य भौगोलिक एवं ऐतिहासिक इकाई था, जिसका प्रशासनिक सुविधा हेतु विभिन्न राज्यों में विभाजन किया गया।

ब. **विभक्त होने का अधिकार नहीं:** किसी भी राज्य को भारतीय संघ से पृथक होने, अपनी स्वतंत्रता घोषित करने अथवा संघ से अलग होने (Right to Secede) का कोई विधिक या संवैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है।

भारतीय राज्यक्षेत्र का संवैधानिक वर्गीकरण (अनुच्छेद 1(3))

↓

राज्यों के राज्यक्षेत्र	संघ राज्यक्षेत्र	अर्जित किए गए राज्यक्षेत्र
(States - वर्तमान में 28 राज्य)	(UTs - पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट - 8)	(Acquired Territories)

संविधान के अंतर्गत 'भारत का राज्यक्षेत्र' (Territory of India) शब्दावली 'भारत का संघ' (Union of India) की तुलना में कहीं अधिक व्यापक है। 'संघ' के अंतर्गत केवल वे 28 घटक राज्य सम्मिलित होते हैं जो केंद्र के साथ शक्तियों के संवैधानिक विभाजन में प्रत्यक्ष भागीदार हैं; जबकि 'राज्यक्षेत्र' के अंतर्गत राज्यों के अतिरिक्त संघ राज्य क्षेत्र तथा भविष्य में किसी संप्रभु विधि द्वारा अर्जित किए जाने वाले सभी भौगोलिक क्षेत्र सम्मिलित होते हैं।

भारतीय संघवाद के इसी स्वरूप के आधार पर इसे **"अविनाशी संघ का विनाशी राज्य" (Indestructible Union of Destructible States)** कहा जाता है। संविधान के **अनुच्छेद 3** के अंतर्गत संसद को यह अनन्य संप्रभु अधिकार प्राप्त है कि वह विधि द्वारा किसी भी राज्य की सीमाओं, क्षेत्रफल अथवा नाम में परिवर्तन कर सकती है तथा किसी राज्य के भूभाग को अलग कर नए राज्य का निर्माण कर सकती है। इसके लिए संबंधित राज्य विधानमंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है (राज्य का मत केवल परामर्शदात्री होता है, जिसे स्वीकार करने हेतु संसद बाध्य नहीं है)। इसके विपरीत, संयुक्त राज्य अमेरिका को **"अविनाशी राज्यों का अविनाशी संघ"** कहा जाता है, जहाँ सीनेट और संबंधित राज्य की विधायिका की पूर्व सहमति के बिना किसी भी राज्य की भौगोलिक सीमाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

भारतीय संघवाद की प्रकृति: एकात्मक झुकाव एवं विद्वानों के दृष्टिकोण

भारतीय संविधान में संघवाद के शास्त्रीय लक्षणों के साथ-साथ एकात्मक शासन प्रणाली के अनेक तत्वों का ऐसा अनूठा मिश्रण किया गया है जो इसे वैश्विक स्तर पर विशिष्ट बनाता है। विभिन्न राजनीतिक विचारकों, न्यायविदों तथा संवैधानिक पीठों ने इसकी प्रकृति का विशद विश्लेषण किया है।

विद्वानों के अनुसार भारतीय संघवाद का स्वरूप

↓

के. सी. व्हीयर	ग्रेनविल ऑस्टिन	पॉल एप्पलबी	मॉरिस जोन्स
'अर्द्ध-संघीय' (Quasi-Federal)	'सहकारी संघवाद' (Cooperative Federalism)	'अत्यंत केंद्रीकृत' (Extremely Centralized)	'सौदाकारी संघवाद' (Bargaining Federalism)

प्रमुख विधिवेत्ताओं के सैद्धांतिक दृष्टिकोण

अ. **के. सी. व्हीयर (K. C. Wheare):** उन्होंने भारतीय संविधान को **'अर्द्ध-संघीय' (Quasi-Federal)** की संज्ञा दी। उनका निष्कर्ष था कि भारतीय संविधान एक ऐसा एकात्मक राज्य स्थापित करता है जिसमें गौण संघीय विशेषताएं हैं, न कि एक ऐसा संघीय राज्य जिसमें गौण एकात्मक विशेषताएं हों।

ब. **ग्रेनविल ऑस्टिन (Granville Austin):** उन्होंने भारतीय व्यवस्था को **'सहकारी संघवाद' (Cooperative Federalism)** कहा, जो एक सुदृढ़ केंद्रीय सरकार का निर्माण करते हुए भी राज्यों की विकासात्मक भूमिका को अक्षुण्ण बनाए रखता है।

स. **पॉल एप्पलबी (Paul Appleby):** इन्होंने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था को 'अत्यंत केंद्रीकृत' (Extremely Centralized) व्यवस्था के रूप में विश्लेषित किया।

द. **मॉरिस जोन्स (Morris Jones):** उन्होंने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के परिचालन को 'सौदाकारी संघवाद' (Bargaining Federalism) की संज्ञा दी, जहाँ केंद्र और राज्यों के मध्य राजनीतिक सौदेबाजी के आधार पर संतुलन बनता है।

य. **आईवर जेनिंग्स (Ivor Jennings):** उनके अनुसार यह "मजबूत केंद्रीकरण की प्रवृत्ति वाला परिसंघ" (Federation with a strong centralizing tendency) है।

संघीय लक्षण बनाम एकात्मक लक्षण: तुलनात्मक तालिका

क्रम	भारतीय संविधान के संघीय लक्षण (Federal Features)	भारतीय संविधान के एकात्मक लक्षण (Unitary Features)
1.	**लिखित एवं सर्वोच्च संविधान:** संविधान देश की सर्वोच्च विधि है, जिसके उपबंध केंद्र व राज्य दोनों पर बाध्यकारी हैं।	**एकल संविधान:** राज्यों का अपना कोई पृथक संविधान नहीं है; केंद्र और राज्य दोनों एक ही संविधान से संचालित होते हैं।

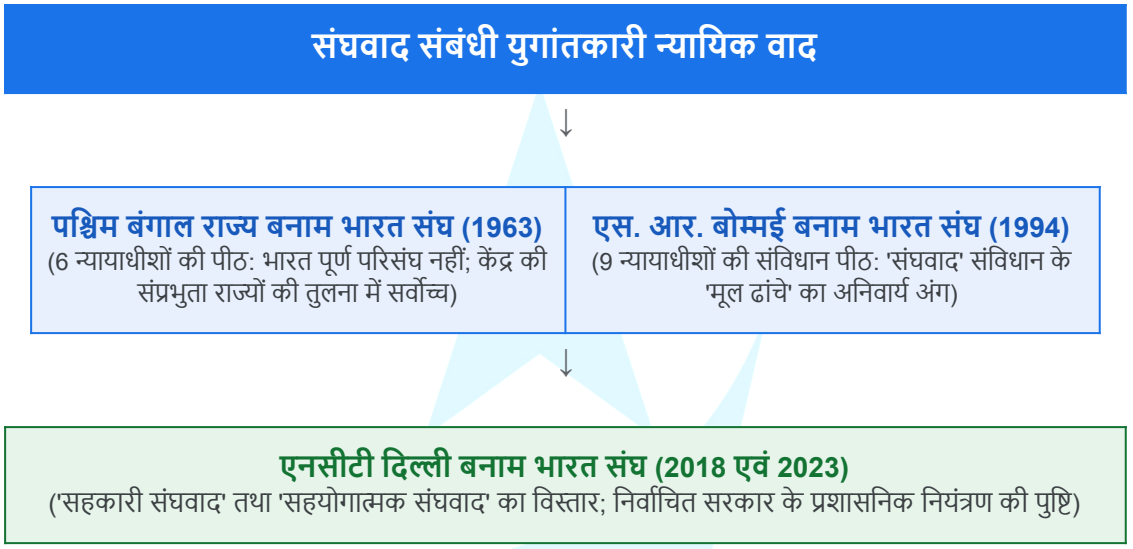
wincompete

2.	**शक्तियों का स्पष्ट विभाजन:** सातवीं अनुसूची में संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची के माध्यम से विषयों का पृथक्करण।	**अवशिष्ट शक्तियां केंद्र में निहित:** अनुच्छेद 248 के तहत अवशिष्ट विधायी शक्तियां राज्यों के स्थान पर संसद को सौंपी गई हैं।
3.	**स्वतंत्र न्यायपालिका:** उच्चतम न्यायालय संविधान का अंतिम व्याख्याकार तथा केंद्र-राज्य विवादों का अनन्य निर्णायक है (अनुच्छेद 131)।	**एकीकृत न्यायिक व्यवस्था:** अमेरिका के विपरीत, भारत में केंद्रीय व राज्य विधियों को लागू करने हेतु एक ही पदानुक्रमित न्यायपालिका है।
4.	**द्विसदनीय विधायिका:** संसद में उच्च सदन (राज्यसभा) राज्यों के संघीय हितों और प्रतिनिधित्व का औपचारिक मंच है।	**राज्यसभा में असमान प्रतिनिधित्व:** अमेरिका (जहाँ प्रत्येक राज्य को सीनेट में समान 2 सीटें प्राप्त हैं) के विपरीत भारत में सीटों का आवंटन जनसंख्या के आधार पर है।
5.	**संविधान की अनम्यता (कठोरता):** संघीय ढांचे को प्रभावित करने वाले अनुच्छेदों में संशोधन हेतु विशेष बहुमत के साथ आधे राज्यों का अनुसमर्थन अनिवार्य है (अनुच्छेद 368)।	**संविधान संशोधन में संसद की सर्वोच्चता:** अधिकांश अनुच्छेदों में संसद साधारण या विशेष बहुमत से राज्यों की सहमति के बिना संशोधन कर सकती है।
6.	**दोहरा शासन तंत्र (Dual Polity):** राष्ट्रीय स्तर पर केंद्र सरकार तथा क्षेत्रीय स्तर पर राज्य सरकारों का सुस्पष्ट अस्तित्व।	**राज्यपाल की नियुक्ति:** राज्यों के संवैधानिक प्रमुख की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह उसके प्रसादपर्यंत पद धारण करता है (अनुच्छेद 155, 156)।
7.	**राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता:** संविधान में राज्यों के लिए स्वतंत्र कर स्रोतों तथा राजस्व के हस्तांतरण की विधिक व्यवस्था है।	**आपातकालीन उपबंध:** अनुच्छेद 352, 356 एवं 360 के प्रभावी होते ही संपूर्ण ढांचा बिना किसी संशोधन के पूर्णतः एकात्मक में रूपांतरित हो जाता है।
8.	**विधायी निश्चितता:** राज्य सूची के विषयों पर सामान्य परिस्थितियों में राज्य विधानमंडलों को अनन्य विधि निर्माण का अधिकार है।	**अखिल भारतीय सेवाएं (अनुच्छेद 312):** IAS, IPS जैसी सेवाएं राज्यों के मुख्य प्रशासनिक पदों पर पदस्थ होती हैं, जिन पर अंतिम नियंत्रण केंद्र का होता है।

wincompete

भारतीय संघवाद पर उच्चतम न्यायालय का न्यायिक दृष्टिकोण

सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर ऐतिहासिक वादों में भारतीय संविधान के संघीय स्वरूप की व्याख्या की है और अंततः इसे संविधान की अपरिवर्तनीय आधारभूत संरचना का अंग घोषित किया है।



अ. **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम भारत संघ (1963):** छह न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि भारतीय संविधान पूर्णतः परिसंघीय (Truly Federal) नहीं है। मुख्य न्यायमूर्ति बी. पी. सिन्हा ने बहुमत के निर्णय में कहा कि भारतीय प्रशासनिक ढांचे में राजनीतिक संप्रभुता केंद्र और राज्यों के मध्य बंटी नहीं है, बल्कि संपूर्ण संप्रभुता भारत की जनता में और उसके माध्यम से केंद्र सरकार में केंद्रित है।

ब. **एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994):** नौ न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से यह ऐतिहासिक सिद्धांत प्रतिपादित किया कि **"संघवाद हमारे संविधान की मूल संरचना (Basic Structure) का एक अभिन्न अंग है।"**

- न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संविधान के तहत राज्यों की स्वतंत्र संवैधानिक सत्ता है; वे केंद्र के केवल उप-विभाग या प्रशासनिक अभिकर्ता (Agents) नहीं हैं।
-
- अपने निर्धारित क्षेत्राधिकार के भीतर राज्य संप्रभु हैं। केंद्र द्वारा अनुच्छेद 356 का मनमाना प्रयोग संघीय ढांचे पर आघात माना जाएगा और ऐसा कृत्य न्यायिक समीक्षा के अधीन होगा।
-

स. **कुलदीप नायर बनाम भारत संघ (2006):** पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने माना कि यद्यपि संघवाद मूल ढांचा है, किंतु भारतीय संघवाद की अपनी विशिष्ट आवश्यकताएं हैं। राज्यसभा में निर्वाचन हेतु संबंधित राज्य के अधिवास (Domicile) की अनिवार्यता को समाप्त करना संघवाद के विरुद्ध नहीं है।

द. **गवर्नमेंट ऑफ एनसीटी ऑफ दिल्ली बनाम भारत संघ (2018 एवं 2023):** संविधान पीठ ने 'सहयोगात्मक संघवाद' (Collaborative Federalism) तथा 'व्यावहारिक संघवाद' (Pragmatic Federalism) के सिद्धांतों को प्रतिपादित करते हुए व्यवस्था दी कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनी हुई सरकार की जनता के प्रति जवाबदेही होती है, अतः उपराज्यपाल को मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह से ही कार्य करना चाहिए।

केंद्र-राज्य विधायी संबंध: क्षेत्रीय सीमाएं एवं विषयों का वितरण (अनुच्छेद 245-247)

संविधान के भाग ग्यारह के अध्याय एक में अनुच्छेद 245 से 255 तक केंद्र और राज्यों के मध्य विधायी संबंधों का विन्यास किया गया है। इसका विश्लेषण दो आधारों पर किया जाता है: विधायी शक्तियों का राज्यक्षेत्रीय विस्तार तथा विषय-वस्तु के अनुसार विधायी शक्तियों का वितरण।

1. विधायी शक्तियों का राज्यक्षेत्रीय विस्तार (अनुच्छेद 245)

अ. **संसद का क्षेत्राधिकार:** संसद संपूर्ण भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकती है। इसके अतिरिक्त संसद को **'राज्यक्षेत्रातीत विधान' (Extra-Territorial Legislation)** बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है। संसद द्वारा निर्मित विधि भारत के बाहर रहने वाले भारतीय नागरिकों तथा उनकी विदेशों में स्थित संपत्ति पर भी लागू होती है।

ब. **राज्य विधानमंडल का क्षेत्राधिकार:** राज्य विधानमंडल संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकता है। राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि राज्य की भौगोलिक सीमा के बाहर लागू नहीं होती, सिवाय उस स्थिति के जब विधि और राज्य के मध्य कोई **पर्याप्त क्षेत्रीय संबंध (Territorial Nexus)** सिद्ध हो जाए (जैसे राज्य बनाम आरएमडीसी वाद, 1957)।

स. **संसदीय संप्रभुता पर संवैधानिक निर्बंधन:**

- **अनुच्छेद 240:** राष्ट्रपति कुछ संघ राज्य क्षेत्रों (अंडमान-निकोबार, लक्षद्वीप, दादरा एवं नगर हवेली तथा दमन एवं दीव) की शांति, प्रगति और सुशासन हेतु ऐसे विनियम बना सकता है जो संसद के किसी अधिनियम को निरसित या संशोधित कर सकते हैं।
- **पांचवीं अनुसूची (पैरा 5):** संबंधित राज्य का राज्यपाल अधिसूचना द्वारा यह निर्देश दे सकता है कि संसद या राज्य विधानमंडल का कोई अधिनियम उस राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू नहीं होगा अथवा संशोधनों के साथ लागू होगा।
- **छठी अनुसूची (पैरा 9 व 19):** असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के स्वायत्त जनजातीय जिलों में संसद या राज्य विधानमंडल के अधिनियमों के अनुप्रयोग को राज्यपाल या राष्ट्रपति सीमित कर सकते हैं।

2. विषय-वस्तु के अनुसार विधायी शक्तियों का त्रि-स्तरीय वितरण (अनुच्छेद 246 एवं सातवीं अनुसूची)

संविधान का अनुच्छेद 246 सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों के माध्यम से विधायी विषयों का स्पष्ट सीमांकन करता है। यह योजना भारत शासन अधिनियम, 1935 से प्रेरित है:



wincompete

• राष्ट्रीय महत्व के विषय • संसद को अनन्य शक्ति • मूल: 97 विषय | वर्तमान: 100 विषय • रक्षा, विदेश, परमाणु, रेलवे, बैंकिंग	• स्थानीय एवं प्रांतीय महत्व • राज्य विधानमंडल को अनन्य शक्ति • मूल: 66 विषय | वर्तमान: 61 विषय • पुलिस, लोक स्वास्थ्य, कृषि, जेल	• साझा विधायी अधिकार • केंद्र व राज्य दोनों को शक्ति • मूल: 47 विषय | वर्तमान: 52 विषय • आपराधिक विधि, शिक्षा, वन, विवाह

42वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा विषयों का स्थानांतरण

42वें संविधान संशोधन द्वारा राज्य सूची में से पांच अत्यंत महत्वपूर्ण विषयों को निकालकर समवर्ती सूची (सूची III) में स्थानांतरित कर दिया गया, जिससे राज्य सूची के विषय 66 से घटकर 61 रह गए और समवर्ती सूची के विषय 47 से बढ़कर 52 हो गए:

अ. **शिक्षा (Education)**

ब. **वन (Forests)**

स. **वन्य जीवों एवं पक्षियों का संरक्षण (Protection of Wild Animals and Birds)**

द. **नाप और तौल (Weights and Measures)**

य. **न्याय प्रशासन; उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों से भिन्न सभी न्यायालयों का गठन और संगठन**

अवशिष्ट शक्तियां एवं विधायी व्याख्या के न्यायिक सिद्धांत (अनुच्छेद 248)

संविधान का **अनुच्छेद 248** यह उपबंध करता है कि ऐसे किसी भी विषय पर, जो समवर्ती सूची या राज्य सूची में प्रगणित (Enumerated) नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति संसद में निहित होगी। इसके अंतर्गत ऐसे किसी कर के अधिरोपण की शक्ति भी शामिल है जिसका उल्लेख सूची II या सूची III में नहीं है।

- **वैश्विक तुलना:** अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के परिसंघीय संविधानों में अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers) राज्यों/प्रांतों को सौंपी गई हैं। भारत ने इस संदर्भ में **कनाडा के संविधान** का अनुकरण किया है, जहाँ अवशिष्ट शक्तियां केंद्र के पास सुरक्षित हैं।
-

विधायी सूचियों के निर्वचन हेतु सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख न्यायिक सिद्धांत

जब तीनों सूचियों के विषयों के सीमांकन में कोई अस्पष्टता या अतिक्रमण का प्रश्न उत्पन्न होता है, तब न्यायपालिका निम्नलिखित संवैधानिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग करती है:

wincompete

अ. **सार एवं तत्व का सिद्धांत (Doctrine of Pith and Substance):**

- यदि किसी विधानमंडल द्वारा बनाया गया कानून अनिवार्य रूप से उसके अपने अधिकार क्षेत्र के विषय पर आधारित है, किंतु वह प्रासंगिक रूप से (Incidentally) किसी अन्य सूची के विषय का अतिक्रमण करता है, तो संपूर्ण कानून को अवैध घोषित नहीं किया जाएगा।
- न्यायालय कानून के वास्तविक स्वरूप, उद्देश्य और प्रभाव (Pith and Substance) की जांच करता है। यदि कानून का मूल तत्व सक्षम सूची से संबंधित है, तो वह वैध माना जाएगा (प्रफुल्ल कुमार मुखर्जी बनाम बैंक ऑफ कॉमर्स, खुलना वाद, 1947)।

ब. **छद्म विधान का सिद्धांत (Doctrine of Colourable Legislation):**

- यह सिद्धांत इस सर्वमान्य लैटिन उक्ति पर आधारित है कि *"जो कार्य प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता, वह अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं किया जा सकता"* (What cannot be done directly, cannot also be done indirectly)।
- यदि कोई विधायिका अपनी शक्तियों की संवैधानिक सीमाओं को छिपाने के उद्देश्य से किसी ऐसे विषय पर कानून बनाती है जो स्पष्टतः उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है, तो न्यायालय ऐसे विधान को 'छद्म विधान' मानकर शून्य घोषित कर देगा (के. सी. गजपति नारायण देव बनाम उड़ीसा राज्य वाद, 1953)।

स. **क्षेत्रीय संबंध का सिद्धांत (Doctrine of Territorial Nexus):**

- यदि किसी राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित कानून राज्य के बाहर स्थित किसी व्यक्ति, वस्तु या संपत्ति पर प्रभाव डालता है, तो वह केवल तभी विधिमान्य होगा जब उस बाह्य विषय और राज्य के बीच एक वास्तविक और यथेष्ट क्षेत्रीय संबंध स्थापित हो सके।

राज्य सूची के विषयों पर संसद की असाधारण विधायी शक्तियां (अनुच्छेद 249-253)

सामान्य परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर केवल राज्य विधानमंडल ही कानून बना सकते हैं। किंतु राष्ट्रीय एकता, अखंडता तथा आपात स्थितियों के प्रबंधन हेतु संविधान संसद को पांच विशिष्ट परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर संपूर्ण देश या उसके किसी भाग के लिए विधि निर्माण का असाधारण अधिकार प्रदान करता है:

संसद द्वारा राज्य सूची पर विधि निर्माण की 5 असाधारण स्थितियां				
अनुच्छेद 249	**अनुच्छेद 250**	**अनुच्छेद 252**	**अनुच्छेद 253**	**अनुच्छेद 356**
• राष्ट्रीय हित में • राज्यसभा का संकल्प	• राष्ट्रीय आपातकाल के प्रवर्तन के समय	• दो या अधिक राज्यों की सहमति से अनुरोध	• अंतरराष्ट्रीय संधियों के क्रियान्वयन हेतु	• राष्ट्रपति शासन के प्रवर्तन के दौरान

1. राष्ट्रीय हित में राज्य सूची पर विधि (अनुच्छेद 249)

अ. **प्रक्रिया:** यदि राज्यसभा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम **दो-तिहाई (2/3) बहुमत** से यह संकल्प पारित कर दे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद राज्य सूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय पर विधि बनाए, तो संसद उस विषय पर विधि बनाने के लिए सक्षम हो जाती है।

ब. **समय-सीमा:** ऐसा संकल्प **अधिकतम एक वर्ष** तक प्रभावी रहता है। राज्यसभा इसे एक-एक वर्ष करके कितनी भी बार आगे बढ़ा सकती है।

स. **विधि की समाप्ति:** संसद द्वारा बनाई गई ऐसी विधि संकल्प के समाप्त होने की तारीख से **छह माह (6 Months)** की समाप्ति पर स्वतः निष्प्रभावी हो जाती है।

wincompete

2. राष्ट्रीय आपातकाल के प्रवर्तन के समय (अनुच्छेद 250)

अ. जब अनुच्छेद 352 के अधीन आपात की उद्घोषणा प्रवृत्त हो, तब संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर विधि बनाने की पूर्ण शक्ति प्राप्त हो जाती है।

ब. ऐसी विधि आपातकाल की उद्घोषणा समाप्त होने के पश्चात **छह माह की समाप्ति पर** निष्प्रभावी हो जाती है।

3. दो या अधिक राज्यों की सहमति से (अनुच्छेद 252)

अ. **प्रक्रिया:** यदि दो या अधिक राज्यों के विधानमंडल यह संकल्प पारित करें कि राज्य सूची के किसी विशिष्ट विषय पर संसद द्वारा विधि बनाई जाए, तो संसद केवल उन राज्यों के लिए उस विषय पर कानून बना सकती है।

ब. **अन्य राज्यों द्वारा अंगीकरण:** कोई भी अन्य राज्य बाद में अपने विधानमंडल द्वारा संकल्प पारित करके उस अधिनियम को अपने राज्य में अंगीकार (Adopt) कर सकता है।

स. **संशोधन की शक्ति केवल संसद को:** यह अत्यंत महत्वपूर्ण विधिक प्रावधान है कि अनुच्छेद 252 के तहत बनाए गए अधिनियम में संशोधन या निरसन (Repeal) करने की शक्ति **केवल संसद में निहित होती है**; संबंधित राज्य विधानमंडल इसमें स्वयं कोई संशोधन नहीं कर सकते। (उदाहरण: वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972, जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1974)।

4. अंतरराष्ट्रीय करारों को प्रभावी करने हेतु (अनुच्छेद 253)

संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की गई किसी संधि, करार, अभीसमय या किसी अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में किए गए किसी विनिश्चय के क्रियान्वयन हेतु भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की संप्रभु शक्ति प्राप्त है, भले ही वह विषय राज्य सूची का ही क्यों न हो। इसके लिए किसी भी राज्य की सहमति अपेक्षित नहीं होती।

5. राष्ट्रपति शासन के अधीन (अनुच्छेद 356(1)(ख))

जब किसी राज्य में अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू होता है, तब राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि उस राज्य विधानमंडल की विधायी शक्तियों का प्रयोग **संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन** किया जाएगा।

विधायी असंगति एवं केंद्र की सर्वोच्चता का सिद्धांत (अनुच्छेद 254)

संविधान का अनुच्छेद 254 समवर्ती सूची के विषयों पर केंद्र और राज्यों द्वारा निर्मित विधियों के मध्य विरोध या असंगति (Repugnancy) के समाधान का नियम स्थापित करता है।

अनुच्छेद 254(1) का सामान्य नियम

यदि समवर्ती सूची (सूची III) में प्रगणित किसी विषय के संबंध में राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपबंध संसद द्वारा बनाई गई विधि के किसी उपबंध के विरुद्ध या असंगत है, तो:

- **संसद द्वारा निर्मित विधि प्रभावी होगी** (चाहे वह राज्य विधि से पहले पारित हुई हो या बाद में);
- राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि उस असंगति की मात्रा तक **शून्य (Void)** होगी।

अनुच्छेद 254(2) का अपवादात्मक संरक्षण

अनुच्छेद 254(2) राज्यों की विधायी स्वायत्तता को एक विशिष्ट अपवाद प्रदान करता है:

राज्य विधि का संघ विधि पर अधिभावी प्रभाव (अनुच्छेद 254(2))

↓

1. राज्य विधानमंडल द्वारा समवर्ती सूची पर विधि निर्माण
(संसदीय विधि के प्रतिकूल)

↓

2. राज्यपाल द्वारा विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित
(अनुच्छेद 200 के अधीन)

↓

3. राष्ट्रपति द्वारा औपचारिक अनुमति/स्वीकृति (अनुच्छेद 201)
➔ राज्य विधि उस राज्य क्षेत्र में संसदीय विधि पर प्रभावी होगी

↓

4. अपवाद / परंतुक (संसदीय सर्वोच्चता)
संसद बाद में नया कानून बनाकर उस राज्य विधि को संशोधित या निरसित कर सकती है

यदि किसी राज्य विधानमंडल द्वारा समवर्ती सूची के विषय पर बनाई गई ऐसी विधि, जो संसद की पूर्ववर्ती विधि के प्रतिकूल है, **राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित** रखी गई हो और उस पर **राष्ट्रपति की अनुमति** प्राप्त हो गई हो, तो वह राज्य विधि **उस विशिष्ट राज्य के राज्यक्षेत्र में संसद की विधि पर अधिभावी (Prevail) होगी**।

- **अनुच्छेद 254(2) का परंतुक:** तथापि, संसद की सर्वोच्चता को बनाए रखने हेतु इस खंड के परंतुक में यह स्पष्ट किया गया है कि संसद भविष्य में किसी भी समय उसी विषय पर कोई नई विधि बनाकर, राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत उस राज्य विधि को संशोधित, परिवर्तित या निरसित (Repeal) कर सकती है।
-

केंद्र-राज्य प्रशासनिक संबंध: कार्यकारी एकात्मकता के उपकरण (अनुच्छेद 256-263)

संविधान के भाग ग्यारह के अध्याय दो में अनुच्छेद 256 से 263 तक प्रशासनिक संबंधों का विवरण दिया गया है। सामान्यतः कार्यपालिका शक्ति का विस्तार विधायी शक्ति के समानांतर होता है; किंतु प्रशासनिक स्थिरता और राष्ट्रीय नीतियों के क्रियान्वयन हेतु केंद्र को राज्यों के प्रशासनिक तंत्र पर व्यापक नियंत्रण प्रदान किया गया है।

1. राज्यों और संघ की बाध्यताएं एवं केंद्र के निर्देश (अनुच्छेद 256 एवं 257)

अ. **अनुच्छेद 256 (राज्यों की सामान्य बाध्यता):** प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा जिससे संसद द्वारा बनाई गई विधियों का अनुपालन सुनिश्चित हो। संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश (Directions) देने तक होगा जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों।

ब. **अनुच्छेद 257 (संघ का नियंत्रण एवं विशिष्ट निर्देश):**

- प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा कि वह संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई बाधा न डाले या उस पर प्रतिकूल प्रभाव न डाले (अनुच्छेद 257(1))।
- संघ राष्ट्रीय या सैन्य महत्व के संचार साधनों (Communications) के निर्माण और रख-रखाव के संबंध में राज्यों को निर्देश दे सकता है (अनुच्छेद 257(2))।
- संघ राज्य के भीतर स्थित **रेलवे के संरक्षण** के लिए किए जाने वाले उपायों के संबंध में निर्देश दे सकता है (अनुच्छेद 257(3))।
- **खर्चों की प्रतिपूर्ति (अनुच्छेद 257(4)):** यदि ऐसे निर्देशों के पालन में राज्य को कोई अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है, तो केंद्र सरकार द्वारा राज्य को उस अतिरिक्त राशि का संदाय किया जाएगा।

Vision Ipote

निर्देशों की अवज्ञा का विधिक परिणाम: अनुच्छेद 365 का अस्त्र
संविधान का **अनुच्छेद 365** केंद्र के प्रशासनिक निर्देशों को बाध्यकारी विधिक शक्ति प्रदान करता है:

"यदि कोई राज्य संघ की कार्यपालिका द्वारा संविधान के उपबंधों के अधीन दिए गए किन्हीं निर्देशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफल रहता है, तो राष्ट्रपति के लिए यह मानना विधिपूर्ण होगा कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता।"

इसके परिणामस्वरूप संबंधित राज्य में **अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन** अधिरोपित किया जा सकता है और राज्य सरकार को बर्खास्त किया जा सकता है।

2. कार्यों का पारस्परिक प्रत्यायोजन (अनुच्छेद 258 एवं 258A)
अ. **संघ द्वारा राज्य को कार्य सौंपना (अनुच्छेद 258):** राष्ट्रपति, संबंधित राज्य सरकार की **सहमति से**, संघ की कार्यपालिका शक्ति के अधीन आने वाले किसी विषय से संबंधित कार्य उस राज्य सरकार या उसके अधिकारियों को सशर्त या बिना शर्त सौंप सकता है।

- **संसद की शक्ति (अनुच्छेद 258(2)):** संसद विधि द्वारा राज्य की सहमति के बिना भी राज्य के अधिकारियों पर संघ के कानूनों के क्रियान्वयन का भार और कर्तव्य अधिरोपित कर सकती है।

ब. **राज्य द्वारा संघ को कार्य सौंपना (अनुच्छेद 258A):** यह अनुच्छेद **7वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1956** द्वारा जोड़ा गया। इसके अनुसार किसी राज्य का राज्यपाल, भारत सरकार की **सहमति से**, राज्य की कार्यपालिका शक्ति से संबंधित कोई कार्य केंद्र सरकार या उसके अधिकारियों को सौंप सकता है।

3. अखिल भारतीय सेवाएं (All India Services - अनुच्छेद 312)
भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS), भारतीय पुलिस सेवा (IPS) तथा भारतीय वन सेवा (IFoS) अखिल भारतीय सेवाएं हैं।

- ये अधिकारी केंद्र द्वारा भर्ती एवं प्रशिक्षित किए जाते हैं, किंतु वे राज्यों के संवर्ग (Cadre) में कार्य करते हैं।
- इन पर तात्कालिक नियंत्रण राज्य सरकार का होता है, किंतु अंतिम नियंत्रण (अनुशासनात्मक बर्खास्तगी या निष्कासन) केवल केंद्र सरकार द्वारा किया जा सकता है।
- **नई सेवा का सृजन:** अनुच्छेद 312 के अनुसार यदि राज्यसभा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के **दो-तिहाई बहुमत** से संकल्प पारित कर दे, तो संसद विधि द्वारा नई अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन कर सकती है।

4. अंतर-राज्यीय समन्वय एवं विवाद समाधान तंत्र
अ. **अंतर-राज्यीय जल विवाद (अनुच्छेद 262):** संसद विधि द्वारा अंतर-राज्यीय नदियों या नदी घाटियों के जल के प्रयोग, वितरण या नियंत्रण संबंधी किसी विवाद के न्यायनिर्णयन (Adjudication) के लिए उपबंध कर सकती है।

wincompete

- संसद विधि द्वारा यह उपबंधित कर सकती है कि उच्चतम न्यायालय या कोई अन्य न्यायालय ऐसे किसी विवाद के संबंध में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा।
- इसके तहत संसद ने 'अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956' पारित कर विभिन्न जल पंचाटों (Tribunals) का गठन किया है।

ब. **अंतर-राज्यीय परिषद (Inter-State Council - अनुच्छेद 263):** यदि राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि लोकहित में अंतर-राज्यीय परिषद की स्थापना आवश्यक है, तो वह आदेश द्वारा ऐसी परिषद की स्थापना कर

सकता है। सरकारीया आयोग की सिफारिश पर वर्ष 1990 में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा स्थायी अंतर-राज्यीय परिषद का गठन किया गया, जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते हैं।

केंद्र-राज्य वित्तीय संबंध एवं 101वां संविधान संशोधन अधिनियम (अनुच्छेद 264-293)

वित्तीय संबंधों का विन्यास संविधान के भाग बारह के अध्याय एक में किया गया है। भारत में कर लगाने की शक्ति और व्यय करने की जिम्मेदारियों के मध्य एक संरचनात्मक अंतर पाया जाता है; केंद्र के पास राजस्व संग्रहण के अधिक लोचशील एवं बड़े स्रोत हैं, जबकि राज्यों के पास विकासात्मक और लोक कल्याणकारी व्यय के व्यापक दायित्व हैं।

1. कर राजस्व का वितरण तंत्र (विभाज्य पूल - Divisible Pool)

संविधान में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों के आबंटन हेतु विभिन्न श्रेणियां स्थापित की गई हैं:

केंद्रीय करों के विभाजन का संवैधानिक ढांचा

↓

अनुच्छेद 268	अनुच्छेद 269	अनुच्छेद 269A	अनुच्छेद 270
• संघ द्वारा उद्गृहीत, किंतु राज्यों द्वारा संगृहीत व विनियोजित (स्टाम्प शुल्क आदि)	• संघ द्वारा उद्गृहीत व संगृहीत, किंतु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर (रेलवे माल भाड़ा आदि)	• अंतर-राज्यीय व्यापार में IGST का उद्ग्रहण व संग्रहण; केंद्र व राज्यों के मध्य आबंटन	• विभाज्य पूल (Divisible Pool): संघ द्वारा संगृहीत कर, जिनका केंद्र व राज्यों में विभाजन

अ. **अनुच्छेद 268 (संघ द्वारा उद्गृहीत, राज्यों द्वारा संगृहीत व विनियोजित):** ऐसे शुल्क (जैसे स्टाम्प शुल्क तथा औषधीय व प्रसाधन निर्मितियों पर उत्पाद शुल्क) जो संघ द्वारा लगाए जाते हैं, किंतु संबंधित राज्यों द्वारा संगृहीत और अपने उपयोग में लिए जाते हैं।

ब. **अनुच्छेद 269 (संघ द्वारा उद्गृहीत व संगृहीत, किंतु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर):** अंतर-राज्यीय व्यापार या वाणिज्य में माल के क्रय या विक्रय पर कर। यह केंद्र द्वारा वसूला जाता है, किंतु संपूर्ण आगम संबंधित राज्यों को सौंप दिया जाता है।

स. **अनुच्छेद 269A (वस्तु एवं सेवा कर के अंतर्गत अंतर-राज्यीय व्यापार):** 101वें संविधान संशोधन, 2016 द्वारा अंतःस्थापित। अंतर-राज्यीय व्यापार पर एकीकृत जीएसटी (IGST) केंद्र द्वारा उद्गृहीत व संगृहीत किया जाता है, किंतु इसे जीएसटी परिषद की सिफारिश पर केंद्र और राज्यों के मध्य विभाजित किया जाता है।

द. **अनुच्छेद 270 (विभाज्य पूल - Divisible Pool):** संघ सूची में उल्लिखित अन्य सभी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर (आयकर, निगम कर, केंद्रीय जीएसटी आदि) संघ द्वारा संगृहीत किए जाते हैं और इन्हें वित्त आयोग की सिफारिश पर केंद्र और राज्यों के मध्य आनुपातिक रूप से वितरित किया जाता है।

- **उपकर एवं अधिभार का अपवर्जन (अनुच्छेद 271):** संसद अनुच्छेद 269 और 270 में उल्लिखित करों पर किसी विशिष्ट प्रयोजन हेतु **अधिभार (Surcharge)** अथवा **उपकर (Cess)** लगा सकती है। इस उपकर या अधिभार से प्राप्त संपूर्ण राजस्व केवल केंद्र की संचित निधि में जाता है; यह राज्यों के साथ साझा नहीं किया जाता (यह वर्तमान वित्तीय संघवाद में राज्यों का एक प्रमुख विवाद बिंदु है)।

2. 101वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2016 एवं जीएसटी परिषद (अनुच्छेद 279A)

1 जुलाई 2017 से प्रभावी 101वें संविधान संशोधन ने भारत में अप्रत्यक्ष कराधान प्रणाली में क्रांतिकारी रूपांतरण किया:

- इसने केंद्र और राज्यों के दर्जनों अप्रत्यक्ष करों (उत्पाद शुल्क, सेवा कर, वैट, प्रवेश कर आदि) को समाहित कर **'एक राष्ट्र, एक कर'** के रूप में वस्तु एवं सेवा कर (GST) की स्थापना की।
- **अनुच्छेद 246A:** संसद और राज्य विधानमंडलों को वस्तु एवं सेवा कर के संबंध में एक साथ विधि बनाने की समवर्ती शक्ति प्रदान की गई।
- **जीएसटी परिषद (अनुच्छेद 279A):** राष्ट्रपति द्वारा इस अनुच्छेद के तहत एक संयुक्त संघीय मंच के रूप में जीएसटी परिषद की स्थापना की गई:
    - **अध्यक्ष:** केंद्रीय वित्त मंत्री।
    - **सदस्य:** केंद्रीय वित्त राज्य मंत्री तथा सभी राज्यों के वित्त मंत्री।
    - **मतदान का भार:** केंद्र सरकार के मत का भार **कुल डाले गए मतों का एक-तिहाई (1/3)** होता है; तथा सभी राज्यों के मतों का संयुक्त भार **कुल डाले गए मतों का दो-तिहाई (2/3)** होता है। परिषद का कोई भी निर्णय **75 प्रतिशत (3/4) भारित बहुमत** से ही मान्य होता है। यह सहकारी संघवाद का एक अनूठा संस्थागत उदाहरण है जहाँ केंद्र और राज्य एक-दूसरे के सहयोग के बिना निर्णय नहीं ले सकते।

3. सहायता अनुदान: विधिक बनाम विवेकाधीन अनुदान (अनुच्छेद 275 बनाम 282)

संविधान राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दो प्रकार के वित्तीय अंतरणों की व्यवस्था करता है:

तुलना का आधार	**विधिक / सांविधिक अनुदान (Statutory Grants - अनुच्छेद 275)**	**विवेकाधीन अनुदान (Discretionary Grants - अनुच्छेद 282)**
प्रकृति	**संवैधानिक एवं बाध्यकारी दायित्व;** संसद विधि द्वारा राज्यों को सहायता अनुदान दे सकती है।	**गैर-बाध्यकारी एवं कार्यपालिका का विवेकाधिकार;** केंद्र या राज्य किसी लोक प्रयोजन हेतु अनुदान दे सकते हैं।
अनुशंसा का आधार	यह **वित्त आयोग (Finance Commission)** की निष्पक्ष सिफारिशों के आधार पर दिया जाता है।	पूर्व में योजना आयोग तथा वर्तमान में केंद्रीय मंत्रालयों की योजनाओं (CSS) के माध्यम से दिया जाता है।
प्राप्तकर्ता राज्य	केवल वे जरूरतमंद राज्य जिन्हें वित्तीय सहायता की आवश्यकता हो (सभी राज्यों हेतु समान नहीं)।	केंद्र सरकार के नीतिगत प्राथमिकताओं के आधार पर विभिन्न राज्यों को आबंटित।

wincompete

जनजातीय कल्याण हेतु अनिवार्य अनुदान	अनुच्छेद 275(1) के परंतुक के तहत अनुसूचित जनजातियों के कल्याण व अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन सुधार हेतु **अनिवार्य पूंजी अनुदान**।	ऐसा कोई विशिष्ट संवैधानिक अनिवार्य प्रावधान नहीं; यह सामान्य विकास योजनाओं से संचालित होता है।

4. वित्त आयोग की संवैधानिक भूमिका (अनुच्छेद 280)

संविधान का अनुच्छेद 280 प्रत्येक पांच वर्ष की समाप्ति पर अथवा आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति द्वारा एक अर्ध-न्यायिक निकाय के रूप में **वित्त आयोग (Finance Commission)** के गठन का उपबंध करता है। इसमें एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य होते हैं।

- **मुख्य कार्य (अनुच्छेद 280(3)):**
    - केंद्र और राज्यों के मध्य विभाज्य कर राजस्व के शुद्ध आगमों का **ऊर्ध्वाधर वितरण (Vertical Devolution)** तय करना।
    - विभिन्न राज्यों के मध्य उस राजस्व के आनुपातिक **क्षैतिज आवंटन (Horizontal Allocation)** के मापदंड निर्धारित करना।
    - अनुच्छेद 275 के तहत राज्यों के राजस्व में सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धांतों की सिफारिश करना।
    - राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर पंचायतों और नगरपालिकाओं के संसाधनों की पूर्ति हेतु राज्य की संचित निधि के संवर्धन के उपाय सुझाना।

- *सांख्यिकीय संदर्भ:* 15वें वित्त आयोग (अध्यक्ष: एन. के. सिंह) ने वित्तीय वर्ष 2021-26 हेतु केंद्रीय करों के विभाज्य पूल में से राज्यों को **41 प्रतिशत** हिस्सेदारी हस्तांतरित करने की सिफारिश की (जम्मू-कश्मीर और लद्दाख के पुनर्गठन के कारण इसे 14वें वित्त आयोग के 42% से घटाकर 41% किया गया)।

5. केंद्र एवं राज्यों की ऋण लेने की शक्ति (अनुच्छेद 292 एवं 293)

अ. **केंद्र की ऋण लेने की शक्ति (अनुच्छेद 292):** भारत सरकार संसद द्वारा विधि द्वारा नियत सीमाओं के भीतर भारत की संचित निधि की प्रतिभूति पर देश के भीतर अथवा **विदेशों से (बाह्य ऋण)** उधार ले सकती है।

ब. **राज्यों की ऋण लेने की शक्ति (अनुच्छेद 293):**

- राज्य विधानमंडल द्वारा नियत सीमाओं के भीतर राज्य की संचित निधि की प्रतिभूति पर केवल **भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर** ही ऋण ले सकते हैं। **राज्यों को सीधे विदेशों से या अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेने का कोई संवैधानिक अधिकार नहीं है**।

- **अनुच्छेद 293(3) का वित्तीय अंकुश:** यदि किसी राज्य पर भारत सरकार के किसी पूर्ववर्ती ऋण का कोई भाग बकाया है, तो वह राज्य **केंद्र सरकार की पूर्व सहमति के बिना कोई नया ऋण नहीं ले सकता**। व्यवहार में प्रायः सभी राज्य केंद्र के ऋणी होते हैं, अतः राज्यों की उधारी सीमा पूरी तरह केंद्र के नियंत्रण में रहती है।

प्रमुख केंद्र-राज्य जांच आयोग एवं उनकी ऐतिहासिक सिफारिशें

केंद्र और राज्यों के मध्य उत्पन्न तनावों (राज्यपाल की भूमिका, अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग, अखिल भारतीय सेवाएं तथा वित्तीय संसाधनों का असंतुलन) के समाधान हेतु समय-समय पर महत्वपूर्ण आयोगों का गठन किया गया।

केंद्र-राज्य संबंधों पर प्रमुख आयोग

↓

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (1966)	सरकारीया आयोग (1983-1988)	एम. एम. पंछी आयोग (2007-2010)
• अध्यक्ष: मोरारजी देसाई/के. हनुमंतैया • अंतर-राज्यीय परिषद का गठन	• अध्यक्ष: न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारिया • अनुच्छेद 356 का 'अंतिम विकल्प' प्रयोग • समवर्ती सूची पर पूर्व परामर्श अनिवार्य • गैर-दलीय राज्यपाल की नियुक्ति	• अध्यक्ष: न्यायमूर्ति मदन मोहन पंछी • राज्यपालों के महाभियोग की प्रक्रिया • राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु आंतरिक अशांति में सेना

1. सरकारीया आयोग (1983-1988)

केंद्रीय गृह मंत्रालय ने जून 1983 में उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश **न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारीया** की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय आयोग (अन्य सदस्य: बी. शिवरामन और डॉ. एस. आर. सेन) का गठन किया। जनवरी 1988 में प्रस्तुत अपनी विस्तृत रिपोर्ट में आयोग ने 247 संस्तुतियां प्रस्तुत कीं:

अ. **अनुच्छेद 356 का प्रयोग:** इसका प्रयोग केवल एक **'अंतिम विकल्प' (Measure of Last Resort)** के रूप में तभी किया जाना चाहिए जब राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के अन्य सभी उपाय विफल हो चुके हों।

ब. **राज्यपाल की नियुक्ति:** राज्यपाल पद पर किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाना चाहिए जो उस राज्य का न हो, जीवन के किसी क्षेत्र में प्रख्यात हो तथा सक्रिय राजनीति में न रहा हो। नियुक्ति से पूर्व संबंधित राज्य के **मुख्यमंत्री से प्रभावी परामर्श** अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए।

स. **अंतर-राज्यीय परिषद:** अनुच्छेद 263 के तहत एक स्थायी अंतर-राज्यीय परिषद का गठन किया जाए (जिसके अनुपालन में 1990 में परिषद गठित हुई)।

द. **समवर्ती सूची पर समन्वय:** समवर्ती सूची के विषयों पर संसद द्वारा कानून बनाने से पूर्व राज्यों से गहन विचार-विमर्श की परंपरा स्थापित की जाए।

य. **अखिल भारतीय सेवाओं का सुदृढ़ीकरण:** आयोग ने इन सेवाओं को समाप्त करने की मांग को खारिज करते हुए इन्हें राष्ट्रीय एकता हेतु अपरिहार्य माना और ऐसी और सेवाएं गठित करने की सिफारिश की।

2. एम. एम. पंछी आयोग (2007-2010)

केंद्र सरकार ने अप्रैल 2007 में भारत के पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति **न्यायमूर्ति मदन मोहन पंछी** की अध्यक्षता में दूसरे केंद्र-राज्य संबंध आयोग का गठन किया। मार्च 2010 में सात खंडों में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में आयोग ने 312 से अधिक सिफारिशें कीं:

wincompete

अ. **राज्यपाल की पदच्युति हेतु महाभियोग:** पंछी आयोग ने अत्यंत महत्वपूर्ण सिफारिश की कि राज्यपालों को केंद्र की इच्छा पर 'प्रसादपर्यंत' हटाने की व्यवस्था समाप्त की जाए। राज्यपालों को हटाने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा **महाभियोग (Impeachment)** जैसी संवैधानिक प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए।

ब. **स्थानीय आपातकाल की संकल्पना (Localised Emergency):** पूरे राज्य में अनुच्छेद 356 लागू करने के स्थान पर केंद्र को अनुच्छेद 355 के तहत राज्य के किसी विशिष्ट अशांत जिले या क्षेत्र में सीमित समय के लिए सेना तैनात करने या हस्तक्षेप करने का अधिकार होना चाहिए, बिना राज्य सरकार को बर्खास्त किए।

स. **विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति पद से मुक्ति:** राज्यपालों को विश्वविद्यालयों के पदेन कुलाधिपति (Chancellor) के पदों से मुक्त रखा जाए ताकि वे शैक्षणिक विवादों से दूर रहें।

द. **संधि निर्माण शक्ति पर संसदीय नियंत्रण:** अनुच्छेद 253 के तहत अंतरराष्ट्रीय संधियां करते समय, यदि वे विषय राज्यों की वित्तीय या विकासात्मक स्वायत्तता को प्रभावित करते हों, तो संसद और राज्यों के परामर्श की अनिवार्य व्यवस्था हो।

3. अन्य महत्वपूर्ण राज्य-स्तरीय पहलें

अ. **प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC-I - 1966):** मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में गठित आयोग ने अंतर-राज्यीय परिषद की स्थापना तथा राज्यों को अधिक वित्तीय संसाधन सौंपने की सिफारिश की थी।

ब. **राजमन्नार समिति (1969):** तमिलनाडु सरकार (द्रमुक) द्वारा डॉ. पी. वी. राजमन्नार की अध्यक्षता में गठित समिति ने केंद्र के एकात्मक लक्षणों की तीव्र आलोचना करते हुए **अनुच्छेद 356, अनुच्छेद 365 तथा अखिल भारतीय सेवाओं को पूर्णतः समाप्त करने** की अतिवादी सिफारिश की थी, जिसे केंद्र ने अस्वीकार कर दिया।

स. **आनंदपुर साहिब प्रस्ताव (1973):** शिरोमणि अकाली दल द्वारा पारित इस राजनीतिक प्रस्ताव में मांग की गई कि केंद्र का अधिकार क्षेत्र केवल चार विषयों—रक्षा, विदेश मामले, संचार एवं मुद्रा—तक सीमित रखा जाए और शेष सभी अवशिष्ट शक्तियां राज्यों को सौंप दी जाएं।

संवैधानिक एवं वित्तीय पारिभाषिक शब्दावली

अ. **सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism):** शासन की वह संघीय व्यवस्था जिसमें केंद्र और राज्य सरकारें एक-दूसरे की अधीनस्थ न होकर राष्ट्रीय विकास, नीति निर्माण एवं संकट प्रबंधन में समान साझीदार के रूप में परस्पर सहयोग और समन्वय से कार्य करती हैं।

ब. **अर्द्ध-संघीय (Quasi-Federal):** के. सी. व्हीयर द्वारा प्रयुक्त वह संवैधानिक अवधारणा जो यह दर्शाती है कि संविधान का बाह्य ढांचा संघीय है, किंतु उसकी अंतरात्मा और परिचालन एकात्मक (Unitary) है।

स. **अविनाशी संघ का विनाशी राज्य (Indestructible Union of Destructible States):** भारतीय संघवाद की वह विशेषता जिसके अंतर्गत संसद अनुच्छेद 3 के तहत राज्यों के भूभाग या अस्तित्व को समाप्त कर सकती है, किंतु कोई भी राज्य भारतीय संघ को समाप्त या विभाजित नहीं कर सकता।

wincompete

द. **सार एवं तत्व का सिद्धांत (Doctrine of Pith and Substance):** न्यायपालिका द्वारा विधायी शक्तियों के अतिक्रमण के परीक्षण का वह नियम जिसके तहत किसी कानून की वैधता उसके मूल उद्देश्य और वास्तविक प्रभाव से तय होती है, न कि उसके द्वारा किए गए किसी गौण या प्रासंगिक अतिक्रमण से।

य. **छद्म विधान (Colourable Legislation):** विधायिका द्वारा अपनी विधिक सीमाओं का अतिक्रमण छिपाने हेतु परोक्ष रूप से बनाया गया वह कानून जो शक्ति के अभाव के कारण न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है।

र. **विभाज्य पूल (Divisible Pool):** अनुच्छेद 270 के अंतर्गत संघ सरकार द्वारा संगृहीत उन समस्त प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का कुल योग जिसे संविधान के अनुसार वित्त आयोग की संस्तुति पर केंद्र और राज्यों के मध्य वितरित किया जाना अनिवार्य होता है (उपकर और अधिभार इसमें शामिल नहीं होते)।

ल. **अधिभार एवं उपकर (Surcharge and Cess):** अनुच्छेद 271 के तहत संसद द्वारा सामान्य करों के अतिरिक्त किसी विशिष्ट प्रयोजन हेतु लगाया जाने वाला कर, जिसका संपूर्ण आगम केवल केंद्र सरकार को प्राप्त होता है और राज्यों के साथ साझा नहीं किया जाता।

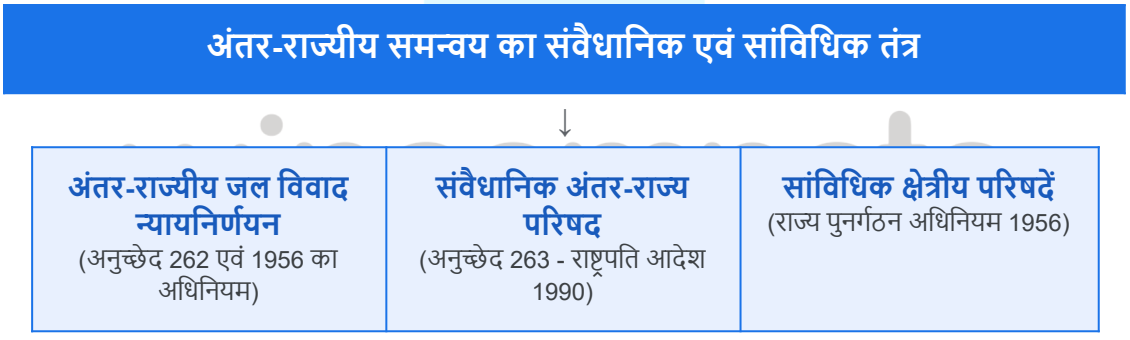
व. **क्षेत्रीय संबंध (Territorial Nexus):** किसी राज्य विधि के राज्य से बाहर के विषयों पर लागू होने की वह अनिवार्य विधिक शर्त जिसके अंतर्गत यह सिद्ध होना आवश्यक है कि वस्तु या घटना और राज्य के भौगोलिक क्षेत्र के मध्य पर्याप्त और वास्तविक संबंध विद्यमान है।

अध्याय 24: अंतर-राज्यीय समन्वय एवं आयोग: अंतर-राज्यीय जल विवाद, अंतर-राज्य परिषद, क्षेत्रीय परिषदें, सरकारिया आयोग एवं मदन मोहन पुंछी आयोग की प्रमुख सिफारिशें

अंतर-राज्यीय समन्वय का संवैधानिक दर्शन एवं संस्थागत ढांचा

भारतीय संविधान ने एक सुदृढ़ केंद्रीय सत्ता के साथ संघीय प्रणाली को अंगीकार किया है। संविधान के भाग ग्यारह (अनुच्छेद 245 से 263) के अंतर्गत संघ और राज्यों के विधायी तथा प्रशासनिक संबंधों का विस्तृत विन्यास प्रस्तुत किया गया है। भारत जैसी भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता से परिपूर्ण संघीय व्यवस्था में राज्यों के मध्य पारस्परिक सीमा विवाद, नदी जल विवाद, प्रवासन तथा आर्थिक विषमताओं के कारण तनाव का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

अतः संविधान निर्माताओं ने केवल शक्तियों के पृथक्करण पर ही बल नहीं दिया, अपितु संघ तथा राज्यों के मध्य और विभिन्न राज्यों के पारस्परिक संबंधों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु एक अंतर्निहित संवैधानिक समन्वय तंत्र का निर्माण किया। अंतर-राज्यीय समन्वय का यह ढांचा 'सहकारी संघवाद' (Cooperative Federalism) के सिद्धांत पर आधारित है, जिसका उद्देश्य विवादों के शांतिपूर्ण समाधान तथा सामान्य राष्ट्रीय नीतियों पर आम सहमति बनाना है।



संविधान के अंतर्गत अंतर-राज्यीय सौहार्द और समन्वय स्थापित करने के चार प्रमुख स्तंभ हैं:

- **अनुच्छेद 131:** राज्यों के मध्य अथवा केंद्र और राज्यों के मध्य उत्पन्न विधिक अधिकारों से संबंधित विवादों का उच्चतम न्यायालय द्वारा आरंभिक एवं अनन्य क्षेत्राधिकार के तहत न्यायनिर्णयन।
- **अनुच्छेद 261:** लोक कार्य, अभिलेख और न्यायिक कार्यवाहियों को पूरे देश में पूर्ण विश्वास और साख (Full Faith and Credit) प्रदान करना।
- **अनुच्छेद 262:** अंतर-राज्यीय नदियों अथवा नदी घाटियों के जल से संबंधित विवादों के समाधान हेतु संसद द्वारा विशेष वैधानिक अधिकरणों का गठन।
- **अनुच्छेद 263:** सार्वजनिक नीति, समन्वय तथा अन्वेषण हेतु राष्ट्रपति द्वारा अंतर-राज्य परिषद की स्थापना।

पूर्ण विश्वास एवं साख का सिद्धांत (अनुच्छेद 261)

संविधान का अनुच्छेद 261 संघीय शासन प्रणाली के सुचारु संचालन हेतु अंतर-सरकारी विधिक संप्रभुता को मान्यता प्रदान करता है। स्वतंत्र राज्यों के मध्य विधिक अराजकता को रोकने के लिए यह उपबंध अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अनुच्छेद 261 के तीन प्रमुख खंड

अ. **सार्वजनिक अभिलेखों को मान्यता (अनुच्छेद 261(1)):** भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र में, संघ के और प्रत्येक राज्य के सार्वजनिक कार्यों (Public Acts), अभिलेखों (Records) और न्यायिक कार्यवाहियों (Judicial Proceedings) को पूर्ण विश्वास और पूर्ण साख (Full Faith and Credit) प्रदान की जाएगी। इसका विधिक तात्पर्य यह है कि किसी राज्य सरकार के शासकीय गजट, आदेश अथवा अधिनियम को दूसरे राज्य में प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाएगा और उसकी प्रामाणिकता पर स्वतः संदेह नहीं किया जाएगा।

ब. **प्रमाणीकरण की शक्ति (अनुच्छेद 261(2)):** संसद विधि द्वारा यह विहित कर सकेगी कि ऐसे कार्यों, अभिलेखों और कार्यवाहियों को किस रीति से सिद्ध किया जाएगा और उनके प्रभाव का अवधारण किस प्रकार होगा।

स. **सिविल निर्णयों का अखिल भारतीय निष्पादन (अनुच्छेद 261(3)):** भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भी भाग में किसी सिविल न्यायालय द्वारा दिए गए अंतिम निर्णयों (Final Judgments) या आदेशों का निष्पादन (Execution) उस राज्यक्षेत्र के भीतर कहीं भी विधि के अनुसार किया जा सकेगा।

- **अपवाद:** यह उपबंध केवल और केवल **सिविल (दीवानी) निर्णयों** पर लागू होता है; यह दांडिक (आपराधिक) न्यायालयों के निर्णयों पर लागू नहीं होता। किसी एक राज्य की आपराधिक विधि का क्रियान्वयन दूसरे राज्य में सीधे नहीं कराया जा सकता, बल्कि इसके लिए दंड प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित औपचारिक स्थानांतरण एवं प्रत्यर्पण प्रक्रियाओं का पालन करना अनिवार्य होता है।
-

अंतर-राज्यीय जल विवाद: संवैधानिक उपबंध एवं न्यायिक अपवर्जन (अनुच्छेद 262)

भारत में अधिकांश प्रमुख नदियां अंतर-राज्यीय हैं, जो एक से अधिक राज्यों के भौगोलिक क्षेत्रों से होकर प्रवाहित होती हैं। जल का उपयोग, संचयन और वितरण राज्यों के आर्थिक विकास, सिंचाई और पेयजल सुरक्षा का मूल आधार है। इसी कारण राज्यों के मध्य जल बँटवारे को लेकर अत्यधिक संवेदनशील विवाद उत्पन्न होते रहे हैं।

संवैधानिक विन्यास: अनुच्छेद 262

संविधान सभा ने यह अनुभव किया कि नदी जल विवादों का समाधान सामान्य अदालतों में पारंपरिक विधिक प्रक्रियाओं द्वारा नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें तकनीकी, सामाजिक और अंतर-पीढ़ीगत आर्थिक आयाम सम्मिलित होते हैं। अतः अनुच्छेद 262 ने संसद को असाधारण शक्तियां सौंपी:

अ. **अनुच्छेद 262(1) - विशेष विधि निर्माण शक्ति:** संसद विधि द्वारा किसी अंतर-राज्यीय नदी या नदी घाटी के जल के उपयोग, वितरण या नियंत्रण के संबंध में किसी विवाद या शिकायत के न्यायनिर्णयन (Adjudication) के लिए उपबंध कर सकेगी।

ब. **अनुच्छेद 262(2) - न्यायालयों के क्षेत्राधिकार का अपवर्जन (Ouster of Jurisdiction):** इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, संसद विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी कि उच्चतम न्यायालय या कोई अन्य न्यायालय ऐसे किसी विवाद या शिकायत के संबंध में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा।

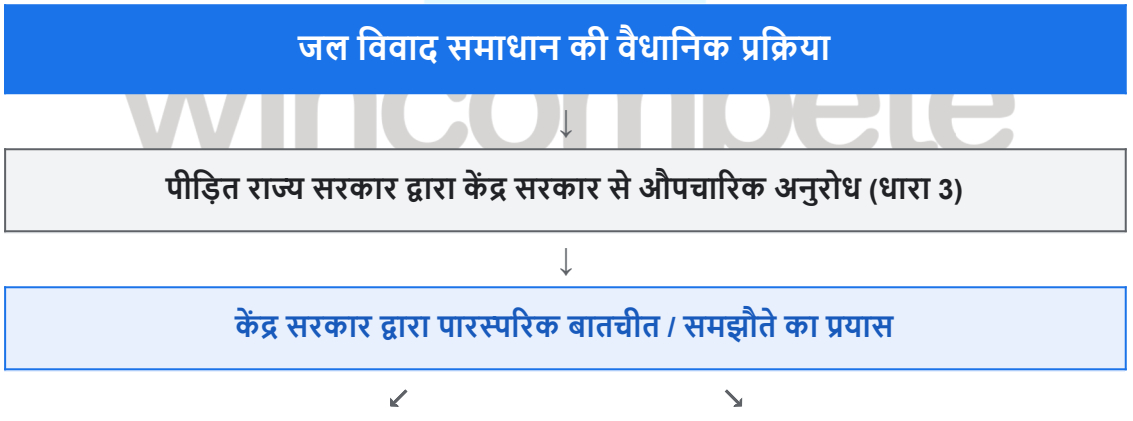
सातवीं अनुसूची में जल से संबंधित प्रविष्टियां

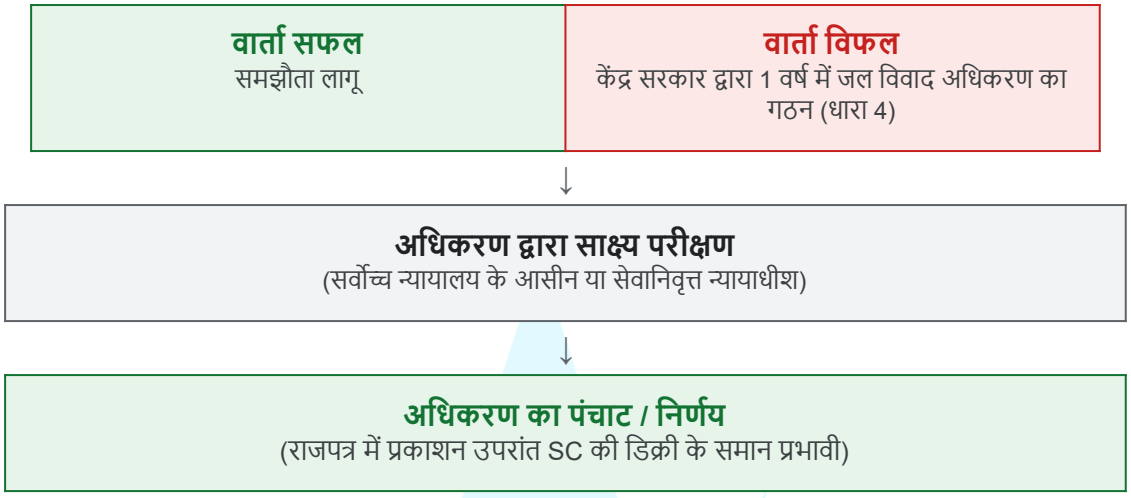
सूची	प्रविष्टि संख्या	विषय-वस्तु एवं विधिक सीमा
राज्य सूची (सूची II)	**प्रविष्टि 17**	जल, अर्थात् जल प्रदाय, सिंचाई और नहरें, जल निकास और तटबंध, जल संचयन और जल शक्ति; किंतु यह **संघ सूची की प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन** है।
संघ सूची (सूची I)	**प्रविष्टि 56**	अंतर-राज्यीय नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास उस सीमा तक जहां तक कि संसद द्वारा विधि द्वारा घोषित किया जाए कि संघ के नियंत्रण में ऐसा करना लोकहित में समीचीन है।

अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956 एवं ट्रिब्यूनल प्रणाली

संविधान के अनुच्छेद 262 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद ने वर्ष 1956 में दो महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किए:

- **नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 (River Boards Act, 1956):** अंतर-राज्यीय नदी घाटियों के नियमन और समन्वित विकास हेतु नदी बोर्डों की स्थापना के लिए (यद्यपि व्यवहार में इस अधिनियम के तहत केंद्र सरकार द्वारा आज तक एक भी नदी बोर्ड का गठन नहीं किया गया है)।
- **अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956 (Inter-State River Water Disputes Act, 1956):** जल विवादों के औपचारिक न्यायनिर्णयन हेतु अधिकरण (Tribunal) गठित करने के लिए।





1956 के अधिनियम की प्रमुख कानूनी विशेषताएं

अ. **न्यायाधिकरण का गठन (धारा 4):** जब किसी राज्य से जल विवाद के संबंध में शिकायत प्राप्त होती है और केंद्र सरकार का यह मत हो कि बातचीत द्वारा विवाद का समाधान नहीं हो सकता, तो केंद्र सरकार सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा एक **जल विवाद अधिकरण (Water Disputes Tribunal)** का गठन करती है।

ब. **अधिकरण की संरचना:** अधिकरण में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (CJI) द्वारा उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों के आसीन या सेवानिवृत्त न्यायाधीशों में से एक अध्यक्ष और दो अन्य सदस्य नामित किए जाते हैं।

स. **सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर प्रतिबंध (धारा 11):** अधिनियम की धारा 11 स्पष्ट करती है कि न तो उच्चतम न्यायालय और न ही कोई अन्य न्यायालय किसी ऐसे जल विवाद के संबंध में अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा जिसे इस अधिनियम के तहत अधिकरण को संदर्भित किया गया है।

द. **निर्णय की विधिक स्थिति (धारा 6):** अधिकरण का निर्णय केंद्र सरकार द्वारा सरकारी राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है। प्रकाशन के उपरांत यह निर्णय **उच्चतम न्यायालय के आदेश या डिक्री के समतुल्य** माना जाता है और यह विवाद से जुड़े सभी राज्यों पर अंतिम तथा बाध्यकारी होता है।

अनुच्छेद 262 एवं उच्चतम न्यायालय: अपीलीय हस्तक्षेप की सीमाएं

यद्यपि अनुच्छेद 262(2) और 1956 के अधिनियम की धारा 11 न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को पूरी तरह अपवर्जित करती है, तथापि उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न ऐतिहासिक वादों में यह स्पष्ट किया है कि:

- संविधान के **अनुच्छेद 136 (विशेष अनुमति याचिका - SLP)** के अधीन उच्चतम न्यायालय का असाधारण क्षेत्राधिकार किसी भी संविधि द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता।
- कावेरी जल विवाद (2018) में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यद्यपि न्यायालय सीधे जल का बँटवारा नहीं कर सकता, किंतु वह अधिकरण द्वारा दिए गए पंचाट की निष्पक्षता, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन तथा संविधान के अनुच्छेद 21 (पेयजल का अधिकार) के आलोक में अधिकरण के निर्णयों की न्यायिक समीक्षा करने का पूर्ण अधिकार रखता है।

भारत में गठित प्रमुख अंतर-राज्यीय जल विवाद अधिकरण

अधिकरण का नाम	गठन का वर्ष	संबद्ध राज्य / पक्षकार	वर्तमान विधिक स्थिति

कृष्णा जल विवाद अधिकरण-I	1969	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश	पंचाट 1973 में प्रस्तुत; 1976 में प्रकाशित।
गोदावरी जल विवाद अधिकरण	1969	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, ओडिशा	पंचाट 1979 में प्रस्तुत; 1980 में प्रकाशित।
नर्मदा जल विवाद अधिकरण	1969	गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान	पंचाट 1979 में अंतिम रूप से प्रकाशित।
रावी एवं ब्यास जल अधिकरण	1986	पंजाब, हरियाणा, राजस्थान	अंतरिम रिपोर्ट 1987 में दी गई; अंतिम निस्तारण अभी भी लंबित।
कावेरी जल विवाद अधिकरण	1990	कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, पुडुचेरी	2007 में अंतिम पंचाट; 2018 में उच्चतम न्यायालय द्वारा आंशिक संशोधन सहित अंतिम रूप से निर्णित।
कृष्णा जल विवाद अधिकरण-II	2004	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश (एवं तेलंगाना)	2010 में रिपोर्ट प्रस्तुत; तेलंगाना के पुनर्गठन के पश्चात मामला विचाराधीन।
वंशधारा जल विवाद अधिकरण	2010	ओडिशा एवं आंध्र प्रदेश	अंतिम रिपोर्ट 2017 में सौंपी गई।
महादायी जल विवाद अधिकरण	2010	गोवा, कर्नाटक, महाराष्ट्र	पंचाट 2018 में प्रस्तुत हुआ।
महानदी जल विवाद अधिकरण	2018	ओडिशा एवं छत्तीसगढ़	कार्यवाही निरंतर जारी है।

wincompete

अंतर-राज्य परिषद (अनुच्छेद 263): संवैधानिक प्रावधान एवं संस्थागत विकास

संविधान का अनुच्छेद 263 केंद्र और राज्यों तथा राज्यों के मध्य पारस्परिक सहयोग, अन्वेषण और नीति समन्वय हेतु एक उच्च स्तरीय संवैधानिक मंच के गठन का उपबंध करता है।

अनुच्छेद 263 का मूल संवैधानिक पाठ

यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि ऐसी परिषद की स्थापना से लोकहित की सिद्धि होगी जिसे निम्नलिखित कर्तव्यों का भार सौंपा जाए:

- **खंड (क):** राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों की जांच करना और उन पर सलाह देना;
- **खंड (ख):** उन विषयों की जांच करना और उन पर विचार-विमर्श करना जिनमें कुछ या सभी राज्यों का अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों का साझा हित हो;
- **खंड (ग):** ऐसे किसी विषय पर सिफारिश करना और विशेष रूप से उस विषय के संबंध में नीति और कार्रवाई के अधिक अच्छे समन्वय के लिए सिफारिश करना;

तो राष्ट्रपति के लिए आदेश द्वारा ऐसी परिषद की स्थापना करना और उसकी प्रकृति, कर्तव्यों तथा प्रक्रिया को परिभाषित करना विधिपूर्ण होगा।

अनुच्छेद 131 बनाम अनुच्छेद 263(क) में न्यायिक एवं प्रशासनिक अंतर

अ. **अनुच्छेद 131:** उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार **विधिक प्रकृति (Legal Nature)** के विवादों का औपचारिक एवं बाध्यकारी निर्णय करना है।

ब. **अनुच्छेद 263(क):** अंतर-राज्य परिषद की शक्ति केवल और केवल **परामर्शदात्री (Advisory)** है। यह विवादों की जांच कर सलाह दे सकती है, किंतु यह किसी न्यायालय की भांति कोई बाध्यकारी निर्णय या डिक्री पारित नहीं कर सकती।

अंतर-राज्य परिषद का पुनरोद्धार (1990) एवं वर्तमान संरचना

यद्यपि संविधान के प्रारंभ से ही अनुच्छेद 263 के तहत कतिपय विशिष्ट निकायों (जैसे केंद्रीय स्वास्थ्य परिषद, केंद्रीय स्थानीय स्वशासन परिषद) का गठन किया गया था, किंतु एक व्यापक अंतर-राज्य परिषद की स्थापना चार दशकों तक नहीं की गई।

सरकारीया आयोग की सिफारिश एवं स्थापना

केंद्र-राज्य संबंधों पर गठित सरकारीया आयोग (1988) ने अत्यंत बलपूर्वक यह सिफारिश की कि अनुच्छेद 263 के तहत एक स्थायी अंतर-राज्य परिषद की स्थापना की जाए ताकि केंद्र-राज्य तनावों को दूर किया जा सके।

इसके अनुपालन में वी. पी. सिंह के नेतृत्व वाली तत्कालीन राष्ट्रीय मोर्चा सरकार की अनुशंसा पर **राष्ट्रपति के आदेश द्वारा 28 मई 1990 को स्थायी अंतर-राज्य परिषद का गठन किया गया।**

wincompete

अंतर-राज्य परिषद की स्थायी संरचना

↓

अध्यक्ष
(भारत का प्रधानमंत्री)

↓

सभी राज्यों के मुख्यमंत्री	विधानसभा वाले UTs के मुख्यमंत्री (दिल्ली, पुडुचेरी, जम्मू एवं कश्मीर)	अन्य UTs के प्रशासक / उपराज्यपाल (अंडमान, लद्दाख आदि)	6 केंद्रीय कैबिनेट मंत्री (प्रधानमंत्री द्वारा नामित, गृह मंत्री सहित)

परिषद की संगठनात्मक संरचना

अ. **अध्यक्ष:** भारत का प्रधानमंत्री।

ब. **सदस्य:**

- सभी 28 राज्यों के मुख्यमंत्री।
- विधानसभा वाले संघ राज्य क्षेत्रों (दिल्ली, पुडुचेरी, जम्मू-कश्मीर) के मुख्यमंत्री।
- विधानसभा रहित संघ राज्य क्षेत्रों के उपराज्यपाल एवं प्रशासक।
- राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्यों के राज्यपाल।
- प्रधानमंत्री द्वारा नामित **छह केंद्रीय कैबिनेट मंत्री** (जिनमें केंद्रीय गृह मंत्री का सम्मिलित होना अनिवार्य है)।
- प्रधानमंत्री द्वारा नामित किए जाने वाले कुछ अन्य केंद्रीय मंत्री 'स्थायी आमंत्रित सदस्य' (Permanent Invitees) होते हैं।

परिषद की कार्यप्रणाली एवं प्रक्रियात्मक नियम

अ. **बैठकों की आवृत्ति:** परिषद के प्रक्रिया नियमों के अनुसार, **वर्ष में कम से कम तीन बार** परिषद की बैठकें आयोजित की जानी चाहिए।

ब. **बैठकों की प्रकृति:** परिषद की सभी बैठकें **कैमरा (गोपनीय)** में आयोजित की जाती हैं।

स. **आम सहमति से निर्णय:** बैठकों में उठाए गए सभी मुद्दों पर विचार-विमर्श के उपरांत निर्णय **सर्वसम्मति एवं आम सहमति (Consensus)** के आधार पर लिए जाते हैं; यहाँ मतदान की कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं है।

द. **स्थायी समिति (Standing Committee):** परिषद के निरंतर कार्यों के संपादन तथा विचारार्थ विषयों को अंतिम रूप देने हेतु वर्ष 1996 में एक 'स्थायी समिति' का गठन किया गया:

- **अध्यक्ष:** केंद्रीय गृह मंत्री।
- **सदस्य:** 5 केंद्रीय कैबिनेट मंत्री तथा 9 विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्री।

wincompete

य. **सचिवालय:** परिषद के प्रशासनिक कार्यों के संचालन हेतु नई दिल्ली में एक समर्पित सचिवालय कार्यरत है, जिसका प्रशासनिक प्रमुख भारत सरकार के सचिव स्तर का अधिकारी होता है (वर्ष 2011 से यह सचिवालय आंचलिक/क्षेत्रीय परिषदों के सचिवालय के रूप में भी कार्य करता है)।

सांविधिक क्षेत्रीय परिषदें (Zonal Councils): राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956

क्षेत्रीय परिषदें संविधान के किसी अनुच्छेद के तहत स्थापित संवैधानिक निकाय नहीं हैं। ये संसद द्वारा पारित **'राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956' (States Reorganisation Act, 1956) के भाग तीन** के अंतर्गत स्थापित **सांविधिक निकाय (Statutory Bodies)** हैं।

स्थापना का मूल उद्देश्य

वर्ष 1956 में जब भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया, तब तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने यह परिकल्पना की कि भाषाई और प्रांतीय संकीर्णता को रोकने तथा अंतर-राज्यीय सहयोग को बढ़ावा देने हेतु देश को वृहद भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित कर क्षेत्रीय परिषदों का गठन किया जाए।

राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा स्थापित 5 क्षेत्रीय परिषदें

↓

उत्तरी क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: नई दिल्ली)	मध्य क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: प्रयागराज)	पूर्वी क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: कोलकाता)	पश्चिमी क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: मुंबई)	दक्षिणी क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: चेन्नई)

पांच क्षेत्रीय परिषदों का क्षेत्रीय विभाजन

अ. **उत्तरी क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: नई दिल्ली):** पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, जम्मू एवं कश्मीर, लद्दाख तथा चंडीगढ़।

ब. **मध्य क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: प्रयागराज):** उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा उत्तराखंड।

स. **पूर्वी क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: कोलकाता):** बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिशा तथा झारखंड।

द. **पश्चिमी क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: मुंबई):** महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा, तथा दादरा एवं नगर हवेली और दमन एवं दीव।

य. **दक्षिणी क्षेत्रीय परिषद (मुख्यालय: चेन्नई):** आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु तथा पुडुचेरी।

wincompete

क्षेत्रीय परिषदों की संरचना एवं कार्य

अ. **साझा पदेन अध्यक्ष: केंद्रीय गृह मंत्री** सभी पांचों क्षेत्रीय परिषदों के साझा पदेन अध्यक्ष (Common Chairman) होते हैं।

ब. **उपाध्यक्ष:** उस क्षेत्र में शामिल राज्यों के मुख्यमंत्री **बारी-बारी से एक-एक वर्ष के लिए** परिषद के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं।

स. **सदस्य:** प्रत्येक राज्य से मुख्यमंत्री तथा राज्यपाल द्वारा नामित दो अन्य मंत्री, तथा क्षेत्र में स्थित संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासक/उपराज्यपाल।

द. **सलाहकार (Advisers):** नीति आयोग द्वारा नामित एक संयुक्त सचिव, संबंधित राज्यों के मुख्य सचिव तथा योजना विकास आयुक्त बैठकों में बिना मतदान के विशेषज्ञ सलाहकार के रूप में सम्मिलित होते हैं।

य. **कार्यों की प्रकृति:** ये परिषदें पूर्णतः **विचार-विमर्शकारी तथा परामर्शदात्री (Deliberative and Advisory)** निकाय हैं। ये सीमा विवादों, भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्याओं, अंतर-राज्यीय परिवहन, तथा साझा आर्थिक एवं सामाजिक विकास से जुड़े मुद्दों पर सिफारिशें करती हैं।

पूर्वोत्तर परिषद (North Eastern Council): 1971 का विशिष्ट अधिनियम

पूर्वोत्तर क्षेत्र के राज्यों की विशिष्ट भौगोलिक, सामरिक, जनजातीय तथा अवसंरचनात्मक समस्याओं के समाधान हेतु 1956 के अधिनियम से इतर एक पृथक सांविधिक संस्था स्थापित की गई।

वैधानिक आधार एवं विकास

अ. **पूर्वोत्तर परिषद अधिनियम, 1971 (NEC Act, 1971):** संसद द्वारा पारित इस विशेष अधिनियम के माध्यम से 7 नवंबर 1972 को **शिलांग (मेघालय)** में पूर्वोत्तर परिषद की स्थापना की गई।

ब. **मूल सदस्य (सात बहनें):** प्रारंभ में इसमें पूर्वोत्तर के सात राज्य सम्मिलित थे—असम, मणिपुर, मेघालय, नगालैंड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश तथा मिजोरम।

स. **2002 का संशोधन एवं सिक्किम का समावेशन:** 'पूर्वोत्तर परिषद (संशोधन) अधिनियम, 2002' के द्वारा **सिक्किम को परिषद के आठवें सदस्य के रूप में** सम्मिलित किया गया।

पूर्वोत्तर परिषद की विशिष्टताएं

अ. **संरचना:** इसमें सभी आठ सदस्य राज्यों के राज्यपाल और मुख्यमंत्री सम्मिलित होते हैं। वर्ष 2018 के प्रशासनिक संशोधन के पश्चात **केंद्रीय गृह मंत्री इसके पदेन अध्यक्ष** होते हैं तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास राज्य मंत्री (DoNER) इसके उपाध्यक्ष होते हैं।

ब. **क्षेत्रीय योजना निकाय:** सामान्य क्षेत्रीय परिषदों के विपरीत, पूर्वोत्तर परिषद केवल परामर्शदात्री निकाय नहीं है; यह पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए एक **क्षेत्रीय योजना निकाय (Regional Planning Body)** के रूप में कार्य करती है। इसके पास अपना स्वयं का वित्तीय बजट होता है, जिससे यह अंतर-राज्यीय सड़कों, ऊर्जा परियोजनाओं और हवाई अड्डों के निर्माण हेतु सीधे वित्तीय अनुदान प्रदान करती है।

स. **सुरक्षा एवं लोक व्यवस्था की समीक्षा:** 2002 के संशोधन के तहत परिषद को पूर्वोत्तर राज्यों में सुरक्षा स्थिति और लोक व्यवस्था बनाए रखने के उपायों की नियमित समीक्षा करने का वैधानिक दायित्व भी सौंपा गया है।

wincompete

सरकारिया आयोग (1983-1988): ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कार्यक्षेत्र एवं प्रमुख सिफारिशें

1970 और 1980 के दशक में विभिन्न राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारों के गठन के पश्चात केंद्र और राज्यों के संबंधों में तीव्र राजनीतिक और प्रशासनिक टकराव उत्पन्न हुआ। राज्यों द्वारा अधिक वित्तीय स्वायत्तता,

राज्यपालों के मनमाने आचरण की समाप्ति तथा अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग पर रोक लगाने की मांग की जाने लगी।

आयोग का गठन एवं संरचना

केंद्रीय गृह मंत्रालय ने **9 जून 1983 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति रणजीत सिंह सरकारिया की अध्यक्षता में** तीन सदस्यीय आयोग का गठन किया।

- **अध्यक्ष:** न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारिया
- **सदस्य:** बी. शिवरामन (पूर्व कैबिनेट सचिव) तथा डॉ. एस. आर. सेन (प्रख्यात अर्थशास्त्री)
- **रिपोर्ट प्रस्तुति:** आयोग ने जनवरी 1988 में अपना विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें 19 अध्यायों में कुल **247 विशिष्ट संस्तुतियां** समाहित थीं।

सरकारिया आयोग की प्रमुख संस्तुतियां

↓

अनुच्छेद 356	राज्यपाल का पद	अंतर-राज्य परिषद	अखिल भारतीय सेवाएं
• अंतिम विकल्प (Last Resort) के रूप में प्रयोग • विधानसभा का विघटन केवल संसदीय अनुमोदन के बाद	• निष्पक्ष एवं गैर-दलीय व्यक्ति की नियुक्ति • मुख्यमंत्री से पूर्व परामर्श अनिवार्य • सक्रिय राजनीति से दूर व्यक्ति	• अनुच्छेद 263 के तहत स्थायी परिषद का गठन • (मई 1990 में औपचारिक स्थापना हुई)	• राष्ट्रीय एकता हेतु अनिवार्य • ऐसी सेवाओं को और अधिक मजबूत किया जाना चाहिए

सरकारिया आयोग की अत्यंत महत्वपूर्ण सिफारिशें

अ. **अनुच्छेद 356 का प्रयोग:**

- अनुच्छेद 356 का प्रयोग किसी राज्य में केवल एक **'अंतिम विकल्प' (Measure of Last Resort)** के रूप में ही किया जाना चाहिए, जब राज्य में संवैधानिक तंत्र को बचाने के अन्य सभी उपाय (जैसे अनुच्छेद 355 के तहत चेतावनी) विफल हो चुके हों।
- संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदन किए जाने से पूर्व **राज्य विधानसभा को विघटित नहीं किया जाना चाहिए**; अनुमोदन तक विधानसभा को केवल निलंबित रखा जाना चाहिए।

ब. **राज्यपाल के पद की मर्यादा:**

- राज्यपाल पद पर किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाना चाहिए जो उस राज्य का न हो (बाहरी व्यक्ति हो)।
- वह जीवन के किसी क्षेत्र में प्रख्यात व्यक्ति हो और पिछले कुछ समय से सक्रिय राजनीति में न रहा हो।
- नियुक्ति से पूर्व संबंधित राज्य के **मुख्यमंत्री से प्रभावी और वास्तविक परामर्श** किया जाना अनिवार्य होना चाहिए।
- राज्यपाल को उसका 5 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण करने की सुरक्षा मिलनी चाहिए; केंद्र में सरकार बदलने पर राज्यपालों को थोक रूप में नहीं हटाया जाना चाहिए।

स. **अंतर-राज्य परिषद की स्थापना:** संविधान के अनुच्छेद 263 के तहत एक स्थायी अंतर-राज्य परिषद का तुरंत गठन किया जाना चाहिए (आयोग ने इसे 'अंतर-सरकारी परिषद' नाम देने का सुझाव दिया था)।

द. **समवर्ती सूची पर समन्वय:** समवर्ती सूची (सूची III) के विषयों पर संसद द्वारा कोई कानून बनाने से पूर्व केंद्र सरकार को राज्यों के साथ गहन विमर्श और आम सहमति बनाने की स्वस्थ परंपरा स्थापित करनी चाहिए।

य. **अखिल भारतीय सेवाओं का संरक्षण:** राज्यों द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं (IAS/IPS) को समाप्त करने की मांग को आयोग ने पूरी तरह खारिज कर दिया। आयोग ने माना कि ये सेवाएं राष्ट्रीय एकता, अखंडता और कुशल प्रशासन की रीढ़ हैं। आयोग ने चिकित्सा, कृषि और इंजीनियरिंग जैसी विशिष्टताओं में और अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन का सुझाव दिया।

र. **वित्तीय स्वायत्तता एवं निगम कर:** केंद्र द्वारा लगाए जाने वाले निगम कर (Corporation Tax) को विभाज्य पूल (Divisible Pool) में शामिल कर राज्यों के साथ साझा किया जाना चाहिए (इस सिफारिश को कालांतर में **80वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2000** द्वारा स्वीकार कर लागू किया गया)।

ल. **राष्ट्रीय विकास परिषद (NDC) का सुदृढ़ीकरण:** योजना निर्माण और आर्थिक नीतियों के समन्वय हेतु एनडीसी को और अधिक स्वायत्त तथा शक्तिशाली बनाया जाना चाहिए।

मदन मोहन पुंछी आयोग (2007-2010): 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में नई सिफारिशें

1990 के आर्थिक उदारीकरण, गठबंधन सरकारों के उदय, सूचना क्रांति तथा आंतरिक सुरक्षा के बदलते आयामों के आलोक में केंद्र-राज्य संबंधों की नए सिरे से समीक्षा करने हेतु दूसरे आयोग का गठन किया गया।

आयोग का गठन एवं संरचना

केंद्रीय गृह मंत्रालय ने **27 अप्रैल 2007 को भारत के पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति मदन मोहन पुंछी की अध्यक्षता में** 'द्वितीय केंद्र-राज्य संबंध आयोग' का गठन किया।

- **अध्यक्ष:** न्यायमूर्ति म. मो. पुंछी
- **सदस्य:** धीरेंद्र सिंह (पूर्व गृह सचिव), विनोद कुमार दुग्गल (पूर्व गृह सचिव), डॉ. एन. आर. माधव मेनन (प्रख्यात विधिवेत्ता), तथा डॉ. अमरीश बागची।
- **प्रतिवेदन:** आयोग ने मार्च 2010 में सात खंडों में अपना विस्तृत प्रतिवेदन केंद्र सरकार को सौंपा, जिसमें कुल **312 से अधिक संस्तुतियां** की गई थीं।

पुंछी आयोग की युगांतकारी संस्तुतियां

↓

राज्यपाल पर महाभियोग (राज्य विधानसभा द्वारा हटाने का संवैधानिक उपबंध)	**स्थानीय आपातकाल** (Localised Emergency की संकल्पना)	**कुलाधिपति पद से मुक्ति** (विश्वविद्यालयों के चांसलर पद से राज्यपालों को मुक्त करना)	**संधि निर्माण शक्ति** (संसदीय व अंतर-राज्यीय परामर्श का कड़ा नियम)

पुंछी आयोग की प्रमुख एवं युगांतकारी संस्तुतियां

अ. **राज्यपाल की पदच्युति हेतु महाभियोग प्रक्रिया:**

- आयोग ने एक क्रांतिकारी संस्तुति की कि राज्यपाल को केंद्र की कार्यपालिका के विवेकाधीन 'प्रसादपर्यंत' (Pleasure Doctrine) हटाने की व्यवस्था समाप्त की जानी चाहिए।

- राज्यपाल को उसके 5 वर्ष के कार्यकाल की संवैधानिक सुरक्षा दी जाए। यदि राज्यपाल को हटाना आवश्यक हो, तो उसके लिए **राज्य विधानमंडल द्वारा महाभियोग (Impeachment)** चलाने की वैधानिक प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए (ठीक उसी प्रकार जैसे राष्ट्रपति या न्यायाधीशों को हटाया जाता है)।

ब. **विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति (Chancellor) पद से मुक्ति:** राज्य विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति के रूप में राज्यपाल को प्रदत्त शक्तियों और विशेषाधिकारों को समाप्त किया जाना चाहिए। राज्यपाल के पद को ऐसे शैक्षणिक विवादों से दूर रखा जाए जो उनके संवैधानिक पद की गरिमा को धूमिल करते हैं।

स. **स्थानीयकृत आपातकाल की संकल्पना (Localised Emergency):**

- पूरे राज्य में अनुच्छेद 356 लगाकर निर्वाचित राज्य सरकार को बर्खास्त करने के स्थान पर, संविधान के अनुच्छेद 355 और 356 में संशोधन कर केंद्र को यह अधिकार दिया जाए कि वह राज्य के **किसी विशिष्ट अशांत जिले या क्षेत्र में सीमित समय (अधिकतम 3 माह) के लिए 'स्थानीय आपातकाल'** घोषित कर सके और वहां केंद्रीय बलों को तैनात कर सके, बिना राज्य की चुनी हुई सरकार को अपदस्थ किए।

द. **अंतरराष्ट्रीय संधियों पर राज्यों से परामर्श:** संविधान के अनुच्छेद 253 के तहत केंद्र सरकार जब कोई ऐसी अंतरराष्ट्रीय संधि, समझौता या करार करती है जो राज्य सूची के विषयों या राज्यों के आर्थिक हितों को प्रभावित करती हो, तो संधि करने से पूर्व राज्यों के साथ गहन परामर्श की अनिवार्य व्यवस्था होनी चाहिए।

य. **अंतर-राज्य परिषद का पुनर्गठन:** अंतर-राज्य परिषद को अधिक क्रियाशील बनाया जाए और इसे वित्तीय संघवाद और आंतरिक सुरक्षा के प्रमुख मंच के रूप में वर्ष में निरंतर उपयोग किया जाए।

र. **साम्प्रदायिक हिंसा नियंत्रण:** जब किसी राज्य में भीषण साम्प्रदायिक दंगे या आंतरिक अशांति उत्पन्न हो, तो केंद्र को अनुच्छेद 355 के संवैधानिक दायित्व के तहत राज्य की सहमति के बिना भी अल्पकालिक रूप से केंद्रीय अर्धसैनिक बलों को सीधे तैनात करने का अधिकार होना चाहिए।

सरकारिया आयोग बनाम पुंछी आयोग: तुलनात्मक विश्लेषण

दोनों आयोगों ने भारतीय संघवाद को सुदृढ़ करने हेतु व्यापक कार्य किया, किंतु दोनों के दृष्टिकोण और सिफारिशों में समय के अंतराल के कारण महत्वपूर्ण भिन्नताएं हैं:

तुलना का आधार	सरकारिया आयोग (1983-1988)	मदन मोहन पुंछी आयोग (2007-2010)
ऐतिहासिक संदर्भ	एकदलीय प्रभुत्व का अवसान तथा क्षेत्रीय दलों का उदय।	गठबंधन राजनीति का चरम तथा आर्थिक उदारीकरण का युग।

wincompete

राज्यपाल को हटाना	कार्यकाल की सामान्य सुरक्षा; बिना ठोस कारण न हटाया जाए (प्रसादपर्यंत सिद्धांत यथावत)।	**प्रसादपर्यंत सिद्धांत की समाप्ति;** राज्य विधानमंडल द्वारा **महाभियोग** की औपचारिक प्रक्रिया की सिफारिश।
अनुच्छेद 356 का प्रयोग	'अंतिम विकल्प' के रूप में प्रयोग; संसद के अनुमोदन तक विधानसभा का निलंबन।	**'स्थानीय आपातकाल' (Localised Emergency)** की नवीन संकल्पना; पूरे राज्य की सरकार गिराए बिना विशिष्ट अशांत क्षेत्र में हस्तक्षेप।
विश्वविद्यालय कुलाधिपति पद	कोई विशिष्ट आमूलचूल परिवर्तन की सिफारिश नहीं की गई।	राज्यपाल को विश्वविद्यालयों के चांसलर पद से **पूर्णतः मुक्त करने** का स्पष्ट सुझाव।
अंतरराष्ट्रीय संधियां (अनुच्छेद 253)	केंद्र की संप्रभु शक्ति का सामान्य समर्थन किया।	राज्यों के वित्तीय/सामाजिक हितों को प्रभावित करने वाली संधियों पर **राज्यों से अनिवार्य पूर्व-परामर्श** की सिफारिश।
सशस्त्र बल तैनाती	राज्य की सहमति से अथवा गंभीर अशांति में राज्य से परामर्श कर तैनाती।	अनुच्छेद 355 के तहत केंद्र को साम्प्रदायिक दंगों में **राज्य की सहमति के बिना भी** स्वतः केंद्रीय बल भेजने का अधिकार।
निगम कर का बंटवारा	निगम कर को विभाज्य पूल में शामिल करने की सिफारिश (लागू हुई)।	वित्तीय हस्तांतरण में उपकर और अधिभार (Cess & Surcharge) को सीमित करने तथा उन्हें राज्यों से साझा करने की संस्तुति।

प्रशासनिक, संवैधानिक एवं विधिक पारिभाषिक शब्दावली

अ. **सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism):** केंद्र और राज्यों के मध्य समान स्तर पर पारस्परिक सहयोग, विश्वास और साझेदारी पर आधारित शासन प्रणाली, जहाँ राष्ट्रीय नीतियों के क्रियान्वयन हेतु दोनों स्तरों की सरकारें मिलकर कार्य करती हैं।

ब. **पूर्ण विश्वास और साख (Full Faith and Credit):** अनुच्छेद 261 के तहत स्थापित वह विधिक सिद्धांत जिसके अनुसार एक संघीय राज्य के सभी सार्वजनिक अभिलेखों, कानूनों और सिविल अदालती निर्णयों को संघ के अन्य सभी घटक राज्यों में समान विधिक मान्यता प्राप्त होती है।

visioniasprepto

स. **क्षेत्रीय संबंध का सिद्धांत (Doctrine of Territorial Nexus):** वह संवैधानिक नियम जिसके तहत किसी राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित कानून को राज्य की सीमाओं से बाहर के किसी व्यक्ति या वस्तु पर केवल तभी लागू किया जा सकता है जब उस बाह्य विषय और राज्य के मध्य कोई वास्तविक, यथेष्ट और अकाट्य संबंध सिद्ध हो।

द. **न्यायिक अपवर्जन (Ouster of Jurisdiction):** किसी विशिष्ट संवैधानिक अनुच्छेद (जैसे अनुच्छेद 262) अथवा संविधि द्वारा किसी विषय-विशेष पर अदालतों (सर्वोच्च न्यायालय सहित) की सुनवाई करने की अधिकारिता को औपचारिक रूप से प्रतिबंधित या समाप्त कर दिया जाना।

य. **पंचाट (Award):** किसी अधिकरण (जैसे अंतर-राज्यीय जल विवाद अधिकरण) द्वारा दोनों पक्षों के साक्ष्यों का परीक्षण करने के उपरांत दिया गया अंतिम, औपचारिक एवं बाध्यकारी विधिक निर्णय।

र. **स्थानीयकृत आपातकाल (Localised Emergency):** पुंछी आयोग द्वारा प्रस्तावित वह संकल्पना जिसके अंतर्गत संपूर्ण राज्य में अनुच्छेद 356 लगाए बिना, केवल किसी विशिष्ट अशांत जिले या क्षेत्र में सीमित समय हेतु केंद्रीय शासन अथवा सेना की तैनाती की जा सके।

ल. **सांविधिक निकाय (Statutory Body):** वह संस्था या आयोग जिसका उल्लेख मूल संविधान में न होकर, संसद अथवा किसी राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कानून (अधिनियम) के माध्यम से स्थापना की जाती है; जैसे क्षेत्रीय परिषदें।

अध्याय 25: गठबंधन राजनीति एवं राष्ट्रीय एकीकरण: गठबंधन सरकारों के युग (1989 के बाद), राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव, क्षेत्रीय दलों का उभार, राष्ट्रीय एकता परिषद (NIC) एवं आंतरिक सुरक्षा चुनौतियां

गठबंधन राजनीति का सैद्धांतिक ढांचा एवं भारतीय दलीय प्रणाली का ऐतिहासिक रूपांतरण

संसदीय लोकतंत्र में जब किसी एकल राजनीतिक दल को विधायिका (लोक सभा) में सरकार बनाने हेतु स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता, तब दो या दो से अधिक राजनीतिक दल मिलकर एक साझा न्यूनतम कार्यक्रम अथवा सहमति के आधार पर शासन का गठन करते हैं; इस राजनीतिक व्यवस्था को 'गठबंधन सरकार' (Coalition Government) कहा जाता है। गठबंधन शब्द लैटिन भाषा के 'कोलिशियो' (Coalitio) से निःसृत हुआ है, जिसका अर्थ है 'एक साथ बढ़ना या संगठित होना'।

भारतीय दलीय प्रणाली के ऐतिहासिक विकास को चार सुस्पष्ट कालखंडों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

भारतीय दलीय प्रणाली के ऐतिहासिक विकास को चार सुस्पष्ट कालखंडों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

भारतीय दलीय व्यवस्था का विकासात्मक क्रम

↓

wisecompete

प्रथम चरण (1947–1967)	द्वितीय चरण (1967–1989)	तृतीय चरण (1989–2014)
एकदलीय प्रभुत्व का युग (रजनी कोठारी: 'कांग्रेस प्रणाली')	द्वि-दलीय प्रतिस्पर्धा व बिखराव (संविद सरकारें व जनता पार्टी प्रयोग)	गठबंधन सरकारों का स्वर्णकाल (त्रिशंकु संसद व क्षेत्रीय उभार)

↓

चतुर्थ चरण (2014 से वर्तमान)
एकल दल बहुमत के साथ गठबंधन (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन - NDA)

दलीय प्रणालियों के चार ऐतिहासिक चरण

अ. **एकदलीय प्रभुत्व का युग (1947-1967):** स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम तीन आम चुनावों (1952, 1957, 1962) में केंद्र तथा अधिकांश राज्यों में एक ही राजनीतिक दल का निर्विवाद प्रभुत्व रहा। राजनीतिक वैज्ञानिक रजनी कोठारी ने इस विशिष्ट दलीय संरचना को **'कांग्रेस प्रणाली' (Congress System)** की संज्ञा दी, जहाँ एक व्यापक छतरी (Umbrella Party) दल के भीतर ही विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और क्षेत्रीय हितों का आंतरिक आम सहमति के माध्यम से समायोजन किया जाता था।

ब. **कांग्रेस प्रभुत्व का विखंडन एवं प्रारंभिक गठबंधन प्रयोग (1967-1989):** 1967 के चौथे आम चुनाव भारतीय राजनीति में जल-विभाजक सिद्ध हुए, जहाँ आठ राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं और **'संयुक्त विधायक दल' (संविद)** की गठबंधन सरकारों का जन्म हुआ। केंद्र स्तर पर वर्ष 1977 में आपातकाल के उपरांत मोरारजी देसाई के नेतृत्व में प्रथम गैर-कांग्रेसी सरकार बनी। यद्यपि जनता पार्टी तकनीकी रूप से एक दल के रूप में पंजीकृत थी, किंतु आंतरिक रूप से वह विभिन्न भिन्न विचारधाराओं (जनसंघ, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी, कांग्रेस-ओ) का एक बेमेल गठबंधन ही थी, जो 1979 में घटक दलों के वैचारिक अंतर्विरोधों के कारण गिर गई।

स. **गठबंधन राजनीति का संस्थागत युग (1989-2014):** 1989 के नौवें आम चुनाव से भारतीय राजनीति में एकदलीय प्रभुत्व का स्थायी अंत हुआ और **'त्रिशंकु संसद' (Hung Parliament)** का दौर प्रारंभ हुआ। इस 25 वर्षीय कालखंड में केंद्र में लगातार गठबंधन अथवा अल्पमत सरकारों का संचालन हुआ।

द. **बहुमत-समर्थित गठबंधन का नवीन युग (2014 से वर्तमान):** 2014 एवं 2019 के आम चुनावों में तीन दशकों के अंतराल के पश्चात एकल दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ, किंतु सरकार का गठन औपचारिक रूप से चुनाव-पूर्व बने गठबंधन (NDA) के अंतर्गत ही किया गया। यह चरण दर्शाता है कि गठबंधन संस्कृति अब भारतीय राजनीति का एक स्थायी यथार्थ बन चुकी है।

1989 के पश्चात गठबंधन सरकारों का कालानुक्रम एवं शक्ति-संतुलन

वर्ष 1989 से 2014 के मध्य भारतीय राजनीतिक फलक पर विभिन्न राजनीतिक गठबंधनों के उत्थान और पतन का तीव्र चक्र देखा गया। इस कालखंड में क्षेत्रीय आकांक्षाओं, सामाजिक न्याय की राजनीति और मंडल-कमंडल विमर्श ने राष्ट्रीय राजनीति की दिशा तय की।

1989 के बाद केंद्र में गठबंधन सरकारों का प्रवाह

↓

राष्ट्रीय मोर्चा (1989-1991) (भाजपा व वामपंथ का बाह्य समर्थन; वी.पी. सिंह व चंद्रशेखर सरकार)	संयुक्त मोर्चा (1996-1998) (कांग्रेस का बाह्य समर्थन; देवेगौड़ा व गुजराल सरकार)	राजग एवं संप्रग का युग (NDA: 1998-2004; UPA: 2004-2014)

1989 के बाद की प्रमुख गठबंधन सरकारें

गठबंधन / सरकार का नाम	समयावधि	प्रधानमंत्री	समर्थक एवं घटक दल	पतन / विघटन का विधिक व राजनीतिक कारण
राष्ट्रीय मोर्चा (National Front)	1989–1990	विश्वनाथ प्रताप सिंह	जनता दल, असम गण परिषद, द्रमुक; बाह्य समर्थन: **भाजपा एवं वाम मोर्चा**	लालकृष्ण आडवाणी की सोमनाथ से अयोध्या रथयात्रा रोके जाने पर भाजपा द्वारा समर्थन वापसी।
समाजवादी जनता पार्टी	1990–1991	चंद्रशेखर	जनता दल (एस); बाह्य समर्थन: **कांग्रेस (आई)**	राजीव गांधी की जासूसी के आरोप पर कांग्रेस द्वारा संसद में समर्थन वापस लेना।
अल्पमत सरकार	1991–1996	पी. वी. नरसिम्हा राव	कांग्रेस (एकल सबसे बड़ा दल); छोटे दलों एवं निर्दलीयों का बाह्य समर्थन	1993 में अविश्वास प्रस्ताव को पार कर 5 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण किया; झामुमो रिश्वत कांड से संबद्ध।
भाजपा (अल्पकालिक)	1996 (13 दिन)	अटल बिहारी वाजपेयी	एकल सबसे बड़ा दल; अन्य दलों से समर्थन जुटाने का प्रयास	लोक सभा में आवश्यक 272 का बहुमत सिद्ध न कर पाने के कारण विश्वास मत से पूर्व त्यागपत्र।

wincompete

संयुक्त मोर्चा (United Front - I)	1996–1997	एच. डी. देवगौड़ा	13 क्षेत्रीय व वामपंथी दलों का समूह; बाह्य समर्थन: **कांग्रेस**	कांग्रेस अध्यक्ष सीताराम केसरी द्वारा समर्थन वापस लिए जाने से सरकार अल्पमत में आई।
संयुक्त मोर्चा (United Front - II)	1997–1998	इंद्र कुमार गुजराल	संयुक्त मोर्चा घटक दल; बाह्य समर्थन: **कांग्रेस**	जैन आयोग की अंतरिम रिपोर्ट (राजीव गांधी हत्याकांड) में द्रमुक पर आक्षेप; कांग्रेस की द्रमुक को हटाने की मांग पर त्यागपत्र।
राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA-I)	1998–1999 (13 माह)	अटल बिहारी वाजपेयी	भाजपा, अन्नाद्रमुक, तृणमूल, अकाली दल, समता पार्टी आदि	अन्नाद्रमुक नेत्री जे. जयललिता द्वारा समर्थन वापसी; **1 मत से अविश्वास प्रस्ताव में पराजय** (269 बनाम 270)।
राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA-II)	1999–2004	अटल बिहारी वाजपेयी	24 दलों का औपचारिक गठबंधन (भाजपा मुख्य दल)	**प्रथम गैर-कांग्रेसी गठबंधन जिसने अपना 5 वर्ष का पूर्ण कार्यकाल**

wincompete

				सफलतापूर्वक पूरा किया।
संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA-I)	2004–2009	डॉ. मनमोहन सिंह	कांग्रेस, द्रमुक, राजद, राकांपा आदि; बाह्य समर्थन: **वाम मोर्चा**	भारत-अमेरिका असैन्य परमाणु करार (123 समझौता) पर वाम मोर्चे की समर्थन वापसी; सपा के समर्थन से सरकार बची।
संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA-II)	2009–2014	डॉ. मनमोहन सिंह	कांग्रेस, तृणमूल, द्रमुक, राकांपा, नेशनल कॉन्फ्रेंस आदि	तृणमूल कांग्रेस (ममता बनर्जी) द्वारा एफडीआई के विरोध में तथा द्रमुक द्वारा श्रीलंका मुद्दे पर समर्थन वापसी।

क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का अभूतपूर्व उभार एवं राष्ट्रीय राजनीति का संघीयकरण

1989 के पश्चात भारतीय राजनीतिक परिदृश्य का सबसे क्रांतिकारी संरचनात्मक परिवर्तन अखिल भारतीय राष्ट्रीय दलों के प्रभुत्व का संकुचन तथा राज्यों में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों (Regional Parties) का अभूतपूर्व उत्थान था। इस प्रक्रिया ने भारतीय राजनीति का व्यापक **'संघीयकरण' (Federalisation of Politics)** कर दिया।

क्षेत्रीय दलों के उभार के चार प्रमुख प्रेरक

↓

सामाजिक न्याय की राजनीति	पहचान एवं क्षेत्रीय अस्मिता	आर्थिक उदारीकरण (1991)	राष्ट्रीय दलों की संगठनात्मक विफलता
(मंडल आयोग की सिफारिशें; ओबीसी, दलित व वंचित उभार)	(उप-राष्ट्रवाद, भाषाई स्वायत्तता तथा स्थानीय संसाधनों पर अधिकार)	(राज्यों में निजी पूंजी व निवेश आकर्षण की प्रतिस्पर्धा)	(अति-केंद्रीकृत कमान संस्कृति के विरुद्ध प्रांतीय विद्रोह)

क्षेत्रीय दलों के उदय के मूलभूत कारण

अ. **सामाजिक न्याय एवं पिछड़ी जातियों का राजनीतिक सशक्तीकरण:** वी. पी. सिंह सरकार द्वारा 1990 में **मंडल आयोग की सिफारिशों** को लागू करने के साथ ही उत्तर भारत में अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) और दलितों में तीव्र राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ। इसके परिणामस्वरूप समाजवादी पार्टी (सपा), राष्ट्रीय जनता दल (राजद), बहुजन समाज पार्टी (बसपा) तथा जनता दल (यूनाइटेड) जैसी सामाजिक न्याय-आधारित ताकतों का प्रादुर्भाव हुआ।

ब. **सांस्कृतिक, भाषाई एवं जातीय उप-राष्ट्रवाद:** तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कषगम (DMK) एवं ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम (AIADMK), पंजाब में शिरोमणि अकाली दल, आंध्र प्रदेश में तेलुगु देशम पार्टी (TDP), असम में असम गण परिषद (AGP) तथा महाराष्ट्र में शिवसेना ने क्षेत्रीय अस्मिता, स्थानीय भाषा और राज्य के स्वाभिमान को मुख्य चुनावी मुद्दा बनाकर राष्ट्रीय दलों को हाशिए पर धकेला।

स. **आर्थिक उदारीकरण एवं प्रांतीय पूंजीवाद (1991 के बाद):** 1991 के आर्थिक सुधारों ने लाइसेंस-परमिट राज को समाप्त किया। अब राज्यों को सीधे विदेशी निवेश आकर्षित करने, उद्योग लगाने और वित्तीय नीतियां बनाने की छूट मिली। इससे प्रांतीय स्तर पर एक शक्तिशाली व्यापारिक और कृषि वर्ग का उदय हुआ, जिसने क्षेत्रीय दलों को वित्तीय संबल प्रदान किया।

द. **राष्ट्रीय दलों के केंद्रीय नेतृत्व का ह्रास:** कांग्रेस तथा भाजपा जैसे राष्ट्रीय दलों की आंतरिक संगठनात्मक विफलता और दिल्ली केंद्रित आलाकमान संस्कृति के विरुद्ध राज्य स्तरीय क्षत्रपों ने विद्रोह कर पृथक दलों की स्थापना की (जैसे तृणमूल कांग्रेस, वाईएसआर कांग्रेस, बीजू जनता दल आदि)।

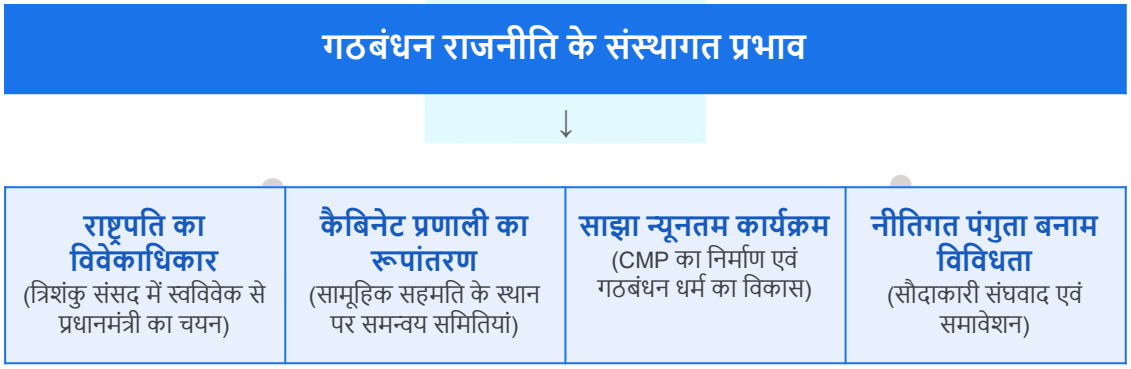
राष्ट्रीय राजनीति पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव

अ. **'राजा निर्माता' (Kingmakers) की भूमिका:** 1989 से 2014 के मध्य केंद्र में किसी भी दल की सरकार क्षेत्रीय दलों के समर्थन के बिना संभव नहीं थी। चंद्रबाबू नायडू (TDP), जे. जयललिता (AIADMK), ममता बनर्जी (TMC), और एम. करुणानिधि (DMK) केंद्र सरकार के अस्तित्व के प्रमुख नियंत्रक बन गए।

ब. **विदेश नीति का प्रांतीयकरण (Federalisation of Foreign Policy):** क्षेत्रीय दलों ने भारत की संप्रभु विदेश नीति को भी प्रभावित किया। उदाहरणार्थ, पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के विरोध के कारण वर्ष 2011 में भारत सरकार बांग्लादेश के साथ **तीस्ता जल बँटवारा समझौता** नहीं कर सकी। इसी प्रकार तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों के दबाव के कारण केंद्र सरकार को श्रीलंका के तमिल मुद्दे पर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर कड़े रुख अपनाने पड़े।

गठबंधन सरकारों का भारतीय शासन व्यवस्था एवं संस्थाओं पर प्रभाव

गठबंधन राजनीति ने भारत की वेस्टमिंस्टर संसदीय प्रणाली के मूल संचालन तंत्र, संस्थागत शक्तियों और संवैधानिक पदों के पारस्परिक संबंधों में व्यापक रूपांतरण उत्पन्न किया।



1. राष्ट्रपति की सक्रिय एवं परिस्थितिजन्य भूमिका

एकल बहुमत के अभाव में राष्ट्रपति पद मात्र एक औपचारिक रबर स्टैंप न रहकर सक्रिय संवैधानिक मध्यस्थ बन गया। अनुच्छेद 75(1) के तहत प्रधानमंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति को अपने **परिस्थितिजन्य विवेक (Situational Discretion)** का प्रयोग करना पड़ा:

- **आर. वेंकटरमण (1989):** उन्होंने परंपरा स्थापित की कि सर्वप्रथम लोक सभा में सबसे बड़े दल (Single Largest Party) के नेता को सरकार बनाने का निमंत्रण दिया जाए। राजीव गांधी द्वारा इनकार किए जाने पर उन्होंने दूसरे सबसे बड़े दल के नेता वी. पी. सिंह को आमंत्रित किया।
- **शंकर दयाल शर्मा (1996):** 1996 में उन्होंने अटल बिहारी वाजपेयी को सबसे बड़े दल के नेता के रूप में आमंत्रित किया, यद्यपि उनके पास स्पष्ट बहुमत नहीं था। वाजपेयी 13 दिन बाद विश्वास मत सिद्ध न कर पाने पर पदमुक्त हुए।
- **के. आर. नारायणन (1998):** उन्होंने पूर्व परंपरा को परिष्कृत करते हुए यह नियम बनाया कि केवल सबसे बड़ा दल होना पर्याप्त नहीं है; राष्ट्रपति को यह संतुष्ट होना चाहिए कि प्रत्याशी सरकार चला सकता है। उन्होंने अटल बिहारी वाजपेयी से सरकार बनाने का दावा पेश करने से पूर्व घटक दलों के **हस्ताक्षरित समर्थन पत्र (Letters of Support)** प्रस्तुत करने की मांग की।

2. प्रधानमंत्री की संवैधानिक प्रास्थिति में परिवर्तन

संसदीय व्यवस्था में प्रधानमंत्री को 'समानों में प्रथम' (Primus Inter Pares) अथवा 'मंत्रिमंडल रूपी मेहराब की आधारशिला' माना जाता है। किंतु गठबंधन युग में प्रधानमंत्री की शक्तियां घटक दलों की इच्छा पर निर्भर हो गईं:

- विभागों के आबंटन (Portfolio Allocation) में प्रधानमंत्री का संप्रभु विशेषाधिकार समाप्त हो गया। घटक दलों ने अपनी सदस्य संख्या के आधार पर महत्वपूर्ण वित्त, गृह, रेल, संचार और जहाजरानी जैसे मलाईदार मंत्रालयों पर सीधे दावे किए।
- प्रधानमंत्री अपने भ्रष्ट या अयोग्य सहयोगी मंत्रियों को सीधे बर्खास्त करने में असमर्थ हो गए, क्योंकि मंत्री को हटाने का अर्थ संपूर्ण सरकार का पतन हो सकता था।

3. साझा न्यूनतम कार्यक्रम एवं समन्वय समितियां

गठबंधन सरकारों को स्थिरता प्रदान करने तथा परस्पर विरोधी विचारधाराओं (जैसे वामपंथ और मध्यमार्गी दल) को एक मंच पर लाने हेतु **'साझा न्यूनतम कार्यक्रम' (Common Minimum Programme - CMP)** की नवीन व्यवस्था विकसित हुई।

- औपचारिक कैबिनेट बैठकों से इतर एक **'गठबंधन समन्वय समिति' (Coordination Committee)** का गठन किया जाने लगा, जहाँ सरकार के वास्तविक नीतिगत निर्णय लिए जाते थे। इसे संविधान-इतर सत्ता केंद्र (Extra-Constitutional Power Centre) के रूप में देखा गया।

गठबंधन शासन से जुड़े प्रमुख संवैधानिक संशोधन एवं न्यायिक वाद

गठबंधन राजनीति की विसंगतियों को नियंत्रित करने तथा राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु संसद तथा न्यायपालिका द्वारा महत्वपूर्ण कदम उठाए गए।

1. 91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003

गठबंधन सरकारों में छोटे दलों के सांसदों को मंत्री पद का लालच देकर सरकार को स्थिर रखने अथवा दल-बदल कराने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए संसद ने 91वां संविधान संशोधन पारित किया:

wincompete

- **मंत्रिपरिषद के आकार की सीमा (अनुच्छेद 75(1क)):** केंद्रीय मंत्रिपरिषद में प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों की कुल संख्या लोक सभा की कुल सदस्य संख्या के **15 प्रतिशत (अधिकतम 81-82 मंत्री)** से अधिक नहीं होगी।
- **दल-बदलुओं के मंत्री बनने पर रोक (अनुच्छेद 75(1ख)):** दसवीं अनुसूची के तहत अयोग्य ठहराया गया कोई भी सांसद तब तक मंत्री नियुक्त नहीं हो सकता जब तक कि वह पुनः निर्वाचित न हो जाए।
- **थोक दल-बदल (Split) की समाप्ति:** दसवीं अनुसूची के पैरा 3 (एक-तिहाई सदस्यों द्वारा विभाजन) को समाप्त कर दिया गया; अब केवल दो-तिहाई सदस्यों द्वारा किसी दल का दूसरे दल में 'विलय' (Merger) ही वैध माना गया।

2. ऐतिहासिक न्यायिक निर्णय

प्रमुख वाद	वर्ष	पीठ का स्वरूप	प्रतिपादित विधिक सिद्धांत एवं प्रभाव
एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ	1994	9 न्यायाधीशों की संविधान पीठ	गठबंधन युग में केंद्र द्वारा राज्यों की विपक्षी सरकारों को मनमाने ढंग से बर्खास्त करने (अनुच्छेद 356) पर रोक लगाई। न्यायालय ने आदेश दिया कि **बहुमत का परीक्षण केवल विधान सभा के पटल (Floor of the House) पर होगा**, राजभवन में राज्यपाल के व्यक्तिगत आकलन से नहीं।
रमेशेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ (बिहार विधानसभा वाद)	2006	5 न्यायाधीशों की संविधान पीठ	चुनाव के पश्चात त्रिशंकु विधानसभा में सरकार गठन की संभावनाएं तलाशे बिना, केवल खरीद-फरोख्त की आशंका के आधार पर राज्यपाल की रिपोर्ट पर विधानसभा का विघटन करना **असंवैधानिक और दुर्भावनापूर्ण** घोषित किया गया।
पी. वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य (CBI)	1998	5 न्यायाधीशों की संविधान पीठ	1993 में अल्पमत सरकार को बचाने हेतु झामुमो सांसदों को दिए गए रिश्वत मामले में न्यायालय ने 3:2 के बहुमत से माना कि अनुच्छेद 105(2) के तहत सांसदों को सदन में मतदान करने हेतु अभियोजन से पूर्ण विधिक संरक्षण प्राप्त है। *(नोट: वर्ष 2024 में सीता सोरेन वाद में 7 न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने इस निर्णय को पलट दिया)।*

wincompete

राष्ट्रीय एकीकरण: ऐतिहासिक आयाम एवं प्रमुख बाधक तत्व

1989 के पश्चात भारतीय राजनीतिक परिदृश्य का सबसे क्रांतिकारी संरचनात्मक परिवर्तन अखिल भारतीय राष्ट्रीय दलों के प्रभुत्व का संकुचन तथा राज्यों में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों (Regional Parties) का अभूतपूर्व उत्थान था। इस प्रक्रिया ने भारतीय राजनीति का व्यापक **"संघीयकरण" (Federalisation of Politics)** कर दिया।

राष्ट्रीय एकीकरण के सम्मुख प्रमुख चुनौतियां

↓

सांप्रदायिकता (Communalism)	क्षेत्रीयतावाद एवं भाषावाद (Regionalism)	जातिवाद एवं पहचान की राजनीति	पृथकतावाद व उग्रवाद (Secessionism)
धर्म आधारित विद्वेष व दंगे	भूमिपुत्र सिद्धांत व भाषाई विवाद	सामाजिक ध्रुवीकरण व वैमनस्य	सशस्त्र विद्रोही आंदोलन

राष्ट्रीय एकीकरण के सम्मुख चार प्रमुख बाधक तत्व

अ. **सांप्रदायिकता (Communalism):** धर्म को राजनीतिक लामबंदी और सामाजिक प्रभुत्व का साधन बनाना। सांप्रदायिक दंगे, धार्मिक कट्टरता तथा एक धर्म के अनुयायियों द्वारा दूसरे धर्म के प्रति असहिष्णुता राष्ट्रीय एकता के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करती है।

ब. **क्षेत्रीयतावाद एवं 'भूमिपुत्र' सिद्धांत (Regionalism and Son of the Soil):** राष्ट्रीय हितों की तुलना में अपने विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र, राज्य या प्रांत के हितों को संकीर्ण रूप से प्राथमिकता देना। 'भूमिपुत्र सिद्धांत' के आधार पर अन्य राज्यों के नागरिकों (प्रवासियों) के विरुद्ध हिंसा, रोजगार में भेदभाव तथा संविधान के **अनुच्छेद 19(1)(घ) [देश में कहीं भी संचरण की स्वतंत्रता]** व **अनुच्छेद 19(1)(ङ) [कहीं भी निवास करने की स्वतंत्रता]** का खुला उल्लंघन राष्ट्रीय एकीकरण के लिए गंभीर खतरा है।

स. **भाषावाद (Linguism):** भारत में भाषाओं की प्रचुरता के कारण भाषाई पहचान एक संवेदनशील मुद्दा रही है। 1960 के दशक के हिंदी-विरोधी आंदोलन, अंतर-राज्यीय सीमा विवाद (जैसे महाराष्ट्र-कर्नाटक के मध्य बेलगावी विवाद), तथा भाषाई आधार पर अन्य भाषाई अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न राष्ट्रीय एकता में बाधा बनता है।

द. **जातिवाद एवं सामाजिक विखंडन (Casteism):** राजनीति में जातियों का अत्यधिक ध्रुवीकरण, अंतर-जातीय संघर्ष तथा खाप पंचायतों जैसी समानांतर न्याय प्रणालियों द्वारा मानवीय गरिमा का हनन संवैधानिक बंधुत्व (Fraternity) की भावना को आघात पहुंचाता है।

राष्ट्रीय एकता परिषद (NIC): गठन, विकास, संरचना एवं कार्यप्रणाली

राष्ट्रीय एकता परिषद (National Integration Council - NIC) देश में सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद और संकीर्णता की समस्याओं से निपटने तथा राष्ट्रीय अखंडता को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से गठित सर्वोच्च राष्ट्रीय परामर्शदात्री संस्था है।

राष्ट्रीय एकता परिषद की संस्थागत स्थिति

↓

गैर-संवैधानिक निकाय (Non-Constitutional Body)	गैर-सांविधिक निकाय (Non-Statutory Body)
• संविधान के किसी भी अनुच्छेद में उल्लेख नहीं • किसी संवैधानिक अथवा सांविधिक प्राधिकार से परे	• संसद के किसी अधिनियम द्वारा निर्मित नहीं • 1961 के राष्ट्रीय सम्मेलन के संकल्प से उद्भूत

↓

राष्ट्रीय आम सहमति का सर्वोच्च मंच
• अध्यक्ष: भारत का प्रधानमंत्री
• नोडल एजेंसी: केंद्रीय गृह मंत्रालय

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं प्रथम सम्मेलन (1961)

अ. **स्थापना:** 1960 के दशक के आरंभ में देश के विभिन्न भागों (विशेषकर असम में भाषाई दंगे और जबलपुर में भीषण सांप्रदायिक दंगे) में फैली अशांति से चिंतित होकर तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने **सितंबर-अक्टूबर 1961 में नई दिल्ली में एक 'राष्ट्रीय एकता सम्मेलन' (National Integration Conference)** आहूत किया।

ब. **प्रथम औपचारिक बैठक (1962):** इस सम्मेलन की संस्तुति पर **1961 में राष्ट्रीय एकता परिषद (NIC)** का गठन किया गया और इसकी प्रथम औपचारिक बैठक **जून 1962** में प्रधानमंत्री नेहरू की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

संगठनात्मक संरचना

अ. **अध्यक्ष:** भारत का **प्रधानमंत्री** राष्ट्रीय एकता परिषद का पदेन अध्यक्ष होता है।

ब. **सदस्यता का व्यापक स्वरूप (वर्तमान में लगभग 147 से अधिक सदस्य):**

- केंद्रीय गृह मंत्री, वित्त मंत्री तथा अन्य वरिष्ठ कैबिनेट मंत्री;
- भारत के सभी राज्यों के मुख्यमंत्री तथा संघ राज्य क्षेत्रों के उपराज्यपाल/प्रशासक;
- संसद के दोनों सदनों (लोक सभा एवं राज्य सभा) में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता;
- राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग तथा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष;
- उद्योगपति, व्यापार मंडलों (FICCI, ASSOCHAM) के प्रतिनिधि;
- प्रतिष्ठित पत्रकार, संपादक, मीडिया प्रतिनिधि, शिक्षाविद, लेखक, वैज्ञानिक तथा विख्यात नागरिक समाज कार्यकर्ता।

स. **प्रशासनिक नोडल एजेंसी:** भारत सरकार का **केंद्रीय गृह मंत्रालय** राष्ट्रीय एकता परिषद के सचिवालय के रूप में कार्य करता है।

wincompete

प्रमुख कार्य एवं राष्ट्रीय भूमिका

अ. देश में सांप्रदायिक सद्भाव, धर्मनिरपेक्षता और अंतर-धार्मिक सौहार्द को बढ़ावा देने हेतु नीतियों की समीक्षा करना।

ब. उग्रवाद, आतंकवाद, अलगाववाद तथा पूर्वोत्तर व नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाले संकटों पर राष्ट्रीय आम सहमति (National Consensus) बनाना।

स. महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध होने वाली हिंसा, तथा जातिगत भेदभाव के निवारण हेतु उप-समितियों का गठन कर केंद्र व राज्यों को सुधारात्मक उपायों की सिफारिश करना।

द. यद्यपि एनआईसी की सिफारिशें **पूर्णतः सलाहकारी (Advisory)** होती हैं, किंतु देश के संपूर्ण राजनीतिक, प्रशासनिक और बौद्धिक नेतृत्व का साझा मंच होने के कारण इसकी संस्तुतियों का अत्यधिक नैतिक और राजनीतिक प्रभाव होता है। (नोट: परिषद की 16वीं और अंतिम बैठक सितंबर 2013 में आयोजित की गई थी)।

भारत की आंतरिक सुरक्षा चुनौतियां: बहुआयामी संकट एवं संवैधानिक परिप्रेक्ष्य

संविधान के **अनुच्छेद 355** के अनुसार, "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह बाह्य आक्रमण और **आंतरिक अशांति** से प्रत्येक राज्य की संरक्षा करे और यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार इस संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाई जाती है।" भारत की आंतरिक सुरक्षा के समक्ष चार प्रमुख रणनीतिक चुनौतियां विद्यमान हैं:

भारत की चार आंतरिक सुरक्षा चुनौतियां

↓

वामपंथी उग्रवाद (Left-Wing Extremism) 'रेड कॉरिडोर' - नक्सलवाद	**पूर्वोत्तर में उग्रवाद** (Ethnic Insurgency) (नागा, बोडो, उल्फा विद्रोह)	**सीमा पार आतंकवाद व जम्मू-कश्मीर संकट** (प्रॉक्सी वार व हाइब्रिड वॉरफेयर)	**तटीय एवं साइबर सुरक्षा** (समुद्री सीमाएं एवं डिजिटल संप्रभुता)

1. वामपंथी उग्रवाद / नक्सलवाद (Left-Wing Extremism - LWE)

अ. **उद्भव:** वर्ष 1967 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के **नक्सलबाड़ी** गांव में चारू मजूमदार, कानू सान्याल और कन्हाई चटर्जी के नेतृत्व में हुए सशस्त्र कृषक विद्रोह से इसका जन्म हुआ। यह माओवादी साम्यवादी विचारधारा पर आधारित है, जिसका घोषित उद्देश्य लोकतांत्रिक व्यवस्था को सशस्त्र क्रांति द्वारा उखाड़ फेंकना है।

ब. **भौगोलिक विस्तार (रेड कॉरिडोर):** यह खनिज संपदा से समृद्ध किंतु सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े जनजातीय क्षेत्रों में फैला, जिसे **'रेड कॉरिडोर' (Red Corridor)** कहा गया। इसमें मुख्य रूप से छत्तीसगढ़ (बस्तर संभाग), झारखंड, ओडिशा, बिहार, महाराष्ट्र (गढ़चिरौली), आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के वन क्षेत्र प्रभावित रहे हैं।

स. **सरकारी नीतियां एवं सुरक्षा उपाय:**

- **'समाधान' (SAMADHAN) सिद्धांत:** गृह मंत्रालय द्वारा 2017 में प्रारंभ (S-Smart Leadership, A-Aggressive Strategy, M-Motivation, A-Actionable Intelligence, D-Dashboard KPIs, H-Harnessing Technology, A-Action Plan, N-No access to Financing)।
- **विशेष सुरक्षा बल:** सीआरपीएफ की विशेष 'कोबरा' (COBRA) बटालियन, छत्तीसगढ़ की 'डिस्ट्रिक्ट रिजर्व गार्ड' (DRG) तथा आंध्र प्रदेश की 'ग्रेहाउंड्स' (Greyhounds) कमांडो फोर्स की तैनाती।

2. पूर्वोत्तर भारत में नृजातीय उग्रवाद (North-East Insurgency)

अ. **कारण:** पूर्वोत्तर भारत की 200 से अधिक जनजातियों के मध्य नृजातीय श्रेष्ठता का संघर्ष, म्यांमार व बांग्लादेश से लगी खुली सीमाएं, अवैध घुसपैठ, तथा ऐतिहासिक अलगाव की भावना।

ब. **प्रमुख विद्रोही संगठन:** नगालैंड में NSCN (आईसाक-मुइवा एवं खापलांग गुट), असम में उल्फा (ULFA), मणिपुर में मैतेई विद्रोही (UNLF, PLA) तथा नगा-कुकी जातीय संघर्ष।

स. **संवैधानिक सुरक्षा तंत्र (छठी अनुसूची):** संविधान का अनुच्छेद 244(2) असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम में जनजातीय क्षेत्रों के स्वशासन हेतु **'स्वायत्त जिला परिषदों' (Autonomous District Councils - ADCs)** की स्थापना करता है।

द. **हालिया शांति समझौते:** बोडो शांति समझौता (2020), ब्रू-रियांग समझौता (2020), कार्बी आंगलोंग समझौता (2021), तथा उल्फा शांति समझौता (दिसंबर 2023)।

3. सीमा पार आतंकवाद एवं जम्मू-कश्मीर

अ. **प्रॉक्सी वार (छद्म युद्ध):** पड़ोसी देश द्वारा प्रायोजित सीमा पार आतंकवाद, घुसपैठ और आतंकवादियों का वित्तीय पोषण (Terror Financing)।

ब. **संवैधानिक पुनर्गठन (2019):** अगस्त 2019 में संसद द्वारा **जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019** पारित कर संविधान के अनुच्छेद 370 के अधिकांश उपबंधों को निष्प्रभावी किया गया तथा राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों—जम्मू-कश्मीर (विधानसभा सहित) एवं लद्दाख (विधानसभा रहित)—में विभाजित कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय की 5 न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने 11 दिसंबर 2023 को इस पुनर्गठन को पूर्णतः संवैधानिक ठहराया।

आंतरिक सुरक्षा से संबंधित सांविधिक विधियां एवं विशेष सुरक्षा तंत्र

आंतरिक संप्रभुता को अक्षुण्ण रखने हेतु संसद द्वारा समय-समय पर विशेष कठोर संविधियां अधिनियमित की गई हैं।

प्रमुख आंतरिक सुरक्षा विधान

↓

सशस्त्र बल विशेष शक्तियां अधिनियम (AFSPA, 1958 - धारा 3 व 4)	गैर-कानूनी गतिविधियां (निवारण) अधिनियम (UAPA, 1967)	राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम (NIA Act, 2008)
• अशांत क्षेत्रों में सेना को गोली चलाने व बिना वारंट तलाशी की शक्ति	• आतंकी संगठनों व व्यक्तियों को आतंकी घोषित करने की शक्ति	• अखिल भारतीय आतंक-रोधी केंद्रीय जांच एजेंसी

1. सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1958 (AFSPA)

अ. **उद्देश्य:** पूर्वोत्तर के अशांत क्षेत्रों तथा कालांतर में (1990 में पृथक अधिनियम द्वारा) जम्मू-कश्मीर में लोक व्यवस्था बनाए रखने हेतु सशस्त्र बलों को विशेष विधिक उन्मुक्तियां प्रदान करना।

ब. **'अशांत क्षेत्र' (Disturbed Area) की घोषणा (धारा 3):** केंद्र सरकार, संबंधित राज्य का राज्यपाल अथवा संघ राज्य क्षेत्र का प्रशासक संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग को 'अशांत क्षेत्र' घोषित कर सकता है।

स. **विशेष शक्तियां (धारा 4):**

- चेतावनी देने के पश्चात, लोक व्यवस्था बनाए रखने हेतु आवश्यक होने पर मृत्यु कारित करने (गोली चलाने) तक बल प्रयोग का अधिकार;
- बिना वारंट के किसी भी परिसर की तलाशी लेने तथा संदेहास्पद व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति;
- उग्रवादियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले आश्रय स्थलों या प्रशिक्षण शिविरों को नष्ट करने का अधिकार।

द. **विधिक संरक्षण (धारा 6):** केंद्र सरकार की **पूर्व स्वीकृति (Previous Sanction)** के बिना अफस्पा के अधीन कार्य करने वाले किसी भी सैन्य अधिकारी या जवान के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कोई मुकदमा या कानूनी कार्यवाही संस्थित नहीं की जा सकती।

य. **जीवन रेड्डी समिति (2005):** न्यायमूर्ति बी. पी. जीवन रेड्डी की अध्यक्षता वाली समिति ने अफस्पा को अत्यधिक दमनकारी बताते हुए इसे **निरसित (Repeal) करने की सिफारिश** की थी और इसके आवश्यक सुरक्षा प्रावधानों को यूएपीए में समाहित करने का सुझाव दिया था।

2. गैर-कानूनी गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1967 (UAPA)

अ. **उद्देश्य:** भारत की संप्रभुता और अखंडता को संकट में डालने वाली गैर-कानूनी गतिविधियों और आतंकवादी कृत्यों की रोकथाम हेतु भारत का प्राथमिक आतंकवाद-रोधी कानून।

ब. **2019 का युगांतकारी संशोधन:** 'यूएपीए (संशोधन) अधिनियम, 2019' द्वारा केंद्रीय गृह मंत्रालय को यह शक्ति प्रदान की गई कि वह न केवल किसी संगठन को, बल्कि **किसी व्यष्टि (व्यक्ति विशेष - Individual) को भी आतंकवादी घोषित कर सकता है** और उसे अधिनियम की चौथी अनुसूची में शामिल कर सकता है।

3. राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण अधिनियम, 2008 (NIA Act)

अ. **उद्भव:** 26/11 के मुंबई आतंकी हमलों के पश्चात देश में आतंकवाद से जुड़े अपराधों की जांच हेतु एक केंद्रीय एजेंसी के रूप में 31 दिसंबर 2008 को राष्ट्रीय अन्वेषण अभिकरण (National Investigation Agency - NIA) की स्थापना की गई।

ब. **अनुसूचित अपराध (Scheduled Offences):** यह एजेंसी संपूर्ण भारत में राज्य पुलिस की अनुमति के बिना सीधे आतंकवाद, जाली मुद्रा, परमाणु प्रतिष्ठानों पर हमलों तथा साइबर आतंकवाद के मामलों को अपने हाथ में लेकर जांच करने की संप्रभु शक्ति रखती है।

स. **2019 का संशोधन:** एनआईए को भारत के बाहर भारतीय नागरिकों अथवा भारत के हितों के विरुद्ध किए गए आतंकवादी अपराधों की जांच करने का **राज्यक्षेत्रातीत अधिकार (Extra-Territorial Jurisdiction)** प्रदान किया गया।

wincompete

गठबंधन राजनीति एवं राष्ट्रीय सुरक्षा: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

गठबंधन राजनीति और राष्ट्रीय सुरक्षा के अंतर्संबंधों का प्रभाव द्विपक्षीय रहा है:

सकारात्मक प्रभाव (Positive Impacts)

अ. **विविधता का राष्ट्रीय समावेशन:** पूर्वोत्तर, दक्षिण भारत और जम्मू-कश्मीर के क्षेत्रीय दलों की केंद्रीय सत्ता में भागीदारी ने इन क्षेत्रों के नागरिकों में राष्ट्रीय मुख्यधारा से जुड़ाव की भावना को सुदृढ़ किया। अलगाववादी प्रवृत्तियां चुनावी राजनीति में भाग लेकर शांत हुईं (जैसे मिजोरम में मिजो नेशनल फ्रंट का शांतिपूर्ण रूपांतरण)।

ब. **तानाशाही और केंद्रीकरण पर रोक:** केंद्र सरकार द्वारा राज्यों की चुनी हुई सरकारों को अनुच्छेद 356 के तहत मनमाने ढंग से बर्खास्त करने की प्रवृत्ति पर लगभग पूर्ण विराम लग गया, जिससे संघीय विश्वास में वृद्धि हुई।

नकारात्मक प्रभाव एवं सीमाएं (Negative Impacts)

अ. **सुरक्षा नीतियों में अनिर्णय की स्थिति (Policy Paralysis):** घटक दलों के राजनीतिक विरोध के कारण राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े कई कड़े कानून या तो निरस्त करने पड़े अथवा कमजोर हुए (उदाहरणार्थ, 2004 में यूपीए सरकार द्वारा आतंकवाद निरोधक अधिनियम - POTA का निरसन)।

ब. **वोट-बैंक राजनीति एवं राष्ट्रीय हितों से समझौता:** आंतरिक सुरक्षा के संवेदनशील मुद्दों (जैसे अवैध घुसपैठ, रोहिंग्या संकट, सीमा प्रबंधन) पर कई बार क्षेत्रीय सहयोगियों के तुष्टिकरण के कारण केंद्र सरकार कठोर सामरिक निर्णय लेने में संकोच करती रही।

संवैधानिक, प्रशासनिक एवं सुरक्षा पारिभाषिक शब्दावली

अ. **त्रिशंकु संसद (Hung Parliament):** आम चुनाव के उपरांत लोक सभा में किसी भी एकल राजनीतिक दल अथवा चुनाव-पूर्व गठबंधन को सरकार बनाने हेतु आवश्यक न्यूनतम स्पष्ट बहुमत (272 सीटें) प्राप्त न होने की स्थिति।

ब. **साझा न्यूनतम कार्यक्रम (Common Minimum Programme):** भिन्न-भिन्न विचारधारा वाले घटक दलों द्वारा गठबंधन सरकार चलाने हेतु सहमत किए गए न्यूनतम सामाजिक-आर्थिक व प्रशासनिक नीतिगत लक्ष्यों का आधिकारिक दस्तावेज।

स. **भूमिपुत्र सिद्धांत (Sons of the Soil Doctrine):** वह संकीर्ण प्रांतीय विचारधारा जिसके तहत किसी राज्य के स्थानीय निवासियों को वहां के रोजगार, भूमि और संसाधनों पर बाहरी राज्यों के नागरिकों की तुलना में अनन्य विशेषाधिकार देने की वकालत की जाती है।

द. **अशांत क्षेत्र (Disturbed Area):** अफस्पा (AFSPA) की धारा 3 के अंतर्गत केंद्र अथवा राज्यपाल द्वारा घोषित वह राज्यक्षेत्र जहाँ विभिन्न धार्मिक, नृजातीय, भाषाई या क्षेत्रीय समूहों के मध्य गंभीर आंतरिक अशांति के कारण नागरिक प्रशासन सेना की सहायता के बिना कार्य करने में असमर्थ हो।

य. **परिस्थितिजन्य विवेक (Situational Discretion):** संविधान में स्पष्ट उल्लेख न होने पर भी, त्रिशंकु संसद जैसी असाधारण परिस्थितियों में राष्ट्रपति द्वारा अपनी व्यक्तिगत सूझबूझ और संवैधानिक अभीसमयों के आधार पर प्रधानमंत्री के चयन का विवेकाधिकार।

र. **हाइब्रिड वॉरफेयर (Hybrid Warfare):** पारंपरिक सैन्य युद्ध के स्थान पर छद्म आतंकवाद, साइबर हमलों, दुष्प्रचार (Fake News), तथा आर्थिक व सामाजिक अस्थिरता के संयुक्त माध्यमों से किसी देश को आंतरिक रूप से खोखला करने की आधुनिक सामरिक युद्ध-पद्धति।

ल. **संवैधानिक बंधुत्व (Constitutional Fraternity):** संविधान की प्रस्तावना में सन्निहित वह मूल संकल्पना जो व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने वाले सार्वभौमिक भाईचारे को स्थापित करती है।

wincompete

wincompete